UNIVERSAL
LIBRARY

OU_186166

UNIVERSAL
LIBRARY

OUP—67—11-1-68—5,000.

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. 1342.5409 S53B Accession No. 44053

Author सिंह, गुरुमुख निहाल

Title भारत का वैधानिक एवं राष्ट्रीय विकास

This book should be returned on or before the date last marked below.

# भारत का वैधानिक
## एवं
# राष्ट्रीय विकास
## (सन् १६०० से सन् १९१९ तक)

लेखक

**गुरुमुख निहाल सिंह**

एम० एस-सी० (इकॉनॉमिक्स) लन्दन, बार एट लॉ

**अध्यक्ष, दिल्ली-प्रदेश-विधान-सभा**

अनुवादक

**सुरेश शर्मा, एम० ए०**

१९५२

आत्माराम एण्ड संस

प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता

**काश्मीरी गेट**

**दिल्ली ६**

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड सन्स
काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मूल्य दस रुपये

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
१० दरिया गंज
दिल्ली

# आमुख

कितने ही वर्षों से मुझसे अपने 'Landmarks in Indian Constitutional and National Development' का हिंदी-सस्करण निकालने को कहा जा रहा था और हिंदी के देश की राष्ट्रभाषा एव भारतीय प्रजातन्त्र की राजभाषा और साथ ही कुछ माध्यमिक शिक्षा-मडलो तथा कुछ विश्वविद्यालयो द्वारा शिक्षा और परीक्षा का माध्यम स्वीकार होने पर यह माँग और भी अधिक हो गई है। मुझे यह कहते हुए हर्ष है कि अब मेरे लिए श्री सुरेश शर्मा एम ए तथा श्री रामलाल पुरी के सहयोग से यह सस्करण निकालना सभव हो गया है। हिंदी-अनुवाद के लिए मैं श्री सुरेश शर्मा का कृतज्ञ हूँ और इसके प्रकाशन का दायित्व लेने के लिए मैं श्री आत्माराम एड सस के सचालक श्री पुरी का आभारी हूँ।

× × × ×

१५ अगस्त १९४७ को भारत के स्वतन्त्र हो जाने पर भारतीय इतिहास का वह युग, जो सन् १६०० मे ईस्ट इडिया कम्पनी की स्थापना से आरम्भ हुआ था, अब समाप्त हो गया है और एक नया युग आरम्भ हो गया है। इस पुस्तक का उद्देश्य सम्पूर्ण ब्रिटिश युग (१६००-१९४७) के भारत के वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास का विवरण देना है। इस अध्ययन को दो खडो मे बाँटा गया है—(१) सन् १६०० से १९१९ तक और (२) सन् १९१९ से १९४७ तक। सन् १९५० के मध्य मे प्रथम खड के द्वितीय सस्करण के प्रकाशित होने के समय मैंने यह आशा की थी कि मैं १९५० के अन्त तक द्वितीय खड को पूरा लिख लूँगा। किंतु मुझे इस बात का खेद है कि अन्य कार्यो के दायित्व के कारण उस दिशा मे पर्याप्त प्रगति नही हो पाई और मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि सन् १९५१ के अन्त से पहले, द्वितीय खड को पूरा करना सभव नही होगा। इस प्रकार, प्रस्तुत खड मे भारत मे अंग्रेज़ी राज्य की कहानी, माण्ट फोर्ड सुधारो तक ही हो पाई है।

× × × ×

पहला खड अंग्रेज़ी मे पहली बार १९३३ मे प्रकाशित हुआ था। उस समय से देश के विभिन्न विश्वविद्यालयो मे इतिहास और राजनीति-विज्ञान के अध्ययन मे, भारत के वैधानिक इतिहास का अध्ययन एक अविभाज्य अग हो गया है। अत., वैधानिक इतिहास के अध्ययन के महत्त्व को सविस्तार समझाने की, अब कोई आवश्यकता नही है। राजनीतिक समस्याओ का ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे

अध्ययन करने की आवश्यकता सुस्पष्ट है । किंतु इसका अर्थ सीली के उस प्रसिद्ध कथन को मान्यता देना नही है कि 'इतिहास मूल है और राजनीति इतिहास का फल है' अथवा इतिहास और राजनीति का अध्ययन एक ही बात है। अधिकाश आधुनिक लेखको के अनुसार यह मत असतुलित है—उनके अनुसार अध्ययन मे, आर्थिक और भौगोलिक कारणो को तथा मनोवैज्ञानिक एव जीव-वैज्ञानिक सिद्धातो को उचित स्थान मिलना चाहिए और विषय का विवेचन ऐतिहासिक तथा समाज-वैज्ञानिक दृष्टिकोण के आधार पर होना चाहिए । किंतु यह कहना सच है कि वैधानिक समस्याओ को ठीक ढग से समझने के लिए और किसी राजनीतिक अथवा वैधानिक शासन-व्यवस्था की तह मे पहुँचने के लिए, वैधानिक इतिहास का अध्ययन अनिवार्य है । मेरा तो यह विचार है कि वैधानिक इतिहास, राष्ट्रीय इतिहास की एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण शाखा है । वह, लोगो की राजनीतिक मनोवृत्ति की तह मे पहुँचने की कुजी है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता-सग्राम के इतिहास मे कुछ अध्याय भयकर एव कष्टकर हो सकते हे, तथापि उस इतिहास का हृदयस्पर्शी एव प्रोत्साहनपूर्ण होना स्वाभाविक ही है ।

× × × ×

यह बात विचित्र प्रतीत हो सकती है किंतु यह एक दु खद सत्य है कि विषय के महत्त्वपूर्ण एव प्रेरणापूर्ण होते हुए भी, भारतीय वैधानिक इतिहास पर अच्छी पुस्तको की अब भी बहुत बडी कमी है। सन् १९३३ से पहले, जब प्रस्तुत पुस्तक का अग्रेजी मूल रूप पहली बार प्रकाशित हुआ था, भारतीय वैधानिक इतिहास पर केवल एक ही पुस्तक थी। इस पुस्तक के लेखक थे मि आर्चबोल्ड, जो एक समय अलीगढ के एम ए ओ कॉलेज के प्रिसिपल थे और जिन्होने अक्तूबर १९०६ के उस प्रसिद्ध मुस्लिम शिष्ट-मडल की व्यवस्था कराने मे महत्त्वपूर्ण भाग लिया था, जिसने मुसलमानो के राजनीतिक प्रतिनिधित्व के लिए पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रो की माँग की थी। जैसा कि उसके नाम से प्रकट है, उस पुस्तक मे केवल रूपरेखा दी गई है—उसमे विस्तृत अध्ययन नही है और साथ ही उसमे राष्ट्रीय एव राजनीतिक जीवन की कोई चर्चा नही की गई। उस पुस्तक का सबसे अधिक उपयोगी भाग वह है जिसमे न्यायालयो के विकास का वर्णन किया गया है। सन् १९३३ मे तीन पुस्तके और थी जिनमे ब्रिटिश भारत के शासन का इतिहास दिया गया था । उनमे से एक पुस्तक के लेखक थे सर कोर्टनी इलबर्ट, जो पहले भारत-सरकार के विधि-सदस्य रह चुके थे। उनकी पुस्तक अच्छी है किंतु उसका क्षेत्र बहुत सीमित है । यह बात पुस्तक के शीर्षक "A Brief Historical Survey of Parliamentary Legislation Relating to India" से भी स्पष्ट है।

अन्य दो पुस्तके है—(१) Sapre : "Growth of the Indian Constitution and System of Administration", (२) C. L. Anand : " History of the Government of India", Part II इन पुस्तको मे भारतीय शासन-व्यवस्था के विभिन्न भागो का सक्षिप्त इतिहास दिया गया है किंतु उनमे राष्ट्रीय जीवन की चर्चा नही की गई और उनको वैधानिक इतिहास की पुस्तक नही कहा जा सकता। सन् १९१८ की भारतीय वैधानिक सुधारो की रिपोर्ट मे सारी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि दी गई है और उसमे भारत मे प्रतिनिधिपूर्ण सस्थाओ के विकास का काफी अच्छा वर्णन किया गया है ।

पिछली दशाब्दी मे भारतीय वैधानिक इतिहास पर तीन पुस्तके प्रकाशित हुई है—(१) Keith : "Constitutional History of India", (२) Punniah : "Indian Constitutional History" और (३) Shri Ram Sharma : "Constitutional History of India" पिछली पुस्तक सबसे बाद का प्रकाशन है और उसका वर्णन, प्रकाशन के समय तक का है । इस सम्बन्ध मे प्रोफेसर कूपलेड ने भारतीय वैधानिक समस्या पर अपनी रिपोर्ट के पहले दो भागो मे बडा महत्त्वपूर्ण काम किया है । इनके शीर्षक है—"The Indian Problem, 1813-1935" और "Indian Politics, 1936-1942."

भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बन्ध मे कितनी ही पुस्तके प्रकाशित हुई है । सभवत इनमे सबसे पहली पुस्तक थी सर वर्नी लोवेट की "The History of the Indian Nationalist Movement." यद्यपि उस पुस्तक का लेखक उस समय आक्सफोर्ड मे भारतीय इतिहास का अध्यापक था किंतु उक्त पुस्तक मे ऐतिहासिक वर्णन का अभाव है। डॉ टोपा की " The Growth and Development of National Thought in India" नामक पुस्तक भी असतोषप्रद है । डॉ टोपा ने आदि काल से १९१९ तक के विकास का विवरण देने का प्रयत्न किया है । किंतु यह क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है । इसके अतिरिक्त उस पुस्तक मे विशेषकर उसके अन्तिम भाग मे यह बात स्पष्ट नही है कि उन्होने राष्ट्रीय विचार-धारा का इतिहास लिखा है अथवा राष्ट्रीय आन्दोलन का । विभिन्न राष्ट्रीय नेताओ ने भी राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास पर पुस्तकें लिखी है—लाजपतराय "Young India"; अम्बिकाचरण मजूमदार "Indian National Evolution"; श्रीमती एनी बीसेंट "How India Wrought for Freedom"; प्रधान. "India's Struggle for Svaraj"; एस एस कवीश्वर. " India's Fight for

Freedom' और डॉ. पट्टाभि सीतारामय्या: 'काग्रेस का इतिहास'। राष्ट्रीय आन्दोलन को समझने मे बहुत से राष्ट्रीय नेताओ और ब्रिटिश शासको की आत्मकथाओ अथवा जीवनियो से भी बहुत बडी सहायता मिलती है। इस सम्बन्ध मे ये पुस्तके उल्लेखनीय है—सर सुरेद्रनाथ बनर्जी, "A Nation in Making"; महात्मा गाधी: 'आत्म कथा'; जवाहरलाल नेहरू 'मेरी कहानी', सुभाषचन्द्र बोस : "An Autobiography"; और लार्ड लिटन, लार्ड रिपन, लार्ड कर्जन, लार्ड मिण्टो, सर फीरोज़ शाह मेहता, लोकमान्य तिलक, देशबन्धु सी आर दास, मि एम ए. जिन्ना, सर फज्लेहुसेन, मौलाना अबुलकलाम आजाद और महात्मा गाधी की जीवनियाँ। अतिम पुस्तक के सयुक्त लेखक है पोलक, ब्रेल्सफोर्ड और पेथिक लारेस। मुस्लिम लीग और पाकिस्तान की माँग पर भी प्रकाश डालने वाली कई पुस्तके है जिनमें निम्न लिखित विशेष महत्त्व की है—नुमान . 'Muslim India'; स्मिथ 'Modern Islam in India'; अम्बेदकर. 'Thoughts on Pakistan'; राजेद्रप्रसाद : 'खण्डित भारत'; अशोक मेहता और अच्युत पटवर्धन : 'Communal Triangle in India'; बेनीप्रसाद 'The Hindu Muslim Question', और असारी : 'Pakistan, The Problem of India.'

तीन प्रकार के प्रकाशन और है जो भारत के वैधानिक इतिहासकार के लिए बडे महत्त्व के है—(१) वार्षिक पर्यालोकन और सामयिक रिपोर्ट, (२) कमेटियो और कमीशनो की रिपोर्ट और (३) राजनीतिक लेखको और विदेशी यात्रियो द्वारा लिखी हुई पुस्तके। पहले वर्ग मे भारत की नैतिक और भौतिक प्रगति के सम्बन्ध मे सरकारी रिपोर्टो की गणना है। ये रिपोर्टें सन १९१८ से १९३५ तक 'India in.....(वर्ष की सख्या)' शीर्षक के अन्तर्गत प्रकाशित हुई। इसी श्रेणी मे 'The Indian Annual Register' की भी गणना है जिसका कलकत्ता से एस. एम. मित्र ने प्रकाशन किया। दूसरे वर्ग मे निम्नलिखित प्रकाशनो की गणना है–भारतीय निष्केन्द्रीकरण कमीशन की रिपोर्ट, विभिन्न लोक-सेवा आयोगो की रिपोर्टें, माण्ट फोर्ड रिपोर्ट, हण्टर-कमेटी रिपोर्ट, मुडीमैन कमेटी रिपोर्ट; गोल मेज-परिषदो की कार्यवाही; सन् १९३३ का सुधार-सम्बन्धी श्वेत-पत्र, सन् १९१९ और १९३५ के सुधार-विधेयको पर पार्लियामेट की सयुक्त प्रवर समितियो की रिपोर्टें; साइमन कमीशन की रिपोर्ट और उसके विस्तृत परिशिष्ट; और १९१९ तथा १९३५ के सुधारो के सम्बन्ध में नियुक्त की हुई विभिन्न कमेटियो की रिपोर्ट। तीसरे वर्ग मे निम्न लिखित लेखको की पुस्तको की गणना है—हैनरी नेविन्सन; सर वैलेण्टाइन शिरोल; सर हेनरी काटन;

सर विलियम वेडरबर्न; सर सिडनी लो और कमांडर केनवर्दी; फेनर ब्रॉकवे और निकॉलस बेवरले; एडवर्ड टामसन और जी. टी. गैरेट; शुस्टर और विण्ट; ब्रेल्सफोर्ड और पेण्डेरल मून, बार्टन और कोटमैन, रशब्रुक विलियम्स और एल एस एस. ओ. मॉली; क्यूमिग्स और उफे; हिक्स और पार्किन; ग्रिफिथ और रालिन्सन।

और बहुत सी पुस्तके, रिपोर्टे, समाचार-पत्र आदि है, जिनको मैंने भारत के वैधानिक एव राष्ट्रीय विकास की कहानी को पूरा करने मे उपयोगी पाया है। उन सबका यहाँ उल्लेख करना सभव नही है। पुस्तक की पाद-टिप्पणियो मे मैंने यथा स्थान उनके प्रति कृतज्ञता स्वीकार की है।

× × × ×

अगले पृष्ठो मे भारत मे ब्रिटिश राज्य की स्थापना और विस्तार का; देश में ब्रिटिश शासन-व्यवस्था के विकास; भारत मे राजनीतिक जीवन के आरम्भ और उसके उत्थान; देश के शासन मे हाथ बटाने के लिए भारतीय माँग के आरम्भ और उसकी वृद्धि; राष्ट्रीय आन्दोलन और अपनी आकाक्षाओ एव आदर्शो के लिए राष्ट्रीय सघर्ष; मुस्लिम साम्प्रदायिकता के जन्म ओर उसके विकास; पाकिस्तान की माँग और देश के विभाजन; भीषण साम्प्रदायिक दगो और सामूहिक निष्क्रमण; फूट डालकर राज्य करने की नीति; ब्रिटिश सरकार के दमन और सुधार; अहिसात्मक असहयोग अथवा सत्याग्रह की पद्धति के विकास और सफल प्रयोग; शान्ति के साथ राजनीतिक स्वतन्त्रता की उपलब्धि, और ब्रिटेन के साथ मित्रता और कॉमनवेल्थ की सदस्यता बनाये रखने का, काफी विस्तार से वर्णन किया गया है। इस वर्णन के सिलसिले मे तथ्यो की तह मे जाने का और उद्देश्यो तथा मनोवृत्तियो के विश्लेषण का प्रयत्न किया गया है और विभिन्न कारणो अथवा पक्षो पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही विभिन्न थुगो की परिस्थितियो का भी उचित रूप से उल्लेख किया गया है। इस उद्देश्य के लिए आर्थिक और सामाजिक तथ्यो तथा आन्दोलनो का विवरण भी दिया गया है जिसका देश के वैधानिक इतिहास मे अन्यथा कोई स्थान नही था। इतने पर भी यह सभव है कि कुछ लोगो के अनुसार कितनी ही बाते छोडी हुई प्रतीत हो सकती है। इस सम्बन्ध मे मैं केवल इतना ही कहूँगा कि मैंने इस बात का अधिकाधिक प्रयत्न किया है कि प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य से सगत कोई तथ्य और विवरण छूट न जाय।

मैं इस पुस्तक मे निर्णय देने से दूर रहा हूँ। मैंने तथ्यो को वैज्ञानिक रूप मे, उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि मे प्रस्तुत किया है, मैंने निन्दा अथवा स्तुति के दायित्व को निश्चित नही किया।

प्रस्तुत खड दो भागो मे विभाजित किया गया है । पहले भाग मे भारत मे कम्पनी के राज्य का वर्णन किया गया है । यह वर्णन, सक्षिप्त है; वह परिचायक के रूप मे है और इसके द्वारा भारत-सरकार के राजनीतिक एव प्रशासनीय चित्र को पूर्ण किया गया है । इसी कारण भारत की प्रान्तीय सरकारो पर पार्लियामेट और मन्त्रियो के नियत्रण, समाचार-पत्रो के विनियमन और नियत्रण आदि विषयो की ओर विशेष रूप मे ध्यान आकर्षित किया गया है ।

दूसरे भाग का शीर्षक है 'भारत मे ब्रिटिश राज्य', जिसे परम्परा के अनुसार ही मान्यता दी गई है । अन्यथा मेरे मत से दूसरे भाग का वैज्ञानिक दृष्टि से सही शीर्षक है 'भारत मे प्रतिनिधिपूर्ण सस्थाओ का विकास' । छपाई की दृष्टि से यह शीर्षक असुविधाजनक था, क्योकि पुस्तक के दूसरे भाग के प्रत्येक पृष्ठ के आरम्भ मे उसे रखने मे बडी कठिनाई थी ।

दूसरे भाग को तीन स्वाभाविक और सुपरिचित युगो मे विभाजित किया गया है—सन् १८६१ से १८९२ तक, सन् १८९२ से १९०९ तक, और सन् १९०९ से १९१९ तक । प्रत्येक युग की प्रशासनीय एव वैधानिक महत्त्व की घटनाओ का पर्याप्त विस्तार से वर्णन किया गया है और साथ ही उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को स्पष्ट कर दिया गया है । वैधानिक परिवर्तनो और राष्ट्रीय प्रगति के कारणो पर उचित रूप से प्रकाश डाला गया है। उसी सदर्भ मे प्रगति के लिए सघर्ष, उसके स्वरूप, प्रवाह और परिणामो का वर्णन किया गया है; उस युग की सारी उपलब्धियो को बताया गया है ।

यह वर्णन युगानुसार न होकर विषयानुसार भी हो सकता था; किंतु मेरे विचार से युगानुसार वर्णन अधिक स्वाभाविक और उपयोगी है । उसमे अधिक स्पष्टता है और घटनाओ का प्रवाह सरलता से समन्वित हो सकता है । दूसरे खड मे अगले दो युगो—सन् १९१९ से १९३५ तक और १९३५ से १९४७ तक—की चर्चा है । जैसा कि आरम्भ मे कहा जा चुका है, मै यह आशा करता हूँ कि दूसरा खड सन् १९५१ के अन्त तक पूरा हो जायगा ।

× × × ×

राजनीति-विज्ञान, इतिहास और भारतीय वैज्ञानिक समस्याओ के विद्यार्थियो के अतिरिक्त, सार्वजनिक समस्याओ के जिज्ञासुओ और पाठको के लिए भी प्रस्तुत पुस्तक को उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है । मैने विषय को, यथा सामर्थ्य, स्पष्टता और सरलता के साथ प्रस्तुत करने की चेष्टा की है किंतु मैने इस बात का पूरा ध्यान रखा है कि वैज्ञानिक सुनिश्चितता को कोई भी क्षति न पहुँचे । जैसा कि मैने अन्यत्र कहा है, "विश्व विद्यालय स्वतन्त्र विचारो का स्थान है और प्रोफेसर के लिए यह एक गौरव की बात है कि वह कोमल विषयो को भी पूर्ण निष्पक्षता

और स्पष्टता के साथ समझाता है ।' इस पुस्तक में मैंने उसी भावना को सर्वोपरि स्थान दिया है ।

× × × ×

काशी-विश्वविद्यालय के बहुत-से मित्रो और सहयोगियो के प्रति मै विशेष रूप से कृतज्ञ हूँ। यह दु ख की बात है कि आज उनमे से कुछ व्यक्ति इस ससार मे नही है। मुझे इस बात का विश्वास है कि बनारस के मेरे मित्र और सहयोगी इस बात का बुरा नही मानेगे कि मै उनके प्रति अपना आभार प्रकट करने मे उनके नामो का उल्लेख नही कर रहा। भेद-भाव न करने की दृष्टि से मै रामजस कॉलेज, दिल्ली के अपने तरुण सहयोगी को भी बिना नाम लिये ही धन्यवाद दूँगा । यहाँ पर मै केवल अपने भाई सन्त निहाल सिह और उनकी सहधर्मिणी श्रीमती कैथिलीन निहालसिह के ही नामो का उल्लेख करूँगा--उनके प्रति मै अत्यन्त कृतज्ञ हूँ और उनको आदर और श्रद्धा के साथ मै इस पुस्तक को समर्पण करता हूँ, जिसको लिखने मे मैंने अपने जीवन के कई वर्ष व्यतीत किये है ।

अन्त मे, मै यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि इस खड मे जो कुछ भी दोष हो, उनके लिए मै स्वय ही उत्तरदायी हूँ ।

कॉलेज ऑव कामर्स,
दिल्ली ।

गुरुमुख निहाल सिह

# विषय-सूची

## भाग १

## भारत में कम्पनी का राज्य

( पृष्ठ १ से पृष्ठ ८२ तक )


| अध्याय | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १ | ब्रिटेनवासियों का आगमन | ३ |
| २ | ब्रिटिश राज्य का आरम्भ | १४ |
| ३. | द्वैध शासन का युग | ३६ |
| ४ | कम्पनी के अन्तिम दिन | ६२ |


## भाग २

## भारत में ब्रिटिश राज्य

( पृष्ठ ८३ से पृष्ठ ४१९ तक )


| | | |
|---|---|---|
| ५ | प्रतिनिधि संस्थाओं का आरम्भ | ८५ |
| ६. | शासन और राजनीति में परिवर्तन | ९७ |
| ७. | वैधानिक विकास | १०४ |
| ८ | वित्तीय निक्षेपण और स्थानीय स्वशासन | ११५ |
| ९ | भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का आरम्भ | १२४ |
| १० | १८९२ का भारतीय परिषद् एक्ट | १३६ |
| ११. | शासन तथा संविधान से सम्बन्धित परिवर्तन | १४० |
| १२ | धार्मिक राष्ट्रीयता का आरम्भ | १५१ |
| १३ | भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन . वैधानिक एव क्रांतिकारी | १६७ |
| १४. | दमन और सुधार | १९३ |
| १५ | मुस्लिम साम्प्रदायिकता का आरम्भ | २०७ |
| १६ | मॉर्ले-मिण्टो सुधार | २३१ |
| १७ | शासन तथा संविधान से सम्बन्धित परिवर्तन | २५१ |
| १८ | क्रान्ति और दमन | २७३ |
| १९ | वैधानिक आन्दोलन | ३०१ |
| २०. | मॉण्टफ़ोर्ड सुधार | ३२३ |
| २१. | विच्छिन्नता की वृद्धि | ३७३ |
| २२. | अमृतसर का हत्याकाण्ड | ३८९ |

# भाग १

## भारत में कम्पनी का राज्य

## पहला अध्याय

# ब्रिटेनवासियों का आगमन

(१)

भारत की अनन्त सम्पत्ति की कहानियो को सुनकर और स्पेनवासियो को पूर्वी द्वीप समूह के साथ व्यापार मे समृद्ध होता हुआ देखकर, अंग्रेज साहसिक ललचाये और इस देश के लिए नया समुद्री[1] मार्ग पाने के लिए दुस्तर खोज करने लगे। उन्होने भयकर कठिनाइयो और बहुत बडी हानियो का सामना किया। उनमे से कुछ ने इस प्रयत्न मे अपने प्राणो और जहाजो को खो दिया।[2] कुछ को विवश होकर दूसरे प्रदेशो मे उतरना पडा और दूसरे देशवासियो के साथ व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने पडे।[3] परन्तु वे जुटे रहे जब तक उन्हे यह विश्वास नही हो गया कि भारत जाने के लिए 'गुडहोप' अन्तरीप से घूमकर जाना ही सर्वोत्तम मार्ग है और जब तक उन्हे वहाँ पैर जमा सकने का निश्चय नही हुआ, वे बराबर प्रयत्नशील बने रहे। एक शताब्दी के दु खद अनुभव से तो उन्हे पहली बात का विश्वास हुआ और एलिज़ाबेथ के आधीन इगलैड की बढती हुई शक्ति से उन्हे दूसरी बात की आशा हुई। फलत पूर्वी द्वीप समूह के साथ व्यापार करने के उद्देश्य से, लन्दन के कुछ साहसिक व्यापारियो ने अपनी एक कम्पनी[4] बनाई।

लन्दन के व्यापारियो की यह कम्पनी सन् १५९९ मे बनी और उसे ३१ दिसम्बर १६०० मे रानी एलिजबेथ से अधिकार-पत्र मिला। उस अधिकार-पत्र ने कम्पनी की व्यवस्था एक गवर्नर और चौबीस सदस्यो मे निहित की और इन लोगो को पूर्वी द्वीप समूह के लिए खोजपूर्ण व्यापारिक यात्राओ के सगठन का अधिकार दिया। सुदूर पूर्व के व्यापार के लिए कम्पनी को एकाधिपत्य मिला और

---

१. स्थल मार्ग मे तुर्किस्तान की बाधा थी और गुडहोप अन्तरीप के मार्ग पर पुर्तगाल वालो का एकाधिपत्य समझा जाता था।

२. सोलहवी शताब्दी के आरम्भ मे सर ह्यू विलबी ने नये समुद्री मार्ग द्वारा भारत पहुँचने के प्रयत्न मे अपनी जान दी और अपना जहाज खोया।

३. कैप्टेन चासलर को विवश होकर श्वेत समुद्र (ह्वाइट सी) मे जाना पड़ा। वहाँ से वह मास्को गये और आग्ल-रूसी व्यापार और कम्पनी की नीव रखी।

४. कम्पनी का नाम था : 'गवर्नर एण्ड कम्पनी ऑव् मर्चेण्ट्स ऑव् लण्डन ट्रेडिंग इन टु दि ईस्ट इण्डीज़'।

साथ ही अपनी रक्षा के लिए सीमित[1] किन्तु सशस्त्र, समुद्री सेना रखने का अधिकार मिला। आरम्भ मे अधिकार-पत्र १५ वर्षो के लिए था। यह अवधि बीतने पर फिर से जारी किया जाता, यह परीक्षण करने के बाद कि राजसत्ता और सर्वसाधारण के हितो को कोई क्षति तो नही पहुँचती, दो वर्ष का नोटिस देकर अधिकार-पत्र समाप्त किया जा सकता था।

लन्दन-कम्पनी एक 'रेगुलेटेड'[2] कम्पनी की तरह आरम्भ हुई। वह 'ज्वाइण्ट स्टॉक' कम्पनी नही थी। कम्पनी के नाम से जो सबसे पहली समुद्री यात्राएँ हुईं वह पृथक् यात्राएँ थी, सयुक्त यात्राएँ नही थी। उन यात्राओ से केवल उन्ही सदस्यो को लाभ हुआ, जो स्वय ही अपनी इच्छा से उन यात्राओ मे सम्मिलित हुए। किन्तु सन् १६१२ मे सयुक्त पूँजी की आवश्यकता अनुभव की गई और सब सदस्यो से साझेदारी मे पूँजी लगाने के लिए कहा गया। आरम्भ मे यह साझा निश्चित और सीमित अवधि के लिए था।[3] सन् १६५७ मे पहली बार सदस्यो ने स्थायी सयुक्त पूँजी के लिए धन दिया और कम्पनी को एक ज्वाइण्ट स्टॉक कारपोरेशन बना दिया।

(२)

(अधिकार-पत्र से सुरक्षित, लन्दन कम्पनी अपने अत्यन्त घटनापूर्ण जीवन मे आगे बढी)। एक स्थायी आग्ल-भारतीय व्यापार की नीव रखने के लिए उसने भारतीय समुद्र-तट के महत्त्वपूर्ण बन्दरगाहो पर फैक्ट्री बनाना और बस्ती बसाना आरम्भ किया। कम्पनी द्वारा स्थापित सबसे पहला व्यापारिक बन्दरगाह था-

---

१. कम्पनी को अधिकार-पत्र ( चार्टर ) से 'छ अच्छे जहाज और छः अच्छी लड़ाकू नावे' और उनके लिए पर्याप्त युद्ध सामग्री, शस्त्र आदि और ·····पाँच सौ नाविक रखने का अधिकार मिला।
Mukherjee : Indian Constitutional Documents Vol. I., page 14.

२. "ऐसी कम्पनी के सदस्य कुछ ऐसे नियमो के अधीन थे जो सबसे सम्बन्धित थे और कुछ सुविधाओ के लिए सबको अधिकार था लेकिन प्रत्येक सदस्य अपनी निजी पूँजी पर कायम व्यापार था और कोई सयुक्त पूँजी नही थी।"
Ilbert : Govt. of India. Historical Survey, page 7.

३. "अवधि पर समाप्त होने वाली साझेदारी मे, समय आने पर, साझे का विभाजन हो जाता।"
The Cambridge History of India, Vol. V., page 89.

सूरत[1], जहाँ उसे सम्राट् जहाँगीर से जमीन और कुछ दूसरी सुविधाएँ मिली थी। सन् १६१६ मे मछलीपट्टम मे एक फैक्ट्री स्थापित की गई। सन् १६३३ में (महानदी डेल्टा मे) एक फैक्ट्री हरिहरपुर मे खोली गई। सन् १६४० मे सेण्ट जार्ज का किला मद्रास मे बनाया गया। सन् १६५० मे कम्पनी को बगाल के शासक से, उस प्रान्त मे व्यापार करने, फैक्ट्री बनाने आदि का अधिकार मिला (जो बगाल जीतने पर औरगज़ेब के शाही प्रतिनिधि ने बना रहने दिया)। फलत शाही बन्दरगाह हुगली पर एक फैक्ट्री खोली गई लेकिन नये शाही प्रतिनिधि शाइस्ताखाँ के विरोध के कारण कम्पनी विशेष प्रगति नही कर सकी। सन् १६८६ मे जॉब चारनॉक को हुगली छोडना पडा और सुतनती, जहाँ वर्तमान कलकत्ता स्थित है, आना पडा। १६९० मे वहाँ एक फैक्ट्री बनाई गई। १६६९ मे राजा चार्ल्स द्वितीय ने राजसत्ता के नाम से १० पौड वार्षिक लगान पर बम्बई द्वीप और बन्दगाह भेट किये। इस प्रकार भारत के समुद्र-तट के महत्त्वपूर्ण स्थान सत्रहवी शताब्दी के अन्त तक कम्पनी को प्राप्त हो गए। इन स्थानो से कम्पनी अपना व्यापार और अपने दूसरे धधे सुविधा के साथ कर सकती थी।

(३)

किसी कम्पनी को एकाधिपत्य देना, आजकल, नागरिकता के साधारण अधिकारो पर प्रबल आघात समझा जा सकता है किंतु वह समय विशेषाधिकार और एकाधिपत्य का था और विदेश-व्यापार के क्षेत्र मे तो यह बात विशेष रूप से थी। अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियाँ ही ऐसी थी कि अधिकाश जनता को गिने-चुने लोगो की कारपोरेशनो[2] का एकाधिपत्य मानना पडता। जैसा कि इल्बर्ट ने सकेत किया है, "पूर्वी व्यापार को सफलता से चलाने के लिए यह आवश्यक था कि ऐसी समितियाँ बनाई जायँ जो देशी राजाओ से समझौता और सौदा करने मे, अपने नौकरो मे अनुशासन बनाये रखने मे और अपने यूरोपीय प्रतिद्वन्द्वियो को उखाड फेकने मे समर्थ हो। स्वतन्त्र या अनधिकृत व्यापारी अपनी निर्बलता

१. कम्पनी की पहली दो यात्राएँ भारत के लिए नही हुई वरन् आचीन (सुमात्रा), बान्तुम (जावा), और मौलुकास के लिए हुई। तीसरी यात्रा मे बान्तुम के मार्ग मे सूरत पर रुकने की व्यवस्था हुई (२४ अगस्त १६०८)। लेकिन शाही फरमान १६१३ मे मिला और उस समय सूरत मे स्थायी फैक्ट्री खोली गई।

२. आग्ल-रूसी व्यापार का एकाधिपत्य १५५३-५८ मे रूसी कम्पनी को और भूमध्य सागर के व्यापार का एकाधिपत्य १५८१ मे लीवेण्ट कम्पनी को दिया गया था।

के कारण, विदेशियो की दया पर रहता और अपने उत्तरदायित्व से विहीन होने के कारण अपने देशवासियों के लिए सकट का कारण हो सकता था।[1]

(४)

फिर भी लन्दन-कम्पनी के प्रति आरम्भ से ही ईर्ष्या और रोष की भावना जाग्रत हुई और उसे देशी तथा विदेशी[2] अनधिकृत व्यापारियो और प्रतिद्वन्द्वियो ने परेशान किया। उसकी पहली मुठभेड हुई असाडा-कम्पनी से। इस कम्पनी को उसके सस्थापक सर विलियम कोर्टीन के नाम पर कोर्टीन एसोसियेशन भी कहते थे। सर कोर्टीन ने अपने प्रभाव और अपनी पहुँच द्वारा चार्ल्स प्रथम से अधिकार-पत्र प्राप्त कर लिया था। इस कम्पनी ने असाडा (मैडगास्कर) मे एक बस्ती बसाई थी। कुछ समय तक इसने बडे जोरो से व्यापार चलाया और लन्दन-कम्पनी को भारी क्षति पहुँचाई। अन्त मे एक समझौता हुआ और असाडा-कम्पनी, लन्दन-कम्पनी मे मिला ली गई। गृह-युद्ध का भी कम्पनी की स्थिति पर बुरा प्रभाव पडा[3] लेकिन विजेता ने उसकी रक्षा की। उसने देशी और विदेशी प्रतिद्वन्द्वियो के साथ कम्पनी के झगडो का निपटारा किया और १६५७ मे एक नया अधिकार-पत्र दिया और साथ ही उसे एक स्थायी सयुक्त पूँजी की कम्पनी के रूप मे बदल दिया।[4]

नये अधिकार-पत्र के नियमो के अनुसार कोई भी व्यक्ति ५ पौड प्रवेश-शुल्क और कम्पनी की पूँजी मे कम-से-कम १०० पौड देकर, उसका सदस्य हो सकता था किन्तु कम्पनी के साधारण अधिवेशन या 'जनरल कोर्ट' मे मत वही व्यक्ति दे सकता था जिसका पूँजी मे साझा ५०० पौड या उससे अधिक हो। १००० पौड के साझेदार कमेटियो अथवा 'कोर्ट ऑव् डाइरेक्टर्स' की सदस्यता के चुनाव के लिए खडे हो सकते थे। इनमे से प्रतिवर्ष आठ सदस्यो की अवधि समाप्त होती। गवर्नर और डिप्टी गवर्नर का

१. Ilbert : Historical Survey, page 9.

२ विदेशी प्रतिद्वन्द्वियो से सघर्ष के सम्बन्ध मे पृष्ठ ९ और १० देखिये।

३. पार्लियामेण्ट के राउण्डहेड अर्थात् प्योरिटन दल ने कम्पनी से बलात् ५००० पौड का ऋण लिया।

४. १९ अक्तूबर १६५७ के अधिकार-पत्र ने कम्पनी को एक स्थायी सयुक्त पूँजी बनाने के लिए जोर दिया। इस प्रकार हटर के शब्दो मे कम्पनी, "मध्यकालीन व्यापार-सघ के दुर्बल अवशिष्ट से आगत आधुनिक ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनी" के रूप मे बदल दी गई।

कार्य-काल घटा दिया गया जो अधिक-से-अधिक लगातार दो वर्ष के लिए सीमित था ।

चार्ल्स द्वितीय के प्रत्यागमन के बाद कुछ समय तक कम्पनी की समृद्धि की धूम रही। यह चढाव सत्रहवीं शताब्दी की नवीं दशाब्दी मे अपने सर्वोच्च बिन्दु पर पहुँचा। उस समय कम्पनी का निर्देशन सर जोशिया चाइल्ड के महान् व्यक्तित्व द्वारा हो रहा था। उसी समय सन् १६८८ का प्रसिद्ध प्रस्ताव स्वीकार किया गया था ।[1] किन्तु १६८८ की क्रान्ति के बाद कम्पनी के लिए स्थिति बिगड गई।

कम्पनी के प्रतिद्वन्द्वियो ने क्रांति और बदली हुई राजनीतिक परिस्थिति का लाभ उठाया और एक प्रबल विरोध का सगठन किया। १६९१ मे पार्लियामेंट ने सुदूर पूर्व के व्यापार की सफलता और उस व्यापार को एक ज्वाइण्ट स्टॉक कम्पनी के हाथो मे बने रहने देने की उपयोगिता को स्वीकार किया, और लन्दन-कम्पनी को उसके प्रतिद्वन्द्वियो द्वारा बनाई हुई नई कम्पनी मे मिला देने का प्रस्ताव किया गया। लेकिन बहुत बडी रिश्वतें[2] देकर सर जोशिया चाइल्ड ने १६९३ मे कम्पनीका अधिकार-पत्र फिर से जारी करा लिया।

सन् १६९३ के अधिकार-पत्र के अनुसार कम्पनी की पूँजी बढाकर ७,४४,००० पौड कर दी गई, किसी एक व्यक्ति का अधिकतम साझा १०,००० पौड पर सीमित कर दिया गया और हर १००० पौड की पूजी[3] पर एक वोट के अनुसार किसी एक साझेदार के लिए अधिक-से-अधिक १० वोट की सीमा निश्चित कर दी गई। १००० पौड देने वाले साझेदार

१. सन् १६८८ का प्रस्ताव : "हमारी आय मे वृद्धि हमारे ध्यान का विषय है... उतने ही ध्यान का जितना कि हमारा व्यापार; अपने व्यापार मे बाधाओ और दुर्घटनाओ के समक्ष उसी से बल बनाये रखना है; उसी से हमे अपने को भारत मे एक राष्ट्र बनाना है।"

२. सन् १६९५ मे हाउस ऑव् कॉमन्स के सामने रखे गए कम्पनी के गुप्त खर्च के हिसाब के अनुसार २३,४६९ पौड सन् १६८८ और १६९२ के बीच खर्च किये गए और १६९३ मे ८०,४६८ पौड खर्च किये गए।
Thakore: Indian Administration to the Dawn of Responsible Government.

३. सन् १६९८ के अधिकार-पत्र द्वारा एक वोट के लिए ५०० पौड के साझे का नियम हो गया और अधिकतम वोटों की सख्या ५ कर दी गई।

कमेटियो के चुनाव के लिए खडे हो सकते थे[1]; लेकिन गवर्नर या डिप्टी गवर्नर होने के लिए ४००० पौड का साझा होना आवश्यक था। सारे स्थान-परिवर्तनो का उल्लेख एक रजिस्टर मे किया जाना था। इस रजिस्टर को सार्वजनिक निरीक्षण के लिए सुलभ रखना था। सयुक्त पूँजी का भुगतान केवल इक्कीस वर्षों के लिए था।[2]

अधिकार-पत्र फिर से मिलने के कारण लन्दन-कम्पनी का बल बढा और उसने पूर्वी द्वीप समूह के लिए जाने वाले रेडब्रिज जहाज को रोक लिया। कम्पनी ने इस व्यवहार पर आपत्ति की और प्रश्न पार्लियामेन्ट के सामने आया। हाउस ऑव् कामन्स ने १६९४ मे एक प्रस्ताव स्वीकार किया, "कि इगलैंड की सारी प्रजा को पूर्वी द्वीप समूह के साथ व्यापार करने का समान अधिकार है, जब तक कि पार्लियामेट के एक्ट द्वारा ही उस पर रोक न लगा दी जाय।" इस प्रकार उस समय के लिए लन्दन-कम्पनी का एकाधिपत्य तोड दिया गया। साथ ही लार्ड मैकॉले के शब्दो मे सदा के लिए यह निर्णय कर दिया गया कि, "लोक सभा के अतिरिक्त और कोई सत्ता किसी व्यक्ति या समुदाय को ससार के किसी भाग से व्यापार करने के लिए एकाधिपत्य अथवा विशेषाधिकार नही दे सकती।"

सन् १६९४ के प्रस्ताव से व्यापारिक एकाधिपत्य प्रदान करने का अधिकार राज-पद से हटकर पार्लियामेट मे आ गया। अब एक एक्ट के लिए तत्कालीन अर्थ-मन्त्री ( चासलर ऑव् दी एक्सचेकर ) मि माण्टेगु द्वारा, पुरानी और नई दोनो कम्पनियाँ, लोक सभा मे पयत्न करने लगी। माण्टेगु को धन की बडी भारी आवश्यकता थी और दोनो कम्पनियो के बीच व्यापार का एकाधिपत्य "नीलाम पर रख दिया गया।"[3] पुरानी कम्पनी ने पहले ही रिश्वत मे बडी-बडी रकमे खर्च की थी और हाल मे ही फ्रास से युद्ध के समय मे बडा भारी घाटा उठाया था और वह ४ प्रतिशत ब्याज पर केवल ७,००००० पौड का ऋण दे सकती थी और वह भी पूँजी बढाकर १५,००,००० पौंड करने

१. सन् १६९८ मे बढाकर २००० पौड कर दी गई।

२. Ilbert: Historical Survey, page 26.

३. "(विशेषाधिकारो के बदले में राज्य के लिए ऋण लेने की) यह व्यवस्था उससे अच्छी थी जिसमे व्यापारियो को विशेषाधिकार राजाओं को भेंट देने और मन्त्रियो को रिश्वत देने से मिलते थे और इसे अगली पीढी में बहुत बढावा मिलना था।" Ilbert: Historical Survey, page 28.

की अनुमति मिलने पर। किंतु नई कपनी २०लाख पौड उधार देने को प्रस्तुत थी। माण्टेगु को इतने की ही आवश्यकता थी। पर नई कम्पनी की ब्याज की दर ८ प्रतिशत थी। पार्लियामेंट मे बिल रखा गया जिसके अनुसार, "सरकार के लिए २० लाख पौड ऋण की माँग की गई। उसके बदले मे ऋण देने वालो को पूर्वी द्वीप समूह के साथ व्यापार करने का एकाधिपत्य था।"[1] पुरानी कम्पनी को उसके अधिकार-पत्र के अनुसार ३ वर्ष अर्थात् सितम्बर १७०१ तक समय देना था। जब पुरानी कम्पनी ने यह अनुभव किया कि एकाधिपत्य और किसी प्रकार नही बच सकता तो वह सारी रकम का प्रबन्ध करने के लिए तैयार हुई किन्तु यह प्रस्ताव देर से आया। नई कम्पनी को एकाधिपत्य देने वाला बिल पार्लियामेंट के दोनो भवनो से स्वीकृत हो गया और जुलाई १६९८ मे उसे राजकीय स्वीकृति मिल गई।

सन् १६९८ के एक्ट ने ऋण देने वालो को इस बात की स्वतन्त्रता दी कि वे अपनी पूँजी के परिमाण के अन्तर्गत अलग-अलग अथवा "राजकीय अधिकार-पत्र के अधीन[2] सयुक्त रूप से व्यापार कर सकते है।" "अधिकाश ने पिछली बात को पसन्द किया ओर परिणामत ५ सितम्बर १६९८ को शाही अधिकार-पत्र द्वारा 'दी इगलिश कम्पनी ट्रेडिग दि ईस्ट इडीज' नाम की नई कम्पनी बनी।" उसका प्रबन्ध २४ डाइरेक्टरो को सौपा गया। ये लोग अपने मे से ही एक अध्यक्ष (चेयरमैन) और एक उपाध्यक्ष नियुक्त करते। इस सम्बन्ध मे एक ध्यान देने की बात यह है कि पहली कम्पनी की तरह इस कम्पनी के लिए कोई पृथक् प्रवेश-शुल्क नही था।[3]

सन् १६९८ के एक्ट बन जाने के फलस्वरूप दोनो कम्पनियो मे घातक प्रतिद्वन्द्विता हुई जिसमे सचाई के साथ व्यापार करने के सारे नियमो की अवहेलना की गई। पुरानी कम्पनी को अनुभव था और साथ ही नई कम्पनी मे कुछ स्वार्थ भी था। कारण यह था कि भविष्य के लिए सुरक्षा की दृष्टि से पुरानी कम्पनी ने नई कम्पनी की २० लाख पौड की पूँजी मे ३,१५,००० पौड दिये थे। दूसरी ओर सन् १७०१ मे पुरानी कम्पनी के बन्द होने तक नई कम्पनी प्रतीक्षा कर सकती थी। किन्तु इसी बीच स्थिति बडी विकट

१ Foster: Chapter IV, Cambridge History of India, Vol. V, pages 98-99.

२. Ilbert: Historical Survey, page 28.

३. Foster: Chapter IV, Cambridge History of India, Vol. V, pages 98-99.

हो गई। नई कम्पनी को असाधारण क्षति होने लगी। उसके लिए एकमात्र उपाय पुरानी कम्पनी से किसी प्रकार समझौता करना था। इस प्रकार लार्ड गोडोल्फिन के हस्तक्षेप से समझौता हुआ। उसके अनुसार दोनो कम्पनियाँ अपनी सम्पत्ति के मूल्य आँके जाने के बाद, बराबर के साझे मे एक हो जाने को तैयार हो गई। सन् १७०२ के इस समझौते के अनुसार "पुरानी कम्पनी को सात वर्ष तक पृथक् सत्ता बनाये रखने की अवधि मिली, किन्तु इगलिश कम्पनी के नाम से व्यापार सयुक्त रूप से चलने की व्यवस्था थी। इस सयुक्त व्यापार का लाभ दोनो के लिए था और उसका निर्देशन २४ सदस्यो के हाथ मे होना था—१२ सदस्य पुरानी कम्पनी द्वारा छाँटे हुए और १२ नई कम्पनी द्वारा। सात वर्ष बीतने पर पुरानी कम्पनी को अपने अधिकार-पत्र[1] छोड देने की शर्त थी" और नई कम्पनी 'दी यूनाइटेड कम्पनी ऑव् मर्चेण्ट्स ऑव् इगलैंड ट्रेडिग टु दी ईस्ट इडीज' नाम से व्यापार चलाती।

सन् १७०२ के समझौते मे कुछ झगडे उठ खडे हुए और कठिनाइयां सामने आई। इनका निपटारा करने के लिए १७०७ मे एक एक्ट बनाया गया। इसके द्वारा नई कम्पनी से सरकार को बिना ब्याज के १२ लाख पौड का एक अतिरिक्त ऋण देने के लिए कहा गया। इस प्रकार कुल ३२ लाख पौड पर ब्याज की दर घटकर केवल ५ प्रतिशत रह गई। बदले मे इगलिश कम्पनी के विशेषाधिकार १७२६ तक बढा दिए गए। साथ ही इस कम्पनी को उन व्यापारियो से, जिन्होने १६९८ मे व्यक्तिगत रूप से व्यापार करने का निश्चय किया था, उनका व्यापार खरीद लेने का अधिकार दिया गया। दोनों कम्पनियो के प्रमुख प्रश्नो को हल करने के लिए लार्ड गोडोल्फिन मध्यस्थ नियुक्त किये गए। उन्होंने सितम्बर १७०८ मे अपना निर्णय दिया। मार्च १७०९ मे पुरानी कम्पनी ने अपने अधिकार-पत्र रानी को सौप दिए। इस प्रकार लडन-कम्पनो के पृथक् अस्तित्व का अन्त हो गया। नई कम्पनी ने[2] अपने उपर्युक्त नाम से पुरानी कम्पनी का काम हाथ मे ले लिया और अपना घटनापूर्ण एव समृद्धिशाली जीवन आरम्भ किया।

---

१. Ilbert: Historical Survey, page 30.

२. औबर ने यूनाइटेड कम्पनी का विधान इस प्रकार दिया है "कम्पनी उन सब व्यक्तियो की थी जिनका तत्कालीन २० लाख पौड की पूँजी मे हिस्सा था। प्रत्येक पुरुष या स्त्री को, जिसका अपने या दूसरे नाम मे ५०० पौड का साझा था, वोट देने का अधिकार था। वह मालिको की मीटिग मे, जिसे चार्टर द्वारा 'जनरल कोर्ट ऑव प्रोप्राइटर्स' का नाम दिया गया था,

(५)

यूनाइटेड ईस्ट इडिया कम्पनी का जन्म और औरंगज़ेब के महान् मुगल व्यक्तित्व का अवसान, ये दोनो बाते एक ही साथ हुई। यह एक ऐसा सयोग था जिसका आगे चलकर भारत के इतिहास पर बहुत बडा प्रभाव पडा। लेकिन भारत मे अपना प्रभुत्व जमाने से पहले यूनाइटेड कम्पनी को यूरोपीय प्रतिद्वन्द्वियो, विशेषकर फ्रास और साथ ही भारतीय शासकों के प्रबल विरोध का सामना करना था।

सत्रहवी शताब्दी के मध्य मे ही पुर्तगालवासियो की शक्ति नष्ट हो चुकी थी। १६४८ मे मन्स्टर की सधि के अनुसार भारत मे पुर्तगालवासियो का अधिकार पश्चिम तट पर दीव, दामन और गोआ पर ही रह गया था।[1] १६४८ के बाद पूर्व मे पुर्तगाल वालो का महत्त्व समाप्त हो गया था।

हॉलैण्ड वालों से सघर्ष अधिक समय तक चला। १६२३ मे एम्बायना मे हॉलैण्ड वालो ने सब अग्रेजो को मार डाला। उसका परिणाम यह हुआ कि लदन-कम्पनी स्पाइस द्वीप के साथ व्यापार से हट आई और उसने अपनी शक्ति भारतीय व्यापार मे केन्द्रित की। १६५४ मे वेस्टमिन्स्टर की सधि के अनुसार क्षति-पूर्ति के रूप मे कम्पनी को ८५,०००[2] पौड मिले। (क्रोमवेल के अधीन) ब्रिटेन और हॉलैण्ड मे तीन वर्ष युद्ध होने के बाद यह सधि हुई थी। अन्त मे फ्रास ने यूरोप मे हॉलैण्ड की शक्ति को कुचल दिया और

---

विवाद मे भाग ले सकता था। प्रोप्राइटर्स को २००० पौड के साझेदारों मे से २४ डाइरेक्टर चुनने होते थे। काम करने के लिए कम-से-कम १३ सदस्यो की उपस्थिति अनिवार्य थी। सयुक्त रूप से उनका नाम था 'कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स'। चार्टर के अनुसार हर तीन महीने बाद कोर्ट की मीटिग होनी अनिवार्य थी। कम्पनी के शासन के लिए नियम बनाने को एक कमेटी नियुक्त किये जाने की व्यवस्था थी। वह नियम-कानून उतने ही मान्य थे जितने कि पार्लियामेट के नियम, बशर्ते कि वह किसी एक्ट के प्रतिकूल न हो।" Auber · The Rise and Progress of British Power in India page 13.

१. ये स्थान अब भी पुर्तगाल वालो के अधिकार मे है किन्तु १५ अगस्त १९४७ को भारत के स्वतन्त्र होने के बाद उनका भविष्य भारत और पुर्तगाल, दोनो देशो की सरकार के विचाराधीन है।

२. इसमे से क्रोमवेल ने कॉमन वैल्थ सरकार के लिए ५०,००० पौड उधार ले लिए।

१६९७ मे रिसविक की सधि होने पर पूर्व मे हॉलैण्ड वालो का व्यापारिक प्रभुत्व भी समाप्त हो गया।

(६)

इस प्रकार सत्रहवी शताब्दी मे इगलैण्ड के दो यूरोपीय प्रतिद्वन्द्वी मैदान से निकल गए किन्तु फ्रासीसी अभी जमे हुए थे। भारत के पूर्वी तट पर मद्रास के निकट पाडिचेरी और कलकत्ते के निकट चन्द्रनगर मे उन्होने अपनी स्थिति दृढ कर ली थी।[1] स्थानीय फ्रासीसी शासकों ने भारतीय शासको से मित्रता बढाई और फलत देश मे अपनी शक्ति और प्रभुता जमाने मे सफल हुए।

फ्रासीसियो और अग्रेजो मे प्रभुता के लिए वास्तविक सघर्ष १७४१ मे डुप्ले के पाडिचेरी के शासक ( गवर्नर ) नियुक्त होने पर आरम्भ हुआ। यह सघर्ष २० वर्ष तक चला। पहले आठ वर्षो मे अर्थात् १७४९ तक फ्रासीसियो का पक्ष प्रबलतर रहा। क्लाइव द्वारा आर्काट जीत लेने पर पासा पलट गया किन्तु अन्तिम रूप से फ्रासीसी शक्ति अग्रेजों द्वारा वन्देवश की जीत के बाद ही २१ जनवरी १७६० को परास्त हुई।

(७)

इस बीच बगाल मे महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घट रही थी।

बगाल के नये नवाब सिराजुद्दौला ने अग्रेज़ो की अकड और शत्रुतापूर्ण हरकतो[2] से चिढकर १७५६ मे कलकत्ते पर चढाई की। गवर्नर (ड्रेक) और मुख्य सैनिक अधिकारी ने किले को उसके भाग्य पर छोड दिया—और स्वय भागकर हुगली मे ब्रिटिश जहाजो पर पहुँच गए। मामूली लडाई के बाद फोर्ट विलियम की सेना ने हथियार डाल दिए और ब्लैक होल[3] की कथित घटना हुई। क्लाइव

१. यमन, हरिकल और माही—इन तीन स्थानो पर भारत मे फ्रासीसी अधिकार और बना हुआ है। १९ जून १९४९ को चन्द्रनगर मे भारत में विलयन के लिए मत दे दिया है। शेष चार फ्रासीसी अधिकारो के प्रश्न पर दोनो सरकारो मे बातचीत चल रही है।

२. Keith : Speeches and Documents on Indian Policy. Vol. 1, page 3.

३. ब्लैक होल के विषय मे इतिहासकारों के विवाद मे पडने की यहाँ आवश्यकता नही है। अधिकाश भारतीय और कुछ अग्रेज़ और विदेशी इतिहासकार यह मानते है कि यह घटना कभी हुई ही नही ; यदि हुई तो नगण्य रूप में। अन्यथा कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स के पास बगाल कौसिल से जो कागज़ भेजे जाते थे उनमें इसकी चर्चा अवश्य होती। फ्रासीसी भारत के एक भूतपूर्व गवर्नर-

और वाटसन मद्रास से हालत सँभालने और क्षति-पूर्ति करने के लिए भेजे गए। उन्होने तुरन्त ही बजबज के किले को अपने अधीन किया और २ जनवरी १७५७ को फोर्ट विलियम पर अधिकार कर लिया। एक सप्ताह बाद हुगली का किला भी जीत लिया गया। क्षति-पूर्ति करने के आधार पर नवाब के साथ सधि भी की गई।

क्लाइव ने कलकत्ते मे बसकर नवाब के मन्त्रियो के साथ षड्यत्र रचने शुरू किये। उसने नबाब के सेनानायक मीर जाफर के साथ एक सधि की। क्लाइव ने धोखे और जालसाज़ी[1] से अमीचन्द को उसके इनाम के मामले मे ठगा। इस प्रकार अपनी स्थिति दृढ करके क्लाइव नवाब की सेना से मुर्शिदाबाद के पास टक्कर लेने के लिए बढा। पलासी मे युद्ध हुआ। नवाब की सेना हार गई। सिराजुद्दौला वेष बदलकर भागा, पर पकडा गया और बन्दीखाने मे डाल दिया गया। बाद मे मीर जाफ़र के एक लडके ने उसको मार डाला। अग्रेजों ने सधि का पालन किया और २७ जून १७५७ को मीर जाफर नवाब घोषित कर दिया गया।

(८)

सन् १७६१ तक अग्रेज़ो ने परिस्थितियो को अपने वश मे कर लिया। उन्होने फ्रासीसियो को और सिराजुद्दौला को हरा दिया था। दक्षिण मे और पूर्व मे उनकी शक्ति सर्वोपरि थी। मराठों से, जो उस समय भारत मे सबसे अधिक शक्तिशाली थे, उन्हे अपनी साम्राज्यवादी योजनाओ के लिए खतरा हो सकता था। किन्तु उनके भाग्य से, १७६१ मे पानीपत की हार से मराठो की दशा बहुत बिगड गई। इस प्रकार भारत मे ब्रिटिश राज्य के विस्तार के लिए मार्ग खुला हुआ था।

क्लाइव ने भारत मे ब्रिटेनवासियों का भविष्य स्पष्टता के साथ देखा उसने अपने साम्राज्य की नीव बडी चतुराई और दृढता के साथ रखी। शीघ्रता से विस्तार करने और सशस्त्र विजय की नीति अपनाने के स्थान पर वह बडी सावधानी और समझदारी के साथ आगे बढा, एक स्थान पर कुछ भमि का अधिकार लिया तो किसी दूसरे स्थान पर मालगुज़ारी उगाहने का काम लिया

---

जनरल मार्तिनो, जो उस समय के इतिहास के अधिकारी विद्वान् माने जाते है, यह मत देते है कि जब तक नये प्रमाण न मिले, ब्लैक होल की घटना को सिद्ध करने के लिए, उपलब्ध प्रमाण पर्याप्त नही है।

१. कुछ अग्रेज़ लेखको ने क्लाइव का कलक धोने के लिए पूर्वी देशो के रहने वालो की नैतिकता पर आघात किया है। उनके अनुसार क्लाइव ने उन्ही लोगों की चाल अपनाई। किन्तु इससे कोई सफाई नही होती; एडमिरल वाटसन ने उसे ऐसा नही समझा।

ताकि कोई .बल विरोध न उठ खडा हो और भारतवासी विदेशियों[1] को मार भगाने के लिए सगठित न हो उठे। क्लाइव ने बडी कुशलता के साथ स्थिति को सँभाला। उसने दिल्ली के मुगल सम्राट् की सर्वोपरि सत्ता स्वीकार की। उसने सम्राट् से कम्पनी को सरकार देने की, हैदराबाद से कर्नाटक पृथक् करने की, और बगाल मे कम्पनी को दीवानी[2] का अधिकार देने की माँग की। उसने बगाल को सरकार के साथ मिलाने के लिए बरार के राजा के प्रदेशो पर अधिकार नही किया वरन् राजा को मनाकर राजी कर लिया। उसने बक्सर के बाद अवध को छीना नही वरन् नबाब को अपना साथी बना लिया। वह मराठो से लडा नही वरन् उडीसा मे उनके चौथ के अधिकार को स्वीकार कर लिया। दक्षिण मे पेशवा के विरुद्ध शक्ति का सतुलन करने के लिए उसने निजाम से मित्रता कर ली। इस प्रकार उसने यूनाइटेड ईस्ट इडिया कम्पनी की स्थिति को सुदृढ किया और पूर्व मे ब्रिटिश साम्राज्य की नीव रखी।

## दूसरा अध्याय

# ब्रिटिश राज्य का आरम्भ

### (१)

सन् १७६५ मे दीवानी का अधिकार मिल जाने से कम्पनी के मालिको को बडी भारी प्रसन्नता हुई। भविष्य की सुनहली कल्पनाओं से उनकी आँखे चौधिया गईं। क्लाइव के अनुसार १७६५ मे बगाल की कुल मालगुजारी ४० लाख पौंड थी और सारे व्यय निकालकर कम्पनी की विशुद्ध आय १६,५०,००० पौड थी। १७६७ मे कम्पनी के स्टॉक की दर बढकर २६७ और लाभाश १२½ प्रतिशत हो

१. प्रो० कीथ लिखते है : "मीर कासिम के प्रबल विरोध से क्लाइव को इस बात का भय था कि कही देशी लोग, यूरोपीय साथियो के अभाव मे अपने ही साधनो से, अपने उस प्रमाद को छोडकर, जो यूरोपीय सहायको की उपस्थिति में था, अंग्रेज़ों के विरुद्ध, सुसंगठित होकर विकट युद्ध न करें।" Keith in his preface to 'Speeches and Documents on Indian Policy.

२. क्लाइव ने १७५९ में अंग्रेज़ों के लिए बंगाल की सूबेदारी प्राप्त करने के उद्देश्य से पिट को अपने दृष्टिकोण पर लाने का प्रयत्न किया था। Keith : Speeches and Documents on Indian Policy.

गया। कम्पनी के कर्मचारी अपने साथ बडी भारी सम्पत्ति ले गए और इगलैंड मे अपने नाम की बस्ती और प्रदेश बनाकर 'नवाबो' की भाँति जम गए।[1] हाउस ऑव कॉमन्स के सदस्यो ने राजसत्ता के लिए वाछित धन पाने का सुअवसर देखा और कम्पनी पर यह धन देने का दायित्व डालकर उन्होने अपने निर्वाचको की दृष्टि मे अपने-आपको न्याय्य ठहराया। किन्तु ४००,००० प्रति वर्ष का मूल्य[2] लेकर और बदले मे कम्पनी को भारत के अधिकृत प्रदेश।[3] पर यथावत् अधिकार बनाये रखने की अनुमति देकर वे (हाउस ऑव कॉमन्स के सदस्य) कुशासन के प्रति ऑख बचाने के नाते[4] एक भयकर विश्वास-घात के अपराधी थे। जब से माण्टेगु को उक्त योजना[5] सूझी यूनाइटेड कम्पनी ने अवधि बीतने पर अधिकार-पत्र फिर से प्राप्त करने के लिए हर बार धन दिया था। इस प्रकार १७५० तक कम्पनी ने ३ प्रतिशत ब्याज पर राजसत्ता को ४२ लाख पौड ऋण दिया था। १७६७ मे पार्लियामेट ने एक एक्ट बनाया। उसमे दो वर्ष तक ४ लाख पौड प्रतिवर्ष के हिसाब से धन देने की माँग थी। बदले मे कम्पनी को उसी अवधि के लिए मालगुजारी और प्रादेशिक अधिकार बनाये रखने की अनुमति थी। १७६९ मे यह समझोता पाँच वर्ष के लिए बढा दिया गया।

(२)

इस बीच भारतीय परिस्थिति अत्यन्त जटिल होती जा रही थी। कम्पनी के अधिकार तीन प्रेसीडेसियो मे थे। हर प्रेसीडेसी की अपनी सरकार थी—गवर्नर और कौन्सिल—पृथक् और स्वतन्त्र। प्रत्येक का लन्दन मे डाइरेक्टरो से

१. नवाब के वर्णन के लिए देखिये Disraeli's Sybil, Chapter III.

२. इस प्रकार राजसत्ता ने भारत से होने वाली धन-प्राप्ति मे अपना हिस्सा जताया और भारतीय प्रदेशो की सत्ता के नियत्रण करने का अधिकार भी जताया। .....

३. Keith: Speeches and Documents on Indian Policy, Vol. I, page XI.

४. बर्क ने कहा कि मन्त्रियो ने ४ लाख पौड के मूल्य मे इस रक्त-पात, इस बलात्कार, इस दुष्टता, इस शोषण को उचित ठहरा दिया था। इस अपराध-कर को स्वीकार करने के बाद फिर कोई बुराइयाँ नही सुनीं गईं।.....Roberts Chapter X, Cambridge History of India, Vol. V, page 183.

५. Keith: Speeches and Documents on Indian Policy. Vol. I, page 9.

सीधा सम्बन्ध था। डाइरेक्टरो द्वारा कम्पनी के ऊँचे कर्मचारियों मे से गवर्नर और कौसिल के सदस्यों की नियुक्ति होती थी। इन सदस्यों की सख्या १२ से लेकर १६ तक होती। इनमे से कुछ सदस्य बहुधा अनुपस्थित होते। केन्द्र से दूर, देश के भीतरी भागो मे फैक्ट्रियाँ उनके आधीन थी। सत्ता गवर्नर और कौसिल में सयुक्त रूप से निहित थी और उसका निर्णय बहुमत पर था। कौसिल के सदस्यों के बिखरे रहने के कारण, काम का ढग से चलाना बहुत कठिन हो गया था। इस कारण क्लाइव को कौसिल के कामों को एक छँटी हुई कमेटी को सौपने का अधिकार दिया गया।

न्याय के सम्बन्ध मे बगाल, बिहार और उडीसा मे कठिनाइयाँ अनुभव की जा रही थी। १७५३ के अधिकार-पत्र द्वारा प्रेसीडेसी के नगरो के लिए मेयर के न्यायालय स्थापित कर दिए गए थे। इन न्यायालयों को उन यूरोपियनो पर, जो इन नगरो मे रहते थे या उनसे सम्बन्धित फैक्ट्रियो मे रहते थे, दीवानी, फौजदारी और धार्मिक अधिकार था।[1] लेकिन उस समय तक बगाल, बिहार और उडीसा प्रेसीडेसी मे अग्रेजों की सँख्या काफी बढ गई थी। इंगलैंड के कानून के अनुसार कलकत्ते के मेयर के अधिकार-क्षेत्र से बाहर उन्हे दड देने का कम्पनी को कोई हक नही था, जब तक कि वह इगलैंड वापिस न पहुँचे; लेकिन उस हालत मे साक्षियो की गवाही न मिलती।[2] यह अनुभव किया गया कि इस कठिनाई का हल प्रान्त मे एक सर्वोच्च न्यायालय (सुप्रीम कोर्ट) स्थापित करने से ही हो सकता है।

गवर्नर और उसकी परिषद् (कौसिल) के अधीन सिविल और सैनिक कर्मचारी थे। इनका मुशियो, दलालो और व्यापारियो मे वर्गीकरण था। उनका वेतन हास्यास्पद रूप से कम था। पाँच साल से काम करने वाले मुन्शी को केवल १० पौड प्रतिवर्ष मिलते। परिषद् के सदस्य को ८० पौड प्रतिवर्ष मिलते और गवर्नर को ३०० पौड प्रतिवर्ष। परन्तु उनकी ऊपरी आमदनी असाधारण थी। अनुभव ने उन्हे गरीब आदमियों से भेंट, रिश्वत और नजराना लेने की कला मे निपुण बना दिया था। लेकी के शब्दो मे, "देशी आदमियो ने इससे पहले ऐसे अत्याचार का अनुभव नही किया था जो इतना पूर्ण, इतना कुशल और इतना निर्मम हो। ·····पूरे जिले जो किसी समय समृद्ध और घने आबाद थे, अब बिलकुल उजड गए थे। ऐसा देखा गया कि अग्रेज़ व्यापारियो का दल दिखाई पड़ते ही

१. Yusuf Ali: The Making of India, pages 218-19

२. सन् १७७३ की पार्लियामेटरी कमेटी के अनुसार सन् १७५७-६६ की अवधि मे इस प्रकार ६० लाख पौड जनता से बलात् वसूल किये गए थे। मीर जाफ़र से क्लाइव को जो धन मिला वह इसके अतिरिक्त था।

गाँव तुरन्त खाली कर दिए जाते, दुकाने बन्द कर दी जाती और सडके घबराए हुए भागने वालो से भर जाती। १७७०-७१ मे फसल न होने के कारण बगाल में जो भयकर अकाल पडा उस समय जनता का कष्ट चरम सीमा पर पहुँच गया। किन्तु कम्पनी के कर्मचारी इतने निर्दय और इतने निर्लज्ज रूप से लालची थे कि उन्होने जनता के कष्टों से लाभ उठाया और अकाल की स्थिति का निज के लिए धन बटोरने मे उपयोग किया। कम्पनी के कर्मचारियों की लूट-मार[1] इतनी निर्मम थी और जनता के कष्ट इतने अधिक थे कि अन्त मे पार्लियामेंट के सदस्यो को कुछ करने के लिए बाध्य होना पडा।[2] हाउस ऑव कॉमन्स मे कर्नल बर्गोयन के प्रस्ताव पर १३ अप्रैल १७७२ को ३१ सदस्यो की एक छँटी हुई कमेटी की नियुक्ति की गई। इसे ईस्ट इडिया कम्पनी के काम और उसकी व्यवस्था का जाँच करने का भार सौपा गया।

इस बीच कम्पनी की स्थिति बडी गम्भीर होती जा रही थी, वह बडी तेजी के साथ दिवालियेपन की ओर बढ रही थी। अगस्त १७७२ मे कम्पनी के पदाधिकारियों ने अपना व्यय न चला सकने की असमर्थता को स्वीकार किया और लार्ड नॉर्थ से ऋण माँगा। बलिहारी है कम्पनी के कर्मचारियो की लोलुपता को जिसके कारण कम्पनी की आय तेजी से घट गई। प्रदेशो के बढ जाने, एक बडी सेना बनाये रखने और जब-तब युद्ध मे भाग लेने के कारण उसका व्यय बहुत बढ गया था। हाल ही मे हैदरअली के हाथों दक्षिण मे हारकर कम्पनी को बडी भारी क्षति उठानी पडी थी। अगले तीन महीनो मे आवश्यक भुगतान करने के लिए कम्पनी के पास १२,९३,००० पोड की कमी थी। राजसत्ता का ऋण ही कम्पनी को नष्ट होने से बचा सकता था।

---

१ Horace Walpole ने लिखा है "अत्याचार और लूट-मार के ऐसे दृश्यो से हृदय काँप उठता है। ·· सोने की लोलुपता मे हम स्पेनवासियो की तरह है और उसे प्राप्त करने मे हॉलैण्डवासियो की तरह परिष्कृत है।

२. "कम्पनी के अधिकारियो ने अतुल सम्पत्ति एकत्रित की थी। सर्वसाधारण के हृदय मे यह सदेह था कि इन नवाबो ने यह सम्पत्ति अनुचित ढग से प्राप्त की थी। इगलैण्ड मे इन कर्मचारियो का सम्पत्ति के कारण राजनीति पर प्रभाव पडता था। साथ ही यह सदेह था कि किसी व्यापारिक सस्था के लिए अपने नाम पर प्रादेशिक सर्वोच्च सत्ता हथियाना कहाँ तक न्यायोचित था। इन सब उपर्युक्त कारणो ने ईस्ट इडिया कम्पनी के कामो की ओर राष्ट्र का ध्यान आकर्षित किया और हाउस ऑव कॉमन्स ने कम्पनी के भारतीय शासन की जाँच करने और उस पर रिपोर्ट देने के लिए एक कमेटी नियुक्त की।" Kale: Indian Administration, pages 17 and 18 से अनूदित।

२६ नवम्बर १७७२ को पार्लियामेट खुलने पर लार्ड नॉर्थ ने कम्पनी की वस्तु स्थिति की जाँच करने के लिए एक गुप्त कमेटी नियुक्त करने का प्रस्ताव रखा। कमेटी ने बडी जल्दी ही अपनी पहली रिपोर्ट दी। दिसम्बर १७७२ मे पार्लियामेट ने एक एक्ट पास किया और उसमे कम्पनी को भारत मे निरीक्षण के लिए कमीशन भेजने से रोक दिया गया।

गुप्त कमेटी अपना काम करती रही और उसने अपनी अन्तिम रिपोर्ट मई १७७३ मे दी। उसके फलस्वरूप पूर्वी प्रदेशो के शासन के नियन्त्रण का निर्णय किया गया। १० मई को कर्नल बर्गोयन और सर विलियम मेरेडिथ[1] ने भारतीय शासन की तीखी आलोचना की। १८ मई को लार्ड नॉर्थ ने अपना प्रसिद्ध बिल पेश किया जो बाद मे १७७३ का रेगुलेटिग एक्ट बन गया। कम्पनी को आर्थिक कठिनाइयो का हल करने के लिए पार्लियामेट ने एक एक्ट और पास किया। इस एक्ट के द्वारा १४ लाख पौड का ऋण ४ प्रतिशत ब्याज पर सरकार द्वारा दिया गया। ऋण लौटा देने तक ४ लाख पौड प्रतिवर्ष का वार्षिक भुगतान छोड दिया गया। ऋण वापिस होने तक कम्पनी को ६ प्रतिशत से अधिक लाभाश घोषित करने से रोक दिया गया। जब तक बॉण्ड का ऋण घटकर १५ लाख पौड न हो जाय, लाभाश ७ प्रतिशत से अधिक नही किया जा सकता था। कम्पनी को हर छ महीने बाद जाँच के लिए ट्रेज़री (अर्थ-विभाग) को अपना आय-व्यय का हिसाब देने को कहा गया।" कम्पनी को भारत-स्थित कर्मचारियो के बिल स्वीकार करने की वार्षिक सीमा ३ लाख पौड कर दी गई और उसको ब्रिटेन मे बने माल को अपनी सीमा के अन्दर ब्रिटिश बस्तियो मे निर्यात करने की सीमा भी निश्चित कर दी गई।[2]

( ३ )

कम्पनी (एक व्यापारिक सस्था) के राजनीतिक सत्ता हथियाने के अधिकार पर आरम्भ से ही आपत्ति की गई थी और पार्लियामेट के हस्तक्षेप करने का कहा गया था। किन्तु कम्पनी के कर्मचारियो द्वारा राजनीतिक अधिकार के दुरुपयोग के प्रमाण एकत्रित होने पर, कम्पनी द्वारा प्रादेशिक सत्ता बनाये रखने के विरोध

---

[1] सर विलियम मेरेडिथ के शब्दो में, "ये व्यवसायी नरेश हमेशा ही खतरनाक है। इनका बेचने का नियम इच्छानुसार अधिक-से-अधिक मूल्य लेना है और क्रय करने का नियम इच्छानुसार कम-से-कम दाम देना है। Chuni Lal Anand : History of Government in India, Part II, page 14 से अनूदित।

२. Ilbert : Historical Survey. page 42.

मे भावनाएँ बहुत प्रबल हो गईं। कम्पनी से राजनीतिक अधिकार छीन लेने के प्रयत्न किये गए पर कोई सफलता नही मिली। किन्तु जब कम्पनी ने आर्थिक सहायता के लिए पार्लियामेट के सामने हाथ पसारे तो इस अवसर का भारतीय शासन के नियन्त्रण करने के लिए लाभ उठाया गया।

सन् १७७३ के एक्ट का वैधानिक महत्व बहुत बडा है। कारण, उसने निश्चित रूप से कम्पनी की राजनीतिक कार्यवाहियो को स्वीकार किया। दूसरा कारण यह है कि उस समय तक जो कम्पनी के निजी प्रदेश समझे जाते थे[1], उनमे सरकारी ढाँचा किस प्रकार का हो, यह निश्चित करने के लिए पार्लियामेट ने अपने अधिकार पर पहली बार जोर दिया। तीसरा कारण यह है कि भारतीय सरकार का ढाँचा बदलने के लिए पार्लियामेण्ट ने जो बहुत से एक्ट बनाए उनमे यह सबसे पहला था। सन् १९१९ के गवर्नमेण्ट ऑव इडिया एक्ट के आमुख मे यह बात अन्तिम रूप से और बडी दृढता से स्पष्ट की गई कि भारतवासियो के लिए किस प्रकार का विधान उचित और आवश्यक है, उसे निश्चय करने और लागू करने का एक-मात्र अधिकार पार्लियामेट को है।

सन् १७७३ मे 'कोर्ट ऑव प्रोप्राइटर्स' और 'कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स', गृह सरकार (होम गवर्नमेट) के अग थे। डाइरेक्टर्स की कुल सख्या २४ थी। प्रतिवर्ष इनका चुनाव होता जिसमे ५०० पौड के साझेदार मत दे सकते थे और २००० पौड के साझेदार खडे हो सकते थे। नीति की दृढता, स्थिरता और क्रमबद्धता की दृष्टि से डाइरेक्टर्स का कार्य-काल छोटा था। उनको पुनर्निर्वाचन की दृष्टि से बहुत से प्रोप्राइटर्स को प्रसन्न रखना पडता था और इस प्रकार वे कोर्ट ऑव प्रोप्राइटर्स के अनुचित प्रभाव से दबे रहते थे। १७७३ के एक्ट ने उन्ही प्रोप्राइटर्स को अधिकार दिया जो निर्वाचन-तिथि से १२ महीने पहले से साझेदार हो और जिनका हिस्सा १००० पौड हो। इस एक्ट ने निर्देशको (डाइरेक्टर्स) का कार्य-काल बढाकर ४ वर्ष कर दिया। उनमे से चतुर्थाश अपनी अवधि समाप्त करके प्रतिवर्ष अवकाश ग्रहण करते। इस एक्ट मे डाइरेक्टर्स को यह कहा गया कि सिविल और सैनिक विषयो पर सपरिषद् गवर्नर-जनरल के जो पत्र या सुझाव आवें उन्हे राज्य-मन्त्री के सामने रखा जाय और आय-व्यय व्यवस्था के सबध मे जो पत्रादिक हो उनकी प्रतियाँ ट्रेजरी (अर्थ-विभाग) के सामने रखी जायँ। भारत की सारी सरकारो को, निर्देशको के आदेशो का पूरी तरह पालन करना

---

१. कुछ मान्य और प्रभावशाली व्यक्तियों के अनुसार सन् १७७३ का एक्ट एक जबरदस्ती का अधिनियम था जिससे एक व्यक्तिगत सस्था के अधिकारों और उसकी सम्पत्ति पर सक्रमण होता था।

था और कम्पनी के हितो से सम्बन्धित सारे विषयो पर उन्हे बराबर सूचित रखना था ।

एक्ट बनने से पूर्व तीनो प्रेसिडेन्सियाँ एक-दूसरे से पृथक् और स्वतत्र थी । उनका लन्दन मे कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स से सीधा सबध था । सन् १७७३ के एक्ट ने भारत के एकीकरण के लिए पहला पग उठाया। उसने बगाल मे फोर्ट विलियम प्रेसिडेन्सी के लिए एक गवर्नर-जनरल और चार सदस्यो की एक परिषद् नियुक्त की। इनको "उक्त प्रेसिडेन्सी की सिविल और सैनिक सरकार पर वे सारे अधिकार दिये जो पहले गवर्नर और परिषद को प्राप्त थे।[1]" इस प्रेसीडेन्सी मे तत्कालीन रूप मे बगाल, बिहार और उडीसा सम्मिलित थे। साथ ही गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद् को मद्रास, बम्बई और बेंकूलेन[2] प्रेसिडेन्सियो पर सरकारी व्यवस्था, युद्ध छेडने और सन्धि करने के क्षेत्र मे नियत्रण और निरीक्षण करने का अधिकार दिया। किसी असाधारण परिस्थिति मे अथवा लन्दन से निर्देशको के आदेश होने पर ही उपर्युक्त नियम का अपवाद हो सकता था। सपरिषद् गवर्नरो को सपरिषद् गवर्नर-जनरल के आदेशो का पालन करने के लिए कहा गया। साथ ही उन्हे यह हिदायत भी की गई कि वे कम्पनी की सरकार, आय या उसके हितो से सबध रखने वाली सारी बातो से, साथ ही अपने क्षेत्र मे बनने वाले सारे नियम-उपनियमो से सपरिषद् गवर्नर-जनरल को परिचित रखे । उल्लघन करने वाले सपरिषद् गवर्नरो को, सपरिषद् गवर्नर-जनरल अधिकार-च्युत कर सकता था ।[3]

एक्ट मे पहले गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद् के चार सदस्यो का नाम दिया गया था। गवर्नर-जनरल के पद के लिए वारेन हेस्टिग्स का नाम था और परिषद् के लिए लेफ्टिनेट-जनरल क्लेवरिग, जार्ज मॉन्सन, रिचर्ड बार्वेल और फिलिप फ्रैन्सिस का। इनको पाँच वर्ष के लिए नियुक्त किया गया था। कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स[4] द्वारा आपत्ति और प्रतिनिधित्व करने पर हिज़ मैजेस्टी (इगलैण्ड-नरेश) द्वारा ही इनको पद-च्युत किया जा सकता था। पहले पाँच वर्ष बाद कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स को नियुक्तियाँ करने का अधिकार था।

१. Clause VII, East India Company Act, 1773 (Geo. III, c 63)

२ बेकूलेन या मार्लबोरो फोर्ट सुमात्रा मे है। १८२४ की लन्दन-सधि के अनुसार यह हॉलैण्ड वालो को सौप दिया था । Footnote 1, page 46, Ilbert Historical Survey.

३. Clause IX of the East India Company Act 1773

४. Clause X of the Act.

प्राधिकार सयुक्त रूप से गवर्नर-जनरल और परिषद् मे निहित था। किसी विषय पर निर्णय के लिए उपस्थित सदस्यो के बहुमत का नियम था। परिषद् के किसी सदस्य की अनुपस्थिति, पद-च्युति अथवा मृत्यु की दशा मे बराबर मत होने पर गवर्नर-जनरल को निर्णायक मत देने का अधिकार था।

सपरिषद् गवर्नर-जनरल को कम्पनी की फोर्ट विलियम की बस्ती और उसके आधीन फैक्ट्रियो और अन्य स्थानो की सुव्यवस्था और सिविल सरकार[1] के लिए ऐसे सारे नियम, अधिनियम, अध्यादेश (Ordinances) बनाने और जारी करने का अधिकार था जो ब्रिटिश सरकार के कानूनो के विरोध मे न हो। यह नियमादि सर्वोच्च न्यायालय की सहमति और स्वीकृति से वहाँ पर निबधित होने और प्रकाशित होने पर ही लागू समझे जाते। भारत या इगलैण्ड के किसी व्यक्ति या किन्ही व्यक्तियो की प्रार्थना पर सपरिषद् इगलैण्ड-नरेश उनको रद्द कर सकता था।[2]

१७७३ के एक्ट ने हिज मैजेस्टी (इगलैण्ड-नरेश) को चार्टर द्वारा फोर्ट विलियम पर एक सर्वोच्च न्यायालय स्थापित करने का अधिकार दिया। इसमे एक प्रधान न्यायाधीश और तीन अन्य न्यायाधीश होते जो इगलैण्ड और आयर्लैण्ड के पाँच वर्ष से अधिक अनुभव वाले बैरिस्टरो मे से हिज मैजेस्टी द्वारा समय-समय पर नियुक्त किये जाते। इस न्यायालय को दीवानी, फौजदारी, जल-सेना सबधी और धर्म-सबधी क्षेत्रो मे न्याय करने का अधिकार दिया गया। उसे सपरिषद् गवर्नर-जनरल की स्वीकृति से सगत वेतन पर क्लर्क और अन्य कर्मचारियो की नियुक्ति करने का अधिकार दिया गया। सर्वोच्च न्यायालय के ही अधीन सारे सरकारी कागज, प्रमाण-पत्र और अभिलेख रखने की व्यवस्था थी।[3] उसे न्याय करने और चार्टर द्वारा दिये गए अधिकारो को व्यवहार में लाने के लिए विधि-नियम बनाने का अधिकार था। बगाल, बिहार और उडीसा मे रहने वाली सारी ब्रिटिश प्रजा इस न्यायालय के क्षेत्र मे थी। हिज मैजेस्टी की इस प्रजा के किसी व्यक्ति अथवा कम्पनी के किसी कर्मचारी के विरुद्ध उसे अपराध, दुर्व्यवहार, अत्याचार के आक्षेप और अभियोग पर न्याय करने का अधिकार था।[4] बगाल, बिहार और उडीसा मे रहने वाले किसी 'देशी आदमी' से ५०० रुपये से अधिक की लिखित लेन-देन के सबध मे झगड़ा होने पर,

१. Clause XXXVI of the Act.
२. Clause XXXVI of the Act.
३. Clause XIII of the Act.
४. Clause XIV of the Act.

यदि लेखे मे न्यायालय मे विवाद ले जाने की शर्त हो तो, सर्वोच्च न्यायालय हिज़ मैजेस्टी की प्रजा के अभियोगो और उसकी कार्यवाहियो को सुन सकता था और उन पर निर्णय कर सकता था। 'निवासियो' के विरुद्ध दूसरे सिविल अभियोगो के बारे मे (अर्थात् उन अभियोगो मे जब वादी और प्रतिवादी मे झगडा होने पर विवाद को सर्वोच्च न्यायालय मे ले जाने की शर्त न हो) न्यायालय का क्या अधिकार होगा इस सम्बन्ध मे एक्ट मे कोई निर्देश नही है। साथ ही निवासियो के ब्रिटिश नागरिको के विरुद्ध अभियोगो के बारे मे भी एक्ट मौन है। न्यायालय का अधिकार मौलिक अभियोगो का भी था और अपील सुनने का भी।

कलकत्ते मे रहने वाले ब्रिटिश नागरिको के पच द्वारा सर्वोच्च न्यायालय अभियोगो का निर्णय करता। उसकी अपील सपरिषद् इगलैंड-नरेश से की जा सकती थी।

गवर्नर-जनरल अथवा उसकी परिषद् के किसी सदस्य के किसी अपराध के विरुद्ध न्यायालय को कोई आक्षेप या अभियोग सुनने या निर्णय करने का अधिकार नही था। बगाल, बिहार अथवा उडीसा मे उनमे से किसी के द्वारा राजद्रोह अथवा भयकर अपराध उसके लिए अपवाद थे। गवर्नर-जनरल, उसकी परिषद् के सदस्य और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश किसी काम या न्यायालय मे चलने वाले किसी अभियोग के सिलसिले मे बन्दी नही बनाए जा सकते थे। यह छूट केवल सिविल अभियोगो के ही लिए थी।

२६ मार्च १७७४ के अधिकार-पत्र द्वारा ऐसा न्यायालय बनाया गया। सर एलिजा इम्पी मुख्य न्यायाधीश और चैम्बर्स, लिमेस्टर और हाइड सहायक न्यायाधीश नियुक्त किये गए।

गवर्नर-जनरल, उसकी परिषद् के सदस्य और उक्त न्यायालय के न्यायाधीशो को अधिकार दिया गया और उनका यह कर्त्तव्य था कि वे फोर्ट विलियम की बस्तियो और उसके अधीन फैक्ट्रियो के लिए शाति-व्यवस्थापको की तरह वर्ष मे चार बार अधिवेशन करे और अभिलेख-न्यायालय का काम करे।

सन् १७७३ के एक्ट ने भारतीय विधान मे उपर्युक्त सशोधन करने के अतिरिक्त इस बात का भी प्रयत्न किया कि भारत मे कर्मचारियो में से रिश्वतखोरी और दूसरी बुराइयाँ दूर हो जायँ।

एक्ट ने गवर्नर-जनरल, उसकी परिषद् के सदस्यो और न्यायालय के न्यायाधिपतियो को प्रत्यक्ष या परोक्ष मे किसी प्रकार की भेट लेने, आर्थिक पुरस्कार लेने और (यूनाइटेड कम्पनी के व्यापार के अतिरिक्त) किसी व्यापार

और सौदे मे सम्मिलित होने को मना कर दिया।[1] "कोई सरकारी सिविल अथवा सैनिक कर्मचारी अथवा यूनाइटेड कम्पनी का कर्मचारी···· भारत के किसी राजा, नबाब या उसके मत्री या प्रतिनिधि से ···· प्रत्यक्ष या परोक्ष मे कोई भेंट, उपहार अथवा पुरस्कार ··· नही लेगा।"[2] इस आदेश का उल्लघन करने वालो को दड मे, प्राप्त हुए धन का, दूना धन देना होता और उसे भारत से हटाकर इगलैड भेज दिया जाता। बगाल, बिहार और उडीसा मे मालगुज़ारी उगाहने वाले, निरीक्षण करने वाले या और दूसरे ब्रिटिश नागरिक कम्पनी के व्यापार के अतिरिक्त और किसी व्यापार मे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से शामिल नही हो सकते थे। कोई ब्रिटिश नागरिक १२% ब्याज से अधिक दर ऋण नही दे सकता था। कम्पनी के ऐसे कर्मचारियो पर, जो भारत के किसी न्यायालय द्वारा सर्वसाधारण के प्रति विश्वास-घात, सार्वजनिक धन अथवा सम्पत्ति के गबन, अथवा कम्पनी को धोखा देने के दोषी ठहराए जाते, जुरमाना किया जा सकता था और उन्हे गिरफ्तार किया जा सकता था या इगलैड भेजा जा सकता था। यदि कोई गवर्नर-जनरल, गवर्नर-परिषद् का सदस्य, न्यायाधीश एक्ट के विरुद्ध कोई अपराध करता और किसी दुर्व्यवहार अथवा अपराध का दोषी कहा जाता तो इगलैड के राजकीय पच द्वारा उसके अभियोग का निर्णय करके उसको दड दिया जा सकता था।

गवर्नर जनरल, परिषद् के सदस्यो और न्यायाधीशों को लालच न हो इस उद्देश्य से उनको बडा वेतन देने की व्यवस्था की गई। गवर्नर जनरल का वेतन २५००० पौड प्रतिवर्ष था, परिषद् के प्रत्येक सदस्य का वेतन १०००० पौड प्रति वर्ष था, मुख्य न्यायाधिपति का वार्षिक वेतन ८००० पौड था और अन्य न्यायाधिपतियो का वार्षिक वेतन ६००० पौड था।

( ४ )

जब एक्ट सशोधन के लिए हाउस ऑव कामन्स के समक्ष आया तो मिस्टर बाउटेन राउज ने कहा कि एक्ट का उद्देश्य तो अच्छा था किंतु उसने जो व्यवस्था की वह अपूर्ण थी। इस अपूर्णता का मुख्य कारण यह था कि पार्लियामेट को जिस समस्या का हल करना पड रहा था वह उसके लिए एक नए ढग की थी। यह ब्रिटेनवासियो का सौभाग्य था कि दोष जो कितने ही थे और भयंकर थे, घातक सिद्ध नही हुए।[3]

---

१. Clause XXIII of the Act.

२. Clause XXIV of the Act.

३. उसने (१७७३ के एक्ट ने) ऐसा गवर्नर जनरल बनाया जो अपनी परिषद् के समक्ष अशक्त था; उसने ऐसी कार्यपालिका बनाई, जो सर्वोच्च न्यायालय के

सबसे पहली बात तो यह थी कि एक्ट ने सपरिषद गवर्नर जनरल और सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीशो के अधिकार-क्षेत्र और पारस्परिक सम्बन्ध को स्पष्ट नही किया। गवर्नर जनरल के कुछ अधिकार तो बंगाल के मुगल प्रान्तपतियो के थे जिनको पार्लियामेट द्वारा निश्चित नही किया जा सकता था। इसीलिए कार्यपालिका पर रोक लगाने के उद्देश्य से पार्लियामेट ने सपरिषद् गवर्नर जनरल के विधान को निषिद्ध करने का असाधारण अधिकार सर्वोच्च न्यायालय मे निहित कर दिया। क्षेत्राधिकार[1] की अस्पष्टता ने बगाल मे अराजकता-जैसी स्थिति उत्पन्न कर दी। सपरिषद् गवर्नर जनरल और सर्वोच्च न्यायालय का झगडा चार बातो पर था[2] —

झगडे की पहली बात तो यह थी कि सर्वोच्च न्यायालय देश के सारे निवासियो के नाम आज्ञा-पत्र जारी कर सकते और उनके अभियोग सुनने का अपना अधिकार जताते थे। सपरिषद् गवर्नर जनरल ने सफलतापूर्वक इसका विरोध किया। परिषद् की आज्ञानुसार सिपाहियो के एक जत्थे ने एक न्यायाधिकारी और उसके साथियो को कासीजूडा-केस नाम से प्रसिद्ध अभियोग मे आज्ञा-पत्र जारी करने से रोक दिया। इगलैड मे अधिकारियो ने परिषद् के इस व्यवहार पर कोई आपत्ति प्रकट नही की सभवत यह अनुभव करने के कारण कि एक्ट न्यायालय के विरोध मे था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है।[3] न्यायालय का क्षेत्राधिकार उन्ही मामलो तक सीमित था जिनमे दोनो पक्षो ने झगडे की दिशा मे न्यायालय के समक्ष जाना स्वीकार किया हो। इस कारण न्यायालय को इस बात का कोई अधिकार नही था कि वह किसी अभियोग को बलात् अपने सामने लाय।

झगडे की दूसरी बात थी कम्पनी के मालगुजारी उगाहने वालो के ऊपर क्षेत्राधिकार के बारे मे। ये लोग अपने काम के सिलसिले मे ज्यादती करते। यहाँ न्यायालयो का पक्ष प्रबल था। एक्ट ने कम्पनी के कर्मचारियो के ऊपर न्यायालय को यह अधिकार दिया था और चाहे कम्पनी के अधिकारियो को यह बात कितनी ही अरुचिकर क्यो न हो, कम्पनी के लिए उसे स्वीकार करने के अतिरिक्त और

---

आगे अशक्त थी, ऐसा न्यायालय जिस पर देश की शान्ति और भलाई का कोई दायित्व नही था। Report on Indian Constitutional Reform 1918, page 17 से अनूदित।

१ C.L. Anand : Introduction to the History of the Government of India, Part II, page 22.

२. Ilbert . Historical Survey, pages 54 to 56.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २७।

कोई दूसरा मार्ग नही था। पर कुछ ऐसे प्रश्न थे जिनका एक्ट से कोई हल न हो पाता —कौन लोग कम्पनी के सेवक थे ? क्या काम करने वाले कम्पनी के आधीन थे ? प्रमाण देने और सिद्ध करने का दायित्व किस पर था ? उदाहरण के लिए, क्या जमीदार और मालगुजार कम्पनी के सेवक थे ? न्यायालय के अनुसार वे कम्पनी के सेवक थे। किंतु स्वय वे व्यक्ति और कम्पनी के मुख्य अधिकारी न्यायालय का यह मत मानने को तैयार नही थे।

झगडे की तीसरी बात यह थी कि न्यायालय कम्पनी के न्यायाधिकारियो द्वारा सरकारी हैसियत से किये गए कामो के विरुद्ध अभियोग-निर्णय करने का अधिकार जताता था। न्यायालय ने पटना प्रान्तीय परिषद के अधिकारियो के कुछ कामो के विरुद्ध, जो उन्होने न्यायाधिकारियो की हैसियत मे किये थे, एक भारतीय वादी के पक्ष मे क्षति-पूर्ति का निर्णय किया था। कम्पनी के न्यायाधिकारियो को इस प्रकार दडित करने मे सर्वोच्च न्यायालय अपने अधिकार के अन्तर्गत काम कर रहा था। प्रश्न केवल यह था कि क्या उक्त काम वस्तुत न्याय-सम्बन्धी कर्तव्य-पालन करने मे किये गए थे या नही ? सर जेम्स स्टीफेन के मतानुसार सर्वोच्च न्यायालय का निर्णय उचित और नियमानुसार मान्य था।

झगडे की चौथी बात यह थी कि सर्वोच्च न्यायालय, प्रान्तीय या प्रादेशिक न्यायालयो[1] का क्षेत्राधिकार स्वीकार करने को तैयार नही था। प्रान्तीय न्यायालयो द्वारा समय पर मालगुजारी न देने वाले गिरफ्तार अपराधियो को सर्वोच्च न्यायालय ने बन्दी प्रत्यक्षीकरण के आज्ञा-पत्र (Writ of Habeas Corpus) से मुक्त कर दिया। एक बार सर्वोच्च न्यायालय ने एक जिले के कोषाध्यक्ष को, जो गबन के अपराध मे प्रान्तीय न्यायालय की आज्ञानुसार बन्दी था, उपर्युक्त आज्ञा-पत्र से मुक्त कर दिया। इस आज्ञा-पत्र का विरोध करने वाले और प्रान्तीय न्यायालय का पक्ष लेने वाले कम्पनी के न्यायवादी (मुख्तार) को सर्वोच्च न्यायालय ने उत्तर दिया, "हम तुम्हारी प्रान्तीय परिषद् और उसके प्रमुख को नही जानते, तुम उसे परी-प्रदेश के राजा का भी बन्दी बता सकते हो।" सर्वोच्च न्यायालय और छोटे न्यायालयो के झगडे को दूर करने के लिए वारन हेस्टिंग्स ने सर ऐलिनाइम्पी को सदर दीवानी अदालत[2] का भी जज नियुक्त करके उन्हे छोटे न्यायालयो की अपील सुनने और उनका निर्णय दुहरा देने का अधिकार दे

१. इन न्यायालयो के वर्णन के लिए इसी अध्याय का उपभाग ८ देखिये।

२. सदर दीवानी अदालत बगाल मे कम्पनी का सर्वोच्च दीवानी न्यायालय था। हाईकोर्ट्स-एक्ट ने सदर दीवानी अदालत और सर्वोच्च न्यायालय दोनो को मिलाकर एक कर दिया।

दिया। किंतु इस प्रकार इम्पी कम्पनी के सेवक हो गए और सर्वोच्च न्यायालय के मुख्य न्यायाधीश की स्थिति से यह बात असगत थी। इम्पी द्वारा सदर दीवानी अदालत के जज के नाते कम्पनी से बहुत बडा वेतन स्वीकार करने से यह स्थिति और भी बिगड गई।

दूसरी बात यह थी कि १७७३ के एक्ट ने यह बात स्पष्ट नही की कि सर्वोच्च न्यायालय किस विधि (कानून) का प्रतिपादन करे। क्या वह प्रतिवादी के हिंदू, मुसलमान या अगरेज होने के अनुसार उसके व्यक्तिगत कानून का प्रतिपादन करे या सब मामलो मे अगरेजी कानून को ही मान्यता दे ? जो न्यायाधीश नियुक्त किये गए थे वे अगरेजी विधि मे कुशल थे और उसी परम्परा से सुपरिचित थे। भारतीय कानूनो, रीतियो और परम्पराओ से वे बिलकुल अपरिचित थे। उनके परिचित होने के लिए वे इच्छुक या उत्सुक भी नही थे। वे पूरी तरह अगरेजी न्यायविधि को काम मे लाने लगे। देशवासी घबरा उठे। "आश्चर्य-चकित और डरे हुए बगाल-निवासी नए न्यायालय की आज्ञप्ति (Decree) जारी करने के लिए कलकत्ते से सैकडो मील दूर अगरेज अमीन और उसके सशस्त्र दल का दृश्य देखते और कुछ समझ न पाते।" इन अमीनो को यहाँ के रीति-रिवाजो का तो पता नही था। वे जबरदस्ती स्त्रियो के कमरो मे, पूजाघरो मे घुस जाते। जिन देव-मूर्तियो की पीढियो से पूजा होती आई थी उनको वे अपवित्र हाथो से खीचकर आज्ञप्ति जारी करने के उद्देश्य से एकत्रित किये हुए सारे सामान के ढेर मे डाल देते।[1] इससे बडा उद्वेग और क्षोभ हुआ। यदि सपरिषद् गवर्नर जनरल ने हस्तक्षेप न किया होता और पार्लियामेट ने १७८१ का सशोधन एक्ट न पास किया होता तो उसके बहुत भयकर परिणाम होते।

एक्ट मे तीसरी दोष की बात यह थी कि गवर्नर जनरल, अपनी परिषद् की दया पर छोड दिया गया था। परिषद् के सदस्यो मे से केवल एक (मि बार्वेल) को ही भारतीय शासन का कुछ अनुभव था। दूसरे सदस्यो को भारतीय स्थिति की कोई जानकारी नही थी। कम्पनी और उसके कर्मचारियो के विरुद्ध धाराएँ लिये हुए वह भारत मे आए। शासन के बारे में उन्होने अपनी योजनाओं और अपने विचारो को उन्होने पहले से ही निश्चित कर रखा था। उन्होने एक साथ काम करने और सारी शक्ति अपने हाथो मे केन्द्रित करने का निश्चय कर लिया था। जब तक यह गुट बना रहा गवर्नर जनरल और बार्वेल भी बेबस थे। उन तीनों

१. C. L. Anand · History of Government in India, Part II, pages 19-20.

का विरोध इतना असावधान और अटल था कि १७७६ मे वारन हेस्टिग्स त्याग-पत्र देने के लिए बडी गम्भीरता से सोचने लगे। लन्दन मे अपने प्रतिनिधियो को स्थिति के अनुसार त्याग-पत्र देने का उन्होने अधिकार भी दे दिया। कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स ने त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया और दूसरी नियुक्ति करने की कार्यवाही की। किंतु इसी बीच क्लेवरिंग की मृत्यु हो गई। वारन हेस्टिग्स ने तुरन्त ही अपने दिये हुए अधिकार को हटा लिया और सर्वोच्च न्यायालय का यह मत ले लिया कि त्याग-पत्र अमान्य था। अब वारन हेस्टिग्स निर्णायक वोट से उस गुट को हरा सकता था। इस कारण इतने बडे वेतन के पद को छोडने की अब उसे कोई इच्छा नही थी। उसे अपने पद पर बने रहने की स्वीकृति मिल गई पर भविष्य मे इसकी रोक के लिए १७९३ और १८३३ के पार्लियामेंट एक्ट मे नियम बनाकर व्यवस्था कर दी गई। गवर्नर-जनरल का त्याग-पत्र उसी समय मान्य होता जब विलेख द्वारा उसकी पुष्टि हो।

अन्त मे कम्पनी की गृह-सरकार के विधान मे १७७३ के एक्ट ने जो परिवर्तन किये, वे दोष-रहित नही थे। मतदान के लिए अर्हता (Qualification) उठा देने के कारण १२४६ छोटे साझीदार मताधिकार से वंचित हो गए और कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स पर स्थायी[1] रूप से एक मुट्ठी-भर व्यक्तियो का आधिपत्य हो गया। सन् १७८१ की प्रवर-समिति (Select Committee) की रिपोर्ट के अनुसार : "कोर्ट ऑव प्रोप्राइटर्स से सम्बन्ध रखने वाले सारे नियमादि, दो सिद्धातो पर (जो कितनी ही बार भ्रमपूर्ण सिद्ध हो चुके है) अवलम्बित थे। एक तो यह सिद्धात कि छोटे समुदाय मे कुव्यवस्था और छिन्नता के विरुद्ध सुरक्षा होती है, दूसरा यह कि सम्पत्तिशालियो का चरित्र दृढ और उज्ज्वल होता है।"[2] मिस्टर राबर्ट्स कहते है कि कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स के विधान मे परिवर्तन करने वाला खड अपने उद्देश्य को प्राप्त करने मे असफल रहा।[3]

( ५ )

सन् १७७३ के एक्ट के व्यवहार मे आने पर कुछ ही वर्षों मे पार्लियामेंट का ध्यान उस के दोषो की ओर आकर्षित हुआ। सन् १७८१ मे दो कमेटियाँ नियुक्त की गयी। एक को तो भारत मे न्याय-व्यवस्था की जाँच करने का काम सौपा

१. यद्यपि कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स के चौथाई सदस्य प्रति वर्ष अवकाश ग्रहण करते थे, किंतु हर बार प्रायः वही लोग फिर चुन लिए जाते थे।

२ Cambridge History of India, Vol V, page 119

३. Roberts : Cambridge History of India, Vol. V Chapter X.

गया, दूसरी को पिछले कर्नाटक-युद्ध के कारण और तटवर्ती शासन की दशा पर रिपोर्ट देने का काम सौपा गया। पहली कमेटी ने उसी साल अपनी रिपोर्ट दी जिसके फलस्वरूप सन् १७८१ का सशोधक एक्ट बनाया गया।

१७८१ के एक्ट ने १७७३ के एक्ट के कुछ दोषो को दूर करने का प्रयत्न किया।

इस एक्ट में पहली बात तो यह थी कि कम्पनी के कर्मचारी सरकारी हैसियत से जो काम करते थे उसे सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर कर दिया गया। गवर्नर जनरल और परिषद् के सदस्यो को व्यक्तिगत एव सयुक्त रूप से अपने पदाधिकार से किये कामो के सिलसिले मे (बशर्ते कि उनकी आज्ञाओ से ब्रिटिश नागरिको को क्षति न पहुँचती हो) सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार से छूट मिल गई। इसी प्रकार मालगुजारी वसूल करने वालो को मालगुजारी वसूल करने के मामलो मे छूट मिल गई। अन्त मे, छोटे न्यायालयो के न्यायाधिकारियो को न्याय-कार्य से सम्बन्धित कार्यो के कारण अपराधी नही बनाया जा सकता था।[1]

सन् १७८१ के एक्ट ने दूसरी बात यह की कि कम्पनी के सेवको और देशवासियो के ऊपर न्यायालय के क्षेत्राधिकार को निश्चित करने का प्रयत्न किया। कलकत्ते के सारे निवासियो पर न्यायालय को अधिकार दिया गया, पर प्रतिवादी का व्यक्तिगत (धर्मगत) कानून से निर्णय करने का नियम बनाया गया। अपने भारतीय सेवको के नाम-व्यवसाय आदि के रजिस्टर रखना, कम्पनी के लिए अनिवार्य कर दिया गया। कम्पनी के सेवको, ब्रिटिश अधिकारियो और भारत मे रहने वाले अन्य ब्रिटिश नागरिको पर न्यायालय का अधिकार ज़मीन या माल के उत्तराधिकार और व्यापार को छोडकर अन्य दीवानी मामलो मे था। यदि कोई व्यक्ति जमीदार है या मालगुजारी देता है, या खेत जोतता है या उसे किसी सेवा या क्षति-पूर्ति के बदले मे कुछ पेन्शन या धन मिलता है या जिसे लगान उगाहने के बदले मे कुछ लाभाश मिलता है या उसे वहाँ पर स्थानीय अधिकार मिला है तो केवल इसी कारण वह सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार-क्षेत्र मे नही आ सकता।[2] दूसरे शब्दो मे ऐसे व्यक्तियो को कम्पनी का सेवक नही माना जा सकता।

तीसरी बात जो १७८१ के एक्ट ने स्पष्ट की—वह यह थी कि सर्वोच्च

१. पटना अभियोग के प्रतिवादी सपरिषद् गवर्नर जनरल द्वारा वादी की क्षति-पूर्ति के आश्वासन पर मुक्त होते और सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध सपरिषद इगलैंड-नरेश से अपील करने को स्वतन्त्र थे।

२. Ilbert : Historical Survey, page 56.

न्यायालय किस विधि (कानून) का अनुसरण करेगा। एक्ट ने सुनिश्चित शब्दो मे यह नियम बनाया कि ज़मीन, लगान या सम्पत्ति के उत्तराधिकार का अथवा किसी समझौते का निर्णय, यदि दोनो पक्ष मुसलमान है तो मुसलमानी विधि और परम्परा से होगा, यदि दोनो पक्ष हिदू है तो हिदू विधि और परम्परा से होगा, यदि एक मुसलमान और दूसरा हिदू है तो प्रतिवादी के धर्मगत कानून से होगा। दूसरे शब्दो मे विदेशी कानून के स्थान पर प्रतिवादी के व्यक्तिगत कानून के अनुसार निर्णय करने का नियम बनाया गया। साथ ही यह बात स्पष्ट कर दी गई कि न्यायालय को भारतीय धर्म, रीति-रिवाज, परम्पराओ, सामाजिक नियमो मे, जिनमे पिता और गृहपति का अधिकार भी सम्मिलित है, साथ ही जाति के नियमो का (चाहे ये सब बाते अगरेज़ी न्याय के अनुसार असगत और अपराधपूर्ण ही क्यो न हो) आदर करना चाहिए। साथ ही आज्ञप्ति और विधि को कार्यान्वित करने मे देश के निवासियो की धार्मिक और सामाजिक परम्पराओ का आदर करने का आदेश दिया गया। उन मे सम्बन्ध रखने वाले नियम उपनियमो को राजकीय स्वीकृति के लिए राज्य-मन्त्री के समक्ष रखने को कहा गया।

एक्ट ने चौथी बात यह की कि उसने सपरिषद् गवर्नर जनरल या उसकी किसी समिति द्वारा छोटे न्यायालयो के निर्णय पर अपील सुनने का अधिकार माना। ५००० पौड तक के दीवानी मामलो मे सपरिषद गवर्नर जनरल का निर्णय अन्तिम होता और वह अपील और अभिलेख का न्यायालय था। ५००० पौड से अधिक के लिए सपरिषद् इगलैड-नरेश से अपील का नियम था, मालगुजारी वसूल करने मे जो अपराध हुए हो, यदि उनका दड मृत्यु या गिरफ्तारी न हो तो ऐसे मामलो मे सपरिषद् गवर्नर जनरल मालगुज़ारी के न्यायालय का काम करता।

अन्त मे, १७८१ के एक्ट ने प्रान्तीय न्यायालयो और परिषदो के लिए समय-समय पर विनियम बनाने का अधिकार दिया। यदि इन विनियमो को सपरिषद् इगलैड-नरेश दो वर्ष के अन्दर रद्द न कर दे तो ये स्थायी रूप से मान्य होते। यह कोई नया अधिकार नही था। स-परिषद् गवर्नर जनरल ने सन् १७७२ मे बगाल मे न्याय-सचालन के लिए विनियम बनाए थे। १७७३ के एक्ट ने सपरिषद गवर्नर जनरल को नियम बनाने का अधिकार दिया था पर सर्वोच्च न्यायालय उन्हे निषिद्ध कर सकता था। सपरिषद् गवर्नर जनरल और न्यायालय के तीखे सम्बन्ध के कारण १७७३ के एक्ट के बाद नए विनियम बनाना कठिन हो गया था। अन्त मे १७८० मे सपरिषद् गवर्नर जनरल ने सर्वोच्च न्यायालय की स्वीकृति और वहाँ निबन्धन कराए बिना ही विनियम बनाने का निश्चय किया। सन् १७८० मे सपरिषद् गवर्नर जनरल ने प्रान्तीय न्यायालयो

के न्याय-कार्य के लिए अतिरिक्त विनियम बनाए और नियमो की एक दुहराई हुई सहिता (Code) जारी की। इस सहिता और अतिरिक्त विनियमो का सर्वोच्च न्यायालय मे न निबन्धन कराया गया और न उसकी स्वीकृति ही ली गई। १७८१ के एक्ट ने सपरिषद् गवर्नर जनरल के इस कृत्य की पुष्टि की और उन्हे इस विषय मे सर्वोच्च न्यायालय की स्वीकृति लेने और वहाँ निबन्धन कराने की आवश्यकता से मुक्त कर दिया।

( ६ )

१७८१ के एक्ट ने सपरिषद् गवर्नर जनरल की स्थिति को दृढ किया, एक्ट की धाराओ ने विवादास्पद प्रश्नो का उसके पक्ष मे निर्णय किया। इस एक्ट को स्वीकार करने से पहले जो कमेटियाँ[1] नियुक्त हुई थी उनकी रिपोर्ट भारत मे कम्पनी के प्रदेशो की कार्यपालिका और न्याय-व्यवस्था के और उसके शासन के लिए उत्तरदायी व्यक्तियो के लिए विशेष रूप से प्रतिकूल थी। हाउस ऑव कॉमन्स ने हेस्टिग्स और इम्पी को वापस बुलाने के लिए प्रस्ताव स्वीकार किये किंतु 'कोर्ट ऑव प्रोप्राइटर्स' ने पार्लियामेट और 'कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स'[2] की इच्छा के विरुद्ध भी उन्हे अपने-अपने पदो पर बना रहने दिया। डडास ने जो विरोध मे था, ने एक प्रस्ताव रखा जिसके अनुसार इगलैंड-नरेश को कम्पनी के प्रमुख सेवको को वापिस बुलाने का अधिकार दिया गया और गवर्नर जनरल को बहुत बडे अधिकार सौपे गए। किंतु इस प्रस्ताव के स्वीकार होने की कोई सम्भावना नही थी। इससे इतना अवश्य हुआ कि मन्त्रि-मडल कुछ करने के लिए प्रेरित हो गया।

मन्त्रि-मडल के विधेयक को फॉक्स ने प्रस्तुत किया और हाउस ऑव कॉमन्स मे वह पहली बार २० नवम्बर १७८३ को पढा गया। उस समय जो

---

१. उपर्युक्त पुस्तक का पृष्ठ ३५ देखिये (Ilbert · Historical Survey, p. 35)

२. बाद मे हेस्टिग्स पर हाउस ऑव कॉमन्स द्वारा महाभियोग लगाया गया। वह ऐतिहासिक मुकदमा १३ फरवरी सन् १७८८ से २३ अप्रैल १७९५ तक चला। हेस्टिग्स छूट गया। बर्क के शब्दो मे यह सिद्धात मान्य हुआ कि "नैतिकता के नियम सब जगह एक-से है। ऐसा नही हो सकता कि जो काम इगलैंड मे रिश्वतखोरी, अत्याचार या बलात्कार समझा जाता है वह यूरोप, अफ्रीका, एशिया और शेष ससार मे कुछ और समझा जाय।" Impeachment of Warren Hastings; Keith · Speeches and Documents on Indian Policy, Vol. I, page 144

व्यवस्था थी उसको फॉक्स ने अराजकतापूर्ण बताया। उसने सुधार के लिए कम्पनी के गृह-सरकार और विदेशो मे कम्पनी के कर्मचारियो को ब्रिटिश सरकार के नियत्रण मे लाने और कम्पनी को सरक्षकता को राजसत्ता और मन्त्रियो को सौपने का प्रस्ताव किया। फॉक्स ने 'कोर्ट ऑव प्रोप्राइटर्स' और 'कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स' दोनो को तोडकर कम्पनी का शासन-सचालन सात कमिश्नरो की एक मडली को सौपने का सुझाव रखा। इस मडली को भारत मे कम्पनी के अधिकारियो को नियुक्त करने, पद-च्युत करने और साथ ही कम्पनी की आय-व्यय और उसके व्यापार-सचालन का अधिकार देने की योजना थी। इस विधेयक (Bill) का प्रबल विरोध हुआ। ग्रेनविल, पिट, विल्बरफोर्स तथा अन्य व्यक्तियो ने इसकी तीव्र आलोचना की। फिर भी हाउस ऑव कॉमन्स मे २०८ मत पक्ष मे और १०२ मत विपक्ष मे मिलने के कारण इसको स्वीकृति मिल गई।[1] किंतु हाउस ऑव लॉर्ड्स ने इस विधेयक को अस्वीकार कर दिया। पिट ने अधिकार पाने पर सन् १७८४ के एक्ट द्वारा भारतीय समस्या का हल करने का प्रयत्न किया। इस एक्ट के अनुसार कम्पनी के भारतीय शासन की 'गृह'-व्यवस्था मे दुहरी सरकार की स्थापना हो गई। इस व्यवस्था मे कितने ही दोष थे और छोटी-छोटी बातो मे इसमे कितने ही परिवर्तन हुए, पर गदर के बाद इगलैंड की राजसत्ता द्वारा भारतीय शासन अपने हाथ मे लेने के समय तक मूलतः यही व्यवस्था बनी रही।[2]

( ७ )

१७८४ के एक्ट की चर्चा करने से पहले यहाँ पर सुविधाजनक होगा कि बगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी मिलने के बाद ईस्ट इडिया कम्पनी ने जो शासन-व्यवस्था स्थापित की थी, उसका एक सक्षिप्त वर्णन कर दिया जाय। १७६५ से पहले बगाल का नवाब या सूबेदार दीवान और निजाम दोनो के ही काम करता था। निजाम की हैसियत से सेना और दड-न्यायालय दोनो ही नवाब के आधीन थे, दीवान की हैसियत से मालगुजारी का काम और दीवानी न्याय

---

१ पिट ने पहला विधेयक १७८४ के आरम्भ मे ही प्रस्तुत किया था पर विरोधियो ने, जो बहुमत मे थे, उसे अस्वीकार कर दिया। यह बात २५ मार्च १७८४ के विघटन (dissolution) से पहले की है।

२. "पिट के १७८४ के एक्ट से स्थापित दुहरी सरकार, जिसकी कार्य-पद्धति बड़ी उलझी हुई थी और जिसमे रोक-थाम की विशद व्यवस्था थी, मूलतः १८५८ तक बनी रही।" Ilbert : Historical Survey, pages 66 and 67 से अनूदित।

उसके आधीन थे। १७६५ मे मुगल सम्राट् द्वारा दीवानी ईस्ट इडिया कम्पनी को मिल गई थी। यद्यपि निज़ामत नाम के लिए अब भी नवाब के हाथो मे थी, किंतु उसका वास्तविक नियत्रण कम्पनी के हाथो मे था—क्योकि नवाब कम्पनी के हाथो मे कठपुतली की तरह था। १७६५ की फरवरी मे मीर जाफर की मृत्यु हुई और कम्पनी ने उसके दूसरे अवयस्क लडके को गद्दी पर बिठा दिया। इस प्रकार कम्पनी को दीवानी तो सम्राट् से मिली और निजामत सूबेदार से।"[1]

आरम्भ मे कम्पनी ने दीवानी और निजामत दोनो को पुराने भारतीय ढाँचे के ही हाथो मे रहने दिया। कम्पनी का ऊपर से नियत्रण और निरीक्षण था। मुर्शिदाबाद का अग्रेज़ रेजीडेट फ्रैन्सिस साइक्स, मुहम्मद रजा खाँ द्वारा सारे शासन का निरीक्षण और नियत्रण करता। मुहम्मद रजा खाँ छोटा नाजिम और साथ ही छोटा दीवान था। १७६९ मे कम्पनी ने जिलो मे छोटे भारतीय कर्मचारियो का काम देखने के लिए कुछ निरीक्षक नियुक्त किये। १७७० मे इन ज़िला-निरीक्षको के अतिरिक्त मालगुजारी के नियत्रण के लिए पटना और मुर्शिदाबाद मे दो बोर्ड बनाए गए। इन मडलियो (Boards) का, पुराना दीवानी अधिकार प्राप्त करने के नाते, पहले अधिकारियो की तरह, मालगुज़ारी और न्याय दोनो मे क्षेत्र था।[2] इन निरीक्षको और मडलियो ने कलकत्ता-सरकार से स्वतन्त्र और जोखिमपूर्ण ढर्रा अपनाया। इसको कुचल देने के उद्देश्य से १ अप्रैल १७७१ को कलकत्ते मे परिषद् ने अपने-आपको राजस्व-कमेटी बनाया और उस नाते से प्रान्तीय छोटे अधिकारियो को अपना पत्र-व्यवहार और लेखा भेजने का आदेश दिया।[3]

वारन हेस्टिग्स ने १७७२ के वसन्त मे दीवानी का काम सँभाला। उसने अनुभव किया कि पुरानी व्यवस्था दोषपूर्ण थी। और उससे अन्याय और अत्याचार होता था। उसने कलकत्ते की राजस्व कमेटी और पटना और मुर्शिदाबाद की मडलियो को तोड दिया। उसने मालगुजारी-व्यवस्था का फिर से सगठन करने के लिए नए विनियम जारी किये। कलकत्ते मे एक सर्वोच्च राजस्व-सत्ता बनाई गई। इसमे सारी परिषद्, राजस्व बोर्ड की हैसियत से काम करती। हर ज़िले मे उगाही का काम करने के लिए अलग-अलग अधिकारियों की व्यवस्था की

---

१ P E Roberts History of British India, page 159 से सर जेम्स स्टीफेन के एक वक्तव्य का अनुवाद।

२. P. E. Roberts History of British India, page 159.

३. Monkton Jones Warren Hastings in Bengal, 1772-1774, page 288.

गई। उसने ज़िला-निरीक्षकों को कलक्टर (उगाही करने वाला) बना दिया और उसके काम की पडताल के लिए उसने एक भारतीय नायब दीवान की राजस्व कार्यपालिका में सहायता के लिए नियुक्ति की। कलक्टर सारी आज्ञाएँ जारी करता, उन पर कम्पनी की मुहर होती और सारी निधि उसके हाथो से राज्य-कोष में आती। सारे लेखे का दीवान के यहाँ निबन्धन होता और कलकत्ते के राज्य-कोष में उस सम्बन्ध में उसकी स्वतन्त्र रिपोर्ट आती।"[१]

"कलकत्ते मे परिषद्, राजस्व बोर्ड की हैसियत से सप्ताह में दो बार काम करती, कलक्टरो को आवश्यक आदेश देती और लेखे की पड़ताल करके उसको स्वीकार करती।"[२]

१७७२ की इस योजना से कलकत्ता की परिषद् पर काम का बोझ बहुत बढ़ गया। इसी कारण १७७४ में प्रान्तीय परिषदो की व्यवस्था बनाई गई। कई ज़िलों को मिलाकर कमिश्नरी या डिवीज़न बनाये गए। हर कमिश्नरी के लिए एक मुख्य अधिकारी और परिषद् बनाई गई। इस तरह के ६ डिवीजन थे और ६ प्रान्तीय परिषदे थी। हर डिवीज़न में लेखा रखने के लिए और स्थानीय भाषा मे अभिलेख सुरक्षित रखने के लिए दीवान की नियुक्ति की गई और उसके आधीन, पहले की तरह हर जिले मे एक नायब दीवान बनाया गया।[३] समय-समय पर ज़िलो के काम की पडताल करने के लिए ज़िलो मे निरीक्षक भेजे जाते। सर्वोच्च परिषद् में मतभेद होने के कारण प्रान्तीय परिषदो का समुचित नियंत्रण नही था। १७७६ में वारन हेस्टिंग्स ने प्रान्तीय परिषदो का फिर से संगठन किया किंतु कलकत्ता मे सारे अधिकार केन्द्रित करने के अपने अन्तिम सुधार में उसे सफलता सन् १७८१ मे ही मिल सकी।

"१७८१ मे हेस्टिंग्स राजस्व कार्य मे अपना सुधार पूरा कर सका। प्रान्तीय परिषद् और कलक्टर हटा दिये गए और राजस्व शासन चार आदमियो—एडर्सन, शोर, चार्टर्स और क्रॉफ्ट्स—की कमेटी को सौप दिया गया। वह लिखता है—'उनका कोई नियत वेतन नही है। और कोई परिलब्धि (perquisites) न लेने की उन्हे शपथ है। इसके बदले में वे विशुद्ध उगाही का १% कमीशन

१. Monkton Jones : Warren Hastings in Bengal, page 289.

२. Monkton Jones : Warren Hastings in Bengal, page 289.

३. Monkton Jones : Warren Hastings in Bengal, page 291.

अथवा कलकत्ते में जमा किये हुए परिमाण पर दूना कमीशन पायेंगे। इस प्रकार कम्पनी के लिए उसे बहुत काफी बचत की आशा थी : इस वर्ष राजस्व में २७ लाख की वृद्धि होगी और व्यय मे १२ लाख की बचत होगी, कुल मिलाकर ३९ लाख की प्राप्ति।"[१]

(८)

वारन हेस्टिंग्स ने मालगुजारी उगाहने के लिए ही पुराने भारतीय ढाँचे का उपयोग नही किया वरन् उसने पुरानी न्याय-व्यवस्था का भी पूरा उपयोग किया। उसके अनुसार भारतीय न्याय और व्यवस्था, स्थानीय परिस्थितियो के लिए उपयुक्त थे। मौकटन जोन्स के शब्दो मे, "वारन हेस्टिंग्स के दृष्टिकोण से सबसे आवश्यक बात यह थी कि देशी न्याय-व्यवस्था और लिखित अथवा अलिखित न्याय-नियमो को, जिनके कि सर्वसाधारण अभ्यस्त थे ज्यो-का-त्यो बना रहने दिया जाय।[२] उसने उस व्यवस्था को पुराने और पूरे रूप मे नही रहने दिया किंतु परिवर्तन मे विवेक और सूझ से काम लिया। इस उद्देश्य से उसने एक योजना बनाई जो १७७२ की न्याय-योजना के नाम से परिचित है।

वारन हेस्टिंग्स ने ज़िले को न्याय और दूसरे कामो के लिए शासन की इकाई बनाया। हर ज़िले मे एक दीवानी और एक दड-न्यायालय होता। "इस उद्देश्य के लिए उसने उस समय की 'दरोगा अदालत दीवानी' का, जो प्रान्तीय दीवानी के नाम से अधिक प्रसिद्ध थी, दीवानी मामलो के लिए उपयोग किया और फौजदारी अदालत का अपराध और सदाचार के लिए।[३] हर न्यायालय का अधिकार-क्षेत्र सुनिश्चित था।[४] ज़िले का यूरोपीयन कलक्टर स्थानीय दीवानी न्यायालय

१. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २९२।

२. उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ ३११ से अनूदित।

३. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ३१२।

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३१२-१३:—(i) प्रान्तीय दीवानी अदालत के अधिकार-क्षेत्र के तीन शीर्षक थे:—(अ) सम्पत्ति, वास्तविक अथवा व्यक्तिगत; (ब) उत्तराधिकार, विवाह और जातीय झगड़े; और (स) ऋण, समझौता, लगान आदि। ज़मीदारी और तालुकेदारी का उत्तराधिकार इस सूची के बाहर था। उसे सभापति और परिषद् के निर्णय के लिए छोड दिया गया था। (ii) फौजदारी अदालत के अधिकार क्षेत्र के शीर्षक—(अ) हत्या, डकैती, चोरी, आदि (ब) बड़े अपराध, जालसाज़ी, झूठी गवाही, और (स) मार-पीट, झगड़ा, व्यभिचार, शान्ति और व्यवस्था को भंग करने वाला कोई काम। सम्पत्ति ज़ब्त करने अथवा प्राण-दड देने के लिए कलकत्ते के बड़े न्यायालयों से पुष्टि होना आवश्यक था।

का सभापति होता; अथवा प्रान्तीय पारषद् प्रमुख होती। साथ में सभापति और परिषद् द्वारा नियुक्त भारतीय दीवान और दूसरे पदाधिकारी होते। फ़ौजदारी न्यायालयों के सभापति भारतीय अधिकारी ही होते; दो मौलवी न्याय-नियम बताने को होते, अंग्रेज-अधिकारियों को निरीक्षण का अधिकार था।[1] ज़िले के इन न्यायालयो के अतिरिक्त अन्य स्थानीय न्यायालयो को तोड़ दिया गया। हर परगने में मुख्य किसान (मुखिया) को जहाँ के तहाँ १० रुपये के मूल्य तक के छोटे-छोटे झगड़ों का निपटारा करने का अधिकार दिया गया। इन लोगो को दंड देने या जुर्माना करने का अधिकार नही था। ज़िले के नए न्यायालयो में स्वयं इन लोगो के विरुद्ध, ताले लगे बक्सो मे लिखकर शिकायत की अर्ज़ी डाली जा सकती थी।[2]

वारन हेस्टिंग्स ने ज़िले के न्यायालयो के ऊपर, अपील के न्यायालय बनाए—कलकत्ते के सदर न्यायालय। सदर दीवानी अदालत मे गवर्नर और परिषद् के दो सदस्य होते। इनकी सहायता करने को अर्थ-विभाग का दीवान होता और साथ ही मुख्य कानूनगो होता। सदर निज़ामत (फ़ौजदारी) अदालत मे नाज़िम का प्रतिनिधि, एक मुसलमान न्यायाधीश सभापति होता जिसे न्याय-नियमो पर मुसलमान मौलवियो से सहायता मिलती। सभापति और परिषद् को निज़ामत-अदालत पर निरीक्षण का अधिकार था।

१७७२ की न्याय-योजना से केन्द्र और ज़िलो में दीवानी और फ़ौजदारी न्यायालयों की व्यवस्था का फिर से संगठन ही नही हुआ वरन् उसने कुछ साधारण नियम बनाकर न्याय-कार्य को सुधारने का भी प्रयत्न किया। इनमें से मुख्य बाते ये थी:—

(१) हर छोटे-बड़े न्यायालय मे कार्यवाही का अभिलेख रखा जाय।

(२) अभियोगो के लिए एक अवधि निश्चित कर दी जिसके बाद पुरानी शिकायतो को फिर से उखाड़ा नही जा सकता था।

(३) कानूनी 'चौथ' और बड़े जुर्मानो की प्रथा को तोड़ दिया गया।

(४) साहूकार के अपने ही वाद के विषय मे न्यायाधिकार निश्चित करने के स्वत्व का अवरोध, जैसे ज़मीदार और कानूनगो के विषय मे।

---

१. Weitzmann: Warren Hastings and Philip Francis, page 60.

२. Monkton Jones: Warren Hastings in Bengal, page 315.

(५) विवाद-ग्रस्त सम्पत्ति के मामलो को तय करने के लिए मध्यस्थ द्वारा निर्णय करने को प्रोत्साहन ।[1]

वारन हेस्टिंग्स को इस व्यवस्था से, इस बात के अतिरिक्त कि कलक्टरों के हाथो मे इतनी शक्ति केन्द्रित हो गई थी, सतोष था । सन् १७७४ में प्रान्तीय परिषद् बनाकर यह दोष दूर कर दिया गया । लेकिन जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है प्रान्तीय और ज़िला-न्यायालयो के काम मे १७७३ के एक्ट के अनुसार स्थापित किया हुआ सर्वोच्च न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप होता रहता था। फिर भी यह व्यवस्था चलती रही । विनियमों की नई सहिता मे, जो १७८० में जारी की गई, इस व्यवस्था को स्थान दिया गया । १७९३ मे दुहराकर जो संहिता बनाई गई उसमे भी इसकी पुष्टि की गई ।

## तीसरा अध्याय

# द्वैध शासन का युग

(१)

एक विचित्र सयोग से कम्पनी ने द्वैध या दोहरी शासन-व्यवस्था की स्थापना द्वारा भारत मे प्रादेशिक प्रभुता को प्राप्त भी किया और खो भी दिया । क्लाइव ने १७ अगस्त १७६५ के फ़रमान से, जिसमें बंगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी मिली थी और इस प्रकार दोहरी शासन-व्यवस्था[2] की स्थापना हुई थी, कम्पनी के लिए प्रादेशिक अधिकार प्राप्त किया था । १७८४ के एक्ट द्वारा पिट ने दो प्राधिकारी—'बोर्ड ऑव कंट्रोल' और 'कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स' बनाए और कम्पनी को भारतीय मामलो की व्यवस्था के सर्वोच्च और अन्तिम नियत्रण से वचित कर दिया ।

१७८४ के एक्ट ने 'प्रिवी कौसिल' के सदस्यो में से छै कमिश्नर नियुक्त

१. Monkton Jones: Warren Hastings in Bengal, page 314.

२. वह व्यवस्था "जिसमे कम्पनी को देश के राजस्व पर, सैन्य शक्ति पर पूरा अधिकार था, किंतु न्याय और व्यवस्था बनाए रखने का दायित्व, न्यायालय के द्वारा दूसरे हाथो में छोड़ दिया गया था।" Ilbert : Historical Survey, page 38.

करने के लिए हिज़ मैजेस्टी (इंगलैंड नरेश) को प्राधिकृत[1] किया। इनमें से एक 'चान्सलर ऑव दि एक्सचेकर' (अर्थ-मन्त्री) होता और एक कोई सा राज्य-मन्त्री होता। 'बोर्ड ऑव कट्रोल', जो उक्त कमिश्नरो की मडली से बनाया गया,[2] 'बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्स' के भी ऊपर था। व्यवहारतः 'कोर्ट ऑव प्रोप्राइटर्स' का अतिक्रमण कर दिया गया।[3] यह बोर्ड मन्त्रि-मडल से अनुबन्धित था और शासन मे प्रत्येक परिवर्तन के साथ इसमे भी परिवर्तन होता। "उक्त राज्य-मन्त्री, उसकी अनुपस्थिति मे उक्त अर्थ-मन्त्री, दोनो की ही अनुपस्थिति मे, उक्त कमिश्नरों मे से अधिकार में सबसे बडा सदस्य ..... बोर्ड का सभापति होता।[4] "यदि उपस्थित सदस्यों मे मतभेद होता और दोनों पक्ष बराबर होते तो वह निर्णायक वोट दे सकता था।[5] एक्ट के अनुसार गण-पूर्ति (Quorum) के लिए तीन सदस्यो की उपस्थिति अनिवार्य थी। इन कमिश्नरो का कोई वेतन नही था, वे कोई अनुग्रह[6] नही कर सकते थे। किंतु सुदूरपूर्व मे ब्रिटिश प्रदेशो के राजस्व, वहाँ की सैनिक एवं असैनिक सरकार से किसी प्रकार का सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक कार्य और प्रत्येक विषय में इन कमिश्नरों को निरीक्षण, निर्देशन और नियत्रण का अधिकार था। इस बोर्ड को कम्पनी के हर एक कागज़, खाते और अभिलेख[7] देखने का अधिकार था। बोर्ड के माँगने पर वाछित उदाहरण अथवा उसकी

१. Clause 1. Act of 1784, Keith: Speeches and Documents, vol. I, page 96.

२. इसका नाम था:—"Commissioners for the Affairs of India."

३. 'कोर्ट आव डाइरेक्टर्स' की कार्यवाही को 'बोर्ड आव कट्रोल' की पुष्टि मिलने के बाद 'कोर्ट आव प्रोप्राइटर्स' उसको रद्द नही कर सकता था। Ilbert: Historical Survey, page 45 और C L. Anand: History of Government in India, part II, page 27.

४. व्यवहारत. अधिकार मे बड़ा सदस्य सभापति होता है।

५. Clause 3 of the Act, Keith: Speeches and Documents, vol. 1, page 96.

६. Clause 4 उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ९७.

७. Clause XVII of the Act "इस एक्ट की किसी भी बात से इस बोर्ड को उक्त यूनाइटेड कम्पनी के किसी कर्मचारी को नियुक्त करने का अधिकार नहीं होगा" उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ १०२ से अनूदित।

प्रतिलिपि प्रस्तुत की जाती थी।[१] कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स या उसकी किसी कमेटी द्वारा, भेजे हुए आदेश या पाई हुई रिपोर्ट या उसकी कार्यवाही और प्रस्ताव आदि सभी को यह बोर्ड देख सकता था।[२] बोर्ड को डाइरेक्टर्स के आदेशों का संशोधन करने का अधिकार था। उस दशा में डाइरेक्टर्स अपने भारत के अधिकारियों को संशोधित आदेश ही भेज सकते थे। बाद में १८५८ के एक्ट मे जो अधिकार भारत-मन्त्री को दिये गए बोर्ड को लगभग वे सभी अधिकार कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स और भारत मे कम्पनी के अधिकारियो के ऊपर प्राप्त थे। वस्तुतः १७८४ के एक्ट का छठा खड (Clause VI) बाद के विधानो मे लगभग उन्ही शब्दो मे दोहरा दिया गया है।[३]

साधारणतया 'बोर्ड ऑव कंट्रोल' अपने आदेश और निर्देश, बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्स के द्वारा ही भेजता। किंतु कुछ मामलो मे कमिश्नर अपने आदेश और निर्देश गुप्त कमेटी को भेज सकते थे। यह गुप्त कमेटी डाइरेक्टर्स द्वारा अपने-आप मे से ही चुने हुए[४] तीन सदस्यो की होती। कमेटी उन आदेशो को दूसरो को बताए बिना ही भारत की सम्बन्धित सरकारों के पास भेज देती।"[५]

यद्यपि डाइरेक्टर्स-मडल का भारत-सरकार पर सन् १८५८ मे इंगलैंड की राजसत्ता के हाथो मे आने तक बहुत बडा प्रभाव बना रहा किंतु जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है अन्तिम नियत्रण इस नए बोर्ड के हाथों में आ गया। सन् १९१८ मे भारतीय वैधानिक सुधारो की रिपोर्ट मे यह लिखा गया है—"हमको इस परिणाम पर नही पहुँचना चाहिए कि 'बोर्ड ऑव कंट्रोल' के सभापति की प्रभुता के कारण डाइरेक्टर्स के हाथो मे कोई वास्तविक नियंत्रण नही रहा। उनकी स्थिति अब भी सुदृढ थी, साधारणतया उपक्रमण करने ( Initiative ) का अधिकार अब भी उन्ही के हाथों में था; अनुभव-ज्ञान उन्ही के पास था। यद्यपि वैधानिक उत्तरदायित्व सरकार पर था किंतु अन्त तक

१. Clause VI of the Act, Keith : Speeches and Documents, vol. I, page 97.
२. Clause XI उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ९८.
३. Clause II Sub-section 2 of the Consolidated Govt. of India Act. Bose : Working Constitution of India, page 104.
४. Clause XVI of the Act, Keith : Speeches and Documents vol. I, page 101.
५. Clause XV उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १००

शासन की अधिकांश छोटी-छोटी बातों पर, उनके विस्तार पर उसका बहुत बड़ा प्रभाव बना रहा ।[1]

१७८४ के एक्ट से भारत का एकीकरण एक पग और आगे बढ़ा। एक्ट ने बम्बई और मद्रास के सपरिषद् गवर्नरो के ऊपर सपरिषद् गवर्नर-जनरल के अधिकारों को विस्तृत और सुनिश्चित किया। एक्ट के खंड ३१ मे यह कहा गया है कि सपरिषद् गवर्नर-जनरल को, "विभिन्न प्रेसिडेसियों और वहाँ की सरकारो का·····राजस्व, सेना, भारतीय सत्ताओ से युद्ध और सधि के मामलो मे····· ···अथवा डाइरेक्टर्स मडल से निर्दिष्ट विषयो मे ····· निरीक्षण, नियत्रण और निर्देश करने का अधिकार होगा ।"[2] सपरिषद् गवर्नर-जनरल के ऊपर डाइरेक्टर्स मंडल को भी ऐसा ही अधिकार दिया गया था ।

१७८४ के एक्ट से गवर्नर-जनरल और गवर्नरों की परिषदों के विधान में भी परिवर्तन हुआ ।[3] हर परिषद् के तीन सदस्य होते; उनमें सेनापति भी एक सदस्य होता। नियुक्तियाँ अब भी कोर्ट ऑव डायरेक्टर्स के हाथो मे थी किंतु राज-सत्ता को कम्पनी के सेवकों को पद-च्युत करने या वापिस बुलाने[4] का अधिकार था। कम्पनी के प्रदेशो को पहली बार "ब्रिटिश भारतीय प्रदेश", "इस (ब्रिटिश) राज्य के प्रदेश" कहा गया ।[5]

कम्पनी को अपनी व्यवस्था ठीक करने को कहा गया। साथ ही राज्य-विस्तार और विजय की योजनाओ को छोड देने और 'अनावश्यक सेवकों का अवच्छेद' करने को कहा गया। "भारत में राज्य-विस्तार और विजय की योजनाओं को कार्यान्वित करना इस (ब्रिटिश) राष्ट्र की नीति, मान और इच्छा के प्रतिकूल" बताया गया ।[6]

अन्त मे १७८४ के एक्ट ने इस बात की भी पहले से अच्छी व्यवस्था की कि जो अग्रेज भारत मे अपराध करे उन पर इंग्लैंड में मुकदमा चलाकर न्यायानुसार दंड दिया जाय। ऐसे अभियोगो के लिए एक विशेष न्यायालय बनाया गया। इसमें तीन जज और चार लार्ड और छः हाउस ऑव कॉमन्स के सदस्य होते ।

१. Report on Indian Constitutional Reforms, 1918 के पृष्ठ १८, पैराग्राफ़ ३१ का अनुवाद ।
२. Clause XXX of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १०९.
३. Clause XVIII and XIX of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १०२.
४. Clause XXII उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १०४.
५. Clause I उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ९६.
६. Clause XXXIV उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १११.

सन् १७८४ के एक्ट से मुख्य बात यह हुई कि देश के शासन का वास्तविक अधिकार 'बोर्ड ऑव कंट्रोल' के सभापति को दे दिया गया।[१] इसके कई कारण थे : पहले सभापति सर हेनरी डण्डास पिट के मित्र थे और वे आरम्भ से ही बोर्ड के अधिकारों को मनवा सकते थे। डाइरेक्टर्स, जिनकी साधारण आय तो कम थी और जिनकी मुख्य प्राप्ति अनुग्रह करने (नौकरी आदि दिलाने) में थी, बोर्ड को इस डर से अप्रसन्न नही कर सकते थे कि कही उनके रहे-सहे अधिकार भी न छीन लिये जायँ। बोर्ड के सभापति को, पार्लियामेंट को कोई वार्षिक हिसाब नही देना पडता था और वह लगभग उत्तरदायित्व-निहित था।[२] यद्यपि पिट ने इस बात का ध्यान रखा था कि कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स की स्थिति और प्रतिष्ठा ज्यो-की-त्यो बनी रहे किंतु उपर्युक्त कारणो ने बोर्ड और उसके सभापति को बहुत शक्तिशाली बना दिया।[3]

इस एक्ट के अनुसार भारत मे शासन एक निरन्तर बदलती रहने वाली परिषद मे निहित हुआ।[४] वारन हेस्टिंग्स के उत्तराधिकारी मिस्टर मैकफर्सन के दुर्बल शासन मे इस व्यवस्था के दोष विशेष रूप से स्पष्ट हुए। मिस्टर मैकफर्सन सबसे पुराने और अधिकार मे सबसे बडे अधिकारी थे, किंतु उनमे और कोई योग्यता नही थी। बाद मे जब लार्ड कॉर्नवालिस से[५] गवर्नर-जनरल बनने के लिए कहा गया तो उन्होने व्यवस्था में परिवर्तन करने और अपने अधिकार

---

१. यद्यपि एक्ट ने अधिकार बोर्ड को संयुक्त रूप में दिया था किंतु वह सभापति के हाथों मे केन्द्रित हो गया। प्रो. डॉडवेल लिखते है, "यह परिवर्तन बिना किसी दुर्भावना के नही हुआ। डडास आरम्भ से ही प्रमुख स्थिति मे था। यह बात सबको, विशेषकर लॉर्ड सिडनी को, बुरी लगी। उन्होंने भारत में स्कॉटलैंडवासियो के प्रति डडास के भेद-भावपूर्ण व्यवहार पर आपत्ति की। सन् १७८६ मे इस परिवर्तन को कानूनी रूप देने का प्रयत्न किया गया। डडास ने कहा कि इस प्रकार आपका सेवक केवल वस्तुत: ही नही वरन् घोषित रूप से भी भारत के लिए राज्य-मन्त्री माना जायगा। किंतु इस कार्यवाही को कानूनी रूप देने के लिए सभापति को अपने साथियो की स्वीकृति अनिवार्य थी।

२. मन्त्रि-मडल मे उसकी स्थिति उसके व्यक्तित्व पर थी।

३. Thakore : Indian Administration to the Dawn of Responsible Govt., page 42.

४ Chesney : Indian Polity, page 19.

५. डंडास ने लॉर्ड कार्नवालिस को भारतीय शासन के लिए संसार-भर में सब

बढ़ाने के लिए कहा । फलतः १७८६ में एक एक्ट बनाया गया। इसके अनुसार असाधारण स्थिति मे गवर्नर-जनरल—साथ ही गवर्नरो को भी—अपनी परिषद् की स्वीकृति लिये बिना ही निर्णय करने का अधिकार दिया गया। साथ ही लार्ड कॉर्नवालिस को स्वयं ही गवर्नर-जनरल और सेनापति दोनों पदो का काम सँभालने का प्राधिकार मिला। एक्ट ने यह नियम भी बनाया कि सेनापति के अतिरिक्त और कोई व्यक्ति जिसने भारत मे कम से कम बारह वर्ष तक सेवा न की हो, गवर्नर-जनरल या उसकी परिषद् का सदस्य नियुक्त न किया जाय।

पिट ने सन् १७८४ के एक्ट में बोर्ड ऑव कट्रोल और डाइरेक्टर्स के अलग-अलग अधिकारो को जान-बूझकर निश्चित नही किया था और विरोध शान्त करने के लिये ऐसी भाषा का प्रयोग किया था जिस के दोहरे अर्थ हो सकते थे। किंतु जब विधेयक स्वीकार होकर एक्ट बन गया तो डाइरेक्टर्स को प्रसन्न रखने की आवश्यकता समाप्त हो गई और मत्रिमडल ने अपना वास्तविक उद्देश्य प्रकट करना आरम्भ किया। फॉक्स की ही तरह पिट का उद्देश्य भी यही था कि कम्पनी को राजनीतिक अधिकारो से वचित कर दिया जाय और भारतीय शासन का वास्तविक नियंत्रण कमिश्नरो के बोर्ड को सोप दिया जाय। इसी दृष्टि से बोर्ड ऑव कट्रोल के अधिकारो को एक्ट मे साधारण किंतु विस्तृत रूप मे रखा गया था। आरम्भ से ही बोर्ड ऑव कट्रोल ने दृढ और कठोर ढग अपनाया और डाइरेक्टर्स के ऊपर अपनी श्रेष्ठता और अपना अधिकार जताया। अगले तीन वर्षों मे कई बार मतभेद हुए। यदि कभी बोर्ड ऑव कट्रोल को झुकना भी पडा तो यह बिलकुल स्पष्ट कर दिया गया कि डाइरेक्टर्स की जो कुछ भी सत्ता थी वह केवल श्रेष्ठतर शक्ति के निष्क्रिय यत्र के ही रूप मे थी।[1] सन् १७८४ मे एक गम्भीर और महत्वपूर्ण मतभेद हुआ। दोनो मडलो के बीच का यह मतभेद १७८८ के अभिधायक (Declaratory) एक्ट ने समाप्त किया।

---

से उपयुक्त व्यक्ति बताया · "यहाँ किसी खोई सम्पत्ति की क्षति-पूर्ति नही करनी थी, किसी लालच की भूख नही मिटानी थी, किसी दरिद्री की व्यवस्था नही करनी थी, किन्ही भूखे आश्रितो का मुँह नही भरना था।" Quotation by Thakore from Mill & Wilson. History of India, Vol. V, Chap. IX, in Indian Administration to the Dawn of responsible Government, page 44 का अनुवाद।

१. Ilbert : Historical Survey, pages 67-68.

'बोर्ड ऑव कंट्रोल' ने कम्पनी के व्यय पर (शाही) ब्रिटिश सेना को भारत भेजा था। डाइरेक्टर्स ने बोर्ड के इस अधिकार पर आपत्ति की। बोर्ड ने सन् १७८४ के एक्ट के अन्तर्गत अपना यह अधिकार बताया और फलतः भारत में चार शाही सैन्य-दल भेजे और उनका व्यय भारतीय राजस्व के हिसाब में डाल दिया। डाइरेक्टर्स ने इसका विरोध किया और साथ ही सैन्य-दल को भेजने की आवश्यकता और उसके औचित्य पर भी आपत्ति की। उन्होंने सन् १७८१ के एक्ट की उन धाराओ का सहारा लिया जो रद्द नही हुई थी। इनके अनुसार कम्पनी उन्ही सैन्य-दलो का व्यय देने को बाध्य की जा सकती थी जिनकी कि उसने स्वयं माँग की हो।

पिट ने ऐसे विवादो को सदा के लिए समाप्त करने के उद्देश्य से एक अभिधायक विधेयक प्रस्तुत किया। उसके अनुसार बोर्ड ऑव कट्रोल को अन्तिम अधिकार दे दिया गया। डडास के मत से इस अधिकार के बिना बोर्ड ऑव कंट्रोल एक निरर्थक सस्था थी।[1] उस विधेयक का विरोध किया गया। यह कहा गया कि व्यय करने के अनियत्रित अधिकार का अर्थ यह होगा कि कम्पनी की व्यावसायिक निधि राजनीतिक उद्देश्यो[2] के कारण बिलकुल ज़ब्त हो जायगी। भारत में सैन्य-दल भेजने के विरुद्ध दो आपत्तियाँ की गईं। एक तो यह कि कम्पनी को जितनी सेना की आवश्यकता थी, उतनी उसके पास मौजूद थी। साथ ही इंग्लैंड से सेना भेजने की अपेक्षा, कम्पनी के लिए भारत में ही सेना तैयार करने में कम व्यय होता था। दूसरी आपत्ति यह थी कि राज-सत्ता के लिए ऐसी सेना बनाए रखना, जिसके लिए पार्लियामेंट से व्यय स्वीकार न किया गया हो, अवैधानिक था। इसके अतिरिक्त शाही सेना भेजने से भारत में सैन्य-संगठन का काम जटिल हो जाता, क्योकि इस तरह कम्पनी की सेना और शाही सैन्य-दल एक सूत्र में आ जाते थे।

पिट और डंडास ने इन आपत्तियों से सुलझने का प्रयत्न किया। प्रधान मन्त्री ने समस्त राजकीय स्थल और जल-सेना की असंतोषजनक स्थिति की ओर संकेत करके वैधानिक प्रश्न को समाप्त कर दिया। "वर्तमान प्रश्न पर विचार करने का अर्थ होगा, वैधानिक कानून के महत्त्वपूर्ण किंतु दोषयुक्त भाग की ओर ध्यान आकर्षित करना और उसका सुधार करना।[3] भारत में दो प्रकार के सैनिक सगठन की कठिनाई को पिट ने स्वीकार किया और उसने पार्लियामेंट के भवन में कहा

१. Mill : History of India, Vol V, page 78.
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ७५.
३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ७९.

कि भारत में सारी सेना (इंगलैंड की) राज-सत्ता के ही आधीन होनी चाहिए और साथ ही यह भी कहा कि इस सुधार के लिए योजना तैयार हो रही है। सच बात तो यह थी कि पिट और डडास दोनो ही भारत की सारी शक्ति राज-सत्ता अर्थात् मन्त्रि-मडल को हस्तान्तरित करने पर तुले हुए थे। पार्लियामेट और डाइरेक्टर्स की स्पष्ट इच्छा के विरोध में, उनकी नीति भारत में राजनीतिक शक्ति के विस्तार के पक्ष मे थी।

मन्त्रि-मडल द्वारा इस प्रकार अनन्त शक्ति हथियाने के प्रयत्न से काफी विरोध उठ खड़ा हुआ। सदेह के कारण उसके प्रति सतर्कता भी बढी। उन्हे शान्त करने के उद्देश्य से पिट ने कुछ ऐसी धाराएँ जोड दी जिनसे बोर्ड ऑव कट्रोल के कुछ अधिकार कम होते थे। बोर्ड एक सीमा के अन्दर ही सैन्य-दल भेज सकता था। बोर्ड को पदाधिकारियो का वेतन बढ़ाने अथवा किसी सेना के बदले उपदान देने का अधिकार नही था जब तक कि पार्लियामेट और डाइरेक्टर्स की स्वीकृति न हो। डाइरेक्टर्स को पार्लियामेंट के सामने कम्पनी के आय-व्यय का वार्षिक लेखा रखना होता था।

इस प्रकार १७८४ के एक्ट का अर्थ बताने का प्रयत्न समाप्त हुआ। पार्लियामेट का यह काम नही है कि वह नियमो का अर्थ बताए, यह काम न्यायपालिका का है। किंतु अभिधायक विधेयक मे यही उल्टी बात है। उसके अनुसार वह नियम, जिसको धाराओ से सीमित किया गया हो अथवा वह नियम जिस को इस प्रकार सीमित न किया गया हो, दोनो एक ही बाते है।[1]

(२)

लॉर्ड कॉर्नवालिस जब भारत आए तो वह गवर्नर-जनरल भी थे और सेनापति भी थे। कुछ विशेष स्थितियो मे किंतु पूर्ण सदुद्देश्य के साथ, उन्हें अपनी परिषद की उपेक्षा करने का अधिकार भी था। वह टीपू के साथ एक बड़ी लड़ाई में फँस गए। इस लड़ाई का उन्होने स्वयं बड़ी कुशलता के साथ सचालन किया। उसमे मालाबार और सलेम के वर्त्तमान जिले और मदुरा जिले के कुछ भाग जीतकर मद्रास प्रेसीडेसी मे मिला दिए गए।

१७८६ के एक्ट ने गवर्नर-जनरल को परिषद् की उपेक्षा करने का अधिकार तो दिया, किंतु उससे परामर्श करना अनिवार्य था। १७९१ मे एक एक्ट बनाया गया। इसके अनुसार गवर्नर-जनरल युद्ध समाप्त[2] होने के तीन महीने बाद तक बिना परिषद् के काम कर सकता था। बाद के नियमो में इसे साधारण अधिकार बना दिया गया।

---

१. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ८०.

२. Chesney: Indian Polity, page 22.

भारतीय इतिहास मे लॉर्ड कॉर्नवालिस का शासन स्मरणीय है। लॉर्ड कॉर्नवालिस को भारत मे आने पर असाधारण अधिकार दिये गए थे। कॉर्नवालिस के नाम के साथ यह अपयश लगा हुआ था —"वह व्यक्ति जो अमेरिका मे पराजित हो चुका था।"[१] भारत मे कॉर्नवालिस ने सात वर्ष की अवधि में केवल एक बड़ी लडाई ही नही जीती[२] वरन् ब्रिटिश भारत की शासन, राजस्व और न्याय-व्यवस्था मे बडे महत्त्वपूर्ण सुधार भी किये।

सभवत· सबसे बडा सुधार भारत की सैनिक एवं सिविल नौकरियों से सम्बन्धित था। चेसनी के शब्दो मे भारतीय सार्वजनिक सेवा विभाग, "अनेक दोषो से भरा हुआ था।"[३] मिस्टर विन्सेट स्मिथ बनारस के रेज़ीडेट का उदाहरण देते है, जिसकी वार्षिक आय ४०००० पौड थी।[४] असली वेतन बहुत कम था। इस प्रचलित कदाचार का मुख्य कारण डाइरेक्टर्स का वह व्यावसायिक दृष्टिकोण था जिसके अनुसार वे खर्चे मे अल्प वेतन दिखाना चाहते थे। उन्हे इस बात की कोई चिन्ता न थी कि परिलब्धि का परिमाण क्या होता है।[५] लॉर्ड कॉर्नवालिस ने यह सब ढर्रा बदल दिया। उन्होने उचित वेतन दिये और दूसरे प्रकार की आय वर्जित कर दी। अपने[६] ही उदाहरण से उन्होने सार्वजनिक सेवा और कर्त्तव्य का स्तर ऊँचा किया।

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने सार्वजनिक सेवा का नैतिक स्तर ही ऊँचा नही किया वरन् शासन-व्यवस्था का भी फिर से सगठन किया। फिर से ज़िलो के क्षेत्र बनाए, और ज़िले को भारतीय शासन की इकाई बनाया। हर ज़िले की माल-गुज़ारी व्यवस्था के लिए एक कलक्टर नियुक्त किया जिसको न्यायाधिकार से अलग रखा। हर ज़िले मे एक दीवानी न्यायालय था जिसका सभापति एक

---

१. Smith: Oxford History of India—Quotation from Macshman.
(लॉर्ड कॉर्नवालिस की सेना को अक्तूबर १७८१ में अमेरिका के तटवर्ती यॉर्क नगर मे हथियार डालने पडे थे) page 558.

२. सन् १७९२ की श्रीरगपट्टम सधि से मैसूर युद्ध समाप्त हुआ।

३. Chesney: Indian Polity, page 23.

४. Smith: Oxford History of India, page 557.

५. उपर्युक्त पुस्तक, एव पृष्ठ।

६. 'लॉर्ड कॉर्नवालिस ईमानदार, परिश्रमी शासक थे। उन्होंने श्री रंगपट्टम की सधि मे कोई आर्थिक साझा लेना अस्वीकार कर दिया' उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ ५७४ से अनूदित।

यूरोपियन जज होता। उसको मजिस्ट्रेट का अधिकार होता और वह पुलिस का नियंत्रण भी करता। भारतीय दरोग़ा के आधीन, जो स्वयं ज़िला जज के आधीन होता था, पुलिस-मंडल होता। फौजदारी न्याय प्रान्तीय अदालतो द्वारा कार्यान्वित होता।

यह विचित्र बात है कि जिस तर्क से लॉर्ड कॉर्नवालिस ने मालगुज़ारी और न्याय-विभाग को अलग किया उसी के अनुसार न्याय और कार्यपालिका को अलग नही किया। लॉर्ड कॉर्नवालिस ने कलक्टर को न्यायाधिकार से अलग कर दिया, किंतु ज़िला जज को न्यायाध्यक्ष और पुलिस दोनो का ही काम दे दिया।

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने दीवानी न्याय के लिए तीन प्रकार के न्यायालय बनाए। सबसे पहले तो बडे नगरो और ज़िलो मे स्थानीय न्यायालय थे। बडे नगरो में मुन्सिफ़ और अमीन के न्यायालय थे। जिनमें पचास रुपये तक के मुकदमों का निर्णय होता। इससे अधिक और २०० रुपये तक के लिए रजिस्ट्रार का न्यायालय था। हर ज़िले मे एक यूरोपीयन जज के आधीन ज़िला-न्यायालय था। यह जज पद में कलक्टर से बडा होता। उसकी सहायता के लिए एक काज़ी होता और एक पडित होता, जो क्रमशः मुसलमानी-न्याय अथवा हिंदू-न्याय मे दक्ष होता। ज़िला-न्यायालय का मौलिक अधिकार भी होता और अपील सुनने का अधिकार भी होता। यह अपील उन अभियोगों पर होती जो मुन्सिफ या रजिस्ट्रार द्वारा तय किये जा चुके थे। दूसरे प्रकार के न्यायालय केवल अपील के लिए थे। इनको प्रान्तीय न्यायालय कहा जाता। इनमे से एक कलकत्ता के निकट था, दूसरा पटना मे था, तीसरा ढाका मे और चौथा मुर्शिदाबाद मे। इनमे से प्रत्येक न्यायालय मे तीन जज होते, एक रजिस्ट्रार होता, एक या अधिक सहायक होते और भारतीय कानूनो को जानने वाले तीन व्यक्ति होते—एक काज़ी, एक मुफ़्ती, और एक पडित। इनमे छोटे न्यायालयों की अपील सुनी जाती। १००० रुपये तक के मामलो मे इनके निर्णय अन्तिम होते। १००० रुपये से अधिक के मामलो की कलकत्ता के सर्वोच्च न्यायालय मे अपील की जा सकती थी। कलकत्ता के न्यायालय को सदर दीवानी अदालत भी कहते थे। वह न्यायालय गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद् के सदस्यो से निर्मित होता। इनकी सहायता को एक मुख्य काजी, दो मुफ़्ती, दो पडित, एक रजिस्ट्रार और कुछ दूसरे कर्मचारी होते। ५०००० रु० से अधिक मूल्य के मामलो की प्रिवी कौसिल (सपरिषद् इगलैंड-नरेश) से अपील की जा सकती थी।

फ़ौजदारी न्याय चार प्रान्तीय न्यायालयों के आधीन था। ये न्यायालय एक मंडल से दूसरे मडल में परिभ्रमण करते और अपील सुनते। ये न्यायालय

वर्ष मे चार बार कलकत्ता में, वर्ष में दो बार हर ज़िले में और प्रान्तीय केन्द्र में हर महीने में एक बार न्याय-कार्य करते। हर मडल के काम के लिए प्रान्तीय न्यायालय दो हिस्सों में बँट जाता था। एक दल मे एक जज और उसके साथ मे रजिस्ट्रार और मुफ्ती होता, दूसरे दल मे अन्य दो जज, काज़ी और दूसरा सहायक होता। मडल के इन न्यायालयो के ऊपर सदर निजामत अदालत थी जिसमे गवर्नर-जनरल, उसकी परिषद् के सदस्य और सहायता के लिए एक काज़ी और दो मुफ्ती होते। इन प्रान्तीय न्यायालयो और सदर निजामत अदालत के अतिरिक्त हर जिले मे शान्ति के न्यायाधिकारी (Justices of the Peace)[1] होते। ये अपने क्षेत्राधिकार के अभियोगों मे १५ दिन की जेल या २०० रुपये तक जुर्माना कर सकते थे।

अन्त मे, लॉर्ड कॉर्नवालिस ने पुलिस-व्यवस्था को सुधारने का भी प्रयत्न किया। पुलिस के अधिकार ज़मीदारो को मिले हुए थे जिनके अपने सशस्त्र अनुयायी होते। शहरो मे कोतवाल होते, इनके भी अपने सशस्त्र अनुयायी होते। इन व्यक्तियों को पुलिस के अधिकारो से वचित कर दिया गया। हर जिले को वृत्तो मे बाँट दिया गया। इनमे से प्रत्येक वृत्त लगभग २० मील का था। हर वृत्त के लिए जिला जज एक दरोगा नियुक्त करता और इसकी सहायता को सशस्त्र आदमी होते। बडे-बडे नगरो को विभागों मे बाँटा गया। प्रत्येक विभाग एक दरोगा और उसके सशस्त्र आदमियो के आधीन होता। दरोगा और उसके सहायक जिला जज के आधीन होते, जो ज़िले का मुख्य न्यायाधिकारी होता और साथ ही जिले की पुलिस का निरीक्षण और नियत्रण करता।

शासन के क्षेत्र मे लॉर्ड कॉर्नवालिस ने जो सुधार किये, उनमें तीन बातें विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है। पहली बात तो है कि यद्यपि कर्मचारियो के वेतन काफी बढाये गए और उन्हें किसी तरह की फीस, कमीशन, भेट आदि लेने से रोक दिया, किंतु भारतीय सहायको और नौकरो को अब भी बहुत थोड़ा वेतन दिया जाता। कभी-कभी तो उन्हे कोई वेतन दिया ही नही जाता वरन् फीस दी जाती या उपदान दिया जाता। रजिस्ट्रार, अमीन, या मुफ्ती के लिए कोई वेतन नही था। उन्हें हर रुपये में एक आना फ़ीस का मिलता। दरोगा का वेतन केवल २५ रुपये मासिक था। हर डाकू या लुटेरे को पकड़ने पर १० रुपये और मिलते। चोरी किये हुए माल को फिर से प्राप्त करने पर कुछ कमीशन मिलता। परिणाम यह हुआ कि दरोगा बदमाशो की अपेक्षा भले आदमियो के लिए अधिक आतंक की

१. ज़िला जज, रजिस्ट्रार और अमीन—ये सब भी शान्ति के न्यायाधिकारी थे।

चीज बन गए।[१] दूसरी बात यह है कि यद्यपि लॉर्ड कॉर्नवालिस ने यह आदेश दिया था कि अब तक सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा जो विनियम बनाये गये हैं, उनको क्रमबद्ध करके सार्वजनिक जानकारी[२] के लिए छापकर प्रकाशित किया जाय, किन्तु भारतीय न्याय-नियमों की सहिता बनाने का कोई प्रयत्न नही किया गया। पडितो और काज़ियों की सम्मतियो मे अन्तर और विकल्प हो सकता था। "हर एक चीज़ अस्पष्ट और अनिश्चित थी और फलतः मनमानी थी।"[३] अन्त में तीसरी ध्यान देने योग्य बात यह है कि लॉर्ड कॉर्नवालिस ने शासन से भारतीयो को विधिवत् दूर रखने की नीति अपनाई।[४] मार्शमैन के अनुसार यह लार्ड कॉर्नवालिस की बहुत बड़ी गलती थी और अब इस नीति के अविवेक और अनौचित्य को सभी लोग स्वीकार करते है।[५]

लॉर्ड कॉर्नवालिस ने एक और बहुत महत्त्वपूर्ण सुधार किया जो उनके सारे सुधारो मे सबसे अधिक महत्त्व का था। यह सुधार मालगुज़ारी-व्यवस्था से सम्बन्धित था। कुछ समय पहले[६] तक इसकी बड़ी प्रशसा की जाती थी, किन्तु अब अधिकाश लेखक उसे बहुत बड़ी भूल बताते है। सन् १७९३ मे लॉर्ड कॉर्नवालिस ने बंगाल, बिहार और उडीसा की मालगुज़ारी-व्यवस्था का बन्दोबस्त किया और सन् १७९५ मे बनारस डिवीजन का बन्दोबस्त किया। यह स्थायी बन्दोबस्त की

---

१. Smith : The Oxford History of India, page 570.

२ Sapre : The Growth of the Indian Constitution and Administration, page 135

३. Mill : History of British India, Book VI, page 432

४. Chesney : Indian Polity, page 25.

५. प्रो डांडवेल लिखते है कि भारतीयो को उच्च पदो पर नियुक्त करने मे कितनी ही दुस्तर कठिनाइयाँ थी। सन् १७९१ के एक्ट के अनुसार, "५०० पौड से अधिक वेतन, परिलब्धि और आय के किसी पद के लिए उसी व्यक्ति की नियुक्ति हो सकती हो जो कम-से-कम तीन साल तक कम्पनी की सेवा मे रहा हो।" प्रो. डाडवेल आगे लिखते है कि : यदि लार्ड कॉर्नवालिस ने ५०० पौड प्रति वर्ष से अधिक आय के किसी पद पर किसी भारतीय को नियुक्त किया भी होता तो वह अवैध होता, क्योकि एक्ट के अर्थानुसार कोई भी भारतीय, कम्पनी का सेवक नही था।" Cambridge History of India, Vol. V, page 319 से अनूदित।

६. इस स्थायी बन्दोबस्त के विवेचन के लिए पढ़िये—R. C. Dutt: History of Early British Rule in India.

व्यवस्था थी। सर जान शोर ने बन्दोबस्त का विरोध किया। लेकिन लॉर्ड कॉर्नवालिस ने शोर, जो उस विषय के विशेषज्ञ थे, का मत न मानकर, जल्दी ही स्थायी बन्दोबस्त की व्यवस्था कर दी। हाल में इस व्यवस्था की बड़ी तीखी आलोचना हुई है ।

(३)

लॉर्ड कॉर्नवालिस का शासन-काल समाप्त होने के समय कम्पनी के अधिकार-पत्र को फिर से जारी करने का प्रश्न पार्लियामेंट के सामने आया। सन् १७७३ में इस अधिकार-पत्र की फिर २० वर्ष के लिए पुष्टि की गई थी। अब यह अवधि समाप्त हो रही थी। इस अवसर पर इग्लैंड के व्यापारियों और व्यवसायियो ने पूर्वीय वाणिज्य की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन खड़ा किया। किंतु बोर्ड ऑव कट्रोल और बोर्ड ऑव डाइरेक्टर्स ने अपनी योजना बड़ी चतुराई से तैयार की थी। उन्होने पूर्वीय वाणिज्य और रोपण (पौध वाली खेती) पर रिपोर्ट तैयार करने के लिए डाइरेक्टर्स की एक कमेटी नियुक्त की। यह रिपोर्ट उचित अवसर पर हाउस ऑव कॉमन्स मे प्रस्तुत की जाती। इस बीच २५ फ़रवरी सन् १७९३ को बोर्ड ऑव कट्रोल के सभापति सर हेनरी डडास ने भारतीय व्यवस्था की पूर्णतः सतोषजनक स्थिति पर पार्लियामेट-भवन में एक वक्तव्य दिया और यह जताया कि उस व्यवस्था से सबको लाभ होगा। इस प्रकार अधिकार-पत्र को फिर से जारी कराने के लिए चतुराई से मार्ग तैयार किया गया। पिट उस समय अपनी शक्ति के शिखर पर थे और राष्ट्र का स्वार्थ फ्रास के साथ युद्ध की समस्या मे केन्द्रित था। भवन के सामने अधिकार-पत्र का प्रश्न आने से कुछ पहले यह युद्ध आरम्भ हो चुका था। ऐसी परिस्थिति मे डंडास और पिट को इस अधिकार-पत्र को फिर से जारी कराने मे कोई कठिनाई नही हो सकती थी। परिणामस्वरूप १७९३ का एक्ट बना और कुछ साधारण से सशोधनों के बाद बीस वर्ष के लिए कम्पनी के एकाधिपत्य को फिर स्वीकृति दे दी गई।

(४)

१७९३ का एक्ट बहुत बडा था। उसने बहुत से पहले नियमों को रद्द कर दिया और कानून का एकीकरण किया, किन्तु उसने बहुत से परिवर्तन और संशोधन नही किये ।

पहली बात तो यह थी कि पूर्व में कम्पनी के व्यावसायिक एकाधिपत्य को बीस वर्ष की अवधि और मिल गई। अगरेज़ व्यापारियो और निर्माताओं के विरोध को शान्त करने के लिए ३००० टन के परिमाण तक व्यक्तिगत व्यापार

के लिए अनुमति दी गई। किंतु इस अधिकार पर इतने प्रतिबन्ध[1] थे कि व्यापारियों ने इस नये खुले हुए लाभहीन मार्ग[2] को उपयोग मे न लाने का ही निश्चय किया।

इस एक्ट ने दूसरी बात यह की कि बोर्ड ऑव कंट्रोल के सदस्यों और सहायकों को भारतीय राजस्व से वेतन देने की व्यवस्था की। इस प्रकार वह अमगल ढर्रा आरम्भ हुआ, जो अपने अवाछित परिणामों[3] के साथ सन् १९१९ के एक्ट लागू होने तक बना रहा। इस एक्ट के अनुसार बोर्ड के दो छोटे सदस्यो के लिए प्रिवी कौसिल का मेम्बर होना अनिवार्य नही था।

तीसरी बात यह हुई कि एक्ट ने कितनी ही बडी धाराओ मे, कम्पनी के राजस्व का नियंत्रण किया। १२,३९,२४१ पौण्ड की वार्षिक बचत का अनुमान किया गया। इसमे से ५ लाख पौण्ड कम्पनी के ऋण के भुगतान मे जाते और ५ लाख पौण्ड लाभाश को ८ प्रतिशत से बढाकर १० प्रतिशत करने में खपते। कम्पनी को २० लाख पौण्ड के ऋण का, २०० प्रतिशत के भाव के हिस्सो से १० लाख पौण्ड की पूंजी (Stock) के आधार पर प्रबन्ध करना था। इस नई पूंजी के लाभाश के लिए १ लाख पौण्ड अलग कर दिए गए। किन्तु अनुमानित बचत वस्तुत हुई नही और ब्रिटेन को ५ लाख पौण्ड का अपना वार्षिक भाग प्राप्त नही हुआ। साझेदारो को, लाभाश बढकर ८ से १० प्रतिशत हो जाने के कारण, अवश्य लाभ हुआ।

एक्ट ने चौथी बात यह की कि भारत की शासन-व्यवस्था में कुछ थोडे से संशोधन किये। हर प्रेसीडेन्सी की परिषद् की कार्य-पद्धति का विनियमन किया गया और गवर्नर जनरल और गवर्नरो को परिषद् के परामर्श की उपेक्षा कर सकने का अधिकार दिया गया। अन्य प्रेसिडेन्सियो के शासन पर नियत्रण करने

१. व्यक्तिगत व्यापार के लिए जो अनुमति मिली "उसमे सैन्य-सामग्री के आयात पर प्रतिबन्ध था। यही प्रतिबन्ध कपडे पर था। इसके अतिरिक्त सामान को कम्पनी के गोदामो में रखने और कम्पनी के भाव पर बेचने की भी शर्त थी" Mill : History of British India, Book VI, page 8 से अनूदित।

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १४.

३. बोर्ड ऑव कंट्रोल के सदस्यो को भारतीय राजस्व से वेतन देने का मुख्य परिणाम यह हुआ कि पार्लियामेंट के नियत्रण के अवसर बहुत घट गए, क्योकि हर विभाग के व्यय के लिए रकम स्वीकार करने के समय पर ही पार्लियामेंट में उस विभाग के काम की जाँच और आलोचना होती है।

का गवर्नर जनरल को जो अधिकार था उसे पुष्ट किया गया। साथ ही यह भी कहा गया कि जब स्वयं गवर्नर जनरल किसी दूसरी प्रेसीडेन्सी में उपस्थित हो तो वहाँ का गवर्नर और सारा शासन उसके आधीन होगा। गवर्नर जनरल, गवर्नरों, सेनापति और कुछ अन्य बडे अधिकारियों को अपने पद की अवधि मे भारत से बाहर जाने की छुट्टी नही मिल सकती थी। यह नियम सन् १९२५ मे पार्लियामेण्ट के एक विशेष एक्ट द्वारा बदला गया। गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया कि किसी दूसरी प्रेसीडेन्सी मे जाने के समय, अपनी अनुपस्थिति की अवधि के लिए, वह परिषद् के किसी सदस्य को उप-सभापति नियुक्त कर सकता था जो उसके स्थान पर काम करता। अब सेनापति[1] डाइरेक्टर्स द्वारा विशेष रूप से परिषद् का सदस्य नियुक्त किये जाने पर ही उसका सदस्य हो सकता था अन्यथा नही।

एक्ट ने पाँचवी बात यह की कि कलकत्ते के सर्वोच्च न्यायालय का जल-सेना पर जो क्षेत्राधिकार था, उसे सुदूर समुद्रो तक बढा दिया। साथ ही एक्ट के अन्तर्गत, सिविल सर्विस के कर्मचारियो, शान्ति के न्यायाधिकारियो और प्रेसिडेन्सी के नगरों के लिए संमार्जक नियुक्त करने, स्वास्थ्य और स्वच्छता के लिए कर लगाने का अधिकार दिया। बिना अनुज्ञप्ति (License) के मादक द्रव्य के विक्रय पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

इसके अतिरिक्त एक्ट की अन्य धाराएँ एकीकरण के उद्देश्य को पूरा करने वाली थी।

( ५ )

सन् १७९३ के एक्ट ने इस बात को फिर से दोहराया कि "भारत में राज्य-विस्तार और विजय की योजनाओ को कार्यान्वित करना, इस (ब्रिटिश) राष्ट्र की नीति, इच्छा और उसके मान के प्रतिकूल है।" 'कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स' को भी अपने[2] कारणों से विजय और विस्तार की यह नीति पसन्द नही थी। किन्तु परिस्थितियों के प्रवाह और भारत में उपस्थित अधिकारियो की आकांक्षाओ के कारण व्यवहार में ठीक उलटी नीति अपनाई गई। लार्ड वेल्ज़ली ने गवर्नर जनरल की हैसियत से अपने ७ वर्ष के कार्य-काल में कम्पनी के प्रदेशो का बहुत बड़ा विस्तार किया। पंजाब, सिध और नेपाल को छोड़कर लगभग सारा भारत, ब्रिटिश प्रभुता के क्षेत्र मे आ गया।

१. केवल लॉर्ड कॉर्नवालिस को गवर्नर जनरल और सेनापति दोनों का पद एक साथ मिला था।

२. डाइरेक्टर्स विजय और प्रादेशिक विस्तार की नीति से इस कारण असहमत थे कि उसमें बड़ा भारी खर्च होता था और कम्पनी का लाभ कम होता था।

लार्ड वेल्ज़ली की इन लडाइयों से कम्पनी का ऋण बहुत बढ गया। ५ वर्ष में वह दूना हो गया और १८०५ में उसका परिमाण २१० लाख पौण्ड हो गया। इसका वार्षिक ब्याज २७,९१,००० पौण्ड था।[1] कम्पनी के व्यापार मे भी गिराव आया। सन् १८०८ में अपने कोष की स्थिति के कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स बहुत व्यग्र हुए और स्थिति सँभालने के लिए पार्लियामेण्ट से अपील की। कम्पनी का सरकार पर १२ लाख पौण्ड उधार था। अपने प्रार्थना-पत्र में कम्पनी न इस परिमाण को लौटाने के लिए कहा और साथ ही अपने भुगतान करने के लिए इतने ही परिमाण का ऋण माँगा। धन के अनुदान के सम्बन्ध में भारतीय मामलों की वस्तुस्थिति की जाँच करने के लिए ११ मार्च १८०८ को एक कमेटी नियुक्त की गई।[2] १३ जून को रिपोर्ट प्राप्त हुई और कम्पनी को पुराने हिसाब में १५ लाख पौण्ड की रकम दिया जाना निश्चित हुआ। सन् १८११ में कम्पनी को १५ लाख पौण्ड का ऋण स्वीकार हुआ और सन् १८१२ में उसे प्रतिज्ञा-पत्रो के आधार पर २० लाख पौण्ड का ऋण उगाहने की अनुमति मिली। जून १८१२ में पार्लियामेण्ट ने कम्पनी को २५ लाख पौण्ड का एक ऋण और दिया।[3]

सन् १८०८ की कमेटी कम्पनी की वस्तुस्थिति की जाँच का काम पाँच वर्ष तक करती रही और उसने पाँच रिपोर्टें तैयार की। इनमे से पाँचवी रिपोर्ट सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थी। जुलाई १८१२ में इसे प्रकाशित किया गया और इल्बर्ट के अनुसार, "भारतीय भूमि-व्यवस्था पर उसे अब भी प्रामाणिक माना जाता है और तत्कालीन पुलिस और न्याय व्यवस्था पर भी उसका काम सबसे अधिक प्रामाणिक है।"[4] इस प्रकार पार्लियामेण्ट के सामने अधिकार-पत्र को फिर से जारी करने का प्रश्न आने से पहले भारतीय व्यवस्था की पूरी-पूरी जाँच की जा चुकी थी।

सन् १८१३ में अधिकार-पत्र को फिर से जारी करने के समय मुख्य विवादास्पद प्रश्न यह था कि कम्पनी के व्यावसायिक विशेषाधिकारो को जारी रहने दिया जाय या नहीं। उस समय कम्पनी को राजनीतिक अधिकारों से वंचित करने का कोई प्रश्न नहीं था।

---

१. Mill and Wilson : History of British India, vol. VII, pages 485-486.

२. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ १६३.

३. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ४५४-४५५.

४. Ilbert : Historical Survey, page 73

उस समय तक कम्पनी को भारत और चीन के साथ व्यापार के लिए एकाधिपत्य प्राप्त था। जहाँ तक चीन के साथ व्यापार का सम्बन्ध था मंत्रि-मडल उसे अब भी कम्पनी के हाथो मे रखना चाहता था। इस प्रस्ताव के लिए महत्वपूर्ण कारण थे। चीन के साथ व्यापार बडी विचित्र परिस्थितियो मे होता था। चीनी सरकार विदेशियो के सम्पर्क के प्रति अत्यन्त ईर्ष्यालु थी। व्यापार केवल एक बन्दरगाह तक ही नही वरन् एक (हाँऊ नामक) वर्ग तक ही सीमित था। इस प्रकार अन्य चीन वासियो को लिए विदेशियो से सम्पर्क निषिद्ध था। अतः वहाँ प्रतिद्वन्द्विता[1] के लिए कोई क्षेत्र ही नही था। दूसरी ओर इस बात का भय था कि नए अंग्रेज़ व्यापारियो की अनभिज्ञता या असावधानी के कारण कही चीनी अधिकारी प्रतिकूल न हो जायँ और फलतः उनके साथ व्यापार बिलकुल ही बन्द न हो जाय। इस प्रकार चाय का आना बन्द हो जाता। अंग्रेज़ जनता चाय की अत्यन्त अभ्यस्त हो गई थी और उसके न आने से जनता मे बड़ा तीखापन अनुभव किया जाता। साथ ही सरकार को चाय पर[2] सीमा-शुल्क से ४० लाख पौण्ड की वार्षिक आय होती थी। इस प्रकार चीन के साथ व्यापार बन्द होने से राजस्व को बडी भारी क्षति पहुँचती। इन सब बातो को सोचकर सरकार ने आरम्भ से ही कम्पनी के इस एकाधिपत्य को बनाए रखने का निश्चय कर लिया था।

भारत के साथ व्यापार की स्थिति दूसरी थी। कम्पनी के विरोधियो को भारतीय व्यापार के एकाधिपत्य के प्रति ही विशेष आपत्ति थी। सारे ब्रिटेन मे व्यापारियो, निर्माताओ और जहाज़ो के मालिको ने आन्दोलन खडा कर दिया था। लन्दन, ब्रिस्टल, लिवरपूल, ग्लासगो, मैंचेस्टर, शेफ़ील्ड, नौटिघम, ब्लैकबर्न आदि अनेक नगरो से पार्लियामेण्ट के पास प्रार्थना-पत्र भेजे गए। उनमे यह निवेदन किया गया कि कम्पनी को भारतीय व्यापार के एकाधिपत्य की फिर अनुमति न दी जाय और उस व्यापार के लिए सारी ब्रिटिश प्रजा को समान रूप से स्वतन्त्रता दी जाय। प्रार्थियो ने इस बात पर ज़ोर दिया कि हर ब्रिटिश नागरिक को बिना रोक-टोक, वाणिज्य और व्यापार करने का समान अधिकार है। उन्होने एडम स्मिथ के तर्क उद्धृत किये और एकाधिपत्य के विरोध तथा स्वतन्त्र व्यापार के पक्ष की विवेचना की। इस एकाधिपत्य को तोड़ने

१. Mill and Wilson : History of British India, vol. VII, page 512.

२. Sir G. Stamson : Considerations on the China Trade :—Quoted by Mill and Wilson : History of British India. Vol. VII pages 511 and 512.

में ब्रिटेन के लिए चार लाभ बताए गए :—(१) ब्रिटिश व्यवसाय और उद्योग का विस्तार; (२) भारतीय व्यापार के यूरोप और अमेरिका के अन्य देशों की ओर विकर्षित होने पर प्रतिरोध; (३) व्यापारिक मूल्य में—विशेषकर यातायात और पण्यशाला के मूल्य मे कमी; (४) ब्रिटेन मे भारतीय कच्चे माल का सस्ता आयात।[१] कम्पनी ने उत्तर में इन लाभों को काल्पनिक बताया। भारतीय व्यापार बिलकुल लाभदायी नही था और भारतीयो के स्वभाव और मापदण्ड के कारण भविष्य मे कोई विस्तार सभव नही था। डाइरेक्टर्स ने बहुत सी व्यवहारिक कठिनाइयो की ओर संकेत किया और कहा कि भारत के साथ स्वतन्त्र व्यापार से कम्पनी नष्ट हो जायगी और पूर्व में ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त हो जायगा। उनके मत का वारन हेस्टिंग्स, टेनमाउथ, माल्कम और मुनरो-जैसे बडे पदाधिकारियों ने समर्थन किया। किन्तु जैसा कि मिल के ब्रिटिश भारतीय इतिहास में विल्सन ने सकेत किया है, भारतीय व्यापार के लिए स्वतन्त्रता उपर्युक्त कारणों से नही दी गई वरन् यह निर्णय तो नेपोलियन की आज्ञप्तियों से ब्रिटिश व्यवसाय और उद्योग की जो दुर्गति हो रही थी, उससे बचाने की आशा से किया गया।

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट में जो विवाद हुआ, उसमें तीन महत्त्वपूर्ण प्रश्न उठाए गए :—(१) भारत मे ब्रिटिश उपनिवेश बनाने की वाछनोयता अथवा अवांछनीयता; (२) कम्पनी के व्यापारिक एकाधिपत्य को समाप्त करने का, भारतीय जनता और उद्योगों पर प्रभाव; (३) भारत मे (ईसाई) धर्म-प्रचार की आवश्यकता और उपयोगिता।

कम्पनी के कर्मचारियो ने भारत मे यूरोपियन बस्ती बसाने के कारण प्रत्याशित भयकर परिणामो का चित्र खीचा। वारन हेस्टिंग्स ने कहा कि ये (यूरोपियन) वहाँ के निवासियों का अपमान करेगे, उन्हे लूटेगे और उन पर अत्याचार करेंगे और इग्लैण्ड के कोई भी कानून उनको व्यभिचार से न रोक सकेगे।[२] जैसा कि इल्बर्ट ने कहा है, कम्पनी के समर्थकों का भय निराधार नही था किन्तु उसको अत्यन्त उग्र भाषा मे अतिरजित करके प्रकट किया गया था। बाद में एक समझौता हुआ जिसके अनुसार एक कठोर अनुज्ञप्ति-व्यवस्था के अनुसार यूरोपियनों को बसाने के लिए भारत जाने की अनुमति मिली। उन्हे

१. Mill and Wilson : History of British India, vol VII, pages 424 and 485.

२. Ilbert : Historical Introduction to the Government of India, page 75.

क्षेत्राधिकार से रोक दिया गया। साथ ही उन्हें स्थानीय शासन के यूरोपियनें और भारतवासियो के सम्पर्क से सम्बन्ध रखने वाले नियमो का पालन करने के कहा गया।[1]

दूसरी बात जो पार्लियामेण्ट मे कही गई थी वह मुक्त व्यापार से भारतीयें को होने वाले लाभ के सम्बन्ध मे थी। भारत के निर्यात की मुख्य वस्तुओ पर इग्लैण्ड के बाज़ार मे रोक लगी हुई थी या उन पर बहुत बडा कर लगा हुआ था। जैसा कि डॉ० शाह ने अपनी पुस्तक (History of Indian Tariff, page 105) मे कहा है, तथ्य यह था कि "भारत के साथ मुक्त व्यापार का अर्थ या उद्देश्य, इग्लैण्ड और भारत के बीच मुक्त व्यापार नही था। वह तो ईस्ट इंडिया कम्पनी के एकाधिपत्य के विरोध मे एक स्वार्थलिप्त दुहाई थी।"

अन्त में पार्लियामेण्ट-भवन मे और बाहर भी, धर्म-प्रचार के नेताओ ने प्रबल आन्दोलन किया। ये लोग भारत के मूर्ति-पूजकों मे ईसाई धर्म के प्रचार के लिए हर प्रकार की सुविधाएँ चाहते थे। विल्बरफोर्स तथा अन्य व्यक्तियों ने भारतवासियों का भीषण चित्र खीचा। यद्यपि मि० मार्श और लार्ड टेनमाउथ ने भारतवासियो की धार्मिक आस्थाओ मे हस्तक्षेप न करने की पुरानी नीति का ओजपूर्ण भाषा मे प्रतिपादन किया, किन्तु सरकार को झुकना पडा। यह कहा गया कि इस देश (इंग्लैण्ड) का यह कर्त्तव्य है कि वह भारतवासियो के हित और सुख को प्रोत्साहन दे और उनके धार्मिक एवं नैतिक विकास के लिए उपयोगी ज्ञान का प्रसार करे। जो व्यक्ति इस उद्देश्य से भारत जाना चाहे उन्हे पर्याप्त सुविधाए प्रदान की जायँगी। इस प्रकार इल्बर्ट के शब्दो मे, "धर्म-प्रचारक के पीछे रोपक (पौधे लगाने वाला) दिखाई पड़ता है; दोनो के ही प्रति कम्पनी के कर्मचारी ईर्ष्यालु थे।"[2]

सन् १८१३ के एक्ट ने कम्पनी के अधिकार-पत्र को फिर जारी कर दिया। एक्ट ने अन्तिम प्रभुता तो राज-सत्ता मे निहित की किन्तु भारतीय प्रदेशों और उनके राजस्व को कम्पनी के ही हाथों में रहने दिया। साथ ही चीन के साथ व्यापार और चाय के व्यापार मे कम्पनी के एकाधिपत्य की अवधि २० वर्ष के लिए और बढा दी।

इस एक्ट ने दूसरी बात यह की कि सब ब्रिटिश व्यापारियों को, एक्ट में उल्लेख किये हुए कुछ प्रतिबन्धों के अन्तर्गत, साधारण भारतीय व्यापार के लिए

१. See the 13th resolution—Appendix X. Mill and Wilson, History of British India, vol. VII, page 608.

२. Ilbert: Historical Survey, page 72 से अनूदित।

स्वतन्त्रता दे दी। एक्ट ने डाइरेक्टर्स को और उनके मना करने पर बोर्ड ऑव कण्ट्रोल को इस बात का अधिकार दिया कि जागृति, सुधार अथवा किसी दूसरे वैध उद्देश्य से भारत जाने वाले व्यक्तियो को अनुज्ञप्ति प्रदान की जाय। बिना अनुज्ञप्ति लिये हुए भारत जाने वाले व्यक्तियो को दण्ड दिया जा सकता था।

एक्ट ने तीसरी बात यह की कि उसने भारतीय राजस्व का किस प्रकार उपयोग हो, इसका विनियमन किया। सबसे पहला दायित्व सेना को बनाए रखने का था; दूसरा दायित्व ब्याज देने का था। राजस्व के व्यय का तीसरा अधिकरण असैनिक एवं व्यावसायिक कार्यालयों को बनाए रखने का था। कम्पनी के ऋण को घटाने की भी व्यवस्था की गई। कम्पनी और राष्ट्र मे बचत के बटवारे का अनुपात क्रमश: एक और पॉच निश्चित किया गया। कम्पनी को, व्यावसायिक और प्रादेशिक लेखे, पृथक् और स्पष्ट रखने के लिए कहा गया।

एक्ट ने चौथी बात यह की कि कम्पनी की आय से वेतन पाने वाली सेना की सख्या २९००० निश्चित कर दी। एक्ट ने कम्पनी को इस सेना के लिए नियम, विनियम आदि बनाने, उसके लिए युद्ध-सामग्री तैयार करने और सेना-न्यायालय की व्यवस्था करने का अधिकार दिया।

एक्ट ने पाँचवी बात यह की कि बोर्ड ऑव कण्ट्रोल के अधीक्षण और निर्देशन के अधिकारो को विस्तृत और सुनिश्चित कर दिया। साथ ही भारत की स्थानीय सरकारो को सर्वोच्च न्यायालय के क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत, कर लगाने का प्राधिकार दिया। ये सरकारे कर न देने वालो को दण्ड दे सकती थी।

एक्ट की छठी बात कम्पनी के सैनिक एवं असैनिक कर्मचारियो के शिक्षण की व्यवस्था थी। हेलबरी कालेज और एडिस्कोम्ब सैन्य-शिक्षण-केन्द्र को चलाने की व्यवस्था की गई और उन पर बोर्ड ऑव कण्ट्रोल का प्राधिकार कर दिया गया। कलकत्ता, मद्रास और भारत मे अन्य स्थानो के कालेजो को भी बोर्ड के विनियमन मे कर दिया। भारत में यूरोपियनो के धार्मिक हित के लिए एक विशाल और तीन अन्य बड़े पादरियो की नियुक्ति की गई। भारतीय विद्वानो को प्रोत्साहन देने और साहित्यिक सुधार और पुनरुत्थान के लिए और साथ ही ब्रिटिश भारतीय प्रदेशो मे विज्ञान की शिक्षा के लिए प्रति वर्ष एक लाख रुपया व्यय करने की भी व्यवस्था की गई।

एक्ट की सातवी बात अग्रेज़ो और भारतीयों के बीच जो अभियोग होते, उनके लिए न्याय की व्यवस्था थी।[1] चोरी, जालसाज़ी और जाली सिक्के बनाने के लिए विशेष दण्ड का नियम बनाया गया।

१. विस्तृत वर्णन के लिए देखिये—Ilbert's Historical Introduction, pages 79-80.

( ६ )

लार्ड वेल्ज़ली के तीन उत्तराधिकारियों को विवश होकर, किसी भी मूल्य पर, हस्तक्षेप न करने की नीति को अपनाना पडा। सर जार्ज बारलो ने मराठो को मध्य भारत के राजपूतो के साथ अपनी मनमानी करने को छोड दिया। लार्ड मिण्टो ने एक बीच का दर्रा अपनाया और इग्लैण्ड के अधिकारियो की नीति को बदलने का प्रयत्न किया। उसने भारतीय महासागर मे फ्रेंच द्वीप और हालैण्ड वालो के अधिकार से जावा द्वीप जीता। उसने सर चार्ल्स मैटकाफ़ की कूटनीति द्वारा सन् १८०९ मे महाराजा रणजीतसिह के साथ सधि करने में सफलता प्राप्त की। इस सन्धि के अनुसार ब्रिटिश सीमा जमुना से आगे बढ़कर सतलुज तक पहुँच गई।

जब अक्तूबर १८१३ मे लार्ड हेस्टिग्स भारत मे आया तो उसके सामने सात ऐसे झगडे थे जिनके निर्णय के लिए सभवत: युद्ध की आवश्यकता हो सकती थी। लार्ड वेल्जली ने स्थिति को ऐसा कर दिया था कि भारत मे अग्रेज़ो के लिए चुपचाप खडे रहना असभव हो गया था। लार्ड हेस्टिग्स ने वेल्ज़ली के काम को पूरा करने के लिए आगे बढने का निश्चय किया।

लार्ड हेस्टिग्स ने नेपाल को हराया और सन् १८१६ की सगौली की सधि से ब्रिटिश प्रदेश मे कुमायूँ का क्षेत्र—जिसमे नैनीताल, अल्मोडा और गढवाल जिले थे—और देहरादून का जिला (जिसमे मसूरी और वर्तमान शिमला जिले का कुछ भाग भी था) मिलाया। उसके बाद पिडारियो, पठानों और मराठा सरदारो से निपटने का प्रयत्न किया। हेस्टिग्स ने मराठो और पिडारियो से पठान सरदार अमीर खाँ को अलग कर लिया और उसे टोक का नवाब बना दिया और बाद मे एक बहुत बडी फौज की सहायता से पिडारियो को चारो ओर से घेर लिया। कुछ ही महीनो मे पिडारी नेता-विहीन होकर पहाडी खोहो में भाग गए। हेस्टिग्स ने राजपूताने की बहुत सी बडी रियासतो से सधियाँ की और मराठा शक्ति को छिन्न-भिन्न करने का प्रयत्न किया। इस समय मराठे—पेशवा, भोसले (अप्पा साहेब) और होलकर, ये सब—सयुक्त थे। कुछ ही समय मे हेस्टिग्स सबको हराने में सफल हुआ। पेशवा की पेन्शन बाँध दी गई। अप्पा साहेब को गद्दी से उतार दिया गया और उसके राज्य-प्रदेश को छीन लिया गया। इन्दौर राज्य को घटाकर पहले का आधा कर दिया गया। सिधिया राज्य अलग कर दिया गया और वह किसी का पक्ष न ले सकने के लिए विवश था। इस प्रकार लार्ड हेस्टिग्स ने भारत मे पूरी तरह ब्रिटिश प्रभुता स्थापित करने में सफलता प्राप्त की।[1]

१. सिंगापुर का बन्दरगाह भी लार्ड हेस्टिग्स के राज्य-काल में जीता गया। यह

( ७ )

लॉर्ड हेस्टिंग्स का शासन-काल शासन में कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के लिए और साथ ही देशवासियों के प्रति अधिक उदार और सहानुभूतिपूर्ण नीति अपनाने के लिए भी प्रसिद्ध है। उसने लॉर्ड कॉर्नवालिस की नीति को पलटा, और न्यायाध्यक्ष तथा मालगुज़ारी उगाहने और शासन के काम को एक में मिला दिया। कलक्टर अपने जिले का मुख्य न्यायाध्यक्ष और साथ ही जिला-पुलिस का भी अध्यक्ष बना दिया गया। दरोगा का पद तोड दिया गया। उसका काम गाँव के मुखियाओ को सोप दिया गया। गाँव का लेखा रखने वाले और तलियारी, अथवा गाँव के चौकीदार और साथ ही तहसीलदार, जमीदार, जमीन और कोतवाल सब उनकी सहायता करने।[1] लॉर्ड हेस्टिंग्स ने न्याय के पदो पर भारतीयो की नियुक्ति को प्रोत्साहन दिया और उन्हे अधिक अधिकार दिये। शिक्षा के क्षेत्र मे भारतीयो की प्रगति की ओर भी उसने काफी ध्यान दिया। उसी के राज्य-काल मे कलकत्ता का हिन्दू-कॉलेज खुला ताकि हिन्दू लडके यूरोप और एशिया की भाषाएँ सीख सके और विज्ञान की शिक्षा पा सके।[2] मार्शमैन ने श्रीरामपुर मे ईसाई-धर्म-प्रचार के लिए एक बडा केन्द्र खोला। उसके लड़के जे० सी० मार्शमैन (इतिहासकार) ने वहाँ एक कॉलेज खोला, जो सन् १८२७ मे एक विश्वविद्यालय बन गया।[3] सन् १८१८ मे श्रीरामपुर से भारतीय भाषा में सबसे पहला समाचार-पत्र 'ससार दर्पण' प्रकाशित हुआ। यह एक साप्ताहिक पत्र था; इसका उद्देश्य ईसाई धर्म का प्रचार था।

गवर्नर-जनरल हेस्टिंग्स के ही समय में समाचार-सपादन के नियत्रण के प्रश्न ने बडा महत्त्वपूर्ण रूप धारण किया। इस विषय पर सन् १८२२ मे मद्रास के गवर्नर सर टॉमस मुनरो ने एक विस्तृत लेख लिखा। इस लेख ने उस समय के ही विधान पर प्रभाव नही डाला वरन् बाद मे भी ब्रिटिश नीति को प्रभावित किया।

---

बन्दरगाह बडा था, उसकी स्थिति महत्त्वपूर्ण थी और वहाँ रोम की महत्त्वपूर्ण खाने थी।

१. Mill and Wilson : History of British India, vol. VIII, page 533.

२. Havell : A Short History of India, page 238.

३. डेन्मार्क के राजा फ्रेडरिक षष्ठम ने इस कॉलेज को डिप्लोमा प्रदान करने का अधिकार दिया और इस प्रकार उसे विश्वविद्यालय में परिणत कर दिया। भारत के लिए यह सबसे पहला विश्वविद्यालय था।

समाचार-सपादन के नियंत्रण के लिए पहले प्रस्ताव, आग्ल-भारतीय संपादन के प्रति निर्देश करते थे। उस समय तक भारतीय समाचार-संपादन अस्तित्व में भी नही था। यह आग्ल-भारतीय सपादन, देश के गैर-सरकारी अंग्रेजो के हाथो में था और सरकारी नीति का तीव्र आलोचक था। वॉरन हेस्टिग्स ने आरम्भ से ही पहले अग्रेजी समाचार-पत्र ( बगाल गजट ) के सम्पादक को परेशान किया।[1] उस पर एक के बाद दूसरा, फिर तीसरा अभियोग चलाया गया: अन्त मे वह पत्र प्रकाशित होना बन्द हो गया। सन् १७९९ मे समाचार-पत्रो के समुचित नियत्रण के लिए लॉर्ड वेल्जली की सरकार ने बड़े कठोर विनियम बनाए। प्रत्येक समाचार-पत्र सरकारी स्वीकृति के बाद ही प्रकाशित हो सकता था। विनियमो का उल्लंघन करने वालों को तुरन्त ही यूरोप वापस भेज देने का दण्ड था।[2]

लॉर्ड हेस्टिग्स, समाचार-पत्रो की स्वतत्र आलोचना के मूल्य में विश्वास करता था। उसने संपादको को अपने वैध काम करने के लिए प्रोत्साहन दिया। यद्यपि सरकारी निरीक्षण बना रहा, किन्तु पहले ही वर्ष मे उसने विनियमों मे थोडा-सा सशोधन कर दिया। जब सरकारी स्वीकृति देने वाले अधिकारी के विरुद्ध उसके पास शिकायते पहुँची तो उसने इस पद को तोड दिया। जैसा कि कुछ लेखको का मत है इसका अर्थ यह नही था कि आगे के लिए सपादन-कार्य को स्वतन्त्रता मिल गई। उसके स्थान पर स्थिति को सुनिश्चित शब्दो में स्पष्ट करने के लिए नये विनियम बनाये गए। सन् १८१८ के विनियमो ने सपादको को यह आदेश दिया कि वे पत्र मे इग्लैण्ड के भारतीय अधिकारियो की कार्यवाहियो की निदा प्रकाशित न करे: स्थानीय शासन के राजनीतिक कामो की विवेचना न करे; परिषद् के सदस्यो, न्यायाधीशो अथवा कलकत्ता के बिशप के सार्वजनिक व्यवहार पर वक्रोक्ति न करे, ऐसी कोई विवेचना न करे जिससे देशवासियों को यह भय अथवा सन्देह हो कि उनके धर्म मे हस्तक्षेप किया जा रहा है; दूसरे समाचार-पत्रो का कोई ऐसा उद्धरण न प्रकाशित करे जो उपर्युक्त शीर्षको से सम्बन्धित हो अथवा जिससे भारत मे ब्रिटिश शक्ति की प्रतिष्ठा पर आघात होता हो; और किसी के व्यक्तिगत कलक पर ऐसी कोई चर्चा या ऐसा कोई आक्षेप न करें, जिससे सामाजिक कलह को उत्तेजना मिले।[3]

---

१. यह एक साप्ताहिक पत्र था, जिसको १७८० मे मिस्टर जे. ए. हिके ने निकाला।

२. Ghosh: Press and Press Laws in India, pages 3-4.

३. Mill and Wilson : History of British India, vol. VIII, page 582.

सरकारी जाँच का नियम टूट जाने पर नये समाचार-पत्र अस्तित्व में आए। सन् १८१८ मे मिस्टर जे. एस. बकिघम ने 'कलकत्ता जर्नल' प्रकाशित किया। कुछ ही समय मे उस पर सरकारी कोप हुआ। सन् १८२३ में सपादक को नोटिस पाने के बाद दो महीने के ही अन्दर भारत छोड़कर चले जाने की आज्ञा दी गई। समाचार-पत्रो के सपादन के विषय पर सरकार ने फिर विचार किया और सर टॉमस मुनरो के लेख पर विशेष रूप से ध्यान दिया। परिणाम यह हुआ कि सन् १८२३ मे बगाल के लिए और सन् १८२७ मे बम्बई के लिए पहले से भी अधिक कठोर विनियम बनाये गए। सन् १८२३ के विनियमो का परिचय देने से पहले, सर टॉमस मुनरो के मत का सक्षिप्त वर्णन सगत होगा। सर टॉमस की दृष्टि में यूरोपीय समाचार-पत्रों के सम्पादन की समस्या गम्भीर नही थी। सर मुनरो ने लिखा : "जहाँ तक केवल यूरोपियनो का प्रश्न है, चाहे वे सरकारी (कम्पनी के) नौकर हो या न हो, उनके सम्पादन-कार्य की स्वतन्त्रता अथवा उस पर प्रतिबन्ध से कोई विशेष हित या अहित नही हो सकता। इस प्रश्न पर कोई विशेष ध्यान देने की आवश्यकता नही है।[1] फिर भी मुनरो ने प्रकाशन से पहले उनके समाचारो की जाँच करने और अपराधी सम्पादको के भारत से बाहर भेज देने के अधिकार को बनाये रखने के लिए कहा। सर मुनरो की विशेष चिन्ता तो भारतीय समाचार-पत्रो के सपादन से सम्बन्धित थी। सर मुनरो ने लिखा :—"यद्यपि यह सकट अभी दूर है किन्तु समाचार-पत्रो को स्वतन्त्रता दे देने पर यह अनिवार्य रूप से हमारे सामने आ जायगा।"[2] उसका भारतीय सेना पर बुरा प्रभाव पड़ेगा और ब्रिटिश शक्ति को उखाड फेकने के लिए प्रेरक होगा। "उससे जनता मे स्वतन्त्रता की भावना फैलेगी और वे विदेशियो को भगाकर राष्ट्रीय सरकार की स्थापना करने के लिए प्रेरित होगे।"[3] सर टॉमस ने यह नियम बताया कि, "स्वतन्त्र समाचार-पत्र और विदेशी शासन—ये दोनो बाते एक दूसरे की बिलकुल विरोधी है और बहुत समय तक एक साथ टिक नही सकती।"[4]

---

१. "The History of Press Lagislation in India" : Modern Review August, 1913

२. उपर्युक्त

३. उपर्युक्त निबन्ध।

४. उपर्युक्त निबन्ध।

सर टॉमस के मत को मान्यता दी गई और नये विनियम १५ मार्च सन् १८२३ को निबन्धन के लिए सर्वोच्च न्यायालय के सामने आए। इन विनियमों के अनुसार सरकार से अनुज्ञप्ति लिये बिना न कोई प्रेस स्थापित हो सकता था, न कोई समाचार-पत्र निकाला जा सकता था और न कोई पुस्तक प्रकाशित की जा सकती थी। इस अनुज्ञप्ति-व्यवस्था के अनुसार छपे हुए सारे समाचार-पत्र और पुस्तके निरीक्षण के लिए सरकार के सामने रखी जाती। सरकारी गजट मे केवल एक सूचना निकालकर सरकार इन पत्रों और पुस्तकों का चलन रोक सकती थी। राजा राममोहन राय और श्री द्वारकानाथ टैगोर-जैसे विख्यात व्यक्तियो ने इन विनियमो के दोष बताते हुए उनको रद्द करने के लिए एक प्रार्थना-पत्र प्रेषित किया। किन्तु विनियमों का निबन्धन कर दिया गया और वे ५ अप्रैल १८२३ से वैध हो गए। सन् १८३५ में सर चार्ल्स मेटकाफ द्वारा फिर दोहराये जाने के समय तक वे बराबर लागू रहे। यद्यपि सर चार्ल्स मेटकाफ का कार्य-काल लॉर्ड विलियम बेंटिक के स्थायी उत्तराधिकारी नियुक्त होने तक ही था किन्तु उसने बडे साहस से काम लिया और लॉर्ड मैकाले की सहायता से १८३५ का एक्ट नं० ११ बनाया। इस एक्ट में १८२३ और १८२७ के विनियमों को दोहराया गया और सारे ब्रिटिश भारत के लिए अनुज्ञप्ति और प्रकाशन से पहले सरकारी जाँच की व्यवस्था को तोड दिया गया। उसके बदले इग्लैण्ड की तरह साधारण निबन्धन का नियम बना दिया गया।

अब हम फिर गवर्नर-जनरल लॉर्ड हेस्टिग्स के राज्य-काल की घटनाओं के वर्णन पर आते है —अन्तिम महत्त्वपूर्ण घटना जमीन के बन्दोबस्त से सम्बन्धित थी। यह बन्दोबस्त भारत के विभिन्न भागो मे—मद्रास, बम्बई और आगरा कमिश्नरी में—अस्थायी आधार पर किया गया। मद्रास और बम्बई के बन्दोबस्त मे मुनरो और एलफिस्टन के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

लॉर्ड हेस्टिग्स का उत्तराधिकारी एक साधारण योग्यता का व्यक्ति था। उसके शासन-काल में भरतपुर की हार और बर्मा-युद्ध (१८२४-२६) के अतिरिक्त और कोई महत्त्वपूर्ण बात नही हुई। यह युद्ध यदाबू की सधि से समाप्त हुआ। इसमें संचालन और योजना की त्रुटियों के कारण बहुत से जीवन व्यर्थ ही नष्ट हुए और बहुत सी सम्पत्ति बेकार ही बरबाद हुई।[1] यदाबू की संधि से अग्रेजो को एक करोड रुपया और आसाम, अराकान और सालवीन नदी के पूर्व में मर्तबान प्रान्त के कुछ हिस्सो के साथ टेनासरिम के प्रदेश मिले।

---

१. सन् १८३४ मे वीर राजा के अत्याचारपूर्ण व्यवहार के कारण कुर्ग को छीन लिया गया।

अगली दशाब्दि में शान्ति रही और सुधार हुए। कुर्ग[1] और दो अन्य महत्त्वहीन स्थानो के अतिरिक्त कोई नए क्षेत्र ब्रिटिश सीमाओं के अन्तर्गत नही मिलाये गए। लॉर्ड विलियम बेंटिक के समय में सती-प्रथा बन्द की गई और ठगी का दमन किया गया। बेंटिक के ही राज्य-काल में व्यय मे बचत की गई और अफ़ीम के व्यापार मे एकाधिपत्य के कारण राजस्व मे वृद्धि हुई। कॉर्नवालिस द्वारा अंग्रेजी ढर्रे के प्रान्तीय न्यायालयो को बन्द किया गया और न्यायालयो[2] में फ़ारसी के स्थान पर देश-भाषा को जगह दी गई। साथ ही न्यायपालिका और कार्यपालिका में भारतीयों की नियुक्ति की गई। भारतीय रियासतो की ओर बेंटिक की नीति, दुर्बल और अस्थिर थी। उसने मैसूर के प्रति नीति में दृढता और शीघ्रता से अवश्य काम लिया। बहुत हद तक इसका कारण यह था कि वह इस विषय में इग्लैण्ड के अधिकारियो की इच्छानुसार काम करने को उत्सुक था। उसके व्यवहार के प्रति केवल यही आपत्ति की जा सकती है कि जहाँ दीनता अहितकर थी वहाँ भी उसने दृढता नही दिखाई।[3]

---

१ Smith: The Oxford History of British India, page 659.

२. Havell: A Short History of India, page 241.

३. विन्सेण्ट स्मिथ ने अपनी (उपर्युक्त) पुस्तक मे इस नीति के परिणाम का जो वर्णन किया है उसका अनुवाद नीचे दिया जाता है :—

"अवध मे मंत्री, हकीम मेहता का अंग्रेज-सरकार ने साथ छोड दिया और उसे राज्य से निकाल दिया। निज़ाम के राज्य की दुर्व्यवस्था को चुपचाप देखा गया। अवयस्क होलकर को सहायता नही दी गई और वहाँ भी राज्य की दुर्व्यवस्था हुई। ग्वालियर मे भयकर झगडे हुए, पर कोई कदम नही उठाया गया। गायकवाड ने वैर भाव धारण किया। राजपूत रियासतो को गृह-युद्ध में फँसे रहने को प्रोत्साहन दिया गया। उदयपुर मे सुधार रोक दिए गए। जयपुर में नीति का अनर्थ में अन्त हुआ; अर्थात् वहाँ ब्रिटिश अधिकारियो पर आक्रमण किया गया जिसके कारण वहाँ का रेजीडेण्ट बुरी तरह घायल हुआ और उसका सहायक ब्लेक मर गया।"

## चौथा अध्याय

# कम्पनी के अन्तिम दिन

( १ )

सन् १८३३ मे कम्पनी के अधिकार-पत्र की अवधि फिर से बढाने का प्रश्न पार्लियामेण्ट मे आने के समय तक इंग्लैण्ड का वातावरण बदल चुका था। विदेशों में व्यापार के क्षेत्र मे सरकार द्वारा हस्तक्षेप न करने की नीति का और इंग्लैण्ड में मानव-अधिकार के सिद्धान्त का प्रचार किया जा रहा था। ७ जून १८३२ को सुधार-विधेयक (Reform Bill) एक्ट बन गया और १८३३ में दासता को सारे ब्रिटिश साम्राज्य मे अवैध कर दिया। इस वातावरण में कम्पनी के लिए फिर से व्यापारिक एकाधिपत्य के अधिकार-पत्र की अवधि बढ़वाना संभव नहीं था। अतः सन् १८३३ के एक्ट ने सबसे पहला काम यह किया कि चीन के साथ व्यापारिक एकाधिपत्य को समाप्त कर दिया।

इस एक्ट का दूसरा काम तत्कालीन भारतीय शासन के दो मुख्य दोषों मे से एक को दूर करने का प्रयत्न था। पार्लियामेण्ट के सदस्य मिस्टर चार्ल्स ग्राण्ट के शब्दो में यह दोष था, "व्यापारी और सार्वभौम सत्ता का ऐक्य"।[1] एक्ट ने इस दोष को दूर करने के लिए कम्पनी से सुविधापूर्ण शीघ्रता[2] के साथ अपने व्यावसायिक कार-बार को बन्द करने, और साझेदारो को भारतीय राजस्व से १०½ प्रतिशत लाभाश देने और कम्पनी के स्टॉक को क्रय करने के लिए १२० लाख पौण्ड एकत्रित करने को कहा। किन्तु हाउस ऑव कॉमन्स मे मि० बकिघम तथा अन्य सदस्यो का विरोध होते हुए भी पार्लियामेण्ट ने भारतीय शासन, कम्पनी को सौप दिया। मि० बकिघम ने इतने बड़े साम्राज्य के राजनीतिक शासन को एक जॉइण्ट स्टॉक कम्पनी को सौंपना असगत बताया और यह सुझाव दिया कि भारत की सर्वोच्च परिषद् में, भारत मे रहने वाले अग्रेजों और साथ ही स्वयं भारतीयों के कुछ प्रतिनिधि लिये जायँ ताकि स्व-शासन की व्यवस्था का कम-से-कम आरम्भ तो हो ही जाय।[3]

---

१. C. L. Anand : Introduction to the History of Government in India, page 35 के एक उद्धरण का अनुवाद।

२. Section IV of the Act, Keith : Speeches and Documents, vol. I, pages. 26-27.

३. C. L. Anand : An Introduction to the History of Government in India, page 38.

लॉर्ड मैकॉले ने इस अवसर पर एक स्मरणीय वक्तृता दी और भारत में कम्पनी का शासन बनाए रखने के पक्ष का प्रतिपादन किया। मैकॉले ने मिल को उद्धृत किया और प्रतिनिधि-सरकार की चर्चा को बेतुका बताया।[1] उसने इस बात को अस्वीकार किया कि हाउस ऑव कॉमन्स भारत में होने वाली बुराइयो पर कोई सक्रिय अथवा कुशल रोक लगा सकेगा।[2] उसने कहा : "यह स्पष्ट है कि भवन के पास इन (भारतीय) विषयो का निर्णय करने के लिए आवश्यक समय नही है; न उसको आवश्यक जानकारी है और न उस जानकारी को प्राप्त करने का उद्देश्य ही है। हाल ही मे उसके विधान मे जो परिवर्तन हुआ है उससे वह ब्रिटिश जनता का अधिक सही प्रतिनिधित्व करता है। किन्तु भारतीय जनता का प्रतिनिधित्व करने से आज भी वह इतना ही दूर है जितना कि पहले कभी था। भारत की तीन घमासान लड़ाइयो से यहाँ इतनी हलचल नही होगी जितनी कि इंग्लैण्ड की एक अपेक्षाकृत बहुत छोटी जगह की सिर फुटौवल से। कुछ ही सप्ताह पहले भारतीय राजस्व के विषय मे एक व्यक्ति के दावे का निर्णय किया था। यदि वह अंग्रेजो से सम्बन्ध रखने वाला प्रश्न होता तो यह सभा-भवन मत-विभाजन के इच्छुक सदस्यो के लिए छोटा पड़ता। वह एक भारतीय प्रश्न था और इसी कारण हम गण-पूर्ति भी कठिनाई से कर सके। यहाँ तक कि जब मेरे माननीय मित्र 'बोर्ड ऑव कण्ट्रोल' के सभापति ने अपना मनोरजक और अत्यन्त योग्यतापूर्ण वक्तव्य दिया और १० करोड मनुष्यो के शासन के लिए अपने प्रस्तावो को प्रस्तुत किया, तो उपस्थिति इतनी भी नही थी जितनी की किसी नई रेलवे लाइन खोलने अथवा चुगी की चौकी बनाने के समय होती है।[3]

दूसरी ओर लॉर्ड मैकॉले ने कहा कि "कम्पनी ह्विग या टोरी दोनों में से किसी राजनीतिक दल से अथवा किसी धार्मिक मत या सम्प्रदाय से सम्बन्धित नही थी। उसके प्रति यह दोष नही मढ़ा जा सकता था कि उसने कैथोलिक बिल (Catholic Bill) या सुधार विधेयक (Reform Bill) का पक्ष अथवा विपक्ष लिया। उसका काम करने का दृष्टिकोण अंग्रेजो राजनीति नही, वरन् बराबर भारतीय राजनीति रहा है। ····सारे आन्दोलनों के बीच कम्पनी बिलकुल असन्दिग्ध रूप से निष्पक्ष रही है।"[4] भारत में उसके शासन

---

१. Keith : Speeches and Documents on Indian Policy, vol. I, page 234.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २३५.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २३६-३७।

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २३९-२४०.

का इतिहास और भारतवासियो के हित और कल्याण के लिए उसकी उत्सुकता, ये दोनो बाते प्रशसनीय है। "विदेशी, सैनिक और स्वेच्छाचारी शासन में इतनी भलाई की भावना अन्यत्र नही मिल सकती।"[१] लॉर्ड मैकॉले ने कहा कि ऐसी परिस्थिति मे वह भारतीय शासन को कम्पनी के हाथो से हटा देने के लिए तैयार नही था। लॉर्ड मैकॉले के मत को पार्लियामेण्ट ने माना और कम्पनी को भारतीय प्रदेशो और उनके शासन का अधिकार फिर बीस वर्ष के लिए सौप दिया।

सन् १८३३ के एक्ट ने तीसरी बात यह की कि उसने भारत में बसने के लिए आने वाले यूरोपियनो पर जो प्रतिबन्ध थे उन्हे समाप्त कर दिया और उन्हे ज़मीन का मालिक बनने के लिए कोई रोक-टोक नही रहने दी। किन्तु कही ये विदेशी भारतवासियो के धर्म और विश्वास आदि से छेड़-छाड न करें और उनका अपमान न करे, इस उद्देश्य से भारतवासियो की रक्षा के लिए गवर्नर-जनरल को यथासभव शीघ्रता के साथ नियम-विनियम बनाने के लिए कहा गया।[२]

सन् १८१३ मे यूरोपियनो के भारत मे बसने के प्रश्न पर विवाद के समय कम्पनी और उसके उच्च कर्मचारियो[३] ने तीव्र विरोध किया था पर इस बार भारत के उच्च अधिकारियो ने यूरोपियनो के वहाँ बसने की माँग का प्रबल समर्थन किया। सर मेटकाफ और लॉर्ड बेंटिक दोनो ने भारत मे यूरोपियनो को बसने के लिए बे-रोक-टोक आने देने के पक्ष का प्रतिपादन किया और उसके कितने ही लाभ बताए। एक लाभ तो यह बताया कि उससे भारतीय साम्राज्य की समृद्धि को प्रोत्साहन मिलेगा, दूसरा यह कि उससे राजस्व मे वृद्धि होगी और तीसरा यह कि उससे भारत पर ब्रिटिश आधिपत्य अधिक सुदृढ होगा। सन् १८३२ की प्रवर-समिति ने भारत जाने वाले यूरोपियनो पर से प्रतिबन्ध हटाने के लिए व्यावसायिक और औद्योगिक कारण प्रस्तुत किये जैसे, इग्लैण्ड को विदेशी कच्चे माल के सम्बन्ध मे स्वतन्त्रता हो जाती, भारत मे ब्रिटिश माल की माँग बढ जाती और इग्लैण्ड को प्रेषित धन अर्थात् 'होम चार्जेज' का परिमाण बढ जाता।[४] प्रवर-समिति के समक्ष कुछ साक्षियों ने बे-रोक-टोक यूरोपियनो को भारत मे

१. Keith . Speeches and Documents on Indian Policy, page 249.
२. Article LXXXV of the Act.
३. इसी पुस्तक का पृष्ठ ४६.
४. History of Indian Tariffs by Shah, pages 128-29.

जाने देने की नीति का खतरा बताया और यूरोपीय उपनिवेश बनाने से देश-वासियो[1] का जो अहित होता उसकी ओर ध्यान दिलाया किन्तु मेटकाफ़ और बेंटिक का मत माना गया और भारत मे जाने वाले यूरोपियनो पर से सब प्रतिबन्ध हटा लिये गए।

सन् १८३३ के एक्ट ने चौथी बात यह की कि उसने निश्चित और स्पष्ट भाषा में यह उल्लेख किया, "भविष्य मे किसी पद के लिए योग्यता[2] की ही कसौटी है" और "केवल अपने धर्म, जन्म-स्थान, जाति अथवा वर्ण के कारण उक्त (भारतीय) प्रदेशो का कोई निवासी अथवा हिज़ मैजिस्टी की प्रजा का कोई भी व्यक्ति, कम्पनी[3] के किसी भी पद या उसकी किसी सेवा के लिए अयोग्य नही समझा जायगा।" उक्त खण्ड के कारण लॉर्ड मॉर्ले ने सन् १८३३ के एक्ट को सन् १९०९ से पहले पार्लियामेण्ट द्वारा बनाए हुए भारतीय एक्टो मे सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बताया।[4] एक बार नीति और स्वार्थ के सकीर्ण विचारो को हटाकर उदार मानवीय सिद्धान्तो को व्यक्त होने का स्थान दिया गया।

नए एक्ट ने चौथी बात यह की कि उसने भारत के गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद् के सविधान और अधिकारो मे परिवर्तन किये। गवर्नर-जनरल की परिषद् में विधान कार्य के लिए एक विधि सदस्य और बढाया गया। इस नए सदस्य को कार्यपालिका मे कोई अधिकार नही था। सपरिषद् गवर्नर-जनरल के विधान-कार्य को भी बहुत बढा दिया गया। जैसा कि सन् १८७२ के टैगोर-व्याख्यानों मे मिस्टर कॉवेल ने सकेत किया, उस समय का सबसे बडा दोष विधान बनाने वाले और शासन करने वाले अधिकारियो का सघर्ष और विधान का अनिश्चित स्वरूप था। पहली बात तो यह थी कि "उस समय भारत मे पाँच प्रकार के विधान लागू हो रहे थे।"[5] हर प्रेसीडेन्सी की सरकार को

१. Major Basu: The Colonization of India by Europeans, pages 64 to 94.

२. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Vol. I. Despatch of the Court of Directors, 1834, page 120

३ Clause LXXXVII of the Act

४. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Vol I., page 120

५. Ilbert : Historical Introduction to the Government of India. Quotation on page 84

नियम-विनियम बनाने का अधिकार था। सपरिषद् गवर्नर-जनरल का विधान बनाने का अधिकार बिलकुल अपर्याप्त था। सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा बनाए हुए नियम-विनियम केवल भारतीय जनता और कम्पनी के सेवकों पर ही लागू होते थे, किन्तु उनका भारत में बसे हुए अन्य अंग्रेजों और विदेशियों पर कोई अधिकार नही था। इसके अतिरिक्त उनका सर्वोच्च न्यायालय पर कोई क्षेत्राधिकार नही था। सन् १८३३ के एक्ट ने इन दोषो को दूर करने का प्रयत्न किया। एक्ट ने प्रान्तीय सरकारो के विधान बनाने के अधिकार को हटा दिया और उन्हे केवल यह साधारण अधिकार दिया कि वे जिन विधानो और विनियमों को आवश्यक[1] और उपयोगी समझे उनको लिखकर सपरिषद् गवर्नर-जनरल के पास भेज दे। इस प्रकार भारत मे विधान बनाने का अधिकार सपरिषद् गवर्नर-जनरल के हाथो मे केन्द्रित कर दिया गया। इन विधानो का क्षेत्राधिकार सब व्यक्तियो, न्यायालयो, स्थानो और वस्तुओ पर था। उक्त (भारतीय) प्रदेशो के प्रत्येक भाग का तथा सधि द्वारा कम्पनी से सम्बन्धित प्रत्येक देशी राज्य और कम्पनी के प्रत्येक सेवक का इन विधानो मे समावेश था।[2] राजसत्ता और पार्लियामेण्ट की प्रभुता का समुचित सरक्षण किया गया था।[3]

एक्ट मे यह उल्लेख किया गया कि, "उक्त (भारतीय) प्रदेशो और वहाँ के निवासियो से सम्बन्धित, उक्त सपरिषद् गवर्नर-जनरल के हर कार्य और उसकी हर कार्यवाही को रोकने, उसका उल्लघन और नियत्रण करने का पार्लियामेण्ट का पूर्ण और स्थायी अधिकार सुरक्षित है···।"[4] सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा बनाए हुए विनियम, जिनको कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स ने अस्वीकार न किया हो, एक्ट कहलाते। उन्हे पार्लियामेण्ट के सामने रखा जाता, किन्तु यह आवश्यक नही था कि किसी न्यायालय मे उनका निबन्धन किया जाय और उनको प्रकाशित किया जाय। अन्त मे अनिश्चितता समाप्त करने के लिए सपरिषद गवर्नर-जनरल को इडियन लॉ-कमीशन नाम से एक आयोग (Commission) बनाने का निर्देश किया गया। इस कमीशन को स्थानीय परिस्थितियों[5] का ध्यान रखते हुए शासन के लिए सामान्य विधान बनाना था।

१ Clause 66 of the Act. Mukherjee: Indian Constitutional Documents, Vol I, page 96

२ Clause XLIII of Act, Keith: Speeches on Indian Policy, Vol I, page 268.

३. Clause XLIII of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २६८।

४. Clause LI of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २६९-२७०।

५. Clause LIII of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २७१-२७२।

इस आयोग को उक्त प्रदेश की वर्तमान न्याय और पुलिस-व्यवस्था, उनके क्षेत्राधिकार, नियम और उनकी कार्य-पद्धति, लिखित अथवा प्रचलित दीवानी और फ़ौजदारी विधान की जाँच करके सपरिषद् गवर्नर-जनरल को रिपोर्ट देनी थी। पहले विधान-आयोग के सभापति का पद लॉर्ड मैकॉले को मिला। यह आयोग, जितनी आशा थी, उतना काम नही कर पाया, लेकिन फिर भी भारतीय दण्ड संहिता (Indian Penal Code) इस आयोग के ही परिश्रम का फल थी। यह सन् १८६० में स्वीकृत होने पर लागू हो गई। इस आयोग ने दीवानी और फ़ौजदारी पद्धति की संहिताओ के लिए भी नीव तैयार कर दी।

एक्ट की छठी बात, बंगाल की अत्यधिक बड़ी प्रेसीडेन्सी को विभाजित करके दो प्रेसिडेन्सियाँ बनाने की व्यवस्था थी, किन्तु यह कार्यान्वित ही नही हुई। पहले तो इसे सन् १८३५ के एक्ट से निलम्बित कर दिया गया और बाद मे सन् १८५३ के एक्ट से।

एक्ट ने सातवी बात यह की कि उसने सपरिषद् गवर्नर-जनरल को भारत में गुलामो की दशा सुधारने और सारे भारत मे गुलामी-प्रथा (दास-प्रथा) समाप्त करने के लिए उपयुक्त कार्यवाही करने का निर्देश किया।

एक्ट ने आठवी बात यह की कि एक बिशप के स्थान पर तीन बिशप बनाए और कलकत्ते के बिशप को भारत का मेट्रोपोलिटन बिशप (लाट-पादरी) बना दिया।

अन्त मे एक्ट ने हेलबरी में कम्पनी के कॉलेज मे भारत के असैनिक सेवकों के शिक्षण की व्यवस्था की और कॉलेज मे प्रवेश के लिए विनियम बनाए।

(२)

भारत मे किस प्रकार की शिक्षा को प्रोत्साहन दिया जाय, इस विषय पर एक दशाब्दी से प्राच्यवादियो और आंग्लवादियो में विवाद चल रहा था। लॉर्ड मैकॉले ने सार्वजनिक शिक्षा-कमेटी के सभापति नियुक्त होने पर, अंग्रेज़ी शिक्षा का बड़ा प्रबल समर्थन किया। ७ मार्च १८३५ के प्रस्ताव द्वारा सरकारी निर्णय प्रकाशित हुआ : "ब्रिटिश सरकार का महान् उद्देश्य भारतवासियो में यूरोपीय साहित्य और विज्ञान का प्रसार होना चाहिए और शिक्षा के लिए जो निधि है उनका सर्वोत्तम उपयोग अंग्रेज़ी शिक्षा के प्रसार में ही होगा।"[१]

लॉर्ड ऑकलैण्ड के राज्य-काल में प्रथम अफगान-युद्ध की विपत्ति, एक मुख्य घटना थी। यह युद्ध पामर्स्टन की रूस-विरोधी नीति का प्रत्यक्ष परिणाम था। उसके उत्तराधिकारी के समय में अफगानिस्तान से बदला लेने के लिए लड़ाई लड़ी गई

१. Smith: Oxford History of India, page 670

और लार्ड एलेन बोरो और सर चार्ल्स नेपियर ने सिंध पर बलात् अधिकार कर लिया।[1] दास-प्रथा भी इसी अवधि में समाप्त की गई। सन् १८४३ में सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने एक एक्ट (सन् १८४३ का एक्ट नं० ५) बनाया, जिसके द्वारा भारत मे दास-प्रथा को अवैध कर दिया गया।

लॉर्ड हॉर्डिग के राज्य-काल की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना सिखो के साथ पहली लडाई थी। यह युद्ध सन् १८४५ और १८४६ मे हुआ और यह इस बात के लिए प्रसिद्ध है कि इसमें, "ब्रिटिश सेना को भारत मे सबसे ज्यादा बहादुर और मजबूत सेना का सामना करना पड़ा।"[2] १० फरवरी १८४६ को सबरा में सिख सेना परास्त हुई और अंग्रेजो ने शीघ्रता से लाहौर पर अधिकार कर लिया। लाहौर की संधि से युद्ध समाप्त हुआ। इस संधि के अनुसार सतलुज से पूर्व की सारी जमीन, जालधर का दोआबा, जो सतलुज और व्यास के बीच मे था और साथ ही काश्मीर और हजारा के क्षेत्र अंग्रेजो के अधिकार में आ गए। इसके अतिरिक्त अंग्रेजो को ५ लाख पौण्ड और बहुत सी तोपो की प्राप्ति हुई। सिख-सेना की सीमा (२०००० पैदल और १२००० घुडसवार) निश्चित कर दी गई। अवयस्क महाराजा दलीपसिंह और उसके मुख्य मत्री सरदार लालसिंह द्वारा पंजाब के शासन के निरीक्षण के लिए लाहौर मे एक ब्रिटिश रेज़ीडेण्ट का रहना निश्चय हुआ।

सन् १८४८ की जनवरी मे लॉर्ड डलहौज़ी भारत मे आया। जब वह कलकत्ता में उतरा तो उसकी अवस्था केवल ३५ वर्ष की ही थी। किन्तु उसका उस समय स्वास्थ्य बहुत गिरा हुआ और उसका ढाँचा बिलकुल टूटा हुआ था। वह आठ वर्ष तक गवर्नर-जनरल रहा, किन्तु इस अवधि मे वह कभी भी पूरी तरह स्वस्थ नही रहा। प्राय. वह पीड़ित ही रहता था।[3] किन्तु उसका राज्य-काल विशेष रूप से स्मरणीय है और उसकी गणना, वॉरन हेस्टिंग्स, वेल्ज़ली, और लॉर्ड हेस्टिंग्स के साथ पहली श्रेणी के गवर्नर-जनरलो मे की जाती है।

लॉर्ड डलहौज़ी का शासन-काल युद्ध और राज्य-विस्तार के साथ शासन-सुधार और सार्वजनिक हित के कामों के लिए भी समान रूप से प्रसिद्ध है। दूसरे सिख-युद्ध के परिणामस्वरूप सन् १८४९ में पेशावर तक सारा पंजाब ब्रिटिश सीमा के अन्तर्गत आ गया। दूसरे बर्मा-युद्ध के फलस्वरूप ब्रिटिश सीमाओ में रंगून,

१. Smith. The Oxford History of India, page 673.
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६९५.
३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६९९.

प्रोम और पेगू का सारा प्रान्त आ गया। साथ ही चटगाँव से लेकर सिंगापुर तक सारे समुद्र-तट पर ब्रिटिश अधिकार हो गया।

लॉर्ड डलहौज़ी ने भारत में ब्रिटिश राज्य को बढाने के लिए केवल युद्ध-विजय का ही सहारा नही लिया वरन् किसी देशी राज्य मे उत्तराधिकारी न होने पर उस राज्य पर ब्रिटिश आधिपत्य जमा लेने की नीति से भी काम लिया। इस प्रकार डलहौज़ी ने सितारा, नागपुर, झाँसी, जैतपुर, साँभलपुर और कुछ दूसरी छोटी रियासतो पर अधिकार कर लिया। अवध पर अधिकार एक दूसरे ही प्रकार से—उच्छृङ्खल और मनमाने ढंग से—किया गया। सिक्किम को तत्कालीन राजा द्वारा डॉ० कैम्पबैल और डॉ० हूकर को पकडने के अपराध के दण्डस्वरूप ले लिया गया। सहायक सेना के निर्वाह के नाम पर निज़ाम से बरार को ले लिया गया। पेशवा बाजीराव द्वितीय को ८ लाख रुपये का वार्षिक भत्ता मिलता था। उसके दत्तक पुत्र को यह भत्ता देना अस्वीकार कर दिया गया। सन् १८५५ मे कर्नाटक के नवाब की मृत्यु का लाभ उठाकर, उसके कुटुम्ब के मान और उसके भत्ते को घटा दिया गया। सक्षेप मे लॉर्ड डलहौज़ी ने भारत मे प्रत्येक सभव उपाय से ब्रिटिश राज्य और शक्ति को बढाने का प्रयत्न किया। सन् १८५७ के उत्थान मे, डलहौज़ी की देशी राज्यो को छीनने की नीति भी कुछ अशो तक उत्तरदायी है।

डलहौज़ी एक अत्यन्त उत्साही और कर्मठ व्यक्ति था। उसने शासन के प्रत्येक विभाग के काम की देख-भाल की और बहुत से सुधार किये, भारत के सर्वोच्च शासन को विभागानुसार व्यवस्थित किया; बगाल के लिए एक पृथक् उप-गवर्नर नियुक्त किया। उसने एक पृथक् सार्वजनिक निर्माण-विभाग बनाया और ग्राण्ड ट्रक रोड बनवाने, सिचाई के लिए नहरे निकालने और रेलवे-लाइन बिछाने के कामो को आरम्भ किया। उसने बिजली के द्वारा तार भेजने की व्यवस्था चलाई और डाक के लिए आधा आना प्रति पत्र की एक ही दर निश्चित की। सन् १८५४ के 'वुड डिस्पैच' नाम से प्रसिद्ध आदेशो को पूरी तरह कार्यान्वित किया और देश की वर्तमान शिक्षण-व्यवस्था की नीव रखी। लॉर्ड डलहौज़ी ने भारतीय सेना के पुनर्सगठन का भी प्रबन्ध किया और इस विषय पर नौ विस्तृत लेख लिखे, (इन लेखो पर इग्लैण्ड के अधिकारियो ने ध्यान नही दिया)। लॉर्ड डलहौज़ी के कार्य-काल मे ही कम्पनी के अधिकार-पत्र की अवधि फिर बढा देने का प्रश्न अन्तिम बार पार्लियामेण्ट के सामने आया।

( ३ )

अब तक कम्पनी के राज्य का विरोध अंग्रेज़ों ने ही किया था। या तो अंग्रेज़ व्यापारियो ने या अंग्रेज़ प्रगतिवादियों अथवा मानववादियों ने ही अधिकार-पत्र

की अवधि बढाने में आपत्ति प्रकट की थी। किन्तु १८५३ में अधिकार-पत्र की अवधि बढ़ाने का विरोध मुख्यतः भारतीयो ने किया। सन् १८३३ के एक्ट के विभाग नं० ८७ ने भारतीयों में उच्च आशाओं का संचार किया था। कुछ नवयुवक भारत के बड़े पदो के लिए शिक्षित होने को इंग्लैण्ड गए थे। भारत लौटने पर उन्हें बहुत निराशा हुई। जैसा कि गवर्नर-जनरल की परिषद् के सदस्य और इंडियन लॉ कमीशन के सभापति मि. कैमेरन ने कहा,—"इन (सन् १८३३ का एक्ट बनने के पश्चात् के) बीस वर्षों मे कोई भी देशी आदमी किसी ऐसे पद पर नियुक्त नही किया गया जिसके लिए उसका एक्ट बनने से पहले अधिकार न हो।"[१] तीनों प्रेसिडेन्सियो के निवासियो ने पार्लियामेण्ट के समक्ष, कम्पनी के अधिकार-पत्र की अवधि न बढ़ाने के लिए प्रार्थना-पत्र भेजे। बगाल के प्रार्थना-पत्र में द्वैधशासन को समाप्त करने, एक राज्य-मत्री नियुक्त करने और एक ऐसी भारत-परिषद्, जिसमें कुछ सदस्य निर्वाचित हो और कुछ नाम निर्देशित हो, नियुक्त करने का निवेदन किया गया। इस प्रार्थना-पत्र में भारत के लिए एक विधान-मडल बनाने; गवर्नर-जनरल को परिषद् की सम्मति से काम करने; प्रेसिडेन्सियों को एक प्रकार की प्रान्तीय स्वायत्तता देने; छोटी नौकरियों का वेतन बढाने और बड़े पदो का वेतन घटाने; सारी ब्रिटिश प्रजा को सिविल सर्विस का पात्र बनाने और उक्त सिविल सर्विस की परीक्षा द्वारा भर्ती करने का निवेदन किया गया।[२]

ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के दोनों भवनो ने सन् १८५२ में जाँच के लिए कमेटियाँ नियुक्त की और उनकी जाँच के आधार पर सन् १८५३ का चार्टर-(अधिकार-पत्र) एक्ट तैयार किया।

इस चार्टर एक्ट ने सबसे पहली बात तो यह की कि उसने कम्पनी के अधिकारो को फिर जीवन-दान दिया और उसे हर मैजैस्टी (इग्लैण्ड की रानी) और उसके उत्तराधिकारियो की ओर से धरोहर के रूप में भारतीय प्रदेशो पर अधिकार बनाए रखने की अनुमति दी। पहले अधिकार-पत्रो में यह अनुमति एक निश्चित अवधि के लिए दी जाती थी, किन्तु इस बार उपर्युक्त अधिकार उस समय तक के लिए दिये गए जब तक कि पार्लियामेण्ट कोई अन्य व्यवस्था न करे।

---

१. C. L. Anand : Introduction to the History of Government in India, Part I, page 41 के एक उद्धरण का अनुवाद।

२. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ४२-४३।

सन् १८५३ के एक्ट ने दूसरी बात यह की कि डाइरेक्टर्स की सख्या को २४ से घटाकर १८ कर दिया गया। इनमे से ६ राज-सत्ता द्वारा नियुक्त किये जाते।

एक्ट ने तीसरी बात यह की कि गवर्नर-जनरल को बगाल की गवर्नरी के काम से मुक्त कर दिया और बगाल के लिए एक और गवर्नर को नियुक्त करने की व्यवस्था की। किन्तु नया गवर्नर नियुक्त होने के समय तक गवर्नर-जनरल को इस बात का अधिकार दिया गया कि वह डाइरेक्टर्स और बोर्ड आफ कण्ट्रोल की स्वीकृति से एक उप-गवर्नर (Lieut.-Governor) नियुक्त कर दे। यद्यपि उप-गवर्नर की नियुक्ति तो सन् १८५४ मे कर दी गई, परन्तु गवर्नर की नियुक्ति सन् १९१२ तक नही हुई।

एक्ट ने चौथी बात यह की कि हाल मे देशी राज्यो को अधिकार मे लेने के कारण जो प्रदेश-विस्तार हुआ था, उसके फलस्वरूप डाइरेक्टर्स को यह निर्देश दिया गया कि वे एक ऐसी नई प्रेसीडेन्सी बनायँ, जिसकी शासन-व्यवस्था मद्रास और बम्बई की तरह हो। यदि ऐसा न हो तो एक उप-गवर्नर की नियुक्ति की जाय। इस विभाग में जो अधिकार दिया गया उसके अन्तर्गत १८५९ मे पजाब के लिए उप-गवर्नर की नियुक्ति की गई।

एक्ट ने पाँचवी बात यह की कि गवर्नर-जनरल की परिषद के विधि-सदस्य को परिषद का पूरा सदस्य बना दिया। अब वह कार्यपालिका से सम्बन्धित परिषदो की बैठको में भाग ले सकता था और अपने मताधिकार का उपयोग कर सकता था।

एक्ट ने छठी बात यह की कि भारत के लिए पहली बार एक पृथक् विधान-परिषद् बनाई। जैसा कि माण्टफोर्ड-रिपोर्ट के लेखको ने सकेत किया, अब पहली बार विधान (कानून) बनाने को सरकार का एक विशेष कार्य माना गया और उसके लिए एक विशेष उपकरण और पद्धति की आवश्यकता अनुभव की गई।[1] गवर्नर-जनरल की परिषद् का विधान-कार्य के लिए विस्तार किया गया। उसमे छः नये सदस्य बढ़ाये गए, जो विधान-सदस्य कहलाते। इस प्रकार विधान-कार्य के लिए परिषद् मे १२ सदस्य होते—गवर्नर-जनरल, सेनापति, परिषद् के चार सदस्य और छः विधान-सदस्य; जिनमे से दो सदस्य कलकत्ते के सर्वोच्च न्यायालय के अग्रेज जज (एक मुख्य न्यायाधीश और एक अन्य न्यायाधीश) होते, और चार सदस्य, मद्रास, बम्बई, बगाल और आगरे की स्थानीय सरकारो द्वारा नियुक्त किये हुए सरकारी कर्मचारी होते। प्रान्तीय सरकारो के इन प्रतिनिधियों

१. वस्तुतः यह एक पृथक् विधान-परिषद् नही थी। कार्यपालिका-परिषद् ही विधान-कार्य के लिए विस्तृत कर दी गई थी।

में से प्रत्येक को ५००० पौण्ड का वार्षिक वेतन मिलता। इस रूप में भारतीय विधान-मंडल मे स्थानीय प्रतिनिधित्व को स्थान दिया गया। परिषद् का काम मौखिक और खुला हुआ होता। प्रत्येक विधेयक पर उचित रूप से विचार होता और उसका प्रवर-समिति में परीक्षण होता। "परिषद् में कम-से-कम एक ऐसा सदस्य होता जिसे स्थानीय विषयो की जानकारी होती। साथ ही परिषद् में अंग्रेज़ी विधि का बहुत बडा अश होता।"[1] इस परिषद् ने अपने-आपको विधान-कार्य से सीमित नही रखा किन्तु उसने शिकायतो की जाँच करने और उनको दूर करने वाली एक छोटी प्रतिनिधि-सभा का रूप ले लिया।[2] किन्तु उसका कोई प्रस्ताव बिना गवर्नर जनरल की स्वीकृति के विधि नही बन सकता था।

एक्ट ने सातवी बात यह की कि भारतीय विधि-आयोग की सिफारिशो की जाँच करने के लिए, अंग्रेज आयोगको के निकाय की नियुक्ति के लिए प्राधिकार दिया। (भारतीय विधि-आयोग इस समय तक टूट गया था।)

एक्ट ने आठवी बात कम्पनी की आय मे से बोर्ड ऑव कण्ट्रोल के सदस्यों और अन्य कर्मचारियो के वेतन की व्यवस्था की। हिज़ मैजेस्टी द्वारा वेतन के परिमाण का निश्चय होता। बोर्ड के सभापति के वेतन के बारे मे यह कहा गया कि वह किसी प्रमुख राज्य-मत्री के वेतन से कम नही होना चाहिए।

अन्त में एक्ट ने डाइरेक्टर्स को भारतीय नियुक्तियो मे अनुग्रह के अधिकार से वचित कर दिया और बोर्ड ऑव कण्ट्रोल को इस सम्बन्ध में विनियम बनाने का निर्देश किया। सन् १८५४ मे एक कमेटी नियुक्त की गई। इसका सभापति लॉर्ड मैकॉले को बनाया गया। इस कमेटी ने विनियम बनाये। इनके अनुसार सिविल सर्विस की भर्ती, परीक्षा मे प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर होती। जनवरी १८५६ से हेलबरी कालेज के लिए दाखिले बन्द कर दिए गए। सन् १८५५ के इसी एक्ट[3] के अनुसार ३१ जनवरी १८५८ से कॉलेज बन्द करा देने का निर्देश किया गया। कम्पनी ने स्वयं ही १८३३ मे कॉलेज बन्द कराने की माँग की थी। उसका एक कारण तो कॉलेज का अत्यधिक व्यय था और दूसरा कारण

१ Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, p. 3.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३९

३. 18 and 19. Victoria C. 53. Ilbert: Historical Introduction, page 93.

यह था कि "विदेशों में नौकरी को जाने वाले नवयुवको का सम्पर्क उन्हीं के जैसे दूसरे नवयुवको तक सीमित कर देने मे बहुत से दुष्परिणाम थे।"[१]

१८५४ मे पार्लियामेट ने एक एक्ट और बनाया, जिसका भारतीय शासन में महत्त्वपूर्ण प्रभाव हुआ।[२] इस एक्ट ने सपरिषद् गवर्नल जनरल को इस बात का अधिकार दिया कि वह कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स और बोर्ड आव कण्ट्रोल की अनुमति से, उद्घोषणा द्वारा, ईस्ट इंडिया कम्पनी के किसी प्रदेश के किसी भी भाग को अपने निजी अधिकार और प्रबन्ध मे ला सकता है और उस भाग के शासन के लिए आदेश, निर्देश दे सकता है अथवा शासन की व्यवस्था कर सकता है।[३] इस अधिकार का चीफ कमिश्नरो की नियुक्ति करने मे उपयोग किया गया। ऐसे सारे अधिकार, जो केन्द्रीय सरकार के लिए अनावश्यक थे, उन्हे प्रदान कर दिए गए। इसी एक्ट के अन्तर्गत आसाम, मध्य प्रान्त, उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त, बर्मा, ब्रिटिश बिलोचिस्तान और दिल्ली के लिए समय-समय पर चीफ कमिश्नर बनाए गए। सन् १८५४ के एक्ट ने सपरिषद गवर्नर-जनरल को इस बात का भी अधिकार दिया कि डाइरेक्टर्स और बोर्ड ऑव कण्ट्रोल की अनुमति से वह विभिन्न प्रान्तो की सीमाओ को निश्चित कर सकता है। साथ ही यह निर्देश दिया गया कि भविष्य मे गवर्नर-जनरल के पद मे बगाल के गवर्नर का पद न जोड़ा जाय।

( ४ )

लॉर्ड डलहौजी को दृढ विश्वास था कि वह अपने उत्तराधिकारी के लिए शान्तिपूर्ण भारत छोड़कर जा रहा था। उसे इस बात का भान भी नही था कि उसने असन्तोष के बीज बो दिए थे, जो कुछ समय मे निश्चित रूप से अकुरित होते और जो देश मे ब्रिटिश राज्य के लिए एक भीषण सकट का कारण हो सकते थे। लॉर्ड डलहौज़ी की लड़ाइयो और छीना-झपटी से भारतीय सेना और शासक वर्ग दोनो ही अव्यवस्थित और व्यथित हुए थे। आक्रामक यूरोपीय नई रियासतो से देशवासियो की पुरानी कट्टर वृत्तियाँ उमड उठी। ईसाई धर्म का, सरकारी आश्रय और सहायता के साथ सोत्साह प्रबल प्रचार हो रहा था। उससे लोगो को बलात् धर्म-परिवर्तन का भय और सन्देह हुआ। कैनिग के इस

१. B. K. Thakore : Indian Administration to the Dawn of Responsible Government, page 62, के एक उद्धरण का अनुवाद.

२. 17 and 18. Victoria C. 53. Mukherji : Indian Constitutional Documents, Vol I, pages 132 to 134

३. उपर्युक्त पुस्तक, page 19 (XIX)

निर्णय ने कि, "बहादुर शाह[1] की मृत्यु के बाद सम्राट् का पद स्वीकार नही किया जायगा," उसको और उसके समर्थकों को बडा क्रुद्ध और उत्तेजित कर दिया। इसके अतिरिक्त, नानासहब, झाँसी की रानी और अन्य ऐसे सामन्त थे जिनको उनके अधिकारो से वचित कर दिया गया था और जो चिढे हुए थे। ये सब उस समय की विस्फोटक स्थिति का लाभ उठाने को तैयार थे। दूसरी ओर ब्रिटिश स्थिति बडी दुर्बल थी। ब्रिटिश सेना का सगठन और वितरण बडा दोष-पूर्ण था। सेना मे अनुशासन की बहुत बड़ी कमी थी। महत्त्व के स्थानो (जैसे दिल्ली और इलाहाबाद) और साथ ही अधिकाश तोपो का अधिकार भारतीय हाथो मे दिया हुआ था।[2] फारस की खाडी और चीन के लिए सैन्य-दल भेजे गए थे और भारतीय मोर्चों की विशेषकर बगाल और उत्तरी पश्चिमी प्रान्त की स्थिति बड़ी दुर्बल थी। चर्बी के कारतूसो का अच्छा बहाना मिला ओर २३ जनवरी १८५७ को कलकत्ते के पास डमडम से विद्रोह आरम्भ हुआ। मार्च में बैरकपुर, अप्रैल मे अम्बाला और मई मे मेरठ, लखनऊ और दिल्ली मे उभार हुआ। मई मे चारो ओर लपटे फैल गई और बाकायदा लडाई होने लगी। इसके पाँच मुख्य मोर्चे थे—दिल्ली, लखनऊ, कानपुर, रूहेलखण्ड और मध्यभारत जिसमें बुन्देलखण्ड भी सम्मिलित था। सिखो, ग्वालियर के सर दिनकर राव, हैदराबाद के सर सालार जग, नेपाल के सर जगबहादुर ने समय पर सहायता दी। इस सहायता और कुछ ब्रिटिश अधिकारियो के शौर्य से स्थिति को सँभाल लिया गया। विद्रोह का दमन हुआ और विद्रोही दल परास्त हुआ। हारे हुए स्थानो को फिर से जीता गया और विद्रोह के नेताओ को दण्ड दिया गया, मार दिया गया अथवा भगा दिया गया।

फिर से व्यवस्था लाने में अँग्रजो ने बडे अत्याचार किये जिनकी स्मृति भारतीय मस्तिष्क में विद्रोह के दमन के बहुत दिनो बाद तक चुभती रही और उनके ऐसे परिणाम हुए जिनके महत्त्व पर कुछ समय पहले तक ध्यान नही गया। "अँग्रेजों ने अपने बन्दियो को बिना अभियोग चलाये मार डाला और उनको मारने का ढंग अत्यन्त बर्बरतापूर्ण था। मुसलमानों को सूअर की खालों से सी दिया, प्राण-दण्ड देने से पहले उन पर सूअर की चर्बी मली, और उनके शरीरो को जलाया और हिन्दुओ को स्वय अपने-आपको अपवित्र और दूषित करने के लिए विवश किया।" उन्होने दिल्ली और चारो ओर के देहातो मे हज़ारो असैनिक व्यक्तियो का कत्ल कर दिया। जनरल नील ने अपने सैनिको को आदेश दिया कि कुछ

---

१. Cambridge History of India, Vol. V, page 607.

२. Smith : The Oxford History of India, page 712.

अपराधी गाँवों को नष्ट करने का निर्णय किया गया और ( फलतः ) वहाँ के सारे निवासियों का कत्ल कर दिया गया, और जहाँ-जहाँ हमारी (अंग्रेज़) सेनाएँ गईं, वहाँ के निवासियों को बिना सोचे-विचारे जला दिया गया।[1] लन्दन के 'टाइम्स' के तत्कालीन संवाददाता रसेल ने अपनी डायरी में ब्रिटिश सेनाओ की बर्बरता का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। यहाँ विस्तृत उद्धरण देने की आवश्यकता नही है : उदाहरण के लिए उनमें से एक ही पर्याप्त होगा। हैवलॉक के अग्रिम सैन्य-दल के बारे मे उसने लिखा है :—

"उस दल का मुख्य अधिकारी (जनरल) नील का प्रतिस्पर्धी था और वह अपना पौरुष कम न समझता था। दो दिन मे बयालीस आदमियों को प्राण-दण्ड दिया गया इस कारण कि प्रस्थान में सेना की ओर उनकी पीठ थी। जिन स्थानों पर उसने विराम किया वहाँ के सारे गाँवो को जला दिया गया। कानपुर के हत्या-काण्ड के नाम पर इस उग्रता को न्याय नही ठहराया जा सकता क्योकि ये घटनाएँ उक्त हत्या-काण्ड से पहले ही हुई।"[2]

ऐसी उग्रता को सहज ही विस्मृत नही किया जा सकता था। उससे जातीय कटुता की भावना चारो ओर फैली। कालान्तर में यह कटुता लुप्त हो गई होती, किन्तु समय-समय पर १९१९ की जालियान वाले बाग-जैसी निष्ठुरताओ ने उसे जीवित बनाये रखा।

(५)

१८५७ की घटनाओं के फलस्वरूप कम्पनी के राज्य का अन्त हुआ। जैसा कि ब्राइट ने कहा कि, "उक्त प्रश्न पर राष्ट्र की आत्मा—अदमनीय रूप से—जग उठी और उसने ईस्ट इडिया कम्पनी को तोड़ देने का निर्णय किया।"[3] प्रधान मत्री लार्ड पामर्स्टन ने १२ फ़रवरी १८५८ को हाउस आॉव कॉमन्स में विधेयक प्रस्तुत करते हुए एक स्मरणीय वक्तृता दी और द्वैध शासन-व्यवस्था का अन्त करने के लिए अपने कारण बताए। कम्पनी के शासन का, लार्ड पामर्स्टन के अनुसार, सबसे बड़ा दोष उसकी नितान्त उत्तरदायित्वहीनता थी। "हमारी राजनीतिक व्यवस्था का सिद्धान्त यह है कि सारे शासन-कार्य के लिए मंत्रि-मंडल का उत्तरदायित्व हो—पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायित्व, जनमत के

१. Garret: An Indian Commentary, page 112.
२. Russel. Diary I, page 222, quoted by Garret I.C.S. (Rtd.) in an Indian Commentary, page 113
३. Speech of Lord Palmerston, Keith: "Speeches on Indian policy", vol. I, page 320.

प्रति उत्तरदायित्व, राज्य-सत्ता के प्रति उत्तरदायित्व, किन्तु भारतीय शासन की बागडोर एक ऐसे निकाय के हाथो में है जो पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी नही है और जिसे राज्य-सत्ता ने नियुक्त भी नही किया, किन्तु जिसे कुछ ऐसे व्यक्तियों ने चुना है जिनका भारत से केवल इतना ही सम्बन्ध है कि कुछ पूँजी मे उनका साझा है।[1]

लार्ड पामर्स्टन ने दूसरा दोष यह बताया कि द्वैध शासन-व्यवस्था, असुविधापूर्ण और जटिल है। "शासन-कार्य और उत्तरदायित्व को डाइरेक्टर्स, बोर्ड आव कण्ट्रोल और भारत के गवर्नर-जनरल में विभाजित कर दिया गया है।[2] यह स्पष्ट है कि इन अधिकारियो के उद्देश्यो और आदेशो मे ऐक्य सभव नही है। किसी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विषय पर भारत में आदेश भेजे जाने से पहले उसका लेखा 'कैनन रो' और 'इडिया हाउस' के बीच चक्कर काटता है। इस विषय में उसका वृतान्त ऐसा ही विचित्र है जैसा कि एक मुद्रा का, जिसे अनेक हाथो में चक्कर काटना पडता है।"[3]

लॉर्ड पामर्स्टन ने इन दोषो को दूर करने के लिए कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स और कोर्ट ऑव प्रोप्राइटर्स तोड़ देने का प्रस्ताव किया। उन्होने, बदले में एक सभापति बनाने का प्रस्ताव किया, जो "शासन और मत्रि-मडल का सदस्य हो और जिसकी सहायता के लिए एक परिषद् की व्यवस्था हो।"[4] इस परिषद् के आठ सदस्य होते, जिनको राज-सत्ता द्वारा नियुक्त किया जाता। परिषद् के सदस्य वही व्यक्ति हो सकते थे जो "या तो ईस्ट इडिया कम्पनी के डाइरेक्टर रहे हों या जिन्होने एक निश्चित अवधि तक भारत मे सैनिक अथवा असैनिक पद पर काम किया हो या जो स्थानीय शासन से सबधित होकर कुछ वर्षों तक भारत में रहे हो।"[5] इनके पद की अवधि आठ वर्ष की होती। हर दो वर्ष बाद क्रम से दो सदस्य अवकाश ग्रहण करते। भारतीय राजस्व मे पहले से अधिक व्यय करने के विषयो को छोडकर, और सब विषयो मे सभापति को अन्तिम अधिकार प्राप्त होता।[6]

अन्त में लॉर्ड पामर्स्टन ने कम्पनी के तर्कों और उसकी आपत्तियों का उत्तर दिया :—कम्पनी की पहली आपत्ति यह थी कि भारतीय शासन को

१. Speech of Lord Palmerston, Keith . Speeches on Indian Policy, page 322.
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३२३
३. Keith : Speeches on Indian Policy, vol. I. page 324.
४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३२९-३३०.
५. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३३०
६. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३०९.

राज-सत्ता को सौपने पर कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स की निष्पक्ष, निर्दलीय और विशिष्ट रोक की जगह पार्लियामेण्ट की अवाछनीय और असमर्थ रोक होगी। लॉर्ड पामर्स्टन ने उत्तर मे पार्लियामेण्ट की नीतिज्ञता, उसके विवेक और उत्तरदायित्व की ओर सकेत किया और साथ ही यह बताया कि भारत के "वे अधिकाश सुधार, जिन पर ईस्ट इडिया कम्पनी के डाइरेक्टर्स गर्व करते हैं, पार्लियामेण्ट मे भारतीय शासन पर विवादो के परिणामस्वरूप ही हुए है।"[१] सर जार्ज कॉर्नवॉल लेविस की भाषा और भी उग्र थी। उन्होने कहा: "मुझे पूरा विश्वास है कि इस भूतल पर कोई सभ्य सरकार इतनी भ्रष्ट, विश्वासघातक, लोलुप और लुटेरी नही हुई जितनी कि सन् १७६५ से १७८४तक ईस्ट इडिया कम्पनी की सरकार थी।"[२] उन्होने कम्पनी का राजनीतिक स्वरूप जानने के लिए,[३] पार्लियामेण्ट के लेखे और भवन की रिपोर्ट ओर प्रामाणिक पत्र देखने के लिए कहा। सन् १७८४ से पार्लियामेण्ट द्वारा नियत्रण आरम्भ होने के ही बाद कम्पनी का शासन सहनीय हुआ था।

कम्पनी ने इस बात का सकेत किया था कि 'मत्री की सहायता के लिए भारतीय मामलो मे प्रवीण नीतिज्ञो की परिषद् अनिवार्य होगी।'[४] इसी सिल-सिले मे उन्होने यह कहा था कि उक्त कार्य के लिए कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स से अधिक उपयुक्त कोई निकाय होना सन्देहास्पद है।[५] लॉर्ड पामर्स्टन ने परिषद् की आवश्यकता को स्वीकार किया और कम्पनी द्वारा अनिवार्य बताई हुई बहुत सी बातो की प्रस्तुत विधेयक मे व्यवस्था की।

कम्पनी ने तीसरी बात यह कही थी कि एक राज्य-मत्री को पद-नियुक्ति का अनुग्रहाधिकार देना खतरे से खाली नही है। साथ ही कम्पनी ने अपने शासन मे भारतीय कर्मचारियो की श्रेष्ठता का कारण यह बताया था कि उक्त अनुग्रहाधिकार करने वाले व्यक्ति निर्दली रहे थे और उन्हे पार्लियामेण्ट मे समर्थन अपेक्षित नही था।[६] लॉर्ड पामर्स्टन ने उत्तर दिया कि कार्यपालिका सरकार को ऐसे कोई अतिरिक्त अनुग्रहाधिकार नही दिये जायगे जिसके कारण हाउस ऑव कॉमन्स को वैधानिक ईर्ष्या हो सके।[७]

---

१ Keith · Speeches on Indian Policy, vol. I, page 349.
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३४०.
३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३१५.
४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३१२.
५. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३३२.
६. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३०७.
७. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३२७.

अन्त मे कम्पनी ने यह कहा कि यदि विचाराधीन परिवर्तन उचित भी हों तो वह समय तो निश्चित रूप से उन (परिवर्तनो) के लिए अनुपयुक्त था। कम्पनी ने ऐसे परिवर्तनो को पार्लियामेण्ट से उस समय स्थगित कर देने के लिए निवेदन किया···ताकि उनका हाल के विद्रोह से कोई सम्बन्ध न जोडा जा सके। लार्ड पामर्स्टन ने उत्तर में कहा कि असाधारण परिस्थितियों में ही शासन की असुविधाओं की ओर सरकार और जनता का ध्यान आकर्षित होता है; हमारा (इस समय) भारत की वर्तमान व्यवस्था में कोई परिवर्तन करने का उद्देश्य नही है; एक सुदृढ, अधिक शक्तिशाली और अधिक कारगर शासन के उपकरण[1] को स्थापित करने की जगह वर्तमान दुर्बल व्यवस्था को यथावत् बनाए रखने में कोई बुद्धिमत्ता नही है, विशेषकर एक ऐसे समय जबकि वहाँ फिर से शान्ति स्थापित करने का कार्य अत्यन्त कठिन है। अन्त मे पामर्स्टन ने कहा, "सिद्धान्त अनुग्रहाधिकार, समय और वैधानिक सकट के आधार पर ऐसी कोई बात नही है जिसके कारण हम इस विधेयक को अविलम्ब स्वीकार न कर सके।"[2] किन्तु इस विधेयक को विधि-पुस्तक मे निबधित करने का अभी समय नही आया था। दूसरे वाचक के कुछ ही समय बाद, पामर्स्टन प्रधान मत्री के पद से हटा दिए गए। लॉर्ड डर्बी उनके उत्तराधिकारी हुए और मिस्टर डिज़रायली हाउस ऑव कॉमन्स के नेता बने।

नए मत्रि-मडल के लिए पामर्स्टन के मत्रिमडल की ही नीति का अनुसरण करने के अतिरिक्त और कोई दूसरा मार्ग नही था। ३० अप्रैल १८५८ को भवन ने १४ प्रस्ताव स्वीकार किए। इनके आधार पर सरकार ने नया विधेयक तैयार किया। यही विधेयक भारत के श्रेयतर शासन के लिये १८५८ का एक्ट बन गया।

(६)

१८५८ के एक्ट ने भारत के शासन को कम्पनी के हाथों से राज्य-सत्ता के हाथो मे सौप दिया। भविष्य में भारत का शासन 'हर मैजेस्टी' के नाम से, उसी के आधीन होना था[3] और भारत की सारी प्रादेशिक तथा अन्य आय हर

---

१. Keith: Speeches on Indian Policy, page 328.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३२८.

३. Clause II of the Act. Keith · Speeches on Indian Policy, page 370.

मैजेस्टी के नाम में और उसी के आधीन प्राप्त की जानी थी और केवल भारत सरकार के ही कामों मे उसका व्यय किया जाना था।[१]

दूसरी बात यह हुई कि बोर्ड ऑव कण्ट्रोल और कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स के सारे अधिकार, हर मैजेस्टी के एक प्रमुख राज्य-मत्री को हस्तान्तरित कर दिए गए। राज्य-सत्ता को एक पाँचवाँ राज्य-मंत्री नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। यह राज्य-मत्री भारतीय शासन का काम सँभालता किन्तु इस ब्रिटिश राज्य-मंत्री का वेतन भारतीय राजस्व से दिया जाता।

एक्ट ने तीसरी बात यह की कि कुल १५ सदस्यो की एक भारत-परिषद् (Council of India) बनाई। इनमे से ७ सदस्य कोर्ट ऑव डाइरेक्टर्स द्वारा निर्वाचित होते और शेष ८ सदस्य राज्य-सत्ता द्वारा नियुक्त किये जाते। परिषद् के आधे से अधिक सदस्य—कम-से-कम नौ—ऐसे व्यक्ति होते जो कम-से-कम दस वर्ष तक भारत मे रहे होते और जिन्हें नियुक्ति के समय भारत छोडे हुए दस वर्ष से अधिक न हुए होते।[२] भविष्य मे रिक्त स्थानों की पूर्त्ति राज्य-सत्ता द्वारा की जाती। सदस्यो का कार्य-काल सद्व्यवहार पर था किन्तु पार्लियामेण्ट के दोनो भवनो की[३] प्रार्थना पर उनको हटाया जा सकता था। प्रत्येक सदस्य को भारतीय राजस्व से एक हज़ार दो सौ पौण्ड का वार्षिक वेतन दिया जाता।[४]

परिषद् को राज्य-मत्री के निर्देशन के आधीन, इगलैंड मे भारतीय शासन और पत्र-व्यवहार से सबधित सारा कार्य करना था।[५] राज्य-मत्री को परिषद् के सभापति का पद दिया गया था और उसे मताधिकार प्राप्त था।[६] बराबर मत होने की दशा मे उसे एक अतिरिक्त निर्णायक मत दिया गया था।[७] काम को सुचारु रूप से चलाने के लिये सभापति परिषद् को कमेटियो में विभाजित कर सकता था।[८] यदि परिषद् के अधिकाश सदस्य राज्य-मत्री के किसी

१. Clause II of the Act. Keith : Speeches on Indian Policy, page 370.
२. Clause X of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७२.
३. Clause XII of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७४.
४. Clause XIII of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७४.
५. Clause XIX of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७४.
६. Clause XXI of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७५.
७. Clause XXIII of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७५.
८. Clause XX of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७४.

प्रस्तावित कार्य के विरुद्ध अपने मत का अभिलेख करते तो राज्य-मंत्री उनकी सम्पत्ति के विरुद्ध[१] काम करने के अपने कारणो का अभिलेख करके उक्त कार्य कर सकता था। किन्तु भारतीय राजस्व के अनुदान अथवा विनियोग के सबध मे उसे परिषद की सम्मति से कार्य करना अनिवार्य था जिसमे निर्णय बहुमत पर निर्भर होता।[२] भारत के विभिन्न अधिकारियो के नाम-निर्देशन अथवा पद-नियुक्ति के अनुग्रहाधिकार के विभाजन और वितरण-सबधी विनियम बनाने मे भी राज्य-मत्री को परिषद् का बहुमत मानना आवश्यक था।[३] साथ ही भारत-सरकार की ओर से क्रय, विक्रय, सौदा करने और ऋण उगाहने के लिए और भारत-सरकार की सारी वास्तविक और निजी सम्पत्ति के मामलों में भी परिषद् का बहुमत ही मान्य होता। राज्य-मत्री को गवर्नर-जनरल के पास गुप्त राज-पत्र भेजने और वहाँ से गुप्त-राज-पत्र प्राप्त करने का अधिकार भी दिया गया। इन राज्य-पत्रो को परिषद् के समक्ष रखने की आवश्यकता नही थी। सभापति अविलब्य राज्य-पत्रो को परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किये बिना ही भारत भेज सकता था किन्तु उस विषय को अविलब्य समझने के कारण बताना उसके लिए आवश्यक था। परिषद की बैठको का समय सभापति निश्चित करता, किन्तु सप्ताह मे कम-से-कम एक बैठक होना आवश्यक था।[४]

एक्ट ने चौथी बात यह की कि उसने पद-नियुक्ति के अनुग्रहाधिकार को राज्यसत्ता, सपरिषद् राज्य-मत्री[५] और भारतीय अधिकारियो मे विभाजित कर दिया। ऐसी सब नियुक्तियाँ और पदोन्नति जो भारत-स्थित अधिकारियो के हाथो मे हैं वे भविष्य मे भी उन्ही नियमो, विनियमो और प्रचलनो के अनुसार उन्ही हाथो मे बनी रहेगी। सिविल सर्विस की नियुक्तियाँ परीक्षा मे प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर होगी जिसके विनियम सिविल सर्विस आयोगकों की सहायता से सपरिषद् राज्य-मत्री द्वारा बनाए हुए होगे।

---

१. Clause XXV उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७६.
२. Clause XI. Keith · Speeches on Indian Policy, page 378.
३ Clause XXX उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७७.
४. Clause XXII उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७५.
५. सैनिक नियुक्तियो के अनुग्रहाधिकार को राज्य-मत्री और उसकी परिषद् में विभाजित किया गया।
Clause XXX Keith : Speeches and Documents on Indian Policy, vol, page 377.

एक्ट ने पाँचवी बात यह की कि कम्पनी की स्थल और जल सेना को, राज्य-सत्ता के अधिकार मे सौप दिया। इनको "हर मैजेस्टी की भारतीय सेना और जलसेना समझा जायगा। इनका कार्य-क्षेत्र, उन्ही प्रदेशो मे, उन्ही शर्तों पर और यथापूर्व वेतन, पेन्शन, भत्ता और विशेषाधिकार के अनुसार होगा। इनकी पदोन्नति भी उसी भाँति होगी जैसी कि उक्त कम्पनी की सेवा मे होती।[1] भविष्य मे भारतीय सेना मे नई भर्ती के नियम और उसकी शर्तें बदलने का राज्य-सत्ता को अधिकार दिया गया।

एक्ट ने छठी बात यह की कि उसने सपरिषद् राज्य-मत्री के लिए पार्लियामेण्ट के दोनो भवनो के समक्ष गत वर्ष से पहले वर्ष का आर्थिक लेखा प्रस्तुत करने का नियम बनाया। इस लेखे के साथ मे भारत की नैतिक और भौतिक प्रगति और स्थिति के प्रकटीकरण के लिए एक वक्तव्य भी प्रस्तुत करने के लिए कहा गया।[2] एक्ट ने यह भी स्पष्ट किया कि युद्ध आरभ करने के लिए भारत मे आदेश भेजने के तीन महीने के अन्दर ही पार्लियामेण्ट मे उसका ब्यौरा दिया जाय। साथ ही यह भी कहा कि भारतीय राजस्व का पार्लियामेण्ट के दोनों भवनो की स्वीकृति के बिना भारतीय सीमाओ के बाहर[3] किसी सैनिक काम के लिए उपयोग नही किया जायगा।

अन्त मे १८५८ के एक्ट ने सपरिषद् राज्य-मत्री को एक सयुक्त निकाय बना दिया जो भारत और इगलैंड मे अभियोग का वादी अथवा प्रतिवादी हो सकता था।

( ७ )

भारत के श्रेष्ठतर शासन के लिए इस एक्ट को २ अगस्त १८५८ को राजकीय स्वीकृति मिली। १ सितम्बर को कोर्ट आंव डाइरेक्टर्स की 'अन्तिम (और) गभीरतापूर्ण सभा' हुई और कम्पनी ने "पूर्व मे अपने सेवको के नाम अन्तिम आदेश दिये," भारत-स्थित अपने अधिकारियो की बहुत प्रशसा की और अपने उद्योग और साहस, और अपनी चतुराई से बनाए हुए साम्राज्य को अपनी राज्य-सत्ता को इन हृदयस्पर्शी शब्दो मे प्रदान किया –

"हर मैजेस्टी इस मूल्यवान उपहार को—इस विस्तृत भारत देश और वहाँ के परिपूर्ण करोड़ो निवासियो को स्वय अपने नियत्रण मे ले किन्तु वे उस बडी

१. Clause LVI Keith Speeches on Indian Policy page 380
२. Clause LVI उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७९
३. Clause IV of the Act उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ३८०

कम्पनी को जिससे उन्हे यह (उपहार) प्राप्त हुआ है विस्तृत न करे, और उस (कम्पनी) की सफलता से सीखे जाने वाले पाठो को भुला न दे।"[१]

इस प्रकार भारत मे ईस्ट इडिया कम्पनी के राज्य का अन्त हो गया।

१ Smith The Oxford History of India page 707

# भाग २

## भारत में ब्रिटिश राज्य

## युग १

( सन् १८६१ से १८९२ तक )

## पाँचवाँ अध्याय

# प्रतिनिधि संस्थाओं का आरम्भ

( १ )

सन् १८५८ के भारतीय शासन एक्ट के बनने से भारतीय इतिहास का एक बडा युग समाप्त हुआ और एक दूसरा बडा—ब्रिटिश राज्य का युग आरम्भ हुआ। १ नवम्बर १८५८ को इस हस्तान्तरण की राजकीय उद्घोषणा हुई। इस उद्घोषणा की भाषा सुन्दर और शालीन थी और वह उदारता, अनुग्रह, मित्रता और न्याय की भावना से परिपूर्ण थी। उसमे देशी राज्यो के शासको को उनके अधिकारो, उनके मान और उनकी प्रतिष्ठा को बनाए रखने का और सर्वसाधारण को धर्म की स्वतन्त्रता और न्याय के सरक्षण का आश्वासन था। साथ ही इस बात का विश्वास दिलाया गया कि किसी पद की नियुक्ति के लिए जाति और धर्म के कारण कोई भेद-भाव नही किया जायगा और वह नियुक्ति केवल शिक्षा, योग्यता और उपयुक्तता के आधार पर होगी।

( २ )

१८५७ के भारतीय विद्रोह का मुख्य कारण था शासको और शासितो के बीच सम्पर्क का अभाव। जैसा कि सर सैयद अहमद ने सकेत किया, परिषदो मे भारतीयो का निषेध करने की नीति ने सरकार को जनमत जानने के अवसर से वंचित कर दिया। साथ ही उक्त नीति के कारण ऐसी कोई भी सम्पर्क रेखा न थी जहाँ से दृष्टिकोण और उद्देश्य के सम्बन्ध में सरकार और जनता के पारस्परिक भ्रम दूर किये जा सकें।[1] इसलिए सन् १८६० के अपने प्रसिद्ध लेख में सर बार्टल फ्रेयर ने परिषदो मे देशवासियो[2] को लेने पर ज़ोर दिया।

भारतीयो को प्रतिनिधित्व देने का प्रश्न, ब्रिटिश पार्लियामेट मे सन् १८५८ मे भी उठाया गया था, किंतु उस समय भी बहुत से देशवासी, अग्रेजो का सशस्त्र विरोध कर रहे थे। इसी कारण उस समय यह अधिकार देना अनीतियुक्त समझा गया। सन् १८६१ में, पहली बार भारत में विधान-कार्य के लिए भारतीयो को साथ लेने की व्यवस्था की गई।

---

१. C. L. Anand · Introduction to The History of Govt. in India Part II, pages 72 and 73.

२. Report on Indian Constitutional Reforms, 1918. page 38.

भारत मे विधि-निर्माण की व्यवस्था अत्यन्त दोषपूर्ण थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है पहली बात तो यह थी कि गैर-सरकारी व्यक्ति—यूरोपियन और भारतीय दोनो ही—विधान-कार्य से दूर रखे जाने थे। दूसरी बात यह थी कि विधान-परिषद् के पास न तो पर्याप्त समय था, और न प्रत्येक प्रान्तीय सरकार के एक सरकारी प्रतिनिधि होने की दशा मे भी उसे सम्बन्धित विषयो की पर्याप्त जानकारी ही थी, जो वह बम्बई, मद्रास और अन्य नए प्रान्तों के लिए आवश्यक विधान बना सकती। तीसरी बात यह थी कि विधान-परिषद् ने अपने हाथ मे ऐसे काम ले रखे थे जो तत्कालीन शासन-व्यवस्था की दृष्टि से बिलकुल असगत थे। वह परिषद् सन् १८३३ के एक्ट-निर्माताओ के उद्देश्य के विरुद्ध, एक आग्ल भारतीय लोक-सभा (हाउस ऑव कॉमन्स) की भाँति कार्यपालिका के कामो पर आपत्ति करने लगी थी। और उससे गुप्त राज-पत्रो को भी अपने सामने रखने के लिए जोर देने लगी थी। उसने विधान-योजनाओ को स्वय विचार करने से पहले राज्य-मन्त्री के समक्ष रखना अस्वीकार कर दिया, साथ ही उसने राज्य-मन्त्री (अथवा १८५८ से पहले बोर्ड ऑव कट्रोल के सभापति) द्वारा बताए हुए विधानो को बनाने के लिए भी मना कर दिया। सर चार्ल्स वुड ने बार-बार विरोध किया और यह कहा कि परिषद को ऐसे अधिकार देने का उनका कोई भी उद्देश्य नही था किंतु जैसा कि प्रो डाडवेल ने कहा "किसी विधेयक के परिणामो को अपने उद्देश्यानुसार सीमित करने मे असफल रहने वाले, न तो वह पहले विधान-निर्माता थे और न अन्तिम।"[१] सन् १८६० मे लॉर्ड कैनिंग ने भारत-मन्त्री (अर्थात् भारतीय विषयो मे सम्बन्धित राज्य-मन्त्री) को एक राज-पत्र मे स्थिति की कठिनाइयो को जोरदार शब्दो में व्यक्त किया। इस राज-पत्र मे उक्त स्थिति को ठीक करने के लिए लॉर्ड कैनिंग ने अपने प्रस्ताव भी रखे थे। इस बीच भारत मे कुछ ऐसी घटनाएँ हुईं जिनके कारण तुरन्त ही १८६१ का भारतीय परिषद् एक्ट (Indian Councils Act) बनाना पडा।" आय-कर-विधेयक के बारे मे मद्रास-सरकार और सर्वोच्च सरकार मे मतभेद हुआ, विधान-परिषद् के किसी अधिनियम के बिना ..... किसी अविनियमित प्रान्त मे विधि प्रस्तुत करने की मान्यता पर शका की गई। अन्त मे गवर्नर-जनरल की विधान-परिषद् ने एक सम्बोधन द्वारा यह माँग की कि भारत-मन्त्री और भारत-सरकार के बीच (किसी विशेष) पत्र- व्यवहार को उसके सामन प्रस्तुत किया जाय।"[२] अतः ६ जून १८६१ को सर चार्ल्स वुड ने

१ Dodwell. History of India from 1858—1918 p 235.
२. Report on Indian Constitutional Reforms 1918. page 39.

एक विधेयक प्रस्तुत करने के लिए हाउस ऑव कॉमन्स की आज्ञा ली। यही विधेयक बाद मे १८६१ का भारतीय परिषद् एक्ट बन गया।

( ३ )

भारत के वैधानिक इतिहास मे १८६१ के भारतीय परिषद एक्ट के महत्व के दो मुख्य कारण है। एक तो यह, कि उसने गवर्नर-जनरल को विधान के कार्य मे भारतीयो को साथ लेने का अधिकार दिया, दूसरा यह कि उसने बम्बई और मद्रास की सरकार को फिर से विधान-कार्य का अधिकार दिया, और अन्य प्रान्तो में भी वैसी ही विधान-परिषद् बनाने की व्यवस्था की। इस प्रकार विधान की उस नीति का आरम्भ हुआ जिसके फलस्वरूप अन्त मे प्रान्तो को सन् १९३७ मे लगभग पूर्ण आतरिक स्वायत्तता (Complete Internal Autonomy) प्रदान की गई। तत्कालीन भारत-मन्त्री सर चार्ल्स वुड ने पार्लियामेट मे अपने आरम्भिक व्याख्यान मे भारतीयो को प्रतिनिधित्व देने के प्रश्न की विस्तृत विवेचना की किंतु उस ( प्रतिनिधित्व के अधिकार ) को प्रदान करना नितान्त असभव माना गया।[1] किंतु देशी राज्यो के शासको, सामन्तो और उच्च वर्ग के भारतीयो को "अपने अंग्रेजो राज्य के अनुकूल बनाने के उद्देश्य से"[2] विधान-कार्य मे साथ लेना आवश्यक समझा गया। अत एक्ट मे गवर्नर-जनरल को विधान कार्य के लिए कार्यपालिका-परिषद् मे कुछ अतिरिक्त सदस्यो को नामनिर्देशित कर लेने का प्राधिकार दिया गया।

सन् १८६१ के एक्ट ने एक बात तो यह की कि उसने गवर्नर-जनरल की कार्यपालिका-परिषद् मे एक और—पाँचवाँ सदस्य वढाया जो विधि वृत्ति से सम्बन्धित कोई न्यायकार अथवा वकील होना था।[3] परिषद् के पाँच सदस्यो मे से तीन सदस्य ऐसे व्यक्ति होने थे जो नियुक्ति से पहले भारत मे कम-से-कम दस वर्ष तक सेवा कर चुके हो।[4] शेष दो मे से एक सदस्य स्कॉटलैंड का कम-से-कम पाँच वर्ष का अनुभवी बैरिस्टर या एडवोकेट होना था।[5] भारत-मन्त्री को सेनापति को

---

१. Pradhan India's Struggle for Swaraj, page 45.

२. ६ जून १८६१ का सर चार्ल्स वुड का व्याख्यान देखिये। Keith: Speeches and Documents on Indian Policy. Vol. II page 7.

३. Clause III of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २१

४. Clause IX of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २५

५. Clause VI of the Act. उपर्युक्त पुस्तक

(परिषद् का) असाधारण सदस्य नियुक्त करने का अधिकार था। जिस प्रान्त मे परिषद् की बैठक हो रही हो, उसके गवर्नर अथवा उप-गवर्नर को असाधारण सदस्य की तरह परिषद् मे सम्मिलित करने की व्यवस्था भी की गई। एक्ट ने सपरिषद् गवर्नर-जनरल को, केन्द्र से गवर्नर-जनरल की प्रत्याशित अनुपस्थिति के लिए परिषद् का सभापति नियुक्त करने का प्राधिकार दिया। नये विधि और विनियमो पर अपनी स्वीकृति देने, न देने अथवा उनको सम्राट् की स्वीकृति के लिए सुरक्षित रखने के अधिकार के अतिरिक्त इस सभापति को गवर्नर-जनरल के सारे अधिकार प्राप्त थे।[१] सपरिषद् गवर्नर जनरल को विधि और विनियम बनाने के अतिरिक्त अपने सब अधिकार गवर्नर-जनरल को दे सकने का प्राधिकार दिया गया था।[२]

एक्ट ने गवर्नर-जनरल को परिषद् का काम सुचारू रूप से चलाने के लिए नियम और आदेश बनाने का अधिकार दिया।[३] लॉर्ड कैनिग ने इस अधिकार का उपयोग भारत-सरकार मे विभाग-व्यवस्था चलाने के लिए और विभागाध्यक्ष सदस्य (Member-in-charge of the Department) को अपने विभाग के छोटे विषयो का स्वय तथा अधिक महत्त्वपूर्ण विषयो का वाइसराय के परामर्श से निपटारा करने के लिए किया।[४]

सन् १८६१ के एक्ट ने दूसरी बात यह की कि उसने विधि और विनियम बनाने के लिए वाइसराय की परिषद् का विस्तार किया। परिषद् मे अतिरिक्त सदस्यो की सख्या छै से कम और बारह से अधिक नही होनी थी। इस सम्बन्ध मे यह बात आवश्यक थी कि इस प्रकार नियक्त किये हुए व्यक्तियो मे गैर-सरकारी सदस्यो की सख्या आधे से कम नही होगी।[५] अतिरिक्त सदस्यो का कार्य-काल दो वर्ष था। सन् १८५३ के एक्ट के अनुसार बनाई हुई परिषद् द्वारा हथियाए हुए कामो को ध्यान मे रखते हुए, इस बार सर चार्ल्स वुड ने परिषद् के अधिकारो को सावधानी से सीमित और निश्चित कर दिया था।

---

१ Clause IX of the Act, Keith : Speeches and Documents on Indian Policy. page 25.

२. Clause VI of the Act. उपर्युक्त पुस्तक,

३. Clause VIII of the Act. उपर्युक्त पुस्तक

४. सन् १८५९ मे लॉर्ड कैनिग ने विभाग-व्यवस्था को आरम्भ तो कर दिया था पर उसके लिए कोई भी वैध निर्देश अथवा आधार नही था। सन् १८६१ के एक्ट से यह आधार मिला।

५. Clause XIX of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २८-२९

प्रदत्त विधानाधिकार भी सकुचित थे। गवर्नर जनरल की पूर्व स्वीकृति के बिना सार्वजनिक ऋण, सार्वजनिक राजस्व, धर्म, सेना और जल सेना से सम्बन्धित प्रस्ताव, प्रस्तुत नही किये जा सकते थे। गवर्नर-जनरल को किसी प्रस्ताव को निषिद्ध करने का और अध्यादेश बनाने का पूर्ण अधिकार था।[1] किसी एक्ट को अमान्य करने का राज-सत्ता का अधिकार सुरक्षित था। राज-सत्ता और पार्लियामेंट के साधारण अधिकार का स्पष्ट शब्दो मे सरक्षण किया गया था।

१८६१ के एक्ट ने तीसरी बात यह की कि उसने मद्रास और बम्बई की सरकारो को विधियो को बनाने और उनका सशोधन करने का अधिकार फिर से प्रदान कर दिया। इस सम्बन्ध मे कुछ विषयो[2] के लिए गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक था। गवर्नर-जनरल को इन विधियो को निषिद्ध करने का और राजसत्ता को भारत-मत्री के परामर्श पर इन्हे अमान्य कर देने का अधिकार था।

प्रान्तीय विधान-कार्य के लिए हर प्रेसीडेन्सी के गवर्नर को प्रेसीडेन्सी के महाधिवक्ता ( Advocate-General ) को अपनी परिषद् का सदस्य नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। साथ ही परिषद के लिए अन्य अतिरिक्त सदस्य भी गवर्नर द्वारा नियुक्त किये जाते थे। इनकी सख्या चार से कम और आठ से अधिक नही होती थी। इस सम्बन्ध मे यह आवश्यक था कि इस प्रकार नियुक्त किये हुए व्यक्तियो मे गैर-सरकारी सदस्यो की सख्या आधे से कम नही होगी।[3] गवर्नर-जनरल को फोर्ट विलियम प्रेसीडेन्सी के बगाल-क्षेत्र के लिए भी ऐसी ही विधान-परिषद् बनाने के लिए निर्देश किया गया। इसके अतिरिक्त सपरिषद् गवर्नर-जनरल को उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त और पजाब नाम से प्रसिद्ध प्रदेशो के लिए भी ऐसी ही व्यवस्था करने का अधिकार दिया गया।[4] क्रमश जनवरी १८६२ मे बगाल के लिए, सन् १८८६ मे उत्तर-पश्चिमी प्रान्त और अवध के लिए और सन् १८९७ मे पजाब के लिए, विधान-परिषद् की स्थापना हुई।

---

१. Clause XXII of the Act. Keith : Speeches and Documents an Indian Policy page 30.

२ भारत-सरकार के सार्वजनिक ऋण, सार्वजनिक राजस्व, मुद्रा, डाक, तार, सेना, एक्स्व, प्रतिलिप्यधिकार, और विदेश-नीति से सबन्धित प्रस्तावो के लिए पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक था।

३. Clause XXIX of the Act. Keith : उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ३५ और ३६.

४. Clause 44 of the Act उपर्युक्त पुस्तक.

अन्त मे गवर्नर-जनरल को विधान-कार्य के लिए नये प्रान्त बनान और उनके लिए उप-गवर्नर नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। साथ ही गवर्नर-जनरल को किसी प्रेसीडेन्सी, प्रान्त या प्रदेश को विभाजित करने अथवा उसकी सीमाएँ घटाने-बढाने का भी अधिकार दिया गया।

( ४ )

सन् १८६१ मे पार्लियामेण्ट ने दो महत्त्वपूर्ण एक्ट और बनाए। इनमे से एक का नाम था, १८६१ का इडियन सिविल सर्विस एक्ट। इस एक्ट का मुख्य उद्देश्य, कुछ पहली नियुक्तियो को वैध बनाना था। उक्त नियुक्तियाँ, १७९३ के अधिकार-पत्र एक्ट की शर्तों के विरुद्ध,[1] किन्तु समय की आवश्यकतानुसार, कर दी गई थी। भविष्य मे लगभग सारी उच्च असैनिक नियुक्तियाँ सिविल सर्विस के सदस्यो के लिए सुरक्षित रखी जानी थी। इन नियुक्तियो का एक परिशिष्ट मे निर्देश किया गया और इसमे कार्यपालिका-परिषद के सदस्य, भारत-सरकार और विभिन्न प्रान्तीय सरकारो के विभागो के कार्यवाहक (Secretary), मुख्य लेखाध्यक्ष (Accountant General), राजस्व बोर्ड के सदस्य आदि से लेकर सहायक कलक्टर तक सभी सम्मिलित थे।

सपरिषद् भारत-मत्री द्वारा निर्मित नियमो के अनुसार, सिवल सर्विस आयोगको के निरीक्षण मे उक्त कवेनेण्टेड सिविल सर्विस की भर्ती के लिए लन्दन मे प्रतिवर्ष परीक्षा मे प्रतिद्वन्द्विता द्वारा छाँट की जाती थी। सन् १८६० मे परीक्षार्थियो के लिए अधिकतम आयु की अवधि को घटाकर २२ वर्ष और १८६६ मे फिर घटाकर २१ वर्ष कर दिया गया। इसका अर्थ यह था कि भारतीय नवयुवको को कवेनेण्टेड सिविल सर्विस मे—और १८६१ के एक्ट के अनुसार फलत. देश की सारी उच्च असैनिक नियुक्तियो मे प्रवेश पाने के लिए द्वार बन्द कर दिया गया और इस सम्बन्ध मे पार्लियामेण्ट और राज-सत्ता द्वारा दिये हुए सारे आश्वासनो की अवज्ञा की गई। तत्कालीन भारतीय सामाजिक एव शिक्षण परिस्थितियो मे, भारतीयो के लिए उक्त कुमारावस्था मे लन्दन जाकर परीक्षा में स्पर्धा करना सभव नही था। इस सम्बन्ध मे यह कहना उचित होगा कि सन् १८६० मे भारतीय परिषद् के पाँच सदस्यो की एक कमेटी नियुक्त की गई थी

१. १७९३ के एक्ट के अनुसार परिषद्-सदस्य के पद के नीचे की सारी असैनिक नियुक्तियाँ प्रेसीडेन्सी के सिविल सेवको के लिए सुरक्षित रखी गई थी। पदोन्नति कार्य-काल के अनुसार विनियमित थी। इन प्रतिबन्धो को माना नही गया। इसी कारण १८६१ के एक्ट से ऐसी नियुक्तियो को वैध बनाने की आवश्यकता हुई।

और इसे भारतवासियो के प्रति पार्लियामेण्ट के आश्वासनो को पूरा करने के लिए मार्ग बताने का काम सौपा गया था। इस कमेटी ने एक-मात्र सभव मार्ग की सिफारिश की कि सिविल सर्विस की भर्ती के लिए इग्लैण्ड और भारत मे सम-कालिक परीक्षा की व्यवस्था की जाय। सिविल सर्विस आयोगकों के यह कहने पर भी, कि उन्हे उक्त व्यवस्था करने मे कोई प्रत्याशित कठिनाई नही है, उपर्युक्त सिफारिश को कार्यान्वित नही किया गया।[1] इस सम्बन्ध मे यह एक ध्यान देने योग्य बात है कि इस विषय पर तत्कालीन भारत-सरकार ने जो सरकारी पत्र प्रकाशित किये थे उनमे १८६० की कमेटी की रिपोर्ट सम्मिलित नही की गई थी।

( ५ )

१८६१ का दूसरा एक्ट था भारतीय उच्च-न्यायालय (Indian High Courts) एक्ट। सन् १८३३ और १८५३ के एक्टो के अनुसार नियुक्त किये हुए विधि-आयोगको के परिश्रम के फलस्वरूप विधियो और पद्धतियो को सहिताबद्ध किया गया था। दीवानी पद्धति सहिता १८५९ मे, भारतीय दण्ड सहिता १८६० मे और फौजदारी पद्धति सहिता १८६१ मे वैध हो गई। सन १८६१ का भारतीय उच्च न्यायालय एक्ट बनाकर भारत मे न्याय-कार्य को सुधारने के लिए एक और महत्त्वपूर्ण पग आगे बढाया गया। इस एक्ट ने राज-सत्ता को स्पष्ट शब्दो मे कलकत्ता, मद्रास और बम्बई मे उच्च न्यायालय स्थापित करने का अधिकार दिया। इनकी स्थापना पर पुराने सर्वोच्च न्यायालय और सदर दीवानी तथा फौजदारी न्यायालय तोड़कर उनके क्षेत्र-अधिकार नये उच्च न्यायालयो को हस्तान्तरित होने थे। इन हर एक नए न्यायालयो मे एक मुख्य न्यायाधिपति और अधिक-से-अधिक पन्द्रह अन्य न्यायाधिपति होने थे जिनमे से "मुख्य न्यायाधिपति सहित कम-से-कम एक तिहाई के लिए नियुक्ति से पहले बैरिस्टर होना आवश्यक था और कम-से-कम एक तिहाई के लिए कवेनेण्टेड सिविल सर्विस का सदस्य होना आवश्यक था।"[2] अवशिष्ट स्थानो की पूर्ति ऐसे व्यक्तियो से होनी थी जो कम-से-कम पाँच वर्ष तक न्यायाधिकारी रहे हो अथवा दस वर्ष तक वकील रहे हो। इन न्यायाधिपतियो का कार्य काल "हर मैजिस्टी के प्रसाद-पर्यन्त था"।[3] उच्च न्यायालयो को स्थापित करने के निमित्त

१. Mr. Ramsay Macdonald's book. Government of India. page 103.

२ Clause II of the Act. Mukherjee: Indian Constitutional Documents, vol. I page 391.

३. Clause IV of the Act. उपर्युक्त पुस्तक।

राजकीय आज्ञा मे, उन न्यायालयो का क्षेत्राधिकार व्यक्त किया जाना था। एक्ट ने पुराने न्यायालयो के क्षेत्राधिकार के अतिरिक्त, इन नये न्यायालयों को अपने अपील क्षेत्राधिकार के अन्तर्गत सब न्यायालयो का अधीक्षण करने, उनके आज्ञा-पत्र मँगाने, अभियोग को हस्तान्तरित करने और "उनके कार्य तथा उनकी पद्धति को विनियमित करने के लिए नियम बनाने का अधिकार भी दिया।"[१] अन्त मे एक्ट ने हर मैजेस्टी को इन न्यायालयो के क्षेत्राधिकार के बाहर अपने भारतीय साम्राज्य के अन्य किसी प्रदेश के लिए उक्त प्रकार के न्यायालय बनाने का अधिकार दिया।[२] सन् १८६६ मे उत्तरी पश्चिमी प्रान्त के लिए उच्च न्यायालय स्थापित करने के निमित्त इस अधिकार का उपयोग किया गया।

सन् १८६५ के भारतीय उच्च न्यायालय एक्ट ने सपरिषद् गवर्नर-जनरल को किसी न्यायालय के क्षेत्राधिकार से किसी प्रदेश या स्थान को दूसरे[३] न्यायालय के क्षेत्राधिकार मे हस्तान्तरित करने का अधिकार दिया। सन् १८६५ के एक्ट ने सपरिषद् गवर्नर-जनरल को देशी राज्यो मे रहने वाली, सम्राज्ञी की ईसाई प्रजा को उच्च न्यायालयो के क्षेत्राधिकार मे लाने का भी अधिकार दिया।

( ६ )

सन् १८६१ मे एक एक्ट और बनाया गया जिससे ईस्ट इंडिया कम्पनी की यूरोपीय सेना की पृथक् सत्ता समाप्त हो गई। इन यूरोपियनो को नियमित सेना मे सम्मिलित होने को अथवा पद-मुक्त होने को कहा गया। इसका अर्थ भारत मे ब्रिटिश सैन्य-शक्ति को घटाना नही था। इसके स्थान पर १८५७ के विद्रोह के बाद सेना के पुनर्संगठन ने उसको काफी बढा दिया था।

१८५७ के भारतीय विद्रोह के समय भारतीय सेना मे ४०,००० यूरोपियन और २,१५,००० भारतीय थे। ब्रिटिश राजकीय सैन्य दल की कुल सख्या २४,२६३ थी।[४] इसके अतिरिक्त भारतीय सेना मे कम्पनी के लगभग १५,००० ब्रिटिश सैनिक थे। कम्पनी की सेना के तीन पृथक् सैन्य-दल थे—एक बम्बई प्रेसीडेन्सी के लिए, एक बगाल के लिए और एक मद्रास के लिए। इनकी स्वतत्र रूप से, विभिन्न नियमानुसार भर्ती होती थी। कम्पनी के इन नियमित

---

१ Clause XV of the Act Mukherji Indian Constitutional Documents.

२. Clause CXI of the Act उपर्युक्त पुस्तक।

३. Clause III of the Act. उपर्युक्त पुस्तक vol. I, page 412.

४. Appendix I. The Army in India and its Evolution (Government Publication) page 195.

सैन्य दलों के अतिरिक्त अन्य स्थानीय और अनियमित[1] सैन्य-दल भी थे जो देश के विभिन्न भागो मे तैयार किये गए थे।[2] कम्पनी के विभिन्न प्रकार के नियमित, अनियमित और स्थानीय सैन्य-दलो के अतिरिक्त, एक बहुत बडी पूरक देशी सेना धीरे-धीरे तैयार हो गई थी जो समय पर ब्रिटिश सरकार के काम आ सकती थी। यह सेना देशी राज्यो की थी और इसकी कुल सख्या ३५,००० थी।[3]

१८५७ के विद्रोह से पहले हर प्रेसीडेन्सी का अपना स्वतत्र सैन्य-सगठन था। यद्यपि युद्ध-काल मे दूसरी प्रेसीडेन्सियो मे लडने और सेवा करने के दायित्व को निश्चित रूप से माना जाता था किन्तु हर प्रेसीडेन्सी की अपनी पृथक् सेना थी। आरम्भ से ही इन सेनाओ को कितनी ही बार दूसरी प्रेसीडेन्सियो मे जाकर लडना पड़ा था किन्तु विभिन्न नियमानुसार भर्ती की हुई इन सेनाओ के पारस्परिक सहयोग मे कठिनाई होती थी। "बगाल की सेना का वर्गानुसार विभाजन था और उसमे उच्च वर्णों के लोग भर्ती किये गए थे। किन्तु बम्बई और मद्रास के सैन्य-दलो मे निम्न वर्णों के लोग[4] भी मिले हुए थे। कुछ प्रेसीडेन्सियो मे सैनिको को अपना कुटुम्ब अपने साथ रखने के लिए स्थान दिया जाता था और कुछ प्रेसीडेन्सियो मे ऐसी व्यवस्था नही थी। इसीलिए एक प्रेसीडेन्सी के सैनिक दूसरी प्रेसीडेन्सी मे जाकर सेवा करने के लिए तैयार नही होते थे। इस सम्बन्ध में कई बार व्यवहार मे आज्ञा भग की गई यहाँ तक कि कभी-कभी उसका रूप विद्रोहात्मक भी हो गया।[5] तथापि सेना मे अग्रेजो और भारतीयो का सम्बन्ध बडा मित्रतापूर्ण था। ब्रिटिश अधिकारियो को अपने सैनिको मे पूर्ण विश्वास था और उन्हें "भारतीय सैनिको पर कोई सन्देह नही था। भारत के अधिकाश तोपखाने देशी सैनिकों के हाथो मे थे।"[6]

१८५७ के बाद यह सब बदल दिया गया। १८५८ मे पील कमीशन नामक

---

१. अनियमित सेनाओ मे सबसे महत्वपूर्ण सेना (पजाब मे) सिखो, पठानो और अन्य लडाकू जातियो से तैयार की गई थी। Strachey India, Its Administration and Progress, page 477.

२. Chesney, Indian Polity, pages 285-286.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २८६.

४. The Army in India and its Evolution, page 15.

५. The Army in India and its Evolution, page 17.

६. Strachey: India; Its Administration and Progress, 477.

एक राजकीय आयोग नियुक्त किया गया और इसने १८५९ मे अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। पील कमीशन की सिफारिशो के अनुसार सन् १८६१ मे सेना का पुनर्संगठन किया गया।

यह सगठन तीन सिद्धान्तो पर अवलम्बित था। १८७९ के भारतीय सेना पुनर्संगठन-कमीशन ने अपनी रिपोर्ट मे पहले दो सिद्धान्तो को इस प्रकार बताया है; "विद्रोह के अनुभव ने दो बडे सिद्धान्त सिखाए है—एक तो देश मे अदम्य ब्रिटिश सैन्य-शक्ति बनाए रखना और दूसरा सिद्धान्त है, तोपखाने को यूरोपीय हाथो में रखना।"[१] १८५८ की सैन्य-सगठन की पजाब-कमेटी ने अपनी रिपोर्ट मे, तीसरा कुटिल सिद्धान्त इन शब्दो मे व्यक्त किया है,—पर्याप्त यूरोपीय सैन्य-दल द्वारा सतुलन के अतिरिक्त, प्रत्येक देशी सेना के विरुद्ध दूसरी देशी सेना का संतुलन है। .... उस भेद-भाव को बनाए रखा जाय जिसके कारण एक देश का मुसलमान दूसरे देश के मुसलमान से डरता अथवा घृणा करता है और भविष्य में सैन्य-दल उन प्रान्तीय और भौगोलिक सीमाओ के ही अनुसार बनाए जायँ जिनमे उक्त भेद-भाव और सघर्ष स्पष्ट हो।"[२]

फलतः सैन्य-सगठन की प्रान्तीय व्यवस्था को बनाए रखा गया और सेना के नियंत्रण का एकीकरण नही किया गया।

दूसरी बात यह की गई कि भारतीय सैन्य-शक्ति को काफी घटा दिया गया। "कुछ पैदल और घुडसवार टुकडियो को तोड दिया गया, कुछ को मिला दिया गया और कुछ विशेष टुकडियो को छोडकर सारे भारतीय तोपखाने को भी तोड दिया गया।"[३]

तीसरी बात यह की गई कि समरोचित और अन्य जातियो मे भेद किया गया और सेना के लिए भर्ती मुख्यत उत्तर भारत की इन कठिन समरोचित जातियो के लिए ही सीमित कर दी गई।

चौथी बात यह की गई कि बगाल और पजाब के अधिकाश सैन्य-दलो का, वर्ग के आधार पर, फिर से सगठन किया गया। "इसके अनुसार एक सैन्य-दल में तीन या चार स्थानो की तीन या चार विभिन्न जातियो के सैनिक होते थे किन्तु प्रत्येक वर्ग और जाति को पृथक् उपदल[४] मे रखा जाता था।" यह बात देशी

---

१ Strachey: India; Its Administration and Progress पृष्ठ ४७८ and Garratt An Indian Commentary, pages 201-2.

२. Garratt उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २०२ के एक उद्धरण का अनुवाद।

३. The Army in India and its Evolution, page 18.

४ Report of the Commission on Indian Army Organi-

सैनिको के परस्पर सतुलन की नीति के फलस्वरूप की गई। मद्रास और बम्बई की सेनाओ के लिए अब भी स्थानीय और मिश्रित आधार पर भर्ती होती थी। किन्तु बम्बई के सैन्य-दलों मे उत्तर भारत[1] के सिख और हिन्दुस्तानियो को भी मिला दिया गया।

पाँचवी बात यह की गई कि यूरोपीय सैन्य-दल की शक्ति को बहुत बढा दिया गया। "यह निश्चित किया गया कि अनुपात मे देशी सेना, यूरोपियन सेना के दूने से बहुत ज्यादा नही होनी चाहिए और हर प्रकार के तोपखाने पूरी तरह यूरोपीय हाथो मे ही रहने चाहिएँ।"[2] भारत मे ब्रिटिश सैनिको की अधिकतम सख्या ८०,००० निश्चित कर दी। सन् १८७९ मे इनकी वास्तविक सख्या ६५,००० और भारतीय सैनिको की सख्या १,३५,००० थी।[3] "देश के सारे किलो पर··· ब्रिटिश तोपखानो का आधिपत्य था। विभिन्न प्रकार की भारी तोपो को चलाने वाले सभी सैनिक यूरोपीय थे।"[4]

अन्तिम बात थी सैनिक-अफसरो की नियत सख्या के विषय मे पुरानी व्यवस्था के दो दोषो का सुधार—एक तो विशिष्ट कार्यवश अफसरो के बाहर जाने पर उनकी अनुपस्थिति मे उनके कार्य-भार को उचित रूप से सँभालने के लिए सुचारु व्यवस्था की गई, दूसरी बात यह कि सेवाओ मे पदोन्नति की विभिन्नता को सुधारने के लिए तीन अफसर सैन्य-दल बनाए गये। सारे सेना के अफसरो को, चाहे वे किसी सेना या दल या किसी असैनिक पद पर काम करते हो, सम्बन्धित प्रान्त के अफसर दल का सदस्य होना आवश्यक था।

सन् १८६१ का सैन्य-पुनर्संगठन १८६३ में सम्पूर्ण हुआ। कुछ वर्षों मे यह अनुभव किया गया कि नई व्यवस्था भी दोष-रहित नही थी। सन् १८७८-८० के अफगान-युद्ध के कारण स्थिति का फिर से परीक्षण करना आवश्यक हो गया। फलत· १८७९ में एक दूसरा आयोग[5] नियुक्त किया गया। इस आयोग को

---

zation 1879. Quoted by Strachey: India: Its Administration and Progress. page 480.

१. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४८०

२. Report of the Commission, Strachey उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४८०

३ Indian Army and its Evolution. page 21.

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १९

५. यह कमीशन ईडन-कमीशन नाम से प्रसिद्ध है।

सैनिक-व्यय घटाने की मदे खोजने का और युद्ध की दृष्टि से भारतीय सेना की क्षमता बढाने के लिए सिफारिशे करने का काम सौंपा गया।[1]

कमीशन की सिफारिश का तात्कालिक परिणाम यह हुआ कि भारतीय घुड़-सवार सैन्य-दल और पैदल सैनिको की टुकडियो मे ब्रिटिश अधिकारी नियुक्त कर दिए गए। साथ ही भारतीय सेना को घटाया गया और चार घुडसवार सैन्य-दल और १८ पैदल सैन्य-दल तोड दिए गए। इसके अतिरिक्त हर घुडसवार दल की शक्ति बढाकर ४९९ के स्थान पर कुल ५५० कर दी गई और प्रत्येक पैदल सैन्य-दल की शक्ति बढाकर ७१२ के स्थान पर ८१२ कर दी गई।[2]

ईडन-कैमीशन की सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश प्रेसीडेन्सी सेनाओ को वस्तुत. तोड देने के सम्बन्ध मे थी किन्तु इसको सन् १८९५ तक कार्यान्वित नही किया गया। सैन्य-नियत्रण और सगठन के एकीकरण से सम्बन्धित परिवर्तनो का वर्णन बाद के अध्याय मे किया जायगा।[3]

कम्पनी के हाथो से राजसत्ता के हाथो मे शक्ति के हस्तान्तरण के फलस्वरूप ये परिवर्तन हुए १८५८ मे कम्पनी की जल-सेना भी राजसत्ता को हस्तान्तरित कर दी गई किन्तु इसे राजकीय (ब्रिटिश) जल-सेना में मिलाया नही गया वरन् सन् १८६३ मे उसको तोड दिया गया। यह निश्चय किया गया कि भारत की समुद्री रक्षा का दायित्व राजकीय (ब्रिटिश) जल-सेना पर रहे। भारत, ब्रिटिश राज्य-काल मे अपनी समुद्री रक्षा के लिए, सदैव (ब्रिटिश) राजकीय जल-सेना पर निर्भर रहा और उसने उक्त जल-सेना के निर्वाह के लिए १ लाख पौंड का वार्षिक अशदान दिया। पहले महायुद्ध के बाद एक राजकीय भारतीय जल-सेना (Royal Indian Marine) बनाई गई किन्तु उसका काम सेनाओ के यातायात, बन्दरगाहो के निरीक्षण और समुद्री माप तक ही सीमित था।

---

१. The Army in India and its Evolution. page 21.

२. उपर्युक्त पुस्तक, page 21.

३ इसी पुस्तक का अध्याय १३ देखिये।

छठा अध्याय

# शासन और राजनीति में परिवर्तन

( १ )

सन् १८६१ का विधान बड़े मौलिक महत्त्व का था। उसने १८६१ के एक्ट के साथ भारतीय शासन के लिए एक पूरा ढाँचा तैयार किया, जो बाद में विधानों द्वारा बहुत से परिवर्तन किये जाने पर भी भारत मे ब्रिटिश राज्य के अन्त तक बना रहा।

शासन के ढाँचे में पहला[1] परिवर्तन १८६९ के भारत-शासन-एक्ट द्वारा किया गया। इसके अनुसार भारत-मन्त्री को भारत-परिषद् के रिक्त होनेवाले स्थानों को पूर्ति करने का अधिकार दिया गया। परिषद के सदस्यो का कार्य-काल जो पहले सदाचार पर्यंत था, अब दस वर्ष के लिए निश्चित कर दिया गया।

सन् १८७० मे एक और एक्ट बनाया गया। यह सन् १८७० के भारतीय परिषद् एक्ट ( Indian Councils Act ) नाम से प्रसिद्ध है। इसके अनुसार पहली बात तो यह हुई कि सपरिषद् गवर्नर जनरल को कुछ विषयो में विनियम बनाने का अधिकार दिया गया। इनको विधान-परिषद् के समक्ष रखने को आवश्यकता नही थी। एक्ट के विभाग न० १ को किसी प्रान्त या क्षेत्र पर लागू कर देने पर वहाँ की कार्यपालिका सपरिषद् गवर्नर-जनरल के समक्ष विनियमों के लेख और उनके प्रस्ताव करने के कारण प्रस्तुत कर सकती थी। उक्त लेखों को सपरिषद् गवर्नर-जनरल की स्वीकृति मिल जाने पर, वे नियम, विधान-परिषद् में प्रस्तुत हुए बिना और बिना उसकी स्वीकृति पाए ही, केन्द्रीय और स्थानीय सूचना-पत्रो (Gazettes) मे प्रकाशित होने पर वैध हो जाते थे।

सन् १८७० के एक्ट ने दूसरी बात यह की कि उसने यह नियम बनाया कि जिस प्रदेश मे केन्द्रीय विधान-परिषद् की बैठक हो रही हो, वहाँ के उप-गवर्नर अथवा चीफ कमिश्नर को एक अतिरिक्त सदस्य के रूप में परिषद के काम में सम्मिलित किया जाय।

इस एक्ट ने तीसरी बात यह की कि उसने गवर्नर-जनरल को यह अधिकार दिया कि यदि उसके मतानुसार भारत में अथवा उसके किसी भाग में, शान्ति,

---

१. सन् १८६५ के एक्ट के अनुसार सपरिषद गवर्नर-जनरल का वैधानिक क्षेत्राधिकार पहले तो देशी राज्यों की ब्रिटिश प्रजा पर बढ़ाया गया। बाद में १८६९ के एक्ट के अनुसार यह अधिकार सम्राट् की सारी भारतीय प्रजा पर दे दिया गया चाहे कोई व्यक्ति भारत में रह रहा हो अथवा विदेश में हो।

सुरक्षा और ब्रिटिश हितों को कोई संकट है तो वह अपनी परिषद् के बहुमत के विरोध मे भी उक्त बातो को प्रभावित करने वाले प्रस्ताव को रद्द कर देता अथवा अस्वीकार कर सकता था····· (अथवा आवश्यकतानुसार) वैध और कार्यान्वित कर सकता था। उस विषय के तथ्य और विरोध में अभिलिखित कारणों को दो या अधिक सदस्यो को इच्छा पर भारत-मत्री के समक्ष प्रस्तुत किया जा सकता था।

अन्त में एक्ट ने गवर्नर-जनरल को सिविल सर्विस मे भारतीयो को नियुक्त करने का अधिकार दिया। इन नियुक्त भारतीयो को इग्लैण्ड की परीक्षा मे सफल होने की आवश्यकता नही थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, सन् १८६१ के इडियन सिविल सर्विस एक्ट, सन् १८६० और १८६६ के परीक्षा-सम्बन्धी विनियमो और भारत की तत्कालीन धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियो ने देशवासियों के लिए सहायक कलक्टर से उच्चतर पद पाने के लिए द्वार बन्द कर दिया था। असन्तोष का शमन करने के लिए लॉर्ड लॉरेन्स ने विदेशो मे अध्ययन के लिए ९ छात्रवृत्तियाँ स्थापित की। इनका उद्देश्य भारतीय विद्यार्थियो को इंग्लैण्ड जाकर पढने के लिए और भारत को सिविल सर्विस अथवा अन्य सेवा में आने के लिए प्रोत्साहित करना था। प्रत्येक छात्रवृत्ति मे २०० पौड प्रति वर्ष दिये जाते। किन्तु तत्कालीन भारत-मत्री ने इस व्यवस्था का अनुमोदन नही किया और यह छात्रवृत्तियाँ समाप्त कर दी गई। किन्तु जैसा कि सन् १८७० के एक्ट में उल्लेख किया गया है, सरकार ने इस बात की आवश्यकता अनुभव की—"कि प्रमाणित प्रतिभा और योग्यता के भारतीयो को सिविल सर्विस मे भर्ती करने के लिए अधिक सुविधाएँ" प्रदान की जायें[1]। एक्ट के खड न० ६ मे दी हुई धाराओं को कार्यान्वित करने के लिए भारत-सरकार से नियम बनाने को कहा गया।

( २ )

भारत-सरकार को सन् १८७० में एक्ट की व्यवस्था रुचिकर नही थी फलत भारत-मत्री द्वारा बार-बार अनुबोधन करने पर भी, उसने १८७३ तक इन विनियमो को नही बनाया। जब अन्त मे ये विनियम बनकर इग्लैण्ड पहुँचे तो राज-सत्ता के विधि-अधिकारियो[2] ने उनको एक्ट के उद्देश्य और उसकी भावना

---

१. Clause VI of the Act Mukherjee: Indian Constitutional Documents vol. I page 235.

२ C. L. Anand: History of the Government of India, part II page 255.

के बिलकुल विरुद्ध पाया। इन विनियमो में एक्ट[१] का अर्थ अत्यन्त संकुचित कर दिया गया था। सन् १८७५ मे लॉर्ड नॉर्थ ब्रुक की सरकार द्वारा नये नियम बनाए गए। इन नियमो को सिविल सर्विस के न्याय-विभाग की एक या दो नियुक्ति के अतिरिक्त कार्यान्वित ही नही किया गया।[२] सन् १८७९ में भारत-सरकार ने एक (मि० रैमजे मैकडोनेल्ड के शब्दो मे गर्हित) राज-पत्र मे भारतीयो के लिए कवेनेण्टेड सिविल सर्विस का द्वार बन्द करने का प्रस्ताव किया। वायसराय (लॉर्ड लिटन) ने इस राज-पत्र के साथ एक गुप्त पत्र मे अपने मनोभावो को प्रकट किया। उन्होने इस बात को स्वीकार किया "कि इग्लैण्ड और भारत, दोनो की ही सरकारे इस आक्षेप का सन्तोषप्रद उत्तर देने में असमर्थ है कि उन्होने प्रदत्त प्रतिज्ञाओ को पूर्ण रूप से [३]भग करने के लिए प्रत्येक सभव उपाय का उपयोग किया है।.... शिक्षित देशी व्यक्तियो की सख्या बढ रही है और सरकार इनकी आकाक्षाओ की पूर्ति के लिए प्रबन्ध किये बिना ही, उनकी वृद्धि को प्रोत्साहन दे रही है। एक्ट की उन व्यवस्थाओ के अनुसार, जिन्हे इन देशी आदमियो ने पढकर हृदयगम किया है, यदि उन नौकरियो में, जो अब तक कवेनेण्टेड सिविल सर्विस के सदस्यो के लिए सुरक्षित रही है, किसी देशी आदमी को लिया गया तो पदोन्नति के निष्पक्ष नियमानुसार उसे उच्चतर पदो पर पहुँचने की आशा होगी और इस पदोन्नति के लिए उसका अधिकार होगा। हम सब इस बात को जानते है कि ऐसी आशाओ और इन अधिकारो को न तो पूरा किया जा सकता है और न पूरा किया जायगा। हमको दो मे से एक बात छाँटनी है—या तो हम उन पर रोक लगा दें या उन्हे धोखा दे और हमने कम-से-कम सीधा रास्ता छाँटा है। इंग्लैण्ड मे परीक्षा का प्रबन्ध, और हाल ही मे परीक्षार्थियो के लिए घटाई हुई आयु—ये सब ऐसे निश्चित और स्पष्ट छल है जो एक्ट को निरर्थक बना देते है।[४] फलत. लॉर्ड लिटन ने भारतीयो के लिए कवेनेण्टेड सिविल सर्विस का द्वार बन्द करने का, और साथ ही १८७० के एक्ट की धाराओ का पालन करने के उद्देश्य से देशी लोगो के लिए एक अवगुठित नौकरी स्थापित करने का प्रस्ताव किया। किन्तु

---

१. Quoted by Ramsy Macdonald in his Government of India, Page 103.

२. Decennial Report on Moral and Material Progress, 8892, Extracts given by Chablani and Joshi: Readings in Indian Constitution and Administration page 361.

३. Ramsay Macdonald, उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १०४।

४. C L. Anand: History of Government in India, part II. page 255 के एक उद्धरण का अनुवाद.

उस राज-पत्र को अवज्ञापूर्वक[1] अस्वीकार कर दिया गया और भारत-सरकार से १८७० के एक्ट को कार्यान्वित करने के लिए नियम बनाने को कहा गया । सन् १८७९ तक सरकार ने ये नियम बनाकर तैयार किये जिनके अनुसार सिविल सर्विस का विधिप्रोक्त विभाग बनाया गया।

सन् १८७९ के नियमो ने, सपरिषद् गवर्नर-जनरल को, प्रान्तीय सरकार द्वारा सिफारिश किये हुए प्रतिष्ठित और मान्य कुटुम्बो के भारतीयो में से कुछ व्यक्तियो को सिविल सर्विस में नियुक्त करने का अधिकार दिया। इन नियुक्तियो की सख्या भारत-मन्त्री द्वारा की हुई नियुक्तियो की सख्या के पचमाश से अधिक नही हो सकती थी। इस अनुपात को इग्लैण्ड के अधिकारियो ने घटाकर षष्ठमाश कर दिया और साथ ही परीक्षा द्वारा भारतीयो को सिविल सर्विस मे घुसने से रोकने के लिए परीक्षार्थियो की अधिकतम आयु को घटाकर १९ वर्ष कर दिया।

इन नियमो को उचित रूप मे कार्यान्वित नही किया गया। शिक्षा और योग्यता की दृष्टि से अनुपयुक्त व्यक्तियो को प्रतिष्ठित और मान्य[2] कुटुम्बो के सदस्य होने का बहाना बनाकर नियुक्त कर दिया गया। भारतीयो ने तो आरम्भ से ही इस व्यवस्था का विरोध किया था, वे इडियन सिविल सर्विस की परीक्षा मे प्रतिद्वन्द्विता के लिए समान अवसर चाहते थे। देश मे प्रबल आन्दोलन खडा किया गया जिसके फलस्वरूप १८८६ मे लॉर्ड डफरिन ने सारे प्रश्न की जाँच के लिए एक लोक-सेवा आयोग (Public Service Commission) की नियुक्ति की। सर चार्ल्स ऐचिसन को इस आयोग का सभापति बनाया गया और इसके १५ सदस्य थे, जिनमें से पाँच भारतीय थे। दिसम्बर १८८७ मे भारत-सरकार को रिपोर्ट दी गई।

आयोग ने अपनी रिपोर्ट मे इग्लैण्ड और भारत मे समकालिक परीक्षाओ की व्यवस्था करने का विरोध किया।[3] जो तर्क दिये गए, वे बडे विचित्र और कुटिल थे। आयोग ने इस बात की शका प्रकट की कि सफल भारतीय परीक्षार्थियो में उच्च शासन-कार्य के लिए आवश्यक गुण पर्याप्त परिमाण में होगे भी अथवा नही।[4] आयोग ने यह मत प्रकट किया कि भारत मे उक्त परीक्षा असमान रूप से कार्यान्वित होगी . जाति के कुछ महत्त्वपूर्ण वर्ग बिलकुल बहिष्कृत हो जायँगे

१ Ramsay Macdonald : "Government of India" page 104.

२ प्रतिष्ठित व्यक्तियो को नियुक्त करने के पक्ष मे तर्कों के लिए देखिए— Chablani and Joshi : Readings in Constitution and Administration page 362

३. आयोग के तीन भारतीय सदस्यो ने अपने मत का अभिलेख किया।

४. Report of the Public Service Commission, 1886. page 49

और कुछ वर्गों को अनुचित लाभ होगा। साथ ही यह कहा गया कि प्रतिवर्ष पूर्ति करने के लिए कुछ गिने-चुने स्थान होगे और अधिकाश परीक्षार्थियो के असफल और निराश होने से एक ऐसा असन्तुष्ट वर्ग बन जायगा जो सरकार के लिए व्यग्रता का कारण हो सकता है।[1] अन्त मे आयोग ने "(भारत में स्थायी रूप से अग्रेज अधिकारी वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली) उक्त सर्विस को भर्ती अग्रेजी सिद्धान्तो और शासन-ढग के अनुरूप करने के महत्त्व पर जोर दिया।[2] सर जॉन स्ट्रैची ने वास्तविक कारण को अधिक स्पष्टता के साथ प्रकट किया : "हमारे उद्देश्य के बारे मे किसी प्रकार का कपट नही है। यह उद्देश्य, उन कार्यपालक पदों को—जिनकी सख्या बहुत नही है—अपने आदमियो के हाथो मे रखना है। (भारत) देश मे हमारा राज्य इन (आदमियो) पर और हमारी राजनीतिक और सैनिक शक्ति पर निर्भर है।"[3]

आयोग को स्पष्टत: एक ऐसी योजना की सिफारिश करने के लिए नियुक्त किया गया था, कि जिसके अनुसार सिविल सर्विस मे भारतीयो की विस्तृत और उच्चतर नियुक्ति के सम्बन्ध मे, उन (भारतियो) के प्रति न्याय किया जा सके। आयोग की सिफारिशो पर कवेनेण्टेड सिविल सर्विस नाम तोड दिया गया और समस्त लोक-सेवाओ को तीन श्रेणियो—साम्राज्यीय, प्रान्तीय और अधीन—में विभाजित कर दिया गया। सारे महत्वपूर्ण उच्च पद पहली श्रेणी के अन्तर्गत थे और इनके लिए नियुक्ति सपरिषद भारत-मंत्री के आधीन थी। इनमे से अधिकाश पदो मे भारतवासी, जातीय प्रतिबन्ध[4] अथवा नियम, विनियम[5] को व्यावहारिक कठिनाइयो द्वारा बहिष्कृत कर दिए गए थे। इडियन सिविल सर्विस के लिए अब

---

१. Report of the Public Service Commission 1886 page 49.

२. उपर्युक्त रिपोर्ट।

३. Strachey : India · Its Administration and Progress page 54.

४. पुलिस-परीक्षा मे ब्रिटिश प्रजा के यूरोपीय व्यक्ति ही बैठ सकते थे।

५. सार्वजनिक निर्माण विभाग (P. W. D), वन-विभाग आदि के लिए या तो राजकीय इंजीनियरों अथवा हिल कालेज के स्नातकों की नियुक्ति की जाती। इनका व्यय भारत के सिर मढ़ा जाता किन्तु इनमें ब्रिटिश प्रजा के यूरोपियनों को ही प्रवेश मिल सकता था। विशुद्ध भारतीयों को प्रवेश पाने में बहुत कठिनाई होती। इसके बाद भी एक निश्चित अत्यल्प प्रतिशत से अधिक संख्या में भारतीय नियुक्त नही किये जा सकते थे।

अधिकतम आयु २३ वर्ष कर दी गई थी ताकि कुछ भारतीय विद्यार्थी इग्लैण्ड की परीक्षा में बैठ सकें। अन्य दो श्रेणियो के लिए भर्ती,साधारणतया, भारतीयों अथवा यहाँ बसे हुए लोगो मे से, प्रान्तीय सरकारो द्वारा की जाती थी। विधिप्रोक्त सिविल सर्विस तोड दी गई और उसके स्थान पर कुछ पद—जिनकी सख्या समस्त भारत के लिए केवल ६१ थी और—जिन पर उच्च सेवा के सदस्य आसीन थे,सूचीबद्ध किये गए और उनके लिए पदोन्नति द्वारा प्रान्तीय सेवको की नियुक्ति कर दी गई। इस प्रकार अन्त मे १८७० के एक्ट की धाराओ का सूचीबद्ध पदो की व्यवस्था से पालन किया गया। इस सम्बन्ध मे यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि इन पदो के सेवक उच्च सेवा मे प्रवेश नही पा सकते थे और उन्हे यूरोपियनो का केवल दो तिहाई वेतन मिलता था।

( ३ )

गवर्नर-जनरल और भारत-मत्री दोनो की ही परिषदो मे उन्नीसवी शताब्दी की आठवी दशाब्दी के विधानो द्वारा थोडा-सा परिवर्तन किया गया। सन् १८७४ के भारतीय परिषद् एक्ट ने हर मैजेस्टी को वायसराय की परिषद के लिए छठा—सार्वजनिक निर्माण-कार्य-सम्बन्धी—सदस्य नियुक्त करने का अधिकार दिया।[1] हर मैजेस्टी को आवश्यकता होने पर परिषद् के सदस्यो की सख्या घटा-कर फिर पाँच करने का अधिकार दिया गया। इसके लिए विधि-सदस्य के अतिरिक्त अन्य किसी सदस्य द्वारा अवकाश ग्रहण करने पर रिक्त स्थान की पूर्ति न करने का नियम था।

१८७६ के भारतीय परिषद् एक्ट ने भारत-मत्री को विशेष और निश्चित योग्यता वाले व्यक्तियो को भारतीय परिषद् के सदस्य नियुक्त करने का अधिकार दिया। किसी समय तीन से अधिक नियुक्तियाँ नही की जा सकती थी। यद्यपि १८६९ के एक्ट के अनुसार परिषद् के सदस्यो का कार्य-काल दस वर्ष कर दिया गया था किन्तु उक्त सदस्यो का कार्य-काल सदाचार पर्यन्त था। समय से पहले किसी सदस्य को कार्य-अवधि को विशेष कारणो से समाप्त करने पर, एक लेख मे उन कारणो को पार्लियामेण्ट के दोनो भवनो के समक्ष रखना आवश्यक था।

इल्बर्ट का विचार है कि यह एक्ट भारतीय परिषद् में सर हेनरी मैन की नियुक्ति के उद्देश्य से बनाया गया था।

सन् १८८९ मे भारतीय परिषद्-न्यूनन-एक्ट बनाया गया। इसके अनुसार भारत-मंत्री को, भारतीय परिषद की सख्या दस न हो जाने तक रिक्त स्थानो की पूर्ति न करने का अधिकार दिया गया था।

१. Clause I. of the Act. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, page 191.

( ४ )

सन् १८७६ में राजकीय उपाधि एक्ट बनाकर १८५८ की कमी को पूरा किया गया। उस समय १८५८ मे कम्पनी द्वारा भारतीय शासन को राज-सत्ता के हाथो मे सौपने के फलस्वरूप, इग्लैण्ड की महारानी के पद और उसकी स्थिति में कोई (वैध) परिवर्तन नही किया गया था। उपर्युक्त उपाधि के अभाव में भारतीय शासकों द्वारा एक संभ्रम का बराबर अनुभव किया जा रहा था और १८७५-७६ मे भारत मे प्रिस ऑव वेल्स (इग्लैण्ड के राजकुमार) के आने के कारण एक विशेष परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी।[1] अतः लॉर्ड नॉर्थब्रुक को सरकार ने महारानी द्वारा एक नई उपर्युक्त उपाधि धारण करने के लिए प्रस्ताव किया। ऐश्वर्य-प्रेमी, साम्राज्यवादी डिज़रायली को, जो उस समय इग्लैण्ड का प्रधान मत्री था, यह प्रस्ताव बहुत रुचा। फलत १८७६ का राजकीय उपाधि-एक्ट बना। इस एक्ट के अनुसार हर मैजेस्टी को पूरी उपाधि यह हुई "ईश्वरानुग्रहीता, ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैंड के संयुक्त राज्य की महारानी, धर्मरक्षिका और भारत की सम्राज्ञी, विक्टोरिया।"[2] (Victoria, by the grace of God, of the United Kingdom of Great Britain and Ireland, Queen, Defender of the Faith and Empress of India.)

इस एक्ट का एक परिणाम यह हुआ कि देशी राज्य, भारतीय साम्राज्य की सीमाओ के अन्तर्गत आ गए और भारतीय शासको की वैध स्थिति बदल गई। वे सर्वोच्च सत्ता के मित्र होने के स्थान पर साम्राज्याधीन नरेश हो गए। देशी राज्यो के साथ सधि मे जिन अन्तर्राष्ट्रीय विधि-सिद्धान्तो को मान्यता दी गई थी, अब वे अमान्य हो गए। "सर्वोच्च सरकार को किसी सरक्षित राज्य के आन्तरिक विषयो मे सकारण हस्तक्षेप करने और आवश्यकता होने पर शासक को भी बदल देने मे अब कोई झिझक नही रही।"[3]

---

१. उपर्युक्त पुस्तक (Page XXVIII).

२. भारत की सम्राज्ञी के लिए भारतीय भाषा मे कैसरे-हिन्द का उस समय उपयोग किया जिसका कारण उसका ऐतिहासिक और साम्राज्यवादी स्वरूप था।

३. Smith · Oxford History of India, Pages 739-40 से भारत-सरकार के १८९१ के एक प्रस्ताव का अनुवाद --भारत-सरकार (जो सम्राज्ञी का प्रतिनिधित्व करती है) और देशी राज्यो के (जो सम्राज्ञी की प्रभुता के अन्तर्गत है), पारस्परिक सम्बन्धों मे अन्तर्राष्ट्रीय सिद्धान्तों का कोई प्रश्न ही नही है। सम्राज्ञी की प्रभुता के अन्तर्गत देशी राज्य, प्रतिनिधि भारत-सरकार के आधीन है।

( ५ )

सन् १८६१-९२ मे भारत के ब्रिटिश साम्राज्य में, अन्तिम प्रदेश को अनुबंधित किया गया। विन्सेण्ट स्मिथ के शब्दो मे, "अब कुछ लेने को शेष ही नही रहा था।" विदेशी प्रभाव को दूर रखने के उद्देश्य से दो बडे युद्ध लड़े गए। अफ़गान-युद्ध मे रूस के प्रभाव को और बर्मा-युद्ध मे फ्रास के प्रभाव को दूर रखना था।

१८५७ के विद्रोह के बाद भारत-सरकार ने कुशल निष्क्रियता की नीति का अनुसरण किया था और इसके कारण अफगानिस्तान में रूस का प्रभाव बहुत बढ गया था। इसके निवारण के लिए लॉर्ड लिटन को गवर्नर-जनरल बनाकर भारत भेजा गया। उसने कलात-क्षेत्र मे क्वेटा के महत्त्वपूर्ण स्थान पर अधिकार किया। अफगानिस्तान के विरुद्ध युद्ध घोषित किया गया, जो नवम्बर १८७८ में आरम्भ हुआ। कुछ समय बाद शानदार विजय हुई और २६ मई १८७९ की गंडमक की सधि से युद्ध समाप्त हुआ। इस सधि के अनुसार अग्रेजो को पिशीन जिला प्राप्त हुआ और अफगानिस्तान के (विदेश) सम्बन्ध ब्रिटिश नियत्रण में आ गए। किन्तु यह सन्धि कुछ ही महीनो मे समाप्त हो गई। ३ सितम्बर १८७९ को काबुल मे अग्रेज-राजदूत का कत्ल कर दिया गया। फलत. दुष्कर एव व्ययपूर्ण युद्ध आरम्भ किया गया। अन्त मे लॉर्ड रिपन ने अमीर अब्दुर्रहमान से समझौता किया, जो अधिक स्थायी सिद्ध हुआ। इसके अनुसार अफगानिस्तान पर ब्रिटिश नियंत्रण हो गया और पिशीन भी भारत-सरकार के अधिकार मे रहा।

तीसरा बर्मा-युद्ध हिन्द चीन की ओर से फ्रासीसी प्रभाव को दूर रखने के लिए लड़ा गया। यह केवल एक पखवारे तक चला और २५ नवम्बर सन् १८८६ को समाप्त हो गया। फलत: उत्तरी बर्मा ब्रिटिश अधिकार में आ गया और नरेश थीबौ को (बर्मा से) निर्वासित कर दिया गया।

## सातवाँ अध्याय

# वैधानिक विकास

१८६१-१८९२

( १ )

सन् १८६१ और १८९२ के बीच, भारत में वैधानिक महत्त्व की कितनी ही घटनाएँ हुईं। ब्रिटिश राजघराने और भारतीय नरेशो तथा जनता में पारस्परिक विशिष्ट सम्बन्ध स्थापित हुए। सन् १८६९ में महारानी विक्टोरिया के द्वितीय पुत्र हिज रॉयल हाइनेस ड्यूक ऑव एडिनबरा भारत आए और १८७५-७६ में

तत्कालीन (ब्रिटिश) राजकुमार ने जो बाद में एडवर्ड सप्तम हुए सारे देश का पर्यटन किया और उन्हे जनता का उत्साहपूर्ण हार्दिक स्वागत प्राप्त हुआ। इसी समय में भारत-सरकार और गृह-सरकार मे गभीर मतभेद उठ खडे हुए और फलतः वायसराय ने अपना त्याग-पत्र दे दिया। इस युग की अन्य महत्वपूर्ण घटनाए ये है:– १८७८ में वर्नाक्युलर प्रेस (समाचार-संपादन) एक्ट बना और रद्द हुआ; १८७८ में भारतीय शस्त्र एक्ट बना; कपास पर सीमा-शुल्क समाप्त किया गया, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजों के न्याय और उनकी निष्पक्षता के प्रति विश्वास समाप्त हो गया; देश मे आर्थिक निक्षेपण और स्थानीय स्वशासन के विस्तार की नीति विकसित हुई; इल्बर्ट बिल पर भीषण और आवेशपूर्ण विवाद हुआ; और इडियन नेशनल काग्रेस तथा देश में राष्ट्रीय आन्दोलन की स्थापना हुई।

( २ )

१८५८ के एक्ट मे गवर्नर-जनरल और भारत-मत्री की पारस्परिक वैधानिक स्थिति को सुस्पष्ट कर दिया गया था। जैसा कि भारत-मत्री ने १८७१ मे एक राज-पत्र में कहा, "भारतीय विषयो के अतिम नियत्रण और निर्देशन का अधिकार गृह-सरकार को है।"[1] स्वय भारत मे व्यवस्था करने वालो की उच्च प्रतिष्ठा, "उन्हे अधीनता के आवश्यक बधन से तनिक भी मुक्त नही करती।"[2] फिर भी १८७० तक व्यवहार मे स्थिति बिलकुल भिन्न थी। (भारत के) स्थानीय शासक को बहुत बडी स्वतन्त्रता थी। सचार साधन की कठिनाइयो और देरी के कारण भारत-मत्री कोई वास्तविक नियत्रण नही कर पाता था और प्रायः वायसराय, इगलैंड के अधिकारियो के समक्ष कार्यान्वित प्रस्ताव के तथ्य प्रस्तुत करता था। वस्तुतः भारत का अधिकारी वर्ग भारत-मत्री को "वाइसराय का प्रतिनिधि समझने लगा था जो उस (वायसराय) के कामो को इगलैंड की पार्लियामेण्ट और जनता को समझाता था।" किन्तु १८७०मे इगलैंड से लाल सागर होते हुए भारत तक समुद्री तार की लाइन पूरी हो जाने पर स्थिति बिलकुल बदल गई। भविष्य में भारत-मत्री के लिए भारत-सरकार का पूर्ण नियत्रण करना सभव हो गया और १८७० के बाद इडिया ऑफिस (अर्थात् सपरिषद् भारत-मत्री का कार्यालय), हर विषय में–कार्यपालिका और विधान मे—सिद्धान्त और साथ ही व्यवहार की छोटी बातो में भी नियत्रण

---

१. Report on Indian Constitution Reform 1918 pages 22 and 23 के एक उद्धरण का अनुवाद

२. Sir Bartle Frere, Quoted by Dodwell : History of India.

करने लगा। कठोर नियत्रण के कारण सघर्ष के अवसर बढे,[1] और कभी-कभी स्थिति इतनी विकट हो गई कि वाइसरायो को त्याग-पत्र देने पडे। १८७६ मे लॉर्ड नॉर्थब्रुक के साथ यही बात हुई।

( ३ )

गृह-सरकार और लॉर्ड नॉर्थब्रुक की सरकार मे उपयुक्त गभीर मतभेद कपास के सीमा-शुल्क तोडने के प्रश्न पर हुआ। यह अभिलेख करते हुए दु.ख होता है कि भारतीयो के लिए और किसी बात ने इतनी स्पष्टता से अग्रेजो के न्याय और निष्पक्षता के प्रदर्शन को झठा और खोखला सिद्ध नही किया जितना कि कपास के सीमा-शुल्क-सबधी इस विवाद ने। लकाशायर के स्वार्थ के लिए भारतीय हितो का निर्लज्जता[2] के साथ जान-बूझकर बलिदान कर दिया गया।

भारतीय कपास-उद्योग की वृद्धि से शकित होकर मैंचेस्टर के चेम्बर्स ऑव कॉमर्स (व्यवसायी समुदाय) ने जनवरी १८७९ मे भारत-मत्री को एक स्मरण-पत्र भेजा और उसमे सूत पर ३½ प्रतिशत और सूती कपडे पर ५ प्रतिशत के तत्कालीन भारतीय आयात-शुल्क का विरोध किया गया। साथ ही यह आक्षेप किया गया "कि ब्रिटिश भारत मे सरक्षित व्यापार बढ रहा है जो भारत और ब्रिटेन दोनो के ही अहित मे है।"[3] अन्त मे उक्त सीमा-शुल्क तोड देने की माँग की गई। भारत-सरकार ने एक विशिष्ट समिति की सिफारिशो पर आयात-शुल्क की दर घटाने का निर्णय किया और लम्बे रेशे वाली कपास पर ५ प्रतिशत आयात-शुल्क लगाने के लिए भी अपनी सहमति प्रकट की, किन्तु कपास पर सीमा-शुल्क तोडने के लिए मना किया, क्योकि "उससे देशी उद्योग का वस्तुत. कोई सरक्षण नही हो सकता था।"[4] भारत-मत्री और भारत-सरकार ने एक-दूसरे को कई राजकीय-पत्र भेजे, किन्तु दोनो की स्थिति वही रही। गृह-सरकार का यह आक्षेप था कि कपास

१. विशेषकर उस समय जब भारत मत्री और वाइसराय विभिन्न राजनीतिक दलो के समर्थक हो, यथा लॉर्ड नॉर्थब्रुक और तत्कालीन भारत-मत्री।

२. सर जॉन स्ट्रैची ने विधान-परिषद् मे १८७७ मे स्पष्ट कहा, "मैंचेस्टर के हित, जिनको कुछ मूर्ख अवज्ञा करते है, केवल एक बडे और जाग्रत वर्ग के ही हित नही है वरन् उनमे करोडो अग्रेजो का स्वार्थ है। मुझे यह कहने में कोई लज्जा नही है कि मेरी दृष्टि मे, अपने देश के प्रति मेरे कर्त्तव्य से बढकर और कोई कर्त्तव्य नही है।" Bannerjee : Fiscal Policy in India, pages 75 and 76 से अनूदित.

३ Report of Indian Fiscal Commission, 1922, page 88.

४. Bannerjee .उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ९०

सीमा-शुल्क से "भारतीय निर्माता को झूठा प्रोत्साहन मिलता था और उसका भारतीय और साम्राज्य के हितो पर गभीर प्रभाव था।"[1] भारत-सरकार ने अपने मत-समर्थन के लिए तथ्य और आकडे बताते हुए[2] यह कहा . "कि (उक्त) शुल्क संरक्षणात्मक नही था, भारत-सरकार इतनी राजस्व-आय का बलिदान नही कर सकती थी; और सरकार का यह कर्त्तव्य है कि इस विषय पर विचार करते समय वह भारतीय हितो का ध्यान रखे · और आयात-शुल्क को तोडना इन हितो के विरुद्ध है।"[3] लॉर्ड नॉर्थब्रुक भारतीय हितो का बलिदान करने को तैयार नही थे। फलतः उन्हे त्याग-पत्र देना पडा और उनका स्थान लॉर्ड लिटन ने लिया। नये वायसराय ने अपने अर्थ-सदस्य सर जॉन स्ट्रैची की सहायता से ब्रिटिश सरकार और पार्लियामेंट की आज्ञाओ का पालन किया। इस आज्ञा के अनुसार "भारत को आर्थिक परिस्थितियो मे जैसे ही सभव हो कपास के माल पर वर्तमान सीमा-शुल्क को अविलम्ब" तोड देना था। इसके पालन के लिए वायसराय को अपनी परिषद् के बहुमत[4] की अवहेलना करनी पडी। सर अर्सकोन पैरी के मतानुसार वायसराय का यह कृत्य "अवैधानिक और भविष्य के लिए जोखमपूर्ण उदाहरण था।"[5] भारत-शासन-एक्ट के विभाग न० ४१ के अनुसार वाइसराय को केवल उस समय अपनी परिषद् के बहुमत की अवहेलना करने का अधिकार था जब उसकी सम्मति मे, "ब्रिटिश भारत अथवा उसके किसी भाग की सुरक्षा, शाति या उसके हितो को कोई सकट हो।"

वायसराय के कृत्य से भारत मे जनमत अत्यन्त क्षुब्ध हुआ। "३ मई १८७९ को बम्बई मे एक प्रतिष्ठित और बडी सभा हुई। उसमे हाउस ऑव कॉमन्स के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए एक प्रार्थना-पत्र स्वीकार किया गया।"[6] भारत-मत्री की

१ Bannerjee Fiscal Policy in India पृष्ठ ७२

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६८

३ Report of Indian Fiscal Commission 1922 page 96.

४. परिषद् के चार सदस्यो के विरोधी अभिलेख ध्यानपूर्वक पढने योग्य है।

५ Bannerjee Fiscal Policy in India page 84 के एक उद्धरण का अनुवाद।

६ Mody : Sir Pherozeshah Mehta vol I page 105 भारत के यूरोपीय व्यापारी समुदाय ने भी वायसरॉय के कृत्य की तीव्र निन्दा की। उदाहरण के लिए बगाल के व्यवसायी समुदाय ने गवर्नर-जनरल को यह लिखा कि यह अत्यन्त दुःख की बात है "कि श्रीमान् की सरकार की प्रजा के हितो और उनकी स्पष्ट इच्छाओ के विरुद्ध इगलैंड के अल्प

परिषद् के सात सदस्य पक्ष में और सात विपक्ष मे थे,[१] किन्तु भारत-मंत्री ने उक्त कृत्य की पुष्टि की और हाउस ऑव कॉमन्स ने कार्यान्वित बातो के लिए एक प्रस्ताव द्वारा अपनी सहमति दी, साथ ही भविष्य में सीमा-शुल्क बिलकुल समाप्त करने के लिए कहा। १८८२ मे पिछली बात का पालन हो गया।

( ४ )

१८५७ मे अनुज्ञप्ति-एक्ट केवल एक वर्ष के लिए बनाया गया था। इसके अनुसार प्रत्येक छापेखाने को एक अनुज्ञप्ति लेनी पडती थी जिसे कभी भी रद्द किया जा सकता था। अनुज्ञप्ति के लिए प्रार्थना-पत्र सपरिषद गवर्नर-जनरल के पास भेजे जाते थे। अनुज्ञप्ति प्रदान करने मे हर प्रकार की शर्तें रखी जा सकती थी और साथ ही बिना कारण बताए उस प्रार्थना-पत्र को अस्वीकार भी किया जा सकता था। "ब्रिटिश सरकार के उद्देश्यो अथवा उसकी योजनाओ को दोष देने वाले···· ···अथवा उस (ब्रिटिश सरकार) के प्रति घृणा जाग्रत कराने वाले अथवा उसकी और उसके सिविल या सैनिक सेवको की सत्ता को दुर्बल करने वाले लेख प्रकाशित नही किये जा सकते थे।" सन् १८६७ मे, सन् १८३५ के एक्ट नं०११ की धाराओ को फिर वैध कर दिया गया। किन्तु १८७० मे भारतीय दड-विधान का सुपरिचित विभाग न० १२४ ए० बनाया गया, इसके अनुसार उस व्यक्ति को जो उच्चारित, अथवा वाचन के लिए निर्दिष्ट शब्दो द्वारा, अथवा सकेत या स्पष्ट प्रदर्शन द्वारा, अथवा अन्य किसी प्रकार से, सम्राज्ञी अथवा ब्रिटिश भारत मे विधिवत् स्थापित सरकार के प्रति,अभक्ति को भावनाएँ उत्तेजित करता है अथवा उत्तेजित करने का प्रयत्न करता है,दड दिया जा सकता है। यह दंड आजीवन अथवा किसी अल्प अवधि के लिए देश-निर्वासन, और साथ मे जुर्माना भी हो सकता है अथवा तीन वर्ष तक के लिए कारावास और साथ मे जुर्माना भी हो सकता है अथवा के ल जुर्माना हो सकता है।"[२]

१८५८ के बाद भारत मे छापेखानो की सख्या तेजी से बढी। सन् १८६० तक समाचार-पत्रो की सख्या ६४४ हो गई। इनमे ४०० से अधिक पत्र देशी भाषाओं मुख्यत: बगला के थे। लॉर्ड लिटन ने भारत आकर जिस नीति को अपनाया उससे सर्व साधारण में रोष फैल गया था और १८७७ के दुर्भिक्ष को दारुण यातनाओ ने जनता को अदम्य बना दिया था।[३] समाचार-पत्र प्रबल आन्दोलन कर रहे थे।

---

संख्यक व्यक्तियों के हितों को मान्यता दी जा रही है।"

१. Indian Fiscal Commission Report 1922, page 92.

२. Ranchhodas and Thakore : Indian Penal Code. page 110

३. Wedderburn : Allan Octavian Hume, page 79-81.

सरकार को घबराहट हुई और उसने दमन की नीति को अपनाया। फलस्वरूप उस वर्ष का वर्नाकुलर प्रेस (समाचार-सपादन) एक्ट बना और साथ ही भारतीय शस्त्र एक्ट भी बनाया गया।

१३ मार्च १८७८ को वायसराय ने भारत-मंत्री के पास एक तार भेजकर, सन् १८७० के आइरिश कोअर्शन एक्ट के नमूने पर एक समाचार-सम्पादन-विधि बनाने के लिए तार द्वारा स्वीकृति भेजने का निवेदन किया। वायसराय ने अपने तार में उक्त विधि की रूप रेखा भी दी और "देशी समाचार-पत्रो की उग्र और अब प्रत्यक्ष रूप से विद्रोहोत्तेजक भाषा के कारण" स्थिति को भयावह बताया। दूसरे ही दिन अनुमति प्राप्त हो गई। उसी दिन विधेयक प्रस्तुत किया गया और दो घटों मे कानून बना दिया गया।

सन् १८७८ के इस एक्ट ने जो प्राय. "गैगिग (मुखावरोधक) एक्ट" नाम से प्रसिद्ध है, मजिस्ट्रेट को यह अधिकार दिया कि वह—प्रान्तीय सरकार की पूर्व स्वीकृति से——किसी मुद्रक अथवा प्रकाशक को प्रतिभूति ( Security ) जमा करने अथवा शर्तनामा लिखने की आज्ञा दे सकता था। इस शर्तनामे के अनुसार वह मुद्रक या प्रकाशक ऐसी कोई बात मुद्रित या प्रकाशित नही कर सकता था जिससे सरकार के प्रति अभक्ति की और विभिन्न जातियो मे परस्पर घृणा की भावना उत्तेजित होने का भय हो। अवांछित प्रकाशन होने पर, सरकार को चेतावनी देने और मुद्रणालय और प्रतिभूति आदि को जब्त करने का अधिकार दिया गया। इससे बचने का दूसरा मार्ग यह था कि मुद्रक सरकारी अधिकारी के समक्ष पहले मुद्रण के बाद किन्तु प्रकाशन से पहले सारे लेख प्रस्तुत करे और उस अधिकारी द्वारा अस्वीकृत सारी बातो को निकालकर प्रकाशित करे।

१८७८ का यह एक्ट सन् १८७० के आइरिश कोअॅर्शन एक्ट से (जो आयर्लैंड-वासियो से संबध रखता था) कही अधिक उग्र था। इसके अनुसार मजिस्ट्रेट के निर्णय के विरुद्ध किसी न्यायाधिकारी से कोई अपील नही की जा सकती थी। सर अर्सकीन पैरी ने भारतीय परिषद् की कार्यवाही मे अपने विरोध के अभिलेख में इसे, "एक प्रतिगामी, विवेकहीन और भविष्य मे भारत की प्रगति के लिए घातक" प्रस्ताव बताया। "कोई साम्राज्यवादी विधि बनाने वाला, विरोधी समाचार सपादन का मूलोच्छेद करने के लिए इससे अधिक घातक उपकरण नही बना सकता।"[१]

इस मुखावरोधक एक्ट का भारतीय शिक्षित-वृत्तों में, विशेषकर बगाल मे जहाँ इसको कठोरता के साथ कार्यान्वित किया गया था, प्रबल विरोध हुआ।

१. Mody : Sir Pherozeshah Mehta Vol. II. pages 96-97.

कलकत्ते के टाउन-हॉल मे एक बहुत बडी सभा हुई, जिसमें ५००० व्यक्ति उपस्थित हुए। सभा ने उक्त एक्ट का विरोध किया और उसे रद्द करने के लिए 'हाउस ऑव कॉमन्स' से निवेदन किया। इगलैंड मे मत्रि-मडल के बदलने और भारत के लिए लॉर्ड रिपन के नये वायसराय नियुक्त होने तक, यह आन्दोलन इगलैंड और भारत, दोनो ही स्थानों मे चलता रहा।

लॉर्ड रिपन एक्ट को रद्द करने के लिए उत्सुक थे किन्तु उन्हे परिषद् के अन्दर और बाहर सरकारी विरोध का अतिक्रमण करने मे कुछ समय लगा और उन्हे "लुई १८ और चार्ल्स १० के युग के फ्रासीसी अनुदार-दल के तर्क ध्यान मे आए"[1] और अन्त मे मुखावरोधक एक्ट सन् १८८२ मे आकर रद्द हो पाया।

प्रो० डॉडवेल का यह कथन सत्य है कि लॉर्ड रिपन का यह काम "और सब कामो से बहुत आगे" था,[2] क्योकि मुनरो द्वारा बहुत पहले कहे हुए शब्दो के अनुसार, "स्वतन्त्र समाचार-पत्र और विदेशी शासन, ये दोनो बाते विरोधी है और बहुत समय तक एक साथ टिक नही सकती।"[3]

( ५ )

इस वर्ष का दूसरा दमनकारी एक्ट, भारतीय शस्त्र एक्ट था। इसके अनुसार भारतीयो को अनुज्ञप्ति के बिना शस्त्र रखना, ले जाना अथवा उनका व्यापार करना दडनीय अपराध था। एक्ट को कार्यान्वित करने के लिए, अपराधियो को कड़ा दड देने की व्यवस्था की गई।[4] इस एक्ट के अन्तर्गत बनाए हुए नियमो के अनुसार, यूरोपीय और अन्य गोरे लोग अथवा यूरेशियन और कुछ सरकारी अधिकारी और प्रतिष्ठित व्यक्ति एक्ट की धाराओ से मुक्त कर दिए गए।[5] प्रेसीडेन्सी नगरो और

१. Lucien Wolf: Life of Lord Ripon Vol II. page III.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ११४.

३. Dodwell: History of British India. 1858-1918. pages 252–253.

४. एक्ट की धाराओ का पालन न करने पर साधारणतया कारावास या जुर्माने या दोनो दड की व्यवस्था थी। इस कारावास की अवधि तीन वर्ष तक हो सकती थी। किन्तु छिपाने या छिपाने का प्रयत्न करने की दशा मे कारावास की अवधि सात वर्ष तक हो सकती थी। साथ में जुर्माना भी हो सकता था और दड में केवल जुर्माना भी हो सकता था। Section X of the Act. F. C. Widge: Indian Arms Act XI. 1878. pages 47, 68 and 69.

५. See Schedule 1. of the Rules item 13, उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १७०.

रंगून में पुलिस कमिश्नरो को और ब्रिटिश भारत मे जिलाध्यक्षों को अधिकारी व्यक्तियो द्वारा प्रार्थियो का पूर्वचरित जान लेने पर, एक नियत समय के लिए अनुज्ञप्ति प्रदान करने का अधिकार दिया गया। इन व्यक्तियो को अनुज्ञप्ति के बदले मे नियत देय देना आवश्यक था।[1] इस नियम का बडी सकुचित भावना और कठोरता के साथ पालन किया गया और भारतीय नवयुवकों मे भेद भाव किया गया। इन कारणो से साहसी भारतीयो को उक्त प्रस्ताव विशेष रूप से गर्हित लगा।

( ६ )

लॉर्ड रिपन की नीति उदार और जन-प्रिय थी। उनके कार्य-काल में 'इल्बर्ट बिल' नामक विधेयक पर भीषण और तीक्ष्ण जातीय विवाद हुआ। इस विधेयक का उद्देश्य, कवेनेण्टेड सिविल सर्विस के भारतीय और अंग्रेजी सदस्यो के अत्यन्त अनुचित भेद-भाव को दूर करना था। तत्कालीन विधि के अनुसार प्रेसीडेन्सी नगरों के अतिरिक्त अन्य स्थानो मे रहने वाले यूरोपियनो का अभियोग-परीक्षण केवल यूरोपियन मजिस्ट्रेट या न्यायाधिकारी ही कर सकते थे। भारतीय मजिस्ट्रेट या न्यायाधिकारी चाहे वह उस जिले के अन्य यूरोपीय अधिकारियो से पद मे बडा भी होता, किन्तु वह उक्त अभियोगो का निर्णय नही कर सकता था। जैसा कि श्री आर सी. दत्त ने कहा, इस भेद-भाव के कारण भारतीय अफसरो की सत्ता बहुत क्षीण होती थी। बगाल के उप-गवर्नर सर एशले ईडन ने स्वीकार किया कि "इस बात का कोई पर्याप्त कारण नही दिखाई देता कि उपयुक्त अनुभव और शिक्षण से जिला-मजिस्ट्रेट और जिला जज के पद पर प्रतिष्ठित, कवेनेण्टेड सर्विस के भारतीय सदस्यो को यूरोपियनो पर वह क्षेत्राधिकार प्राप्त न हो जो उक्त सर्विस के अन्य सब सदस्यो को प्राप्त होता है।"[2] अतः लॉर्ड रिपन की सरकार ने इस क्षुद्र जातीय भेद-भाव को दूर करने का निर्णय किया और इस उद्देश्य के एक विधेयक का लेख बनाकर स्वीकृति के लिए इगलैंड भेजा। २ फरवरी १८८३ को यह विधेयक विधान-परिषद् मे प्रस्तुत किया गया।[3]

यूरोपियनों ने सारे देश मे विशेषकर बंगाल मे बड़ा कोलाहल मचाया। "कलकत्ते के व्यवसायी इस प्रश्न से संबधित नही थे; किन्तु वे भी उतने ही उग्र

---

१. See, Rule No. 30.....

२. J. N. Gupta : Life and Works of R. C. Dutt. page 94 के एक उद्धरण का अनुवाद।

३. विस्तृत वर्णन के लिए देखिये : Mody : Sir Pherozeshah Mehta Vol. II. pages 125-128 and Lucien Wolf : Life of Lord Ripon, Vol. II, pages 128-150.

हुए जितने कि इस प्रश्न से संबंधित बिहार के रोपक (Planters)। लॉर्ड रिपन के सत्कार-सम्मेलनों का बहिष्कार किया गया··· स्वयं लॉर्ड रिपन का अपमान किया गया। उनके विरुद्ध जो भाव धारण किया गया था वह अप्रिय रूप से उस औपनिवेशिक भावना का द्योतक था जिसे पश्चिमी हिन्द द्वीप समूह के अधिवासियों ने अपने दासों को स्वत्व देने के सम्बन्ध में प्रदर्शित किया था अथवा उस भावना का स्मरण कराता था जिससे दक्षिण अफ्रीका के अधिवासीगण, वहाँ के आदिवासियो मे ईसाई धर्म का प्रचार करते थे।"[1]

एक सुरक्षा सस्था बनाई गई और सवा लाख से अधिक रुपया[2] एकत्रित किया गया। कलकत्ते के टाउन हॉल में आग्ल भारतीयो का रोष प्रकट करने वाली एक विशाल सभा हुई। इसमे जो व्याख्यान दिये गए, उनकी उग्रता, औचित्य की सारी सीमाओ के परे थी। प्रेसीडेन्सी मे अन्य सब स्थानों पर भी ऐसी ही सभाएँ हुई। आग्ल भारतीय समाचार-पत्रो की, विशेषकर 'इगलिशमैन' की भाषा अत्यन्त भावुक और विवेकशून्य हो गई। इस आन्दोलन में स्वेच्छासैनिको (volunteers) को सामूहिक रूप से पद-त्याग करने को उत्तेजित किया गया। कुछ व्यक्तियो ने उपाहार गृहो मे सैनिक वर्ग की मनोवृत्ति को भी परखा··दूसरे शब्दों में सेना में अभक्ति उत्पन्न करने का भी प्रयत्न किया गया।[3]

इस विधेयक को लॉर्ड रिपन के शब्दानुसार शासन में सुविधा की दृष्टि से आवश्यकता थी, किन्तु न्याय्य होते हुए भी यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अथवा अविलम्ब नही था।"[4] इसके विरोध में जो उग्र भावनाएँ उठ खड़ी हुईं,उनका अनुमान करना कठिन है। लॉर्ड रिपन ने कहा, "यदि मुझे पता होता कि क्या (परिणाम) होगा तो मैंने अपने-आपको इस तूफान में नही डाला होता।"[5] लॉर्ड रिपन ने अनुभवी अधिकारियो से परामर्श किया था पर ऐसा प्रतीत होता है कि सर हेनरी मेन[6] के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो ने किसी प्रकार उपद्रव की आशंका नही की।

---

१. Dodwell : History of India. 1858-1918. page 261.

२. Bannerjee : A Nation in the Making. page 85.

३. Lucien Wolf : Life of Lord Ripon. Vol II. page 128.

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १३६.

५. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १३५

६. वह भारत का परिषद् का सदस्य था और इन दिनो पेरिस में था। परामर्श किये जाने पर उसने जो लेख लिखा उसे भारत-मंत्री-परिषद् में पढने के बाद कही रखकर भूल गए और वह भारत नही भेजा जा सका। उसमें मैन ने लिखा था, "यह भावनाओं का प्रश्न है और यहाँ भावनाओं की प्रतिद्वन्द्विता है।

लॉर्ड रिपन ने कारणों की जाँच की थी और उसका यह निष्कर्ष था "न्यायाधिपतियो का वेतन घटाने और मिस्टर मित्र को कार्यकारी मुख्य न्यायाधिपति बनाने के कारण अभिवक्ता वर्ग में बड़ा क्षोभ हुआ है और वह वर्ग सरकार को क्षति पहुँचाने के अवसर के लिए अत्यन्त लालायित था। उक्त विधेयक का विरोध करने का विचार[1] कुछ अंगरेज बैरिस्टरों को न्याय-सभा के पुस्तकालय मे सूझा था।" खुफिया विभाग के तत्कालीन अध्यक्ष मि. लैम्बर्ट के अनुसार कलकत्ते के पूंजीपतियों को इस बात का भय हुआ कि चाय के बगीचे मे काम करने वाले उनके गोरे अभिकर्त्ताओ के साथ, भारतीय जजो की अध्यक्षता में काम करने वाले फौजदारी न्यायालयो द्वारा, उचित न्याय नही हो सकेगा। यूरेशियन समुदाय, रुड़की विधेयक के कारण चिढा हुआ था। इस विधेयक के अनुसार इजीनियरिंग कॉलेज मे केवल शुद्ध एशियावासियो को ही दाखिला मिल सकता था। अपने सारे समाज द्वारा इन आक्षेपो के समर्थन के लिए, यूरोपीय स्त्रियो के लिए खतरे की आवाज़ उठाई।[2]

विधेयक के मूल रूप में सब ज़िला मजिस्ट्रेटो और ज़िला जजो को यूरोपियनो के अभियोग-निर्णय का अधिकार दिया गया था। प्रेसीडेन्सी नगरो के बाहर प्रान्तीय सरकारो को यह अधिकार दिया गया था कि वे बिना जाति-भेद किये, प्रथम श्रेणी के उन मजिस्ट्रेटो को, जिन्हे वे उपयुक्त समझें, उक्त अधिकार दे दे। अगस्त १८८३ मे भारत-सरकार को विधेयक मे सशोधन करने के लिए भारत-मंत्री की अनुमति मिल गई। इस सशोधन के अनुसार नए अधिकार केवल ज़िला मजिस्ट्रेटो और ज़िला जजो को देने का निश्चय किया गया। किन्तु विरोधियो को

---

जातीय भेद-भाव के कारण भारतीय जजो के अधिकारो पर जो प्रभाव पड़ता है, उससे वे अपने को अपमानित अनुभव करते हैं। देशी व्यक्तियो को अधिकार देने से यूरोपीय समुदाय सशंकित है क्योकि उसे चिढे हुए भारतीयों द्वारा इस अधिकार के दुरुपयोग का भय है। यह कारण यूरोपीय भावनाओ के विस्फोट का बहाना रहा है। वर्तमान प्रस्ताव के कारण ऐसा विस्फोट हो सकता है और तब हमें उसके औचित्य पर शंका हो सकती है उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३७९–३८१.

१. Lucien Wolf : Life of Lord Ripon Vol. II p. 130

२. उपर्युक्त पुस्तक; पृष्ठ १३१। इस आवाज कास बसे अधिक प्रभाव हुआ। मेरेडिथ टाउन सेण्ड ने टॉम ह्यग को एक पत्र में लिखा, "क्या आप ऐसे देश में रहना चाहेगे जहाँ आपकी पत्नि को आया को चाँटा मारने के झूठे अपराध पर तीन दिन का कारावास हो सकता है, जहाँ न्यायाध्यक्ष देशी आदमी हो ···· जो गोरे आदमियों का अपमान करने के लिए अवसरों की टोह में रहता हो।

ये सशोधन भी मान्य नही था। अन्त मे एक समझौता हुआ जो "कॉनकॉर्डेट" के नाम से परिचित है। सन् १८८४ के एक्ट न० ३ मे इसे अभिलिखित किया गया। इस एक्ट ने भारतीय ज़िला मजिस्ट्रेट और ज़िला-जजों को यूरोपीय प्रजा के अभियोग-निर्णय का अधिकार दिया, किन्तु इस प्रतिबन्ध के साथ कि यूरोपीय अपराधी को छोटे से छोटे अभियोग में भी ऐसी जूरी द्वारा अपने अभियोग का निर्णय कराने का अधिकार होगा, जिसके कम-से-कम आधे सदस्य यूरोपियन या अमेरिकन होगे। यूरोपियन मजिस्ट्रेट और जजो को सक्षिप्त अभियोग-निर्णय के अधिकार से वचित कर दिया। किन्तु जिला-मजिस्ट्रेटो के अधिकारो को बढा दिया। अब वे छः महीने तक का कारावास दड दे सकते थे और दो हज़ार रुपये तक जुर्माना कर सकते थे।

१८८४ के एक्ट ने वस्तुत, न तो जातीय भेद-भाव को दूर किया और न शासन की असुविधाओ को ही दूर किया। पहले जातीय भेद-भाव न्यायाधिकारियो में किया जाता था, अब वह अपराधियो मे कर दिया गया। कुछ विषयो मे स्थिति पहले से भी अधिक बिगड़ गई। सर जॉन स्ट्रेची के शब्दों मे एक्ट ने भारत में यूरोपियनो को वह अधिकार दिया जो, "किसी अगरेज को अपने देश के किसी मजिस्ट्रेट के न्यायालय मे प्राप्त नही हो सकता था।"[१] साथ ही स्थिति बडी विचित्र कर दी गई। सर जॉन के ही शब्दो मे, "बहुत से ऐसे ज़िले है जहाँ जूरी के लिए पर्याप्त संख्या में यूरोपियन अथवा अमेरिकन नही रहते। ऐसी दशा मे अभियोग को किसी अन्य ज़िले मे भेजना होगा जहाँ जूरी बनाई जा सके। सन् १८७२ से पहले जब यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा का अभियोग निर्णय उच्च न्यायालय मे होता था तो कठिनाइयो के बारे में आक्षेप किये जाते थे और न्याय न मिलने के अपवाद किये जाते थे; वादियो और साक्षियो को घर से बहुत दूर जाना होता था। अब फिर उन्ही अपवादो और आक्षेपो के लिए अवसर दिया गया है।"[२]

इल्बर्ट-विधेयक के विवाद से भारतीयो की आँखें खुलीं। उन्होंने यह अनुभव किया कि जहाँ यूरोपियनो के विशेषाधिकारो और स्थापित स्वार्थों का सबध है, वहाँ न्याय की आशा नही की जा सकती और अपना समानाधिकार स्थापित करने के लिए उन्हे एक लम्बे सघर्ष के लिए तैयार रहना चाहिए। इस विवाद ने भारतीयो को संगठित आन्दोलन का महत्त्व और मूल्य भी प्रदर्शित किया। ये शिक्षाएँ बडे काम की थी।

---

१ Sir John Strachey: India its Administration and Progress, page 111.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ११२.

## आठवाँ अध्याय

# वित्तीय निक्षेपण और स्थानीय स्वशासन

(१)

सन् १८३३ से ही भारत के समस्त वित्तीय अधिकार सपरिषद् गवर्नर-जनरल के हाथो मे केन्द्रित थे। "सब प्रान्तो के सारे राजस्व की एक निधि होती थी। सपरिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा ही व्यय का प्राधिकार दिया जा सकता था।"[१] प्रान्तीय सरकारो को स्थानीय उपकरो (cesses) के अतिरिक्त कोई अन्य कर लगाने अथवा ऋण उगाहने का अधिकार नही था। अत. भारत-सरकार की अनुमति के बिना, प्रान्तीय सरकारे न तो कर लगा सकती थी, न ऋण उगाह सकती थी और न व्यय ही कर सकती थी।

एक विस्तृत और विभिन्नतापूर्ण देश मे उक्त केन्द्रीकरण के बहुत से दोष थे। भारत-सरकार को स्थानीय आवश्यकताओ का ज्ञान न के बराबर था और साथ ही उसे यह भी ज्ञात नही था कि राजस्व के स्थानीय अधिकरणो की किस प्रकार वृद्धि की ज्ञा सकती है। इस व्यवस्था मे विभिन्न प्रदेश, केन्द्रीय राजस्व-कोष के समक्ष अपनी माँग रखने मे अनुचित प्रतिद्वन्द्विता करते थे और उन्हे मितव्ययिता के लिए कोई प्रोत्साहन नही था। जैसा कि सर जॉन स्ट्रैची ने कहा, "सार्वजनिक आय का वितरण भ्रष्ट होकर छीना-झपटी मे परिवर्तित हो गया था; जो उग्रतम होता था उसी की जीत होती थी और उपयुक्तता पर कोई ध्यान नही दिया जाता था। स्थानीय मितव्ययिता से कोई स्थानीय लाभ नही होता था। अत अपव्यय को रोकने के लिए उत्साह न के बराबर था। स्थानीय आय-वृद्धि से, स्थानीय लाभ न होने के कारण, वहाँ की राजस्व-आय को बढाने का प्रयत्न, न्यूनतम था।"[२]

इस व्यवस्था के दोषो की ओर कितने ही अधिकारियो का ध्यान आकर्षित हुआ था। जनरल डिकेन्स ने सन् १८६० मे ही सुधार के लिए सुझाव दिया था। अर्थ-सदस्य मि. लेग ने सन् १८६१-६२ और १८६२-६३ मे सरकारी बजट प्रस्तुत करने के समय अपने वक्तव्य मे इस विषय की ओर ध्यान आकर्षित किया था। सन् १८६७ मे सर रिचर्ड स्ट्रेची ने प्रान्तीय वित्त के सम्बन्ध मे एक सुनिश्चित योजना भी बनाई थी, किन्तु इस विषय पर लॉर्ड मेयो के समय तक कोई कार्यवाही नही

---

१ Strachey India, its Administration and Progress page 121.

२. The Report on Indian Constitutional Reforms 1918 page 69

की गई। १४ दिसम्बर १८७० को लॉर्ड मेयो की सरकार ने एक प्रस्ताव स्वीकार किया। इस प्रस्ताव ने कुछ महत्त्वपूर्ण सशोधन किये और वित्तीय निक्षेपण की नीति आरम्भ की जो बाद मे क्रमशः विकसित की गई।

सन् १८७०के प्रस्ताव ने प्रान्तीय सरकारो के लिए वार्षिक अनुदान निश्चित किये और साथ मे व्यय के उल्लिखित शीर्षको को और उनसे होने वाली राजस्व-आय को उन्हे सौप दिया। ये विभाग थे :—जेल, निबन्धन, पुलिस, शिक्षा, डॉक्टरी नौकरियाँ ( Medical Services ), मुद्रण, सडक, सरकारी इमारते और विभिन्न सार्वजनिक सुधार। आय मे कमी होने की दशा मे स्थानीय कर लगाए जा सकते थे अथवा व्यय घटाया जा सकता था। वर्ष समाप्त होने पर यदि आय का कोई अश व्यय न हो पाया हो तो उस पर केन्द्रीय राजस्व-कोष का कोई अधिकार नही हो सकता था। स्थानीय सरकार उस अश को अपनी इच्छानुसार[1] अपने काम मे ला सकती थी। प्रान्तीय सरकारो को कुछ शर्तो के अधीन नियुक्तियाँ करने का अधिकार भी दिया गया। इस सम्बन्ध मे ये दो बाते आवश्यक थी कि एक तो किसी नियुक्ति का मासिक वेतन २५० रु. से अधिक नही हो सकता था और दूसरी बात यह थी कि नियुक्तियो के वेतन की व्यवस्था नियत अनुदान मे से ही की जानी थी।

लॉर्ड मेयो की सरकार ने यह आशा की कि नई व्यवस्था के कारण "अधिक समझदारी और मितव्ययिता से काम लिया जायगा, आर्थिक व्यवस्था मे निश्चितता का वह अश आ जायगा, जिसका अब तक अभाव था, और सर्वोच्च एव प्रान्तीय सरकारो के व्यवहार और मनोभावो मे अधिक सामजस्य हो सकेगा।"[2] साथ ही यह आशा की "कि स्वशासन के विकास के लिए, नगरपालिका सस्थाओ को सुदृढ करने के लिए और शासन-कार्य मे भारतीयो और यूरोपियनो को अधिकाधिक साथ लेने के लिए प्रस्तावित नीति से, क्षेत्र विस्तृत होगा।"[3]

इस नई व्यवस्था का मुख्य दोष यह था कि विभिन्न अनुदानो का निश्चय, १८७०-७१ मे विभिन्न प्रान्तो के व्यय के आधार पर किया गया। तत्कालीन असाम्य को दूर करने, और प्रान्त की वास्तविक आवश्यकताओ के अनुसार अनुदान निश्चित करने का प्रयत्न नही किया गया। जैसा कि डॉ० ज्ञानचन्द ने कहा है, "मितव्ययी प्रबन्ध होने के कारण अथवा केन्द्रीय सरकार तक पहुच मे कठिनाई

१ Para 18. of the Resolution Mukherjee. Indian Constitutional Documents vol. I page 628.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६२९. Para 22.

३. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ६३० Para 23.

होने के कारण अथवा पिछडेपन या अनुन्नत होने के कारण, जिन प्रान्तो का व्यय कम था, उन्हे, मितव्ययिता, दीनता अथवा पिछडेपन का दण्ड दिया गया।"[१]

इस व्यवस्था का दूसरा दोष यह था कि राजस्व की उगाही मे मितव्ययिता लाने के लिए कोई प्रयत्न नही किया गया। इस प्रकार प्रान्तीय सरकारो का स्वार्थ अपनी आय के मितव्ययी उपयोग और समुचित वितरण मे तो था, किन्तु राजस्व की उगाही मे ऐसा कोई स्वार्थ नही था। इसके अतिरिक्त आबकारी और मुद्राक (स्टाम्प) शुल्क मे बडी धाँधलेबाजी की जाती थी और उगाही मे सरकार को राजस्व की हानि होती थी।" अत १८७७ की योजनानुसार लॉर्ड लिटन की सरकार ने उगाही मे प्रान्तीय सरकारो का स्वार्थ निहित करने का प्रयत्न किया।

१८७७ की योजना को वाइसराय की परिषद् के तत्कालीन अर्थ-सदस्य सर जॉन स्ट्रैची ने तैयार किया था। इस योजना के अनुसार व्यय के कुछ और शीर्षक भी प्रान्तीय सरकारो को सौप दिए गए। इनमे मालगुजारी, आबकारी, स्टाम्प, सामान्य शासन, लिखने का सामान, विधि और न्याय की गणना थी। इन सेवाओ के बदले मे प्रान्तीय सरकारो का स्थायी अनुदान नही बढाया गया वरन् प्रान्त मे उगाही हुई राजस्व की कुछ मदो मे उनका साझा कर दिया गया। आबकारी, रसीद, विधि, न्याय आदि कुछ अधिकरणो से प्राप्त होने वाली राजस्व-आय प्रान्तीय सरकारो को इस शर्त पर दे दी गई कि इन अधिकरणो की अनुमानित आय के एक निश्चित परिमाण से अधिक आय होने पर सर्वोच्च सरकार उस अतिरिक्त परिमाण का आधा भाग ले लेगी और घाटा होने पर उसमे भी आधा साझा करेगी।[२]

प्रान्तीय सरकारो को वित्तीय नियत्रण के अधिकार सौपने का प्रयोग सुचारु रूप से चला। लॉर्ड रिपन, उनके अर्थ-सदस्य मेजर बेरिंग (बाद मे लॉर्ड क्रोमर) तथा उनकी सरकार ने वित्तीय विषयो मे प्रान्तीय उत्तरदायित्व को और अधिक बढाने का निर्णय किया। यह निर्णय ३० सितम्बर १८८१ के प्रस्ताव द्वारा किया गया।

१८८२ की योजना के अनुसार निश्चित अनुदान देने की व्यवस्था तोड दी गई और प्रान्तीय सरकारो को राजस्व की कुछ मदे पूरी तरह दे दी गई और कुछ अन्य मदो मे उनका साझा कर दिया गया। राजस्व की मदो को तीन वर्गो मे विभाजित किया गया.—साम्राज्यीय, प्रान्तीय और विभाजित। प्रान्तीय वर्ग के राजस्व

१ Gyan Chand. The Financial System of India, page 143.

२. Mukherjee: Indian Constitutional Documents. vol. I. page LXI.

पर प्रान्तों को पूर्णाधिकार दिया गया और विभाजित वर्ग के राजस्व पर प्रातीय और साम्राज्यीय सरकार को प्रायः समान अनुपात में अधिकार दिया गया। साम्राज्यीय शीर्षकान्तर्गत राजस्व,केन्द्रीय सरकार के व्यय के लिए था। मालगुज़ारी की साम्राज्यीय शीर्षक में गणना की गई थी, किन्तु प्रान्तीय आय मे कमी होने पर उक्त मालगुज़ारी आय का एक निश्चित भाग देकर पूर्ति करने की व्यवस्था की गई। साम्राज्यीय शीर्षक में सीमा-शुल्क, डाक और तार,रेलवे, अफीम, नमक, उपहार, टकसाल, होम चार्जेज़ और सैनिक विभाग की गणना थी। दीवानी विभागो और प्रान्तीय सार्वजनिक निर्माण-विभाग की आय पूर्ण रूप से प्रान्तीय थी। आबकारी, रसीद, वन और निबन्धन की मदे दोनो मे विभाजित थी। अनिश्चितता को समाप्त करने के उद्देश्य से १८८२ के प्रस्ताव द्वारा पचवर्षीय बन्दोबस्त की व्यवस्था चलाई गई। युद्ध और दुर्भिक्ष-सम्बन्धी असाधारण व्यय के बारे मे साम्राज्यीय और प्रातीय सरकारो के पारस्परिक आर्थिक सम्बन्ध को भी प्रस्ताव मे स्पष्ट किया गया। साधारणतया, अत्यन्त असाधारण और विपत्तिपूर्ण परिस्थितियो के अतिरिक्त युद्ध के सम्बन्ध मे प्रान्तीय सरकारो से कोई माँग नही की जा सकती थी। दुर्भिक्ष-व्यय के सम्बन्ध मे प्रान्तीय सरकारो की शीघ्र और समय पर सहायता करने के लिए वचन दिया गया। बीमा और दुर्भिक्ष-पीडितो की सहायता के लिए भारत-सरकार की १५ लाख पौण्ड की वार्षिक बॉट मे से, प्रान्तीय सरकारे अकाल के लिए विशेष निधि सग्रह कर सकती थी।

इस प्रकार प्रान्तीय सरकारो की स्थिति मे काफी सुधार हुआ। सन् १८८४ मे प्रान्तीय वित्त के असाधारण चढाव-उतारों को रोकने के लिए हर प्रान्तीय सरकार के आकलन अवशेष (Credit balance) की न्यूनतम सीमा निश्चित कर दी गई। १८८२ की इस व्यवस्था का १८८७ में, १८९२ मे और फिर १८९७ मे नवीकरण किया गया और उसके निहित सिद्धातो को यथावत् रखा गया। किंतु प्रत्येक नवीकरण के समय पचवर्षीय बन्दोबस्त की व्यवस्था के मुख्य दोष सामने आये। १८९६ मे सर्वोच्च विधान-परिषद् मे बगाल के उप-गवर्नर ने अपने भाषण मे इन दोषो का इन शब्दो मे वर्णन किया:—"मैं, प्रति पाँच वर्ष बाद सशोधन करने की वर्तमान व्यवस्था का विरोध करता हूँ। प्रान्तीय भेड को गिराकर उसके ऊन को पूरी तरह उतार लिया जाता है और नये रोये बढने तक उसे ठिठुरन के लिए छोड़ दिया जाता है। प्रान्तीय व्यवस्था का इतिहास साधारणतया इस प्रकार है—पहले दो वर्षों मे कृपणता और मितव्ययिता बरती जाती है और कामो को स्थगित किया जाता है, फिर दो वर्ष तक स्वाभाविक गति और विधि से काम किया जाता है और अन्तिम वर्ष में अवशिष्ट निधि का इस भय से अपव्यय किया जाता है कि कही संशोधन के समय प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष ढंग से

सर्वोच्च सरकार बचे हुए परिमाण को छीन न ले। यदि यह बात चरित्र को गिराने वाली नही है तो कम-से-कम अनुचित अवश्य है। मेरी सम्मति में सर्वोच्च सरकार को हर पाँच वर्ष बाद प्रान्तीय भेड को उपर्युक्त प्रकार से नही मूँडना चाहिए ..... यदि भारत-सरकार नवीनीकरण के हर अवसर पर यथासभव कम परिवर्तन करे तो स्थानीय सरकारो का बहुत बड़ा हित होगा। वह आर्थिक निश्चितता, जो १८७० की वर्तमान योजना की एक मुख्य वस्तु थी, केवल इस प्रकार से ही व्यवहार मे अनुभव की जा सकती है।"[१]

( २ )

वित्तीय निक्षेपण की नीति के साथ स्थानीय स्वशासन के विकास को प्रोत्साहन देने की नीति का घनिष्ठ सम्बन्ध था। सन् १८७० के प्रस्ताव-प्रवर्तको ने यह आशा की थी कि स्वशासन के विकास के लिए, नगरपालिका-सस्थाओ को दृढ करने के लिए और शासन-कार्य मे भारतीयो और यूरोपियनो को अधिकाधिक साथ लेने के लिए, वित्तीय निक्षेपण की नीति से क्षेत्र विस्तृत होगा।

प्रेसीडेंसी नगरो मे नगरपालिका सरकार १८७० से बहुत पहले से थी किंतु अन्य नगरो में नगरपालिका-सरकार बनाने का प्रथम प्रयत्न सन् १८४२ के एक्ट न. दस द्वारा किया गया। इस एक्ट के अनुसार "हर सार्वजनिक स्थान के निवासियो को स्वास्थ्य और सुविधा की दृष्टि से श्रेष्ठतर प्रबन्ध करने का अधिकार दिया गया।"[२] स्वेच्छा के सिद्धात पर आधारित होने के कारण किसी स्थान के दो तिहाई निवासियो के प्रार्थना-पत्र देने पर ही उक्त अधिकार का उपयोग किया जा सकता था। केवल एक नगर मे उक्त प्रबन्ध किया गया किंतु वहाँ के निवासियो ने कर देना केवल अस्वीकार ही नही किया वरन् उगाही करने वाले कलक्टर पर अनधिकार प्रवेश का अभियोग भी चलाया।[३] इस एक्ट को १८५० मे रद्द कर दिया गया और भारत के विभिन्न प्रान्तो मे नगरपालिका-सस्थाएँ बनाने के लिए उसी वर्ष का एक्ट न २४ बनाया गया। सन् १८४२ का एक्ट, प्रत्यक्ष कर की व्यवस्था से बहुत अप्रिय हो गया था। सन् १८५० के

१ Quoted by G. K. Gokhale in his evidence before Welby Commission of 1897. page 11. Appendix 1. —Speeches of Gokhale.

२ Moral and Material Progress Report 1882. Chablani and Joshi: Readings in Indian Administration page 400

३ Imperial Gazetteer of India. Vol. IV. p. 286

एक्ट में परोक्ष कर के लिए अनुमति दी गई। यह एक्ट भी अनुज्ञाप्रद था—"प्रत्येक प्रान्तीय सरकार को इस बात का अधिकार दिया गया कि वह एक्ट को किसी नगर मे इस बात का विश्वास हो जाने पर ही कार्यान्वित करे, कि नगर-निवासो प्रार्थना-पत्र के पूरी तरह अनुकूल हैं। तदुपरान्त सरकार को मजिस्ट्रेट और कुछ अन्य व्यक्तियो को कमिश्नर नियुक्त करने का अधिकार दिया गया। कमिश्नरो की सख्या आवश्यकता पर निर्भर थी। इन कमिश्नरो को नियम बनाने के विस्तृत अधिकार दिये गए। इन्ही अधिकारो के अन्तर्गत वह चुगी-कर, जो आजकल भारत मे इतना प्रचलित है, पहली बार वैध हुआ।"[१] इस एक्ट का उत्तरी-पश्चिमी प्रान्त और बम्बई मे ही विस्तृत रूप से लाभ उठाया गया। सन् १८६३ मे राजकीय सेना समार्जन आयोग (Royal Army Sanitary Commission) ने अपनी रिपोर्ट दी। इसकी सिफारिशों के फलस्वरूप विभिन्न प्रान्तो मे नगरपालिका-एक्ट बनाए गए। बगाल का एक्ट १८६४ में बना, मद्रास का १८६५ में, पंजाब का १८६७ मे और उत्तरी पश्चिमी प्रान्त का १८६८ मे। इन एक्टो के अनुसार नगरपालिका बनाने के लिए, निर्वाचन का उपयोग करने का प्राधिकार दिया गया, किंतु इसका उपयोग वस्तुत: केवल पजाब और मध्यप्रान्त मे ही किया गया। नवनिर्मित नगरपालिकाओ का मुख्य काम समार्जन का सुधार था।

सन् १८७० के प्रान्तीय वित्त-सम्बन्धी प्रस्ताव ने ऐसी नीति अपनाने की आवश्यकता की ओर विशेष ध्यान दिलाया कि उसके फलस्वरूप शिक्षा, समार्जन, नि शुल्क चिकित्सा और स्थानीय सार्वजनिक निर्माण के लिए निर्दिष्ट निधि की व्यवस्था द्वारा स्थानीय अभिरुचि, निरीक्षण और सावधानी को अभिव्यक्ति मिल सके। इस उद्देश्य से विभिन्न प्रान्तो मे १८७१ और १८७४ के बीच नए नगरपालिका-एक्ट बनाए गए। इनमे अधिकार-वृद्धि के साथ निर्वाचन-सिद्धात के विस्तार की व्यवस्था की गई किंतु केवल मध्य प्रान्त मे ही सार्वजनिक प्रतिनिधित्व को विस्तृत रूप मे सफलता के साथ अपनाया गया। १८८२ के स्थानीय स्वशासन-प्रस्ताव मे १८७० की नीति के परिणामो का इन शब्दो मे साराश दिया गया है—"सन् १८७० के बाद बडी भारी प्रगति हुई थी। स्थानीय उपकरों से बहुत बडी आय हुई थी और कुछ प्रान्तो मे आय-व्यवस्था को बिना किसी रोक-टोक के, स्थानीय निकायो को सौप दिया गया था। नगरपालिकाओ की सख्या और उपयोगिता में भी वृद्धि हुई थी। किंतु देश के विभिन्न भागो की प्रगति मे अब भी इतना बडा असाम्य

---

१ Moral and Material Progress Report उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ४०१

था कि उसके लिए विभिन्न स्थानीय परिस्थितियो का कारण नही दिया जा सकता। कुछ स्थानो मे स्थानीय प्रबन्ध के लिए परिगृहीत सेवाएँ केन्द्रीय शासन के हाथो मे सुरक्षित थी। सभी स्थानो मे पुलिस-कार्य के सम्बन्ध मे नगरपालिकाओ से एक बडे परिमाण मे खर्चा लिया जाता था किन्तु उस पुलिस पर उनका कोई नियत्रण नही था।[1]

लॉर्ड रिपन की सरकार ने अपने १८८१ के प्रान्तीय वित्त-सम्बन्धी प्रस्ताव के स्थानीय स्वशासन-विकास के विषय पर प्रान्तीय सरकारो की सम्मति आमत्रित की थी। उसने अपने निजी प्रस्तावो को १० अक्तूबर १८८१ को प्रान्तीय सरकारो के पास भेजा और उनसे उस पर अपनी सम्मति प्रकट करने को कहा। फलस्वरूप १८८२ का स्थानीय स्वशासन-सम्बन्धी प्रसिद्ध प्रस्ताव बना।

( ३ )

१८८२ के प्रस्ताव से भारत मे स्थानीय स्वशासन कारगर रूप से आरम्भ हुआ। स्थानीय स्वशासन के विकास का प्रतिपादन "शासन मे सुधार के मुख्य उद्देश्य" से नही किया गया, वरन् इस कारण कि वह "राजनीतिक और सामान्य जागृति के लिए एक उपकरण के रूप मे वाछनीय था।" "कुछ समय बाद स्थानीय ज्ञान और अनुराग के कारण स्थानीय शासन मे कुशलता स्वत. बढेगी।"[2] सरकारी विभागो पर भार कम होगा और लोक-भावना से प्रेरित, शिक्षित और वृद्धि-कर वर्ग को काम देकर नये कार्यालय खोलने की माँग पूरी होगी।[3] प्रस्ताव मे कहा गया कि "सरकारी अधिकारियो ने विगत प्रयत्नो मे सदुद्देश्य से प्रेरित होकर किन्तु बार-बार हस्तक्षेप करके इन प्रयत्नो को कुचल दिया था।"[4] तदुपरान्त प्रस्ताव ने भविष्य की नीति निर्धारित की।

पहली बात तो यह थी कि केवल बडे या छोटे नगरो मे ही नही वरन् सारे देश मे स्थानीय मडल बनाने थे। इन मडलो की निश्चित निधि और उनके निश्चित दायित्व को स्पष्ट कर दिया गया था।[5] ग्राम्य क्षेत्रो मे स्थानीय परामर्श-समिति की जगह इन्ही मडलो को मिलनी थी। उनके कार्य मे स्थानीय अनुराग बढाने के लिए

१ Mukherjee. Indian Constitutional Documents. Vol. I. page 639.

२ Para 5. of the Resolution उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६४२.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६४२, प्रस्ताव का छठा पैराग्राफ।

४ Mukherjee: Indian Constitutional Documents Vol. I. page 643. Para 7.

५. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६४४, प्रस्ताव का पैराग्राफ़ न. १०.

और स्थानीय ज्ञान का उपयोग करने के लिए यह नियम बनाया गया कि. "इनमें से किसी मंडल का क्षेत्र किसी दशा मे बहुत बडा नही होना चाहिए ।"[१] यह सुझाव रखा गया कि बडे-से-बडा क्षेत्र, तहसील या ताल्लुका हो । इन स्थानीय मडलो के ऊपर जिला-मडल बनने थे । इन जिला-मडलो को नियत्रण के लिए कुछ अधिकार दिये गए ।

दूसरी बात यह थी कि प्रस्ताव मे छोटे और बडे नगरो मे स्थानीय शासन के निर्वाह और विस्तार के लिए व्यवस्था की गई थी । नगरो के मडलो को यथासंभव स्वतन्त्र रखना था, किंतु कुछ विषयो मे जिला-परिषद् के नियत्रण-सम्बन्धी कुछ अधिकार हो सकते थे ।

तीसरी बात यह थी कि प्रस्ताव मे यह निश्चित कर दिया गया था कि "सरकारी सदस्यो की सख्या किसी भी दशा मे कुल सख्या की एक तिहाई से अधिक नही होनी चाहिए ।"[२] इस प्रकार शहरी और ग्राम्य दोनो प्रकार के मडलो मे गैर-सरकारी सदस्यो का प्राधान्य होना था । गैर-सरकारी सदस्यो का कार्य-काल दो वर्ष के लिए निश्चित था ।

चौथी बात यह थी कि सपरिषद् गवर्नर-जनरल ने इस बात की सिफारिश की "कि स्थानीय परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए,[३] निर्वाचन-व्यवस्था को अधिकाधिक व्यवहार मे लाया जाय" साथ ही "हर प्रान्त को अपने लिए उपयुक्त व्यवस्था छाँटने के लिए विभिन्न योजनाओ के प्रयोग करने का सुझाव दिया गया ।"[४] यह कहा गया कि "साधारण मत, सचित मत, क्षेत्र विभागानुसार निर्वाचन, सारे नगर द्वारा निर्वाचन, न्यूनाधिक अर्हता द्वारा निर्वाचन, जाति और व्यवसाय के अनुसार निर्वाचन और साथ ही अन्य निर्वाचन-प्रणालियो का प्रयोग किया जा सकता है ।" प्रतिष्ठित व्यक्तियो को आकर्षित करने के उद्देश्य से यह नियम बनाया गया कि मडल के भारतीय सदस्यो के नाम के साथ उनके कार्य-काल की अवधि मे रायबहादुर अथवा खाँ बहादुर की सम्मानार्थ उपाधि व्यवहार मे लाई जाय ।

पाँचवी बात सपरिषद गवर्नर-जनरल की यह इच्छा थी कि ग्राम्य और शहरी दोनो प्रकार के स्थानीय मडलो के सभापति[५] यथासभव गैरसरकारी

---

१ Mukherjee Indian Constitutional Documents. पृष्ठ ६४४, प्रस्ताव का पैराग्राफ न० १०

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६४५, प्रस्ताव का पैराग्राफ न. १२.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६४५, प्रस्ताव का पैराग्राफ नं. १३.

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६४६ प्रस्ताव का पैराग्राफ़ नं. १४.

५. उपर्युक्त पुस्तक, Vol. I, p. 649, para 19 of the Resolution.

व्यक्ति हों। उसका यह कहना था कि जब तक मुख्य कार्यपालिका-अफसर नगरपालिका और जिला-समिति के सभापति होंगे तब तक इन समितियों द्वारा, उनके सदस्यो का, स्थानीय प्रबन्ध-कार्य के लिए कोई वास्तविक शिक्षण नही होगा। और उस समय तक गैरसरकारी सदस्य स्थानीय विषयो मे कोई सक्रिय दिलचस्पी भी नही ले सकेगे।"[1] गैरसरकारी सदस्य ज़िले के कार्यपालिका अध्यक्ष के साथ भिडने की जोखिम नही उठाना चाहेगे।

अन्त मे प्रस्ताव ने स्थानीय मडलो के समुचित नियंत्रण की व्यवस्था की। यह नियंत्रण अन्दर से न होकर बाहर से होना था।[2] कार्यपालिका-अधिकारियो के लिए नियंत्रण के दो अधिकार सुरक्षित किये गए। पहला अधिकार तो यह था कि "कुछ कार्यवाहियो को मान्य बनाने के लिए उनकी स्वीकृति आवश्यक थी। इन कामो मे निम्न बातो की गणना थी —ऋण उगाहना, अधिकृत करो के अतिरिक्त अन्य कर लगाना, नगरपालिका-सम्पत्ति को हस्तान्तरित करना, साम्प्रदायिक प्रश्नो से सम्बन्धित विषयों में हस्तक्षेप, सार्वजनिक शान्ति को प्रभावित करने वाले विषय, इत्यादि। दूसरा अधिकार यह था कि स्थानीय शासन, विशेष परिस्थितियो मे मडल की कार्यवाही मे हस्तक्षेप कर सकता था और उसे रद्द कर सकता था। साथ ही किसी महत्त्वपूर्ण कर्त्तव्य की दीर्घकालीन उपेक्षा की दशा मे, स्थानीय शासन को मडल का निलम्बन करने का अधिकार दिया गया। जब तक उक्त उपेक्षित कर्त्तव्य का सतोषप्रद रूप से पालन न हो, तब तक मडल का कार्य करने के लिए स्थानीय सरकार द्वारा कुछ व्यक्तियो को नियुक्त करने की व्यवस्था थी।"[3]

सन् १८८३–१८८४ मे, उक्त प्रस्ताव जारी होने के कुछ ही समय बाद, उसकी नीति को कार्यान्वित करने के लिए, विभिन्न प्रान्तो मे स्थानीय स्वशासन एक्ट बनाये गए।

---

१. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, पैरा १८, पृष्ठ ६४८-६४९.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६४७-६४८, पैराग्राफ न. १७.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६४७-४६८, प्रस्ताव का पैराग्राफ नं. १७.

## नवाँ अध्याय

# भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन का आरंभ

( १ )

भारती यइतिहास मे सन् १८६१ से लेकर १८९२ तक के युग का, राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय के कारण एक स्थायी महत्त्व है। सन् १८८५ मे, दिसम्बर के २८, २९ और ३० दिनाक को देश के विभिन्न भागो से ७२ प्रमुखभारत वासी, राजनीतिक काम के लिए एक सर्वसम्बन्धित कार्यक्रम निश्चित करने के उद्देश्य से बम्बई मे एकत्रित हुए। "भारतीय इतिहास मे, इतना महत्त्वपूर्ण और व्यापक सम्मेलन, इससे पहले कभी नही हुआ था।"[१]

इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना और राष्ट्रीय आन्दोलन के आरम्भ के बारे मे कितने ही कारण बताये गए है। लाला लाजपतराय के अनुसार इनमे से मुख्य कारण था—प्रवर्तको का साम्राज्य को छिन्न होने से रोकने के लिए तीव्र इच्छा।

पिछली शताब्दी की आठवी दशाब्दी मे भारतीय स्थिति निश्चित रूप से विस्फोटक थी। १८७७ के दुर्भिक्ष के बाद असन्तोष बराबर बढ रहा था। काग्रेस के पिता, मि० ह्यूम ने देश के विभिन्न भागो के सरकारी प्रतिवेदनो (reports) को देखा था। इनके अनुसार सर्वसाधारण मे असन्तोष उफन रहा था और उनकी उग्रता बढ रही थी। यह सभव था कि शिक्षित वर्ग मे से कोई चिढा हुआ नवयुवक आगे आकर जन-सगठन करने लगता और—"उसे राष्ट्रीय विद्रोह मे परिणत कर देता।"[२] कम-से-कम मि० ह्यूम के विश्वासानुसार भारत मे एक भयकर विस्फोट का तात्कालिक सकट निश्चय रूप से वर्तमान था। सर विलियम वेडरबर्न के अनुसार बम्बई-प्रेसीडेन्सी के दक्षिण भाग मे तो उपद्रव फूट भी पडे। "इनका आरम्भ इधर-उधर की छोटी डकैतियो से हुआ · · बाद मे डाकुओ के इन दलो का दमन पुलिस की सामर्थ्य के बाहर हो गया, तब पूना का सारा सैन्य-दल उन्हे दबाने को भेजा गया। · ·अधिक शिक्षित वर्ग मे से एक नेता मिल गया, जो अपने-आपको शिवाजी द्वितीय कहता था। उसने सरकार को चुनौतिया दी और (बम्बई के गवर्नर) सर रिचर्ड टेम्पल के सिर के लिए ५०० रुपये का पुरस्कार घोषित किया और जिस

---

१. Chirol. India page 80 से पहले अधिवेशन के सभापति श्री उमेश चन्द्र बनर्जी के व्याख्यान के एक उद्धरण का अनुवाद।

२ Lajpat Rai Young India. pages 135–138

प्रकार से मराठा-शक्ति ने आरम्भ मे अपने-आपको स्थापित किया था, उसी प्रकार से राष्ट्रीय विद्रोह का नेतृत्व करने का दावा किया।"[१]

लाला लाजपतराय इस निष्कर्ष पर पहुँचे :—"अतः इन दोनो नेताओ (मि० ह्यूम और सर विलियम वेडरबर्न) के शब्दों मे काग्रेस का तात्कालिक उद्देश्य, ब्रिटिश साम्राज्य को इस सकट से बचाना था।"[२]

यह असभव नहीं है कि ब्रिटिश साम्राज्य को भारत मे बचाने, और साथ ही ब्रिटिश सम्पर्क से उत्पन्न शक्ति के निष्क्रमण के लिए काग्रेस का सुरक्षा-छिद्र के रूप मे उपयोग करने के विचार, सिविल सर्विस से निवृत्त, काग्रेस के इन दोनो नेताओ के मस्तिष्क मे रहे हो। किन्तु यह विश्वास करना कठिन है कि दादाभाई नौरोजी, डब्ल्यू. सी बनर्जी, फीरोजशाह मेहता, तैयबजी, रानाडे, तैलग और सुरेन्द्रनाथ बनर्जी-जैसे भारतीय नेता इस उद्देश्य से प्रेरित थे। जैसा कि लाला लाजपतराय ने स्वीकार किया है, स्वयं मि० ह्यूम भी अन्य एव उच्चतर उद्देश्यो से विशेष रूप से प्रेरित थे "ह्यूम को स्वतन्त्रता का व्यसन था। दु.ख और दरिद्रता के दृश्य से उनका हृदय कराह उठता था। भारतवासियो के प्रति अपने देशवासियो के 'कायरता-पूर्ण' व्यवहार से उन्हे बडा क्षोभ होता था।·· इतिहास के गम्भीर अध्ययन से उन्हे यह बात भलीभाँति ज्ञात थी कि कोई भी सरकार, चाहे वह राष्ट्रीय हो अथवा विदेशी हो, सार्वजनिक माँगो को केवल नीचे से दबाव पड़ने पर ही स्वीकार करती है। · अतः वह यह चाहते थे कि भारतवासी अपनी स्वतन्त्रता के लिए 'प्रहार' करें।.....प्रथमारभ था सगठन। फलत उन्होने सगठन के लिए मत्रणा दी।"[३]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि काग्रेस की स्थापना मे ब्रिटिश साम्राज्य को बचाने की इच्छा का कोई बहुत बडा महत्त्व नही था। वस्तुतः काफी समय से, कितनी ही शक्तियाँ काम कर रही थी। उनके फलस्वरूप राष्ट्रीय आन्दोलन का उदय हुआ। सन् १८८० के पश्चात् इस आन्दोलन को जन्म देने वाली मुख्य बातो को छै शीर्षको मे विभाजित किया जा सकता है :—

(१) पश्चिम के राजनीतिक आदर्शों की प्रेरणा; (२) धार्मिक पुनरुत्थान और भारत के प्राचीन वैभव के प्रति श्रद्धाभाव; (३) आर्थिक असन्तोष और ब्रिटिश आश्वासनो के पूर्ण न किये जाने के कारण निराशाभाव; (४) भारतीय समाचार-पत्रों का और साथ ही देशी साहित्य का

१. Lajpat Rai: Young India. page 137.
२. उपर्युक्त पुस्तक. पृष्ठ १३३.
३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ, १४१-१४२.

प्रभाव; (५) सचार साधनो का विकास और साम्राज्ञीय दरबारो का आयोजन; और (६) शासक जाति के उद्धत एव अहकारपूर्ण व्यवहार के कारण, जातीय भावनाओ मे कटुता की वृद्धि, लॉर्ड लिटन का प्रमत्त एव अविवेकपूर्ण शासन और हत भाग्य इल्बर्ट-विधेयक के सम्बन्ध में यूरोपियनो तथा आग्ल भारतीयो द्वारा उग्रता और सगठित तीक्ष्ण प्रचार का प्रदर्शन।

भारत की राजनीतिक जागृति मे पश्चिमी शिक्षा का बहुत बडा प्रभाव रहा है। उसके द्वारा भारतवासी सर्वोत्तम अग्रेजी विचारों के—मिल्टन, बर्क, मिल, मैकॉले, स्पेन्सर आदि के ग्रन्थो के—सम्पर्क मे आये। पश्चिमी शिक्षा ने भारत-वासियो मे स्वतन्त्रता, राष्ट्रीयता, स्वशासन आदि के जीवन-प्रेरक विचार भरे और फलत उन्हे देश की तत्कालीन राजनीतिक स्थिति[1] से असन्तुष्ट कर दिया और वे स्वशासन सस्थाओ के लिए तथा नौकरियों मे श्रेष्ठतर स्थानो के लिए माँग करने लगे। दूरदर्शी अग्रेजो ने इस परिणाम की पहले ही प्रत्याशा की थी। लॉर्ड मैकॉले ने कहा था कि "यूरोपीय शिक्षा प्राप्त करने के बाद एक दिन वे (भारतवासी) यूरोपीय सस्थाओ के लिए माँग करेगे" और आग्ल इतिहास के लिए वह "अधिक-तम गर्व का दिन" होगा।[2] साथ ही पश्चिमी शिक्षा ने समूचे भारत को एक राष्ट्र-भाषा का मूल्यवान उपहार दिया। इसी के माध्यम से भारतवासियो के लिए, परस्पर निकट आना, विचार व्यक्त करना और सभाओ तथा सम्मेलनो में मिलकर सर्वसम्बन्धित कार्यक्रम बनाना, सभव हुआ।

पश्चिम के साथ वास्तविक, व्यक्तिगत सम्पर्क के कारण, अग्रेजी शिक्षा के उक्त परिणाम और भी प्रखर हो उठे। भारतीय नवयुवक उच्च शिक्षा के लिए इग्लैण्ड गए, साथ ही अन्य भारतवासी अन्य उद्देश्यो से विदेश गये। विदेशो मे अपने प्रवास से, ये भारतवासी, स्वतत्र राजनीतिक सस्थाओ की कार्य-विधि से विशेष रूप से परिचित हुए। इस प्रवास ने उन्हे स्वतन्त्रता का मूल्य सिखाया और उनके मस्तिष्क से दीनतापूर्ण एव दास्य-मनोवृत्ति को दूर किया। विदेशो से लौटने वाले भारतीयो को यहाँ का दासतापूर्ण वातावरण खलता था और वे उद्विग्न और असन्तुष्ट होते थे। उनका यह असन्तोष सक्रामक सिद्ध होता था।

---

१. पश्चिमी शिक्षा के तात्कालिक परिणाम अच्छे नही थे। इस नई शिक्षा-सुरा ने बहुत से तरुण भारतीयो को बिलकुल भ्रष्ट कर दिया और उन्हे अराष्ट्रीय बना दिया। वे बुरी यूरोपीय बातो का अनुकरण करने लगे। "अत्यधिक मद्यपान और साथ ही विचार, रुचि और चरित्र का असयम व्यापक हो गया।"

२. Speeches of Lord Macaulay. July 10th 1833. Keith: "Speeches and Documents on Indian Policy". Vol. I. page 265.

( २ )

इसी दिशा में एक दूसरी बात का प्रभाव हुआ। यूरोपीय विद्वानो ने प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन किया और पुरानी भारतीय सस्कृति एव सभ्यता की प्रशसा की। मैक्समूलर, मोनियर विलियम्स, रौथ, मैसून बुर्नफ आदि प्रसिद्ध विद्वानो ने "सस्कृत भाषा की सम्पन्नता एव श्रेष्ठता का ··· उसके ऐतिहासिक एव साहित्यिक महत्त्व का· · ··( संक्षेप मे ) भारतीय सभ्यता के आधारभूत हिन्दू साहित्य का··· केवल पश्चिमी जगत् के लिए ही नही, वरन् स्वय भारत के लिए भी प्रकटीकरण किया।"[१]

इस सम्बन्ध मे विभिन्न धार्मिक सुधारको का काम और भी अधिक महत्त्वपूर्ण था। लोगो ने उस खाई को अनुभव किया, जो सन् १८६१-१८९२ के भारत और उस प्राचीन युग के भारत मे थी, जब वेद और उपनिषद् प्रकट किये गए थे और जब अन्य धार्मिक एव दार्शनिक ग्रन्थो की रचना की गई थी। राष्ट्रीय आन्दोलन के पूर्वगामी एव प्रेरक, धार्मिक सुधार-आन्दोलनो मे ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, आर्यसमाज, थियोसॉफी और श्री रामकृष्ण परमहस तथा स्वामी विवेकानन्द के उपदेशो का समावेश था। ये सुधार-आन्दोलन, मुख्यत· धार्मिक होने के साथ ही, राष्ट्रीय भी थे। इन्होने भारतवासियो को अपने महान उत्तराधिकार के प्रति सचेत किया और उनमे राष्ट्रीय भावना जाग्रत की। धर्म ने राष्ट्रीयता को प्रेरित किया।

( ३ )

जैसा कि मि० गैरट ने कहा है, "राष्ट्रीयता मे शिक्षित वर्ग का अनुराग, हमेशा ही, कुछ हद तक आर्थिक और कुछ हद तक धार्मिक कारणो से हुआ है।"[२] यह निर्विवाद सत्य है कि देश की आर्थिक स्थिति के ह्रास ने और सरकार की अराष्ट्रीय आर्थिक नीति ने, भारतीयो के उच्च पदो से बहिष्कृत करने की नीति के साथ मिलकर, भारतवासियो मे ब्रिटिश विरोधी और राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने मे बहुत बड़ा प्रभाव डाला।

विदेशी मशीन से बने माल के साथ प्रतिद्वन्द्विता न कर सकने के कारण, भारत के उद्योग-धधे नष्ट हो गए थे और देश निर्धन होता जा रहा था। सरकार ने संरक्षण देने और सहायता करने के स्थान पर, इग्लैण्ड के स्वार्थ के लिए मुक्त व्यापार की नीति को जान-बूझकर अपनाया और उन धधो के विनाश मे सहयोग दिया। इस पुस्तक के सातवें अध्याय मे कपास सीमा-शुल्क-सम्बन्धी विवाद का विवरण दिया जा चुका है। उक्त विवाद के कारण व्यावसायिक एवं उद्योग वर्गों की सद्भावनाएँ समाप्त हो गई थी। हस्तशिल्प नष्ट हो जाने के कारण धरती (कृषि) पर दबाव

१. Chirol India. page 80
२. Garrat: An Indian Commentary. 119.

प्रति दिन बढ रहा था; विभिन्न दोषो के कारण कृषि की दशा भी अच्छी नही थी। विनिमय नीति अस्वाभाविक थी और ब्रिटिश व्यावसायिक हितो पर निर्भर थी। इन दोनो बातो ने दोषों को और भी प्रखर बना दिया था। शासन-व्यवस्था अत्यन्त व्ययपूर्ण थी। विदेशी राज्य के कारण, बहुत बडी धनराशि देश से बाहर जाती थी। सर्वसाधारण की निर्धनता स्थायी हो गई थी और उन्हे कुचले डालती थी और वर्षा के अभाव मे दुर्भिक्ष पडते थे। शिक्षित वर्गों की स्थिति भी आर्थिक दृष्टि से अनिश्चित थी। उनकी सख्या द्रुत गति से बढ रही थी। वे औद्योगिक और व्यावसायिक जीवन के लिए अयुक्त थे—क्योकि तत्कालीन शिक्षा का एक-मात्र उद्देश्य था, सरकारी नौकरियो के लिए आदमी तैयार करना। किन्तु नौकरी के उच्च पदो के लिए द्वार बन्द था और छोटी नौकरियो मे वेतन बहुत कम था और उन नौकरियो की सख्या भी स्वाभाविक रूप से सीमित थी। शिक्षित वर्ग मे बेकारी बढ रही थी। हर मैजेस्टी की उद्घोषणा और अन्य घोषणाओ ने बडी ऊँची आशाएँ जाग्रत की थी—किन्तु लॉर्ड लिटन को स्पष्टवादिता ने क्षोभ और असन्तोष उत्पन्न कर दिया था। इस विषय मे यह बात ध्यान रखने योग्य है कि भारत मे सबसे पहला सगठित आन्दोलन १८७७-७८ मे भारतीय सिविल सर्विस के सम्बन्ध मे हुआ। इसका सगठन कलकत्ते की इडियन एसोसियेशन ने किया था। सन् १८७७ में २५ मार्च को कलकत्ते के टाउन-हॉल मे एक विराट सभा हुई "जो इसी सम्बन्ध मे समस्त भारत के लिए ऐसी ही और अधिक विराट् सभाओ की पूर्वगामिनी थी।"[१] सिविल सर्विस के प्रश्न पर एक स्मरण-पत्र स्वीकार किया गया और लाल मोहन घोष को इग्लैण्ड जाकर हाउस ऑव कॉमन्स मे स्वय ही उसे प्रस्तुत करने के लिए नियुक्त किया गया।

इस आन्दोलन के सम्बन्ध मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सारे देश का दौरा किया था। उन्होने इस आन्दोलन का महत्व इन शब्दो मे व्यक्त किया है :—

"आन्दोलन तो साधन था; परीक्षाएँ प्रतिद्वन्द्विता के लिए अधिकतम सीमा बढ़ाने की, और समकालिक परीक्षा की व्यवस्था करने की, उद्देश्यो मे गणना थी; किन्तु इन सब बातों की तह में, सिविल सर्विस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य, भारतवासियो में एकता और सुदृढता की भावना को जाग्रत करने का विचार था।"[२]

---

१. "सारे देश मे—लाहौर, अमृतसर, मेरठ, इलाहाबाद, दिल्ली, कानपुर, लखनऊ, अलीगढ़, बनारस, बम्बई, सूरत, अहमदाबाद, पूना और मद्रास मे सभाएँ हुई। Bannerjee : A Nation in the Making page 44 से अनूदित।

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४४

( ४ )

अंग्रेजी और भारतीय भाषाओं के समाचार-पत्रो ने, जिनके मालिक और सम्पादक भारतीय ही थे, राष्ट्रीय जागृति को उत्पन्न किया और उसका पोषण किया। देश के आग्ल भारतीय और भारतीय समाचार-पत्रो के बीच एक बडी खाई थी। आंग्ल भारतीय पत्र राष्ट्रीयता-विरोधी थे और सदा सरकार का पक्ष लेते थे। वे शासक और शासित जातियो के बीच सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक समानता की नीति को व्यवहार में लाने के कट्टर विरोधी थे। दूसरी ओर भारतीय पत्र राष्ट्रवादी, सरकारी नीति के आलोचक और जातीय समानाधिकार के प्रतिपादक थे। इसके अतिरिक्त वे पत्र, देश का शासन और नियत्रण करने के लिए, भारतीयो के अधिकार का भी प्रतिपादन करते थे। सरकारी और गैर-सरकारी आग्ल-भारतीयों का यह सामान्य आक्षेप रहा है कि भारतीय पत्रो का—विशेषकर अग्रेजी भाषा के पत्रो का—दृष्टिकोण द्रोहात्मक रहा है। इस तथ्य मे कोई सन्देह नही है कि भारतीय पत्रो ने विभिन्न (सपादन सम्बन्धी) कानूनो और अध्यादेशो के कारण बड़ी क्षति उठाई है और उन्होने स्वदेश की बहुत बडी सेवा की है। आरम्भ में कोई राष्ट्रीय मच नही था और उसका काम समाचार-पत्रो ने ही किया। उन्होने शिक्षित वर्गों को जगाया और उनमें स्वदेश-भक्ति की भावना और राष्ट्रीय चेतना के बीज बोये। भारतीय पत्रो ने भारतीय राष्ट्रीयता और राजनीतिक सुधार के पक्ष में निरन्तर प्रचार किया। यहाँ इस बात की ओर ध्यान दिलाना उचित होगा कि विभिन्न भाषाओ मे —विशेषकर बगला मे —लोक-साहित्य के विकास ने महत्त्वपूर्ण काम किया। बकिमचन्द्र चटर्जी-विरचित 'आनन्द मठ' को कुछ लोगों ने "आधुनिक बगाली देशभक्ति की गीता" कहकर पुकारा है। इसी पुस्तक मे 'वन्दे मातरम्' गान पहली बार सामने आया। 'आनन्द मठ' ने बगाल मे क्रान्तिकारी राष्ट्रीयता की पाठ्य पुस्तक का काम किया।

( ५ )

आधुनिक यातायात के विकास ने भी राष्ट्रीय भावना की वृद्धि मे सहायता की। सचार साधनो ने विस्तृत देश को एक सूत्र मे गूँथ दिया और भौगोलिक ऐक्य सुस्पष्ट हो गया। अब, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के सिविल सर्विस-सम्बन्धी अखिल भारतीय दौरे की तरह, राष्ट्रीय पैमाने पर प्रचार करना, और अत्यधिक दूरी के कारण विच्छिन्न लोगो में राष्ट्रीयता और एकता की भावना भरना सभव हो गया।

१८७७ मे इग्लैण्ड की महारानी द्वारा नई उपाधि धारण करने के समय, वाइसराय ने उसकी घोषणा के लिए दिल्ली मे एक विशाल दरबार किया और इसमें सम्मिलित होने के लिए देश के प्रत्येक भाग से राजा, नवाब और सामन्त आदि आए। यह देखकर राष्ट्रीय कार्यकर्त्ताओ को अखिल भारतीय सम्मेलनो का

आयोजन करने और अखिल भारतीय पैमाने पर राष्ट्रीय संस्था के संगठन करने का विचार सूझा। १८७७ के इस दरबार-समारोह पर भारतवासियों को बड़ा रोष हुआ, क्योकि उस समय देश एक बहुत बडे अकाल के चंगुल में था। किन्तु इस ऐश्वर्यपूर्ण प्रदर्शन द्वारा सयुक्त भारत का भान होने के कारण मि. अम्बिकाचरण मजूमदार ने उसे 'छद्मवेश मे आशीर्वाद' बताया।"[1]

( ६ )

राष्ट्रीय एकता की भावना का निर्माण करने वाले कारणों मे, शासकों और शासितो के बीच, जातीयता की कटु भावनाओ मे वृद्धि का एक प्रमुख स्थान है।

१८५७ के विद्रोह से पहले भारतीयो और अग्रेजो के पारस्परिक सम्बध घनिष्ठ एव मित्रतापूर्ण थे। उस समय कोई वर्णगत अथवा जातिगत पक्षपात नही था। अग्रेज सख्या मे बहुत थोडे थे और भारतीयो के घनिष्ठ सम्पर्क मे रहते थे। अन्तर्जातीय विवाह भी होते थे जिनसे कितने ही प्रसिद्ध वश अस्तित्व मे आए। इनके अतिरिक्त अस्थायी और अनियमित सम्बन्ध भी होते थे।[2] किन्तु विद्रोह के बाद ये सब बाते बदल गईं।

ब्रिटिश भारत के इतिहास मे, १८५७ के विद्रोह ने एकदम काया-पलट कर दी। शासको और शासितो के पारस्परिक सम्बन्ध बिलकुल बदल गए। अग्रेजों के हृदय मे भारतवासियो के प्रति अविश्वास भर गया और जनता के प्रति सरकार की सारी नीति बदल गई। विद्रोह के कारण जो अविश्वास की नीति बनी, उसी के फलस्वरूप भारतीयो का—इनमे अत्यन्त राज-भक्त भी सम्मिलित थे—वास्तविक शक्ति अथवा महत्त्व के स्थानो से—जैसे सेना, पुलिस, विदेश और राजनीतिक विभाग से—बहिष्कार किया गया, सारे देश का नि.शस्त्रीकरण किया गया और शस्त्र-एक्ट को बडी क्षुद्रता के साथ कार्यान्वित किया गया, और सैन्य शक्ति द्वारा सर्वसाधारण को आतकित किया गया। इन बातो से एक ओर तो जनता मे कटुता, घृणा और अवज्ञा की भावना बढी और दूसरी ओर दीनता और दास्य मनोवृत्ति[3] बढी। ऐसी दशा मे अग्रेजो और भारतीयो के बीच आदर, मित्रता और सहृदयता की भावनाओ का बना रहना असभव हो गया।

---

१. A.C. Mazumdar Indian National Evolution. page 33

२. Garrat: An Indian Commentary. page 115.

३. विद्रोह ने इस बात को प्रकट किया कि अंग्रेज अपने पूर्वाधिकारियों से श्रेष्ठतर नही थे। नादिरशाह की तरह अग्रेजो ने भी दिल्ली में कत्ले-आम किया। मुगलो ने गाँवों को जलाकर, दोषी और निर्दोषी, सभी की हत्या करके अपनी सत्ता जमाई। अग्रेजो ने उस परम्परा का पालन किया। अंग्रेज गुप्त शत्रु हो

विद्रोह के बाद, भारत मे आने वाले अंग्रेज नवयुवकों के मस्तिष्क में भारतीयो के बारे मे बड़ी विचित्र धारणाएँ होती थी। वे, पच के तत्कालीन हास्य-चित्रों के अनुसार[१] भारतीयो को ऐसा जन्तु समझते थे, जो आधा वनमानुष और आधा नीग्रो था, और जिसे केवल भय द्वारा ही समझाया जा सकता था, और जिसके लिए जनरल नील और उसके साथियो का घृणा और आतक का व्यवहार ही उपयुक्त था। जब भारत आने पर वे अपने उन देशवासियो के सम्पर्क में आते थे जिन्हे विद्रोह के भयकर अनुभव थे, तो भारतीयो के प्रति उनकी घृणा की भावनाएँ, दृढतर हो जाती थी। ऐसे व्यक्तियो के लिए भारतीयो के साथ स्वतन्त्रता के साथ घुलना-मिलना और उनके साथ मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना असभव था। अत. उन लोगो ने अपनी छावनियाँ और बस्तियाँ अलग बनाई। साथ ही उन्होने अपने लिए एक विचित्र व्यवहार-नीति बनाई। मि० गैरट के अनुसार इसके तीन महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त थे : एक तो यह कि एक यूरोपियन का जीवन, कितने ही भारतीयो के जीवन के बराबर था। दूसरा यह कि "प्राच्य देशवासी केवल भय को ही समझता था।" तीसरा यह, कि वे वहाँ (भारत मे) लोक-हित के लिए नही, वरन् अपने त्याग के फलो का स्वाद लेने के लिए, और साथ ही अपने निजी लाभ के लिए आये थे।[२] इन बातो के भयकर परिणाम हुए और भारतीयो तथा अग्रेजो के बीच की खाई बराबर बढती गई।

आग्ल-भारतीयो की मनमानी और आतकपूर्ण नीति भारतीयो को विशेष रूप से खटकती थी। १८७२ मे मलेरकोटला के उपद्रव मे, बिना अभियोग-निर्णय किये, ४९ सिखो को तोप से उडा दिया गया।[३] इसके अतिरिक्त और बहुत-सी ऐसी घटनाएँ बार-बार हुई जिनमे अग्रेजो ने भारतीयो की हत्या की अथवा उनके साथ बर्बरतापूर्ण व्यवहार किया।[४] इन अपराधो के लिए या तो कोई दड ही नही दिया

---

गए। विद्रोह के बाद आत्म दैन्य की वह भावना आरम्भ हुई जो ऐसी परिस्थितियो मे स्वाभाविक थी। Garrat: An. Indian Commentary, page 44.

१. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४५.

२. Garrat : उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४४.

३. Writes Sir Henry Cotton —For my part I can recall nothing during my service in India more revolting and shocking than these executions.

४ Theodore Morrison: Imperial Rule in India. page 280. से अनूदित उद्धरण.—"बैरकपुर के एक प्रतिष्ठित वकील की बर्बरतापूर्ण ढंग से हत्या करने के अपराध मे,

गया अथवा केवल साधारण-सा जुर्माना कर दिया गया। उपर्युक्त बातो ने सर्व-साधारण के मस्तिष्क मे घृणा की ज्वाला को जीवित बनाए रखा। साथ ही जब कभी उपर्युक्त प्रकार की घटनाएँ होती थी तो सरकारी और गैर-सरकारी सभी अग्रेज उनका समर्थन करते थे और आग्ल-भारतीय पत्र उग्र आन्दोलन खडा कर देते थे। इन बातो से स्थिति और भी बिगड जाती थी। सर हेनरी कॉटन लिखते है: "यदि किसी चाय के रोपक पर किसी असहाय कुली को निर्दयतापूर्वक पीटने का अभियोग चलाया जाता है, तो उसका निर्णय करने के लिए चाय के रोपको की जूरी बनाई जाती है। यह जूरी स्वाभाविक रूप से अभियुक्त के पक्ष मे होती है। यदि उच्च न्यायालय के हस्तक्षेप से या अन्य किसी कारण से दोष-सिद्धि होती है तो अग्रेजो का सारा जनमत उस निर्णय की निन्दा करता है। आग्ल-भारतीय समाचार-पत्र अग्नि मे आहुति डालते है और अपने पत्र मे इस विरोध को व्यक्त करते है। अपराधी के व्यय के लिए चन्दे की उगाही की जाती है। प्रभावशाली व्यक्तियो द्वारा सरकार के लिए स्मरण पत्र तैयार किये जाते है और उनमे अभियुक्त के छुटकारे के लिए निवेदन किया जाता है।"[1] इसका स्वाभाविक परिणाम था जातीय कटुता मे वृद्धि। जैसा कि मि० गैरट ने सकेत किया है, भारतीय राष्ट्रीयता की बढोतरी मे उक्त कटुता की भावना का बहुत बडा प्रभाव हुआ।

( ७ )

लार्ड लिटन के राज्य-काल मे ऐसी बहुत सी घटनाएँ हुई जिनके फलस्वरूप भारत मे जातीय विरोध और कटुता की भावनाओ में वृद्धि हुई। साम्राज्यीय दरबार समारोह के समय, भारतीय लोग भीषण दुर्भिक्ष की भयकर कठिनाइयो मे मृत्यु से सघर्ष कर रहे थे। "इस दरबार के अतिरिक्त, काबुल पर स्वेच्छानुसार आक्रमण किया गया ·· और दूसरा अफगान-युद्ध हुआ, रूसी आतक के कारण सेना मे बहुत बड़ी वृद्धि की गई और वैज्ञानिक ढग से सुरक्षा सीमा बनाने के लिए काफी व्यय किया गया · ·····; एक असहाय और निरपराध जनता का पूरी तरह नि शस्त्रीकरण किया गया (किन्तु यूरोशियनो को नही छेड़ा गया); देशी पत्रो का मुखा-

तोपखाने के तीन आदमी अभियुक्त हुए किन्तु उनको केवल सात वर्ष के कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। इस पर एक सैनिक अधिकारी ने कहा कि 'ससार के अन्य किसी भाग मे इन आदमियो को फाँसी की सजा दी जाती। इस पर लन्दन के एक पत्र ने कहा कि नाम जाने बिना यह विश्वास करना कठिन है कि भारत मे ऐसा भी कोई अग्रेज है जिसकी उक्त अधिकारी की सी सम्मति है।"

१. Sir Henry Cotton : New India, Page 48.

रोधन किया गया; लंकाशायर के स्वार्थ के लिए [illegible] का बलिदान किया गया।"[1] उपर्युक्त सारी बातें भारतवासियो के लिए अत्यन्त अरुचिकर थी और उनका प्रबल विरोध हुआ और उनके कारण, सर्वसाधारण में प्रचार और आन्दोलन के लिए विभिन्न भारतीय संस्थाओं का सगठन किया गया।

किन्तु अभी अखिल भारतीय सगठन को अस्तित्व मे लाने के लिए स्थिति परिपक्व नही हो पाई थी। इडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना करने के लिए अभी इल्बर्ट विधेयक पर आग्ल-भारतीय आन्दोलन, और शासक वर्ग के क्षुद्र स्वार्थ उसके जातीय अहकार तथा उसकी उग्रता का प्रदर्शन होना आवश्यक था।"[2]

( ८ )

इल्बर्ट विधेयक-सम्बन्धी विवाद में भारतीयो की असफलता ने प्रान्तों की जनता को जगाया और तीन प्रेसिडेन्सियो मे पिछले कुछ समय से जो राजनीतिक सस्थाएँ काम कर रही थी, उनमे नया जीवन भर दिया। कलकत्ता के इडियन ऐसोसियेशन ने १८३३ मे एक राष्ट्रीय सम्मेलन का आयोजन किया था। इसमें बगाल के अधिकाश बडे नगरो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया और इसे "राष्ट्रीय ससद् की दिशा मे प्रथम चरण" बताया [3]गया। १८८४ मे मद्रास महाजन सभा ने मद्रास मे एक प्रान्तीय सम्मेलन किया। ३१ जनवरी १८८५ को बम्बई मे एक सार्वजनिक सभा हुई और उसके फलस्वरूप बम्बई प्रेसिडेन्सी एसोसियेशन अस्तित्व मे आया। सन १८७०मे पूना मे 'सार्वजनिक सभा' नामक सस्था बनी और उपयोगी काम करती रही। उसने "पश्चिमी भारत को जगाने मे और साथ ही सामाजिक, राजनीतिक एव आर्थिक समस्याओ पर जनमत तैयार करने मे महत्त्वपूर्ण काम किया।"[4] सन् १८८३ मे एक मार्च को मि० ह्यूम ने [5]कलकत्ता-विश्वविद्यालय के

१. A C Mazumdar : Indian National Evolution.

२. इसी पुस्तक के छठे और सातवे अध्यायो को देखिये। जातीय भेद-भाव को समाप्त न कर सकने का कारण यह बताया गया कि "आग्ल-भारतीय जाति के सुसगठित और प्रबल विरोध का सन्तुलन करने के लिए सारे देश मे प्रबल एव सयुक्त समर्थन का अभाव था।" A C Mazumdar: Indian National Evolution, page 39 के एक उद्धरण से अनूदित।

३. Reported by Mr. Wilfred Blant. Quoted in Bannerji A Nation in the Making pages 86-87.

४ Kellock : Mahadeva Govind Ranade page 25.

५. मि० ह्यूम भारत के एक प्रतिष्ठित ब्रिटिश अधिकारी थे। उन्होने १८८२ में सर्विस से त्याग-पत्र दे दिया था और वे शिमले मे बस गए थे। वे 'इडियन नेशनल काग्रेस के पिता' के नाम से परिचित है।

स्नातको के नाम एक खुला पत्र सम्बोधित किया और उनसे राष्ट्रीय सेवा के लिए आत्मसमर्पण करने की अपील की। मि० ह्यूम ने इस पत्र में "इस शाश्वत सत्य पर जोर दिया कि सुख और स्वतन्त्रता के लिए, आत्म त्याग और निस्वार्थता से ही विश्वसनीय निर्देश मिलता है।"[1] उसके बाद सन् १८८४ के दिसम्बर में, देश के विभिन्न भागो का प्रतिनिधित्व करने वाले १७ भले और सच्चे व्यक्तियो ने मद्रास मे दीवान बहादुर रघुनाथ राव के निवास-स्थान पर एक बैठक की और राष्ट्रीय संस्था[2] बनाने के उद्देश्य से देश के विभिन्न भागो मे काम करने का निश्चय किया। इनमे से अधिकाश व्यक्ति मद्रास मे थियोसॉफिकल सोसाइटी के वार्षिक अधिवेशन मे सम्मिलित होने के लिए आये थे। लगभग इसी समय एक 'इडियन यूनियन' स्थापित हुई। १८८५ के मार्च में इस यूनियन ने एक विज्ञापन प्रकाशित किया और आगामी बड़े दिन पर पूना मे इस उद्देश्य से एक सम्मेलन बुलाया कि राष्ट्रीय कार्यकर्त्ता परस्पर परिचित हो सके और आगामी वर्ष के लिए विचार-विनिमय द्वारा राजनीतिक कार्यक्रम निश्चित कर सके।"

इस विज्ञापन को प्रकाशित करने से पहले मि० ह्यूम ने वायसराय लॉर्ड डफरिन से परामर्श कर लिया था और उन्होने वायसराय के सुझाव पर उक्त सस्था को राजनीतिक रूप दिया था अन्यथा उनका निजी विचार तो सामाजिक सम्मेलन के लिए एक मच बनाने का था। लॉर्ड डफरिन यह चाहते थे कि नई सस्था इग्लैण्ड के राजकीय विरोधी दल की भाँति काम करे ·· सरकार को यह बताये कि शासन मे कहाँ और क्या दोष है और उनको किस प्रकार दूर किया जा सकता है।"[3]

विज्ञापन को प्रकाशित करके और साथ ही सम्मेलन के लिए दिनाक (२८, २९ और ३० दिसम्बर १८८५) निश्चित करके, मि० ह्यूम, इग्लैण्ड मे उसके अनुकूल वातावरण बनाने के उद्देश्य से, वहा गए। काग्रेस मे सम्मिलित होने के लिए वह समय पर भारत लौट आए। हैजा फैल जाने के कारण सम्मेलन का स्थान पूना से हटाकर बम्बई कर दिया गया। इस प्रकार १८८५ के १८ दिसम्बर को, राष्ट्रीय महत्त्व के राजनीतिक विषयो पर विचार करने के लिए, इडियन नेशनल काग्रेस का पहला सम्मेलन बम्बई मे हुआ।[4] इसमे देश के विभिन्न भागो के बहत्तर प्रतिनिधि

---

१ Mazumdar - Indian National Evolution. page. 47

२. Annie Besant : How India wrought for Freedom page 1.

३. Mazumdar उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ५१

४. लगभग इसी समय कलकत्ता में एक राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ। इसमें केवल बंगाल

सम्मिलित हुए। उस समय के बाद काग्रेस का अधिवेशन भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक किसी एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र मे प्रतिवर्ष हुआ है।

काग्रेस राष्ट्रीय संस्था थी और उसमे देश के सभी लोगो का प्रतिनिधित्व था। आरम्भ में मुस्लिम प्रतिनिधियो की सख्या कुछ कम थी[1] और तत्कालीन, महान् मुस्लिम नेता सर सैयद अहमद काग्रेस से दूर थे, यहाँ तक कि उन्होंने बनारस के राजा शिवप्रसाद की सहायता से 'परम राजभक्तो' की एक विरोधी सस्था बनाई थी।[2] अन्यथा काग्रेस पूरी तरह लोक-प्रतिनिधि सँस्था थी[3] और सन् १९०७ के विभेद तक, लगभग सभी प्रमुख भारतीय उसकी परिधि के अन्तर्गत थे। साथ ही, मि० ह्यूम, सर विलियम वेडरबर्न, सर हेनरी कॉटन, मि० एण्ड्रिड यूल और मि० नॉर्टन-जैसे अनेक योग्य एव उदारमना आग्ल-भारतीय भी काग्रेस मे सम्मिलित थे।[4] सूरत की फूटके समय तक काग्रेस एक उदार और नरमदली सस्था थी और

---

के ही नही वरन् उत्तरी भारत के नगरो—मेरठ, इलाहाबाद, बनारस · ·से भी प्रतिनिधि आए। "सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और अमीर अली, मुख्य सगठनकर्त्ता थे। उन्हें बम्बई के सम्मेलन का जब पता लगा तो उस समय तक देर हो गई थी और कलकत्ता सम्मेलन का निलबन करना सभव नही था किन्तु अगले वर्ष से वे लोग काग्रेस मे मिल गए और उसको हार्दिक सहयोग दिया।" Bannerjee · A Nation in the Making page 89-99.

१. पहले अधिवेशन मे दो मुस्लिम प्रतिनिधि आये, दूसरे मे ३३ और छठे मे १०७

२. मि. ह्यूम ने काग्रेस-विरोधियो को तीन वर्गों मे बाँटा.—(१) आग्ल-भारतीय अधिकारी और पत्र, (२) कुछ नासमझ किन्तु ईमानदार भारतीय, (३) कुछ अवसरवादी · · ·जैसे मुस्लिमवर्ग। मि० ह्यूम के अनुसार इस विरोध की प्रेरणा बाहर से फूट डालकर राज्य करने की नीति से चिपके हुए कुछ भ्रान्त अधिकारियो से मिली। उन्होने विरोधी आन्दोलन को अस्वाभाविक और कुटिल बताया। Wedderburn. Allam Octarian Hume. Pages 71 to 73 से अनूदित।

३. ये प्रतिनिधि लोक-निर्वाचित नही थे। वे राष्ट्र के सर्वोत्तम विचारो का प्रतिनिधित्व करते थे।

४. लाला लाजपतराय लिखते है, "इस आन्दोलन को एक अग्रेज ने, एक अग्रेज वायसराय के सुझाव पर चलाया। यह आन्दोलन अन्दर से नही उठा था।" (Young India page 154 से अनूदित)। यह सच है कि मि० ह्यूम प्रमुख संगठनकर्ता थे। और लॉर्ड डफरिन के परामर्श से ही उन्होने काग्रेस को राजनीतिक रूप दिया। किन्तु यह भी सच है कि सन् १८८८ मे डफरिन

केवल शिक्षित वर्गों तक ही सीमित थी।[1] श्री तिलक और संभवतः श्री गोखले के अतिरिक्त उसके नेतागण स्वतन्त्रता के लिए व्यक्तिगत बलिदान करने को तैयार नही थे। आत्म-निर्भर एवं स्वतंत्र कार्यवाही के स्थान पर वे 'राजनीतिक भिक्षा' मे विश्वास करते थे। किन्तु यह बात ध्यान मे रखने योग्य है कि यद्यपि १८८५-१९०७ के युग मे इडियन नेशनल काग्रेस राज-भक्ति प्रदर्शित करती थी, उसकी सुचिन्तित नीति नरमदली थी और उसकी भाषा निवेदनात्मक ही नही वरन् याचनापूर्ण थी तथापि, उसने उस युग मे, भारतवासियों मे राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न करने, उन्हे एक सूत्र मे बॉधने और उनसे राष्ट्रीय एवं राजनीतिक जागृति फैलाने के लिए, महत्वपूर्ण मौलिक काम किया था।

## दसवाँ अध्याय

# १८९२ का भारतीय परिषद् एक्ट

( १ )

इडियन नेशनल काग्रेस के कार्य का पहला परिणाम था सन् १८९२ का भारतीय परिषद् एक्ट। काग्रेस ने अपने पहले ही अधिवेशन मे एक प्रस्ताव द्वारा सरकार की वर्तमान व्यवस्था के प्रति असतोष प्रकट किया था और यह निवेदन किया था, कि परिषदो में, निर्वाचित सदस्यो को प्रचुर अनुपात मे सम्मिलित करके

---

ने आन्दोलन का विरोध किया और काग्रेस को नगण्य अल्पसख्यको की संस्था बताया। जैसा कि उपर्युक्त वर्णन से स्पष्ट है काग्रेस तो एक मूलतः राष्ट्रीय आन्दोलन की पराकाष्ठा थी। प्रान्तीय राजनीतिक सस्थाओ ने आधार तैयार कर दिया था और राष्ट्रीय सगठन बनाने का विचार सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने १८८३ मे ही प्रकट किया था। जिस समय बम्बई मे काग्रेस-अधिवेशन हुआ ठीक उसी समय कलकत्ता मे राष्ट्रीय सम्मेलन हो रहा था।

१. Sir Valentine Chirol Indian Unrest page 154-155. से एक अनुवाद "वह केवल एक वर्ग का अथवा एक वर्ग के भी एक खण्ड का प्रतिनिधित्व करती है। इस वर्ग मे पश्चिमी शिक्षा पाए हुए व्यवसायी, वकील, डॉक्टर, अध्यापक, सपादक आदि मध्यम श्रेणी के लोग है। इसमें सन्देह नही कि यह वर्ग महत्वपूर्ण और प्रभावशाली है किन्तु वह कुल जनसंख्या के शतांश से अधिक नही है।

· · · · · सुधार और विस्तार किया जाय, उत्तरी पश्चिमी प्रान्त और अवध, और साथ में पंजाब के लिए भी वैसी ही परिषदें बनाई जायँ और; परिषदो को बजट पर चर्चा करने और "कार्यपालिका से शासन के प्रत्येक विषय पर प्रश्न करने" का अधिकार दिया जाय।[१]

पहले दो वर्षों तक काग्रेस की कार्यवाहियों के प्रति सरकार की दृष्टि सहानुभूतिपूर्ण रही, किन्तु १८८८ से उसकी नीति एकदम बदल गई। कारण यह था कि काग्रेस भारत और इगलैंड—दोनो ही स्थानो—मे अत्यधिक ध्यान आकर्षित करने लगी थी। लॉर्ड डफरिन ने काग्रेस को शिक्षित भारतीयो की 'नगण्य सख्या' को[२] प्रतिनिधि सस्था बताया। इलाहाबाद के लिए निर्दिष्ट चौथे अधिवेशन के मार्ग मे हर प्रकार की बाधाएँ डाली गई और १८९० मे सरकारी नौकरो को काग्रेस के अधिवेशनो मे सम्मिलित न होने के लिए अनुदेश दिये गए।

तथापि लॉर्ड डफरिन ने परिषदो के सुधार के लिए काग्रेस की माँग पर ध्यान देना आवश्यक समझा। उसने अपनी परिषद की एक कमेटी नियुक्त की और उसकी सहायता से, "प्रान्तीय परिषदो के विस्तार के लिए, उनका पद और कार्यक्षेत्र बढाने के लिए, उनमे निर्वाचन-सिद्धान्त · · अशत पुर स्थापन करने के लिए और उनके राजनीतिक स्वरूप को विस्तृत करने के लिए एक योजना" तैयार की।[३] किंतु ससद् व्यवस्था (Parliamentary System) के पुर स्थापन के लिए कोई प्रयत्न नही किया गया। कार्यपालिका अब भी "किसी स्थानीय सत्ता के प्रति उत्तरदायी नही की गई, वह यथापूर्व ब्रिटिश पार्लियामेट के प्रति उत्तरदायी बनी रही।"[४] इसी कारण उक्त योजना मे नाम निर्देशित अश का आधिक्य बनाये रखने की और साथ ही कार्यपालिका-अध्यक्ष को अपनी परिषद् की उपेक्षा करने के अधिकार की व्यवस्था की गई।[५]

भारत-मत्री ने उक्त योजना मे और सब बातो का अनुमोदन किया लेकिन निर्वाचन-सिद्धान्त को स्वीकार नही किया। अस्तु, अभी भारत-मत्री और भारत-

१ Resolution No. 3.—Besant, How India wrought for freedom. page 13

२ Speech of Lord Dufferin at St. Andrews Club. Calcutta.

३ Report on Indian Constitutional Reforms 1918, page 42

४ Report on Indian Constitutional Reforms 1918, page 43.

५. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ ४४

सरकार के बीच राजकीय पत्र-व्यवहार चल ही रहा था कि १८९० में मि० चार्ल्स ब्रैडलॉ ने हाउस ऑव कॉमन्स मे, १८६१ के भारतीय परिषद एक्ट का सशोधन करने के लिए एक विधेयक प्रस्तुत कर दिया। मि. ब्रैडलॉ को सन् १८८९ के काग्रेस-अधिवेशन का सभापतित्व करने के लिए बुलाया गया था। इस अधिवेशन मे काग्रेस-द्वारा स्वीकृत सुधार-योजना को ही उक्त विधेयक मे रूप दिया गया। इस योजना की मुख्य बाते यह थी –निर्वाचन-क्षेत्रो द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था हो; सरकारी सदस्य एक चौथाई से अधिक न हो, सम्राज्यीय एव प्रान्तीय विधान-परिषदो में निर्वाचित सदस्य कुल के आधे से कम न हो। भवन के व्यस्त कार्यक्रम मे विधेयक पर ध्यान नही दिया गया।[1]

१८९० मे हाउस ऑव लॉर्ड्स मे सरकारी प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया और उस भवन ने कुछ महत्त्वपूर्ण सशोधनो के साथ उसे स्वीकार कर लिया। हाउस ऑव कॉमन्स मे यह विधेयक पहले वाचन से आगे नही बढ पाया। अन्तत. १८९२ मे सशोधित सरकारी विधेयक को दोनो भवनो ने स्वीकृति दी और इस प्रकार १८९२ का भारतीय परिषद् एक्ट बना।

( २ )

इस एक्ट ने पहली बात तो यह की कि उसने अतिरिक्त सदस्यो की सख्या को बढा दिया। सर्वोच्च परिषद् के लिए इनकी सख्या कम-से-कम दस और अधिक-से-अधिक १६ निश्चित की गई, बम्बई और मद्रास की परिषदो के लिये न्यूनतम सीमा ८ और अधिकतम सीमा २० थी। साथ ही बगाल की अधिकतम सीमा २० और उत्तरी पश्चिमी प्रान्त तथा अवध की अधिकतम सीमा १५ थी।[2]

पार्लियामेण्ट के सदस्य मि श्वान ने अतिरिक्त सदस्यो की सख्या मे इस वृद्धि को अत्यन्त तुच्छ और दयनीय बताया। किन्तु मि०कर्ज़न ने समर्थन किया और यह तर्क प्रस्तुत किया, "कि किसी विचारशील निकाय की क्षमता उसकी सख्या शक्ति से अनिवार्य रूप से सबधित नही है बहुत बडे निकाय मितव्ययी शासन के प्रोत्साहक नही होते, परन्तु वे प्राय अपनी शक्ति को अस्पष्ट और निरर्थक वार्तालाप मे खपा देते है।"[3]

---

१. मि ब्रैडलॉ ने अगले वर्ष फिर प्रयत्न किया किन्तु फिर भी असफल रहे।

२. Clause 1. Sub section 1 and 2 of the Act, Mukherjee . Indian Constitutional Documents vol. I, page 227.

३. Keith : Speeches and Documents on Indian Policy vol. II. page 60.

एक्ट ने दूसरी बात यह की कि उसने सपरिषद् गर्वनर-जनरल को सपरिषद् भारत-मत्री के अनुमोदन से अतिरिक्त सदस्यो के नाम निर्देशन के लिए विनियम बनाने और "उन विनियमो को कार्यान्वित करने के लिए पद्धति निश्चित करने का अधिकार दिया।"[१] जैसा कि लॉर्ड किम्बरले ने कहा है, सरकार ने आश्वासन दिलाया कि इस खण्ड के अन्तर्गत गवर्नर-जनरल के लिए ऐसी व्यवस्था करना सभव होगा कि उसके अनुसार वह निर्वाचन द्वारा छाँटे हुए व्यक्तियो मे से नाम-निर्देशन कर सकेगा।[२]

एक्ट ने तीसरी बात यह की कि उसने परिषदो को वार्षिक वित्तीय विवरण पर चर्चा करने का अधिकार दिया——"बजट की हर मद पर एक-एक करके मत देने का अधिकार नही दिया, वरन् सरकार की वित्तीय नीति की पूर्ण एव स्वतत्र समालोचना करने का अधिकार दिया।"[३]

अन्त मे परिषदो के सदस्यो को गवर्नर-जनरल और प्रान्तीय गवर्नरो द्वारा निर्मित नियमो और प्रतिबधो के अन्तर्गत सार्वजनिक विषयो पर प्रश्न पूछने का अधिकार भी दिया गया।[४]

---

१. Clause I. Sub section 4 of the Act, Mukherjee : Indian Constitutional Documents. vol 5. page 227.
२. Keith : Speeches and Documents on Indian Policy vol. II page 60.
३. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ५६
४. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ५७

युग २

(सन् १८९२ से १९०९ तक)

## ग्यारहवाँ अध्याय

# शासन तथा संविधान से संबंधित परिवर्तन

( १ )

भारत के वैधानिक विकास मे अगला महत्त्वपूर्ण सीमाक है सन् १९०९ का भारतीय परिषद् एक्ट । इसमें लॉर्ड मॉर्ले और लॉर्ड मिण्टो के नाम से संबधित सुधार योजनाओ को रूप दिया गया । सन् १८९२ से १९०९ तक के युग में कितने ही महत्त्वपूर्ण प्रशासनीय कार्य एव परिवर्तन हुए; इनमे से अधिकाश के साथ लॉर्ड कर्ज़न का नाम जुडा हुआ है । इन परिवर्तनो में मौलिक बात है. शासन का केन्द्रीकरण और अधिकारीकरण; किन्तु वित्तीय क्षेत्र मे, पिछले युग मे आरभ की हुई निक्षेपण की नीति को ही व्यवहार मे लाया गया । लॉर्ड कर्ज़न के राज्य-काल में एक ओर तो भारतवासियो के प्रति, साथ ही उनकी योग्यता और सचाई के प्रति अविश्वास था. और दूसरी ओर कुशलता एव निपुणता[1] के लिए दृढ खोज थी, फिर चाहे परिणाम कुछ भी क्यों न हो । किन्तु इस युग १८९२–१९०९ की सबसे अधिक महत्त्व की घटना यह थी कि लोगो मे एक नई भावना का—आत्मविश्वास और पौरुष की भावना का और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के लिए बलिदान करने की तत्परता का जन्म हुआ । इस युग के अन्तिम छः वर्षों में बडी भारी उथल-पुथल हुई और दो राजनीतिक विचार-धाराओ का जन्म हुआ—एक धारा थी आतकवादी एव अराजकतावादी और दूसरी थी शौर्यपूर्ण राष्ट्रीयतावादी जिसके नेता थे, श्री तिलक, अरविन्द घोष, बाबू विपिनचन्द्रपाल और लाला लाजपतराय । काग्रेस दो दलो में बँट गई—नरम दली और उग्र दली; और ब्रिटिश सरकार ने उग्रता और क्राति के ज्वार को रोकने के लिए नरमदली लोगो और मुसलमानो को अपनी ओर मिलाने और परिषदो मे सुधार करने की नीति अपनाई । ये सुधार, मॉर्ले मिण्टो सुधार के नाम से प्रसिद्ध है ।

---

१. ३० सितम्बर १९०५ को लॉर्ड कर्ज़न ने अपनी विदाई के एक व्याख्यान में कहा . "एक शब्द में मेरे काम का परिचय पूछा जाय तो मै कहूगा, कुशलता । वही उद्देश्य है और वही हमारे शासन की कुजी है ।" Nevinson : The New Spirit in India. page 13 से अनूदित ।

( २ )

सन् १८९२–१९०९ के युग मे सबसे पहली बात तो यह थी कि वित्तीय निक्षेपण की नीति को जारी रखा गया। लॉर्ड कर्जन की सरकार ने सन् १८८२ की व्यवस्था के चौहरे दोषो[1] को दूर करने के लिए सन् १९०४ मे अर्ध-स्थायी बन्दोबस्त किया। इसमे प्रत्येक प्रान्त का राजस्व मे साझा निश्चित कर दिया गया और सम्राज्ञीय आवश्यकता की असाधारण परिस्थिति के अतिरिक्त इस साझे मे कोई परिवर्तन नही हो सकता था। कालान्तर मे अनुभव से यह पता लगने पर कि प्रान्तीय आवश्यकता की दृष्टि से उक्त बँटवारा अनुचित अनुपात मे हुआ है,तो उस दशा में भी उस साझे मे परिवर्तन हो सकता था।[2] यहाँ बँटवारा तत्कालीन आवश्यकताओ के आधार पर किया गया था और विशेष कार्यों की पूर्ति के लिए वार्षिक अनुदान की व्यवस्था थी। इससे तत्कालीन असाम्य स्थायी कर दिया गया किन्तु अनिश्चितता दूर हो गई और अपव्यय के लिए अथवा बचत को समाप्त करने के लिए कोई लालच नही रहा। प्रान्तीय बचत को हथियाने की नीति छोडने के फलस्वरूप मितव्ययिता केवल सभव ही नही हुई वरन् उसे प्रोत्साहन भी मिला।

यह व्यवस्था सन् १९०४ में आरभ हो गई और सन् १९०६ तक यह सब प्रान्तों मे लागू हो गई। अप्रैल १९०७ मे इसे बर्मा मे भी कार्यान्वित कर दिया गया। कुछ नगण्य परिवर्तनो के अतिरिक्त सन् १९१२ तक मूलत. यही व्यवस्था बनी रही।

( ३ )

इस युग मे दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि भारत की सेना का एकीकरण किया गया और युद्धकालीन क्षमता की दृष्टि से उसका पुनर्सगठन किया गया। इसका श्रेय है लॉर्ड किचनर को जो, १९०२ से १९०९ तक भारत मे सेनापति थे। यद्यपि सुधार-योजना को नवम्बर १९०३ मे सरकार के समक्ष रखा गया था किन्तु वास्तविक पुनर्सगठन १९०८ तक पूरा नही हो पाया। इस दिशा में ब्रिटिश पार्लिया-मेण्ट ने १८९३ मे मद्रास और बम्बई सेना एक्ट बना कर एक महत्वपूर्ण पग आगे बढाया। इस एक्ट के अनुसार मद्रास और बम्बई की सेनाओ के सेनापतियो के पद तोड़ दिये गए, भारत की सारी सेना की एक सेनापति के आधीन कर दिया गया और सपरिषद् गवर्नर-जनरल को उसके नियत्रण का अधिकार दिया गया।[3]

१. इसी पुस्तक का आठवाँ अध्याय देखिये। ये चार दोष थे.–दोहराने के समय होने वाले झगडे; अपव्यय; मालगुजारी की उगाही मे अत्यन्त कठोरता; और विभिन्न प्रान्तो की विषमता मे वृद्धि।

२. Report on Indian Constitutional Reforms 1918 page 70

३. सेना के एकीकरण के लिए मार्ग तैयार किया जा चका था। सन् १८६४ में

सन् १९०८ मे भारतीय सेना के दो भाग थे। इनमे से प्रत्येक भाग अथवा सेना मे पाँच डिवीज़न थे। उत्तरी सेना का केन्द्र मरी में था और लड़ाकू मोर्चा पेशावर मे था, दक्षिणी सेना का केन्द्र पूना मे था और उसका मोर्चा क्वेटा मे था। प्रत्येक सेना का एक पृथक् सेनाध्यक्ष था जिस पर सचालन, निरीक्षण और शिक्षण का दायित्व था किन्तु शासन कार्य से उसका कोई सबध नही था।[1] शासन के लिये दोनो ही सेनाएँ, प्रधान सैन्य-केन्द्र के आधीन थी। सैनिक अफसरो और अधिकारियो के शिक्षण के लिये कैम्बरले के नमूने पर क्वेटा मे एक कॉलेज खोल दिया गया था।

लॉर्ड किचनर के सुधारो के फलस्वरूप भारतीय सेना की शक्ति[2] और कुशलता[3] मे वृद्धि हुई किन्तु साथ ही सैन्य-व्यय बहुत बढ गया। इन सुधारो से सेना मे भारतीयो की स्थिति मे कोई परिवर्तन नही हुआ और सामरिक तथा असामरिक जातियो के भेद को और अधिक बढा दिया गया। पुराना वर्ग-भेद भी जारी रखा गया। यद्यपि ब्रिटिश सैन्य-दल का उपयोग मुख्यत आन्तरिक सुरक्षा के लिए ही था और उस पर भारतीय सीमाओ के सरक्षण का विशेष दायित्व नही था, तथापि उसकी शक्ति मे वृद्धि की गई।[4]

( ४ )

भारतीय सेना के पुनर्सगठन एव पुनर्वितरण के प्रश्न के साथ सीमा-नीति और नियत्रण के प्रश्न का घनिष्ठ सबध था। सीमा प्रान्तीय जिलो पर पजाब और केन्द्रीय सरकार का दोहरा नियत्रण था जिसके कारण सघर्ष होते थे अस्थिरता

---

सेना के तीन लेखा-विभागो को मिलाकर एक कर दिया गया था, सन् १८७६ मे तीन अश्व-विभागो को मिला दिया गया था; १८८४ मे आर्डिनेस विभागो को मिला दिया गया था और १८९१ मे तीनो प्रान्तो के अधिकारी दल को एक भारतीय अधिकारी दल मे मिला दिया गया था।

१. Indian Army and its Evolution. page 31

२. इस वृद्धि के बाद सेना मे ९ पैदल और ८घुडसवार दल हो गए; आन्तरिक सुरक्षा के लिये ८२००० सैनिको के अतिरिक्त सेना में कुल १५२००० सैनिक हो गए।

३. इस पुनर्सगठन के कारण एक प्रबल सेना हेलमन्द और एक सेना काबुल भेजना सभव हुआ—Frazer · India under Curzon and after. page 407.

४. विद्रोह के बाद ब्रिटिश सेना, भारत में आधिपत्य सेना के रूप में रही है न कि सुरक्षा सेना के रूप में।

रहती थी, अत्यधिक केन्द्रीकरण था और कामों मे अतिशय विलम्ब होता था।[1] लॉर्ड कर्ज़न ने इस द्वैध नियत्रण को तोडकर, एक पृथक् उत्तरी सीमा प्रान्त बनाने का प्रस्ताव किया। इस नए प्रान्त के लिए, भारत-सरकार के प्रति उत्तरदायी एक चीफ कमिश्नर की व्यवस्था थी। इस प्रस्ताव को भारत-मत्री ने स्वीकार किया और सम्राट एडवर्ड सप्तम के जन्म-दिन पर १९०१ मे ९ नवम्बर को नया प्रान्त बन गया।

लॉर्ड लेंसडाउन ने जाने से पहले, सीमा प्रान्तीय प्रदेश पर पूर्ण नियत्रण की प्रगतिशील नीति आरंभ कर दी थी। कुछ सैनिक विशेषज्ञो ने सिधु नदी पर सीमा बनाने की नीति का प्रतिपादन किया था। लॉर्ड कर्जन ने मध्य स्थिति को अपनाया। उसने अग्रिम मोर्चों के १५,००० ब्रिटिश अथवा नियमित सैनिको मे से १०,००० को वापिस बुला लिया और जन जाति क्षेत्रो (Tribal Territory) की रक्षा का काम उन्ही मे से तैयार किये हुए १०,००० अनियमित सैनिको को सौप दिया। उसने नियत अवधि के बाद इन जातियो को भत्ते मे निश्चित रकम देने की व्यवस्था को अपनाया। बदले मे इन लोगो का यह दायित्व था कि सडको और घाटियो के मार्ग खुले रहे, उस क्षेत्र मे शान्ति रखी जाय और अपराधियो को दड दिया जाय।[2] ब्रिटिश क्षेत्र मे लूट-मार के हमले रोकने के लिए, अनियमित सैन्य-दल की सहायतार्थ, सैनिक पुलिस की व्यवस्था थी। निकट के सुविधापूर्ण केन्द्रो मे नियमित सैन्य-दल थे जो आदेश पाने पर अविलम्ब धावा बोलने को तैयार रहते थे। अन्त मे सडको का सुधार किया गया और सैनिक यातायात की सुविधा के लिये महत्त्वपूर्ण रेलवे मार्ग बनाए गये। इस प्रकार भारत की उत्तरी पश्चिमी सीमा पर सुरक्षा-व्यवस्था सुदृढ की गई।

( ५ )

लॉर्ड कर्जन ने शासन के अन्य क्षेत्रो मे भी केन्द्रीकरण की नीति को अपनाया। उसने शिक्षा, कृषि, समार्जन, सिचाई, पुरातत्त्व, खानो इत्यादि के विषयो मे निर्देशन और नियत्रण के लिए विशेषज्ञो की नियुक्तियाँ की। उसने यह अनुभव किया कि सुनिश्चित एव समान नीति के तथा केन्द्रीय नियत्रण के अभाव मे उपर्युक्त विषयो का शासन ठीक नही होता था। अत उनके दोषो को दूर करने के उद्देश्य से शिक्षा, पुरातत्व, वाणिज्य, तथ्य और गुप्तचर कार्य—इनमे से प्रत्येक विभाग के लिए एक-एक डाइरेक्टर-जनरल की; कृषि और सिचाई के लिए इस्पेक्टर-जनरल की; समार्जन के लिए निरीक्षक की और खानो के लिये मुख्य निरीक्षक की, नियुक्तियाँ की गईं।

लॉर्ड कर्जन ने बम्बई और मद्रास की प्रेसीडेन्सी सरकारो की स्वायत्तता को

१. Ronaldshay : Life of Lord Curzon. Vol. II. page 134
२. Frazer : India under Curzon and After, pages 53-54.

समाप्त करके उन्हे अन्य प्रान्तीय सरकारों के स्तर पर लाने का भी प्रयत्न किया। किन्तु भारत-मत्री और ब्रिटिश मत्रि-मडल ने इसके लिये अनुमति नही दी।

( ६ )

केन्द्रीकरण की नीति के साथ अधिकारीकरण की नीति को भी अपनाया गया। स्थानीय निकायो और विश्वविद्यालयो-जैसी सार्वजनिक सस्थाओ मे भी सरकारी अधिकारियो को घुसा दिया गया ; परीक्षा मे प्रतिद्वन्द्विता के आधार पर नियुक्ति की जगह नाम निर्देशन की नीति अपनाई गई, और उच्चतर पद अगरेजो के लिए सुरक्षित रखे गए, क्योकि "उनमे अपने पैतृकाधिकार पोषण और शिक्षा के कारण, शासन के लिए अनिवार्य, चरित्र बल, शासन के सिद्धान्तो का बोध और मनोयोग था।"[१] लॉर्ड रिपन की तरह लॉर्ड कर्जन को भारतवासियो को स्वशासन के लिए शिक्षा देने मे विश्वास नही था। भविष्य मे कुशलता और स्वतन्त्रता के लिए वह वर्तमान मे कुशलता का बलिदान करने को तैयार नही था। अतः स्थानीय स्वशासन को रोकने के लिए और विश्वविद्यालयो के अधिकारीकरण के लिए उसने दो एक्ट बनाए।

१८९९ के कलकत्ता कार्पोरेशन एक्ट ने कार्पोरेशन के सदस्यो की सख्या को ७५ से घटाकर ५० कर दिया। ये २५ सदस्य करदाताओ के प्रतिनिधियो मे से कम किये गए। ब्रिटिश सदस्यो का निश्चित बहुमत कर दिया गया और भारतीयो को कार्पोरेशन और उसकी कमेटियो मे अल्पसख्यक बना दिया गया। जनता ने इसका तीव्र विरोध किया और कार्पोरेशन के २८ भारतीय सदस्यो ने सयुक्त रूप से त्याग-पत्र दे दिया।

इसी नीति के कारण १९०४ का भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट बना। जैसा कि लॉर्ड रोनैल्डशे ने कहा है,—उसका मुख्य उद्देश्य विश्वविद्यालयो की सीनेट और शासन-समिति का यूरोपीयकरण था और इन विश्वविद्यालयो को पूर्ण रूप से सरकारी विश्वविद्यालय बनाना था।[२] लॉर्ड कर्जन ने सन् १९०० मे ही विश्वविद्यालयो की शिक्षा के सबध में सरकारी दायित्व और नियत्रण की नीति का प्रतिपादन किया था। १९०४ के एक्ट मे उसी नीति को रूप दिया गया था। सारे देश के शिक्षित भारतीयो ने इस एक्ट का प्रबल विरोध किया। फ्रेजर ने लिखा है—"उन (भारतीयो) को इस बात का पूरा विश्वास था कि वायसराय विश्व-विद्यालय व्यवस्था को क्षति पहुँचाना चाहते है।"[३]

---

१. Buchan : Lord Minto के एक उद्धरण का अनुवाद।
२. Ronaldshay: The Life of Lord Curzon. Vol. II page 162
३. Frazer: India under Curzon and After. page 181.

सन् १९०४ के एक्ट मे तीन मुख्य उद्देश्यो को प्राप्त करने का प्रयत्न किया गया था—(१) विश्वविद्यालय का कार्य केवल परीक्षा लेने तक ही सीमित न हो वरन् वहाँ अध्ययन और अनुसधान को सक्रिय प्रोत्साहन दिया जाय—यह बात कई दशाब्दियो तक केवल एक आशा-मात्र ही रही, (२) विश्वविद्यालय और उसके अन्तर्गत कॉलेजों मे घनिष्ठतर सबध हो और कॉलेजो का कठोरतर नियत्रण हो, और (३) सीनेट, सिण्डीकेट और फैकल्टी का आकार कम किया जाय। नई सीनेटो के ८० प्रतिशत सदस्यो के सरकार द्वारा नाम निर्देशित किये गए।

लॉर्ड कर्जन की जीवनी लिखने मे जैसा कि लॉर्ड रोनैल्डशे ने कहा है इस ऐक्ट ने आशाओं को पूरा नही किया.– "सत्य इस बात को मानने के लिए विवश करता है कि वाइसराय ने जितना समय और ध्यान दिया था उसकी तुलना मे ..... जो वास्तविक परिवर्तन हुए वे नही के बराबर थे।"[1]

ज़मीन और मालगुज़ारी, मुद्रा एव व्यवसाय, सिचाई, पुलिस, रेलवे-शासन और सरकारी शासन-सबधी सुधारो मे लॉर्ड कर्जन को अधिक सफलता मिली।

शासन ढर्रेबार हो गया था और उसमे गति एव सुचारुता का अभाव था। विचाराधीन प्रश्न पर इतनी रिपोर्ट और सम्मतियाँ लिखी जाती थी कि उन रिपोर्टो के बीच वास्तविक प्रश्न खो जाता था।[2] इसके कारण निर्णय मे बहुत देर होती थी—एक विषय तो निर्णय के लिए इकसठ वर्षो तक लटका रहा। लॉर्ड कर्जन ने कितने ही सुधार सुझाये। उसने विभिन्न विभागो को अपने विषयो का व्यक्तिगत परामर्श द्वारा निपटारा करने की सलाह दी और साथ ही लम्बे विवादो से बचने, नोट लिखने का काम घटाने और शीघ्र निर्णय[3] करने के लिए कहा।

लॉर्ड कर्जन के अन्य सब प्रशासनीय सुधारो का वर्णन करना यहाँ आवश्यक नही है किन्तु पुलिस और रेलवे-शासन-सबधी सुधारो का सक्षिप्त विवरण देना उचित होगा।

सन् १८६० के पुलिस-कमीशन की सिफारिशो के आधार पर १८६१ मे पुलिस-व्यवस्था का पुनर्सगठन किया गया था। हर प्रान्त मे पुलिस-विभाग का साधारण प्रबन्ध एक इस्पेक्टर-जनरल के आधीन था। हर ज़िले मे एक यूरोपियन सुपरिंटेण्डेण्ट था और बडे जिलो मे उसके साथ एक यूरोपियन सहायक भी होता था। प्रत्येक ज़िला वृत्तो मे बाँटा गया था और प्रत्येक वृत्त एक इस्पेक्टर के आधीन

---

१. Ronaldshay The Life of Lord Curzon page 195.
२. उपर्युक्त पुस्तक, Vol. II, page 26.
३. Frazer India under Curzon and After page 256

किया गया था। हर वृत्त को कितने ही थानो मे बाँटा गया था और हर थाने का दायित्व एक हैड कान्स्टेबल को दिया गया था। इन थानों के अन्तर्गत सार्जेण्ट और अन्य कान्स्टेबल थे। ये सब नौकरियाँ, आधीन नौकरियो के वर्ग में गिनी जाती थी। जिला-मजिस्ट्रेट को निरीक्षण और प्रबन्ध के सामान्य अधिकार प्राप्त थे।

पुलिस-व्यवस्था के प्रति एक आम शिकायत थी और सन् १९०२ में सर एण्ड्रिउ फ्रेज़र की अध्यक्षता मे एक पुलिस-कमीशन की नियुक्ति की गई। इस कमीशन ने विस्तृत सिफारिशे की जो १२७ शीर्षकों मे बाँटी गई थीं। अधिकाश सिफारिशों को सरकार ने स्वीकार किया और सन् १९०५ मे उन्हें कार्यान्वित कर दिया गया। कमीशन की मुख्य सिफारिशे ये थीः—(१) पुलिस-संगठन में हैड कान्स्टेबल वर्ग से उच्चतर पदो के लिए पदोन्नति द्वारा भर्ती न की जाय वरन् उस उच्च एव पृथक् वर्ग के लिए सीधी भर्ती की जाय, (२) वेतन बढाये जायें[1]; (३) पुलिस-शक्ति में वृद्धि की जाय और पुलिस-कार्य के लिए गाँवो के वर्तमान अधिकरणों का उपयोग किया जाय, (४) अफसरो और कान्स्टेबलो के लिए शिक्षण-शालाएँ खोली जायँ, (५) जाँच के ढंग मे सुधार हो; (६) स्थानीय निरीक्षण और देख-भाल से काम का निर्णय किया जाय; आकडो से नही; (७) अपराधियो की खोज के लिए प्रान्तीय विभाग स्थापित किये जायँ और साथ ही एक डाइरेक्टर के आधीन एक केन्द्रीय विभाग हो।

सन् १९०५ के पुनर्सङ्गठन के फलस्वरूप पुलिस-शासन का व्यय, जो सन् १९०१-१९०२ मे २६,९१,३४४ पौण्ड था, सन् १९११-१२ में बढकर ४६,०२,९९७ पौण्ड हो गया। किन्तु पुलिस-दल की कुशलता में वृद्धि इसी अनुपात मे नही हुई और वह अब भी पहले की तरह अप्रिय बना रहा।

भारत मे रेलवे-शासन भी असन्तोषप्रद था। लॉर्ड कर्ज़न ने अपनी मंत्रणा के लिए रेलवे-विशेषज्ञ सर टॉमस राबर्टसन को इगलैंड से बुलाया। उसने रेलवे-शासन में आमूल सुधार करने की आवश्यकता बताई। उसी की सिफारिशो के आधार पर सन् १९०५ में एक रेलवे बोर्ड बनाया गया। इस बोर्ड में सभापति के अतिरिक्त दो सदस्य और थे। सन् १९०८ मे इस बोर्ड और उसके सहायको को एक पृथक् रेलवे-विभाग में परिणत कर दिया गया। इस विभाग का अपने अध्यक्ष द्वारा वायसराय से सीधा सबध था, उसके विस्तृत अधिकार थे; और उसका अपना महागणक और मुख्य इंजीनियर था। यह विभाग वणिज और उद्योग के सदस्य के आधीन था।

१. कान्स्टेबल के लिए ८ रु० प्रति महीने के न्यूनतम वेतन के लिए सिफारिश की गई किन्तु सरकार ने केवल ७ रु० महीने वेतन देना निश्चित किया।

( ८ )

इस युग मे वैधानिक महत्त्व की कई उल्लेखनीय घटनाएँ हुईं। सन् १८९३ में हाउस ऑव कॉमन्स ने इडियन सिविल सर्विस के लिए समकालिक परीक्षा का प्रस्ताव स्वीकार किया, महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई; एडवर्ड सप्तम का राज्याभिषेक हुआ; दिल्ली-दरबार हुआ और प्रिन्स ऑव वेल्स (राजकुमार) भारत मे आए; सन् १९०४ मे और फिर सन् १९०७ मे भारतीय परिषद् एक्ट बना; वायसराय की परिषद् के सदस्यो की स्थिति का और साथ ही भारत-मत्री और गवर्नर-जनरल के सबध का स्पष्टीकरण हुआ।

समकालिक परीक्षाओं के प्रस्ताव के स्वीकृत होने का श्रेय श्री दादाभाई नौरोजी को है जो उस समय हाउस ऑव कॉमन्स के सदस्य थे। भारत-मत्री के अनुसार प्रस्ताव केवल एक वोट से स्वीकृत हुआ था। उसे सम्मति के लिए भारत भेजा गया था; किन्तु मद्रास सरकार[1] के अतिरिक्त केन्द्रीय और अन्य प्रान्तीय सरकारो ने उसका प्रबल विरोध किया था।

२३ जनवरी १९०१ को महारानी विक्टोरिया की मृत्यु हुई। लॉर्ड कर्जन ने उसके राज्य-काल की स्मृति मे एक ऐसे स्मारक की स्थापना करने का निश्चय किया जिसमे विगतकालीन महत्त्वपूर्ण उपाख्यानो का और साथ ही भविष्य[2] में उसी प्रकार की वस्तुओ का सग्रहालय हो। फलत ५५०००० पौण्ड के व्यय पर कलकत्ते का प्रसिद्ध विक्टोरिया मेमोरियल हॉल बना। लार्ड रोनैल्डशे के अनुसार मुगलो के बाद वह भारत की सर्वोत्तम इमारत है और ब्रिटिश राज्य का सर्वोपरि वैभवपूर्ण स्मारक है।[3]

लॉर्ड कर्जन ने एडवर्ड सप्तम से आगामी शिशिर मे भारत आकर राज्याभिषेक दरबार करने का प्रस्ताव किया, किन्तु जब यह स्वीकार नही हुआ तो उसने एक साम्राज्यीय दरबार के लिए प्रस्ताव किया। यह वैभवपूर्ण दरबार १ जनवरी १९०३ को हुआ, इसमे सैन्य-व्यय के अतिरिक्त १८०००० पौण्ड खर्च किये गए। देशी राज्यो ने जो अपरिमित धनोत्सर्ग किया वह अलग था।

इसी युग मे तत्कालीन प्रिन्स ऑव वेल्स और प्रिन्सेज़ भारत आए। बंग-भंग के कारण देश में रोष छाया हुआ था और उस वातावरण के कारण अव्यवस्था का भय था किन्तु उनके पर्यटन में कोई अनुचित बात नही हुई।

---

१. मद्रास-सरकार ने १८७८ के मुखबरोधक एक्ट का भी विरोध किया था।

२. Ronaldshay : Life of Lord Curzon Vol. II page 155.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १६२.

( ९ )

१८७४ के एक्ट की धाराओ के अनुसार सार्वजनिक निर्माण सदस्य की नियुक्ति (१८७५ मे) की गई और उसी एक्ट के अनुसार (लॉर्ड कर्जन के भारत मे आने पर) उस पद को तोड दिया गया। सन् १९०३ मे वायसराय ने फिर (इस बार व्यवसाय और उद्योग-विभाग के लिए) परिषद् का छठा सदस्य नियुक्त करने के लिए ज़ोर दिया। १९०४ के भारतीय परिषद् एक्ट से यह अधिकार मिला। एक्ट ने सम्राट् को गवर्नर-जनरल की कार्यपालिका-परिषद् मे एक छठा साधारण सदस्य नियुक्त करने का अधिकार दिया। इस प्रकार व्यवसाय और उद्योग के लिए सन् १९०५ में छठे सदस्य की नियुक्ति की गई।

सन् १९०७ मे भारत-परिषद्-एक्ट द्वारा, भारत-परिषद् के सविधान मे भी परिवर्तन किया गया। इस एक्ट के अनुसार भारत-मत्री को सदस्यो की सख्या बढाकर १४ करने का अधिकार दिया गया। नौकरी की शर्त मे भी परिवर्तन किया गया और अवधि को दस वर्ष से घटाकर पाँच वर्ष कर दिया गया। सदस्यो का वेतन १२०० पौण्ड प्रतिवर्ष मे घटाकर १००० पौण्ड प्रतिवर्ष कर दिया गया और कार्य-काल को भी १० वर्ष के स्थान पर ७ वर्ष कर दिया गया।

( १० )

सन् १८९२ मे विधान-परिषदो के आकार और अधिकारो मे वृद्धि होने पर यह प्रश्न उठा कि क्या कार्यपालिका-परिषद् के सदस्य, विधान-मडल मे अपनी इच्छानुसार अपना मत प्रकट कर सकते है और क्या वे अवसर आने पर परस्पर विरोध कर सकते है? सन् १८९५ मे २६ जून को भारत-मत्री ने एक राज-पत्र द्वारा इस बात को अन्तिम रूप से निश्चित कर दिया और स्पष्ट शब्दो मे यह सिद्धान्त रखा कि कार्यपालिका-परिषद्, कार्यपालिका और विधान दोनो ही कामो में सयुक्त और सुदृढ है। "अपनाई हुई नीति, सारी सरकार की नीति है और उन लोगो को, जो शासन के सदस्य रहना चाहते है, उस नीति को स्वीकार करना चाहिए और उसे प्रोत्साहन देना चाहिए।"[१]

अगले कुछ ही वर्षों मे वायसराय की कार्यपालिका-परिषद् मे गभीर मतभेद उठ खडे ए और अन्त मे लॉर्ड कर्जन ने त्याग-पत्र दे दिया। विवाद, एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण वैधानिक प्रश्न पर था कि देश की शासन-व्यवस्था मे सेनापति की क्या स्थिति है? लॉर्ड किचनर ने जो स्थिति अपनाई थी वह वैधानिक दृष्टि से गलत थी और व्यवहार मे जोखिम से भरी हुई थी। जैसा कि लॉर्ड कर्जन ने कहा वह

१. Dumbell . Loyal India : A Survey of Seventy Years. pages 37 and 38

(किचनर) एक साथ, सेनापति और युद्ध-मंत्री दोनो ही होना चाहते थे। तत्कालीन राजनीतिक आवश्यकताओ के कारण ब्रिटिश सरकार ने सेनापति का वायसराय से अधिक पक्ष लिया।[1] भारत-मत्री ने एक समझौते का प्रस्ताव किया। उसमें वायसराय ने कुछ सशोधन किया और दोनो पक्षो ने उसे स्वीकार कर लिया।[2] किन्तु जब उसे कार्यान्वित करने का समय आया तो वायसराय को यह पता लगा कि भारत-मत्री उसे उचित रूप मे कार्यान्वित नही करना चाहते थे। वायसराय ने जनरल बॅरो का नाम सुझाया था किन्तु भारत-मत्री ने उस सुझाव को अस्वीकार किया और एक अन्य व्यक्ति को रसद-विभाग का दायित्व सौपने का प्रस्ताव किया। ऐसी परिस्थिति मे लॉर्ड कर्जन ने तार द्वारा अपना त्याग-पत्र दे दिया। १२ अगस्त १९०५ के इस त्याग-पत्र को स्वीकार कर लिया गया और लॉर्ड मिण्टो को लॉर्ड कर्जन का उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया गया।

सन् १९०६ मे १९ मार्च को जो व्यवस्था अन्तिम रूप से अपनाई गई, उसके अनुसार सेना-विभाग को दो हिस्सो मे बाँट दिया गया। सेना-विभाग सेनापति के आधीन किया गया और सेना के रसद-विभाग के दायित्व को नए सदस्य को सौप दिया गया। इस व्यवस्था के अनुसार मेनापति का काम अत्यधिक हो गया। सन् १९०९ मे पर्याप्त काम न होने के कारण रसद-विभाग तोड दिया गया। उस समय सेनापति का काम और भी अधिक हो गया। जैसा कि मेसोपोटामियन-कमीशन ने अपनी रिपोर्ट मे कहा.–किसी व्यक्ति के लिए सेनापति और परिषद् के सेना-सदस्य का काम एक साथ करना सभव नही था और युद्ध-काल मे उसकी स्थिति और भी विकट थी। पहले महायुद्ध के समय मे मेसोपोटामिया के विरुद्ध सैन्य-सचालन मे यह बात दु खद रूप से स्पष्ट हो गई। सैन्य-व्यय और सेना के भारतीयकरण की दृष्टि से भी स्थिति गभीर थी। सैनिक नियत्रण की अपेक्षा सिविल नियत्रण मे सैनिक व्यय घटाना और भारतीयकरण की गति बढाना सरलतर था।

( ११ )

लॉर्ड कर्जन के त्याग-पत्र से भारतीय सरकार के दो अध्यक्षो के सबध का प्रश्न फिर सामने आ गया–एक ओर इगलैड मे वैध, अन्तिम सत्ता थी, और दूसरी

---

१. सूडान की विजय के बाद किचनर को राष्ट्रीय महारथी समझा जाता था और यह भय था कि उसके त्याग-पत्र देने से इगलैड का मत्रि-मडल अपने पद पर टिक नही सकेगा।

२. समझौते मे यह तय हुआ कि सेनापति के अतिरिक्त एक रसद-विभाग का सदस्य होगा जो सैन्य विषयो पर सरकार के लिए दूसरे परामर्शदाता का काम करेगा।

और भारत में सरकार का स्थानीय अध्यक्ष था। वैध स्थिति स्पष्ट और निश्चित थी। गवर्नर-जनरल, भारत-मंत्री के आधीन था और उसे भारत-मत्री के आदेशों और अनुदेशों का पालन करना था।[१] तथापि व्यवहार मे दोनो के संबंध समय-समय पर बदलते रहते थे और वे उनके निजी व्यक्तित्व पर निर्भर थे। यह बात १८९२-१९०९ के युग में विशेष रूप से स्पष्ट हुई। इस समय मे भारत का वायसराय एक अत्यन्त दृढ़ और कठोर व्यक्ति था और कुछ ही समय बाद इडिया-ऑफिस मे उसका समकालीन (लॉर्ड मॉर्ले) एक अत्यन्त योग्य व्यक्ति और मत्रि-मडल का अत्यन्त प्रभावशाली सदस्य था और जो लोकतन्त्र का प्रबल समर्थक होते हुए भी व्यवहार मे स्वेच्छाचारी था।

लॉर्ड कर्ज़न का वायसराय की स्थिति मे दो भारत-मत्रियो से सबध रहा। ये दोनो उसके निजी मित्र और प्रशसक थे और उसके साथ अधिक-से-अधिक निबाहने का प्रयत्न करते थे किन्तु अन्त मे उन्हे उसकी अवहेलना करनी पड़ी। जैसा कि सर ए. गोडले ने कहा—सबको यह विश्वास था "कि आप अपने विरोध को अधिकृत सरकारी सीमाओ के परे ले जाते है और गृह-सरकार पर, अपनी बात मनवाने के लिए जोर डालते है।"[२] अन्त मे स्थिति ऐसी हो गई कि भारत-मत्री के हाथो लॉर्ड कर्ज़न को मुँह की खानी पडी। भारत के इतिहास मे भारत-मत्री और गवर्नर-जनरल के परस्पर सबध में इस प्रकार के पराभव का कोई दूसरा दृष्टात नही है।[३]

गृह-सरकार के साथ, लॉर्ड कर्ज़न के स्निग्ध सबध न होने का कारण था उसका व्यक्तिगत स्वभाव। वह दूसरो का दृष्टिकोण नही समझता था। उसका स्वभाव स्वेच्छापूर्ण और दृढ था। इन अवगुणो के साथ शारीरिक अस्वस्थता, कार्य-बाहुल्य और कष्टकर जलवायु की बाते और मिल गईं। उसमे सहानुभूति और व्यवहार-कौशल की कमी थी फलत· लोगो से अनिवार्य रूप से सघर्ष होता था। यद्यपि वह अत्यन्त योग्य, अध्यवसायी और कर्मठ था, उसमे सगठन-शक्ति और शासन-सामर्थ्य थी, वह कर्तव्यपरायण और न्यायप्रिय था, और साथ ही वह जन-हित करने और

---

१. "आप इस बात का विश्वास नही करेगे कि भारत-मत्री अपने वैध कामो को छोडकर पार्लियामेण्ट के लिए जॉर्ज (लॉर्ड कर्ज़न) का राजदूत हो जाता है" लेडी कर्जन को मि·· के एक पत्र से उद्धृत अश का अनुवाद।

२. उदाहरण के लिए जब ब्रिटिश सरकार ने दिल्ली-दरबार के लिए टैक्स की उगाही मे सम्राट् का नाम जोड़ने के लिए मना कर दिया तो लॉर्ड कर्ज़न न सम्राट् के प्राइवेट सेक्रेटरी के पास सहायता के लिए समुद्री तार भेजा।

३. लॉर्ड रिपन के अनुसार अवध के सिलसिले में एलनबोरो के कैनिग को राज-पत्र के बाद भारत-सरकार में ऐसे पराभव का और कोई उदाहरण नही है।

शासन को कुशल बनाने के लिए उत्सुक था तथापि वह इगलैंड और भारत में सार्वजनिक विश्वास और समर्थन प्राप्त करने मे असफल रहा।

लॉर्ड कर्ज़न के उत्तराधिकारी लॉर्ड मिण्टो का व्यक्तित्व दूसरे ही ढग का था। मिण्टो की जीवनी में कहा गया है: "मिण्टो ने भारत-मत्री के स्वभाव को चतुराई से समझ लिया और उसके संकटो से बचने के लिए अपने-आपको तैयार कर लिया। उसका उद्देश्य यह था कि धैर्यपूर्ण तर्कों और चतुरतापूर्ण सुझावो से मि. मॉर्ले को यह विश्वास हो जाय कि भारत-सरकार की नीति का उपक्रमण उनके ही हाथो से हो रहा है।"[1] लॉर्ड मिण्टो के राज्य काल समाप्त होने के समय उनके पारस्परिक संबंध कुछ खिच गए थे। इसका कारण था भारत-सरकार पर गृह-सरकार का कठोर नियंत्रण। लॉर्ड मिण्टो ने लिखा है · "जो लोग वस्तुस्थिति से परिचित है वे यह अच्छी तरह जानते है कि प्रत्येक छोटी-से-छोटी बात मे भी हस्तक्षेप किया गया है।"[2] किन्तु मिण्टो की चतुराई, शिष्टता और व्यवहार-कुशलता ने स्थिति को बचाया और लॉर्ड मिण्टो ने हर बात मे अपना काम निकाल लिया।

## बारहवाँ अध्याय

# धार्मिक राष्ट्रीयता का आरम्भ

( १ )

सन् १८८५ में इंडियन नेशनल काग्रेस की स्थापना होने पर भारत का राष्ट्रीय आंदोलन आरभ हो गया था। उसी आदोलन के फलस्वरूप पार्लियामेंट ने १८९२ का भारतीय परिषद एक्ट बनाया। इस एक्ट के सुधारो ने काग्रेस को सतुष्ट नही किया और उसने १८९३ मे बडे दिन पर अपने अधिवेशन के समय अपने असतोष को व्यक्त किया। निर्वाचन-व्यवस्था को बहुत घुमा-फिरा कर रखा गया था, परिषदो के सदस्यों के अधिकार अत्यन्त सीमित थे। वाइसराय की परिषद् मे अथवा स्थानीय परिषद् में पजाब को अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार नही दिया गया था; निर्वाचन के लिए जो नियम बनाये गए वे अनुचित थे—कुछ वर्गों को प्रतिनिधि भेजने के अधिकार से बिलकुल वचित कर दिया गया था और कुछ हितों को अत्य-

१. Buchan : Lord Minto. pages 223 & 224.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३१२-३१३.

धिक प्रतिनिधित्व दे दिया गया था।[1] नियम बनाने मे इस बात का पूरा ध्यान रखा गया था कि छँटे हुए लोग, जहाँ तक सभव हो, स्वतत्र व्यक्ति न हो, वरन् ऐसे हो कि उनको सरलता से प्रभावित किया जा सके।[2] गैरसरकारी सदस्यों की सख्या बहुत कम थी।[3] परिषदो के कार्य और अधिकार अत्यन्त सीमित थे। ऐसी दशा मे राष्ट्रीय उत्थान के उद्देश्य से उपयोगी काम करने के लिए परिषदों मे क्षेत्र बहुत सकुचित था। वह काम अन्य राजनीतिक, सामाजिक एव धार्मिक सस्थाओ के मच से और भारतीय पत्रो के द्वारा ही किया जा सकता था।

राष्ट्रीय जागृति एव पुनर्जन्म के लिए काम करने वाली इन अन्य सस्थाओ मे इडियन नेशनल काग्रेस प्रमुख थी। प्रति वर्ष दिसम्बर के अन्त मे शिक्षित भारतीय, जिनका राजनीतिक काम मे और राष्ट्रीयता बनाने मे अनुराग था, क्रम से प्रत्येक प्रात के किसी महत्त्वपूर्ण नगर मे एकत्रित होते थे। ये लोग राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्नो पर विशेषकर शासन, शिक्षा एव अर्थ-व्यवस्था-सबधी विषयों पर विचार-विनिमय करते थे और अपने दृष्टिकोण को विनीत, तर्कयुक्त एव राजभक्तिपूर्ण भाषा मे लिखे हुए प्रस्तावो द्वारा व्यक्त करते थे। भारतीय पत्रो मे इन प्रस्तावो को और नेताओ के व्याख्यानो को प्रकाशित किया जाता था और उनकी समालोचना की जाती थी। देश के सहस्रो भारतीय इन चीज़ो को पढते थे, उन पर विवाद करते थे और यह स्वाभाविक ही था कि इन बातो से उन लोगो का हृदय और मस्तिष्क प्रभावित होता था। यह एक दुर्भाग्य की बात थी कि काग्रेस के इन प्रस्तावो का सरकार पर कोई प्रभाव नही था और सरकार प्रस्तावित सुधार नही करती थी। परन्तु काग्रेस के काम का लोक-शिक्षण के लिए बहुत बडा महत्त्व था। सार्वजनिक कामो मे दिलचस्पी लेने वाले लोगो की सख्या बढ़ रही थी और राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्नो पर जनमत तैयार हो रहा था। सरकार के कामो पर ध्यान रखा जाता था और बीसवी शताब्दी के पहले पाँच वर्षो मे उनके प्रति प्रबल विरोध उठ खडा हुआ। वस्तुत लोगो मे एक नए जीवन का सचार हो गया था और

---

१ Resolution 1 of 1893 Besant How India Wrought for Freedom page 177.

२ उदाहरण के लिए बम्बई मे ६ स्थानो मे से दो स्थान यूरोपीय व्यवसायियो को दिये गए थे किन्तु भारतीय व्यवसायियो को एक भी स्थान नही दिया गया था। सिध को दो स्थान दिये गए थे किन्तु बम्बई-प्रेसीडेसी के केन्द्रीय डिवीज़न को, जिसमे पूना और सतारा थे, कोई स्थान नही दिया गया था।

३ केन्द्रीय विधान-परिषद् के सदस्यो की कुल सख्या २४ थी। इसमें से १४ सरकारी सदस्य थे, ५ नाम निर्देशित गैर-सरकारी सदस्य और ५ निर्वाचित।

राष्ट्रीय आदोलन विस्तृत होकर जन-आदोलन के रूप मे परिणत हो रहा था। इस समय राष्ट्रीयता मे दो विचार-धाराएँ आरभ हुईं। इन दोनो मे धार्मिक भावना समाई हुई थी। किंतु मार्ग दोनो का अलग था। दोनो ही विचार-धाराओ के नेतागण साहसी व्यक्ति थे। उनमे आत्म-बलिदान और स्वतंत्रता की भावना थी; प्रबल देश-प्रेम था और विदेशी राज्य के प्रति तीव्र घृणा थी। पुराने काग्रेसियो की भाँति उन्हे अगरेजो की उदारता और सचाई मे विश्वास नही था और न उनकी राजनीतिक भिक्षा-वृत्ति मे ही कोई निष्ठा थी। उन्हे तो आत्मनिर्भर एव स्वतत्र कार्य मे विश्वास था। इन नेतागणो की प्रेरक भावनाएँ एक ही थी, वे भारत और उसकी जनता के पश्चिमीकरण के विरुद्ध थे, वे प्रबल ही नही वरन उग्र राष्ट्रवादी थे, उनका उद्देश्य था स्वतत्र भारत, जो फिर प्राचीन वैभव, समृद्धि एव पवित्रता मे परिपूर्ण हो। दोनो मे भेद केवल मार्ग का था। उग्र दल का राजनीतिक आदोलन मे और ब्रिटिश चीजो और सस्थाओ के बहिष्कार द्वारा राष्ट्रीय पुनर्निर्माण मे विश्वास था। वे सरकारी कार्यालय, न्यायालय, और स्कूल आदि सब सस्थाओ के बहिष्कार के पक्ष मे थे और वे उनके स्थान पर राष्ट्रीय न्याय-मडल, पचायत, स्कूल आदि स्थापित करना चाहते थे। क्रातिकारी दल को पश्चिमी क्रातिकारी साधनो मे, विशेषकर बम और पिस्तौल द्वारा आतकवाद, राजनीतिक हत्याओ और राजनीतिक डकैतियो मे विश्वास था।

( २ )

बीसवी शताब्दी के आरभिक वर्षो मे नई राष्ट्रीयता के उदय के लिए कोई इस प्रकार का एक कारण नही दिया जा सकता कि उसके द्वारा पूर्व प्रतिष्ठा से च्युत ब्राह्मण[1] वर्ग शक्ति हथियाना चाहता था अथवा इस राष्ट्रीयता के तल मे केवल बग-भग का असंतोष था और लॉर्ड कर्जन के अप्रिय राज्य-काल के प्रति रोष था अथवा इसका कारण काग्रेस के अब तक के साधनो की असफलता का अनुभव था। उक्त पिछले दो कारणो के अतिरिक्त और कई कारण भी थे जिनके फलस्वरूप बीसवी शताब्दी के आरभ मे भारतीय राष्ट्रीय आदोलन ने एक नई दिशा ग्रहण की और उसमे दो—उग्र तथा क्रातिकारी—विचार-धाराएँ उत्पन्न हुई।

पहली बात तो यह थी कि विदेशो मे कुछ ऐसी घटनाएँ हुई जिनका भारतीय मस्तिष्क पर बहुत बडा प्रभाव पड़ा। १८९६ मे इटली को एबीसीनिया[2] के निवासियो ने परास्त किया और १९०५ मे जापान ने रूस को हराया। इन दोनो

१ Chirol Indian Unrest. page X and XI and 40 & 43

२. "इटली की हार ने १८९७ मे तिलक के आदोलन मे घृताहुति दी" Garrat : An Indian Commentary, page 134.

घटनाओं के और विशेषकर पिछली घटना के कारण यूरोपीय श्रेष्ठता और अजेयता के प्रति विश्वास समाप्त हो गया और सारे एशिया मे एक नये युग का जन्म हुआ।[१]

भारतवासियो मे एक नई आशा का जन्म हुआ और वे जापान की बढ़ती हुई महानता के कारणो से परिचित होने के लिए उसके इतिहास का अध्ययन करने लगे। उसकी सफलता अनन्य देश-भक्ति मे और बलिदान तथा राष्ट्रीयता की भावना मे निहित बताई गई। "इन गुणो के आश्चर्यपूर्ण प्रभाव पर विचार किया गया और लोगो को यह बोध हुआ कि भारत-जैसा गुलाम और निहत्था देश भी इन गुणो के द्वारा अपने-आपको इगलैंड के घातक बधनो से मुक्त कर सकता है।[२] ये विचार मिस्र, रूस, फारस और तुर्किस्तान-जैसे प्राच्य एव अर्ध-प्राच्य देशो के राष्ट्रीय उत्थान और स्वतत्रता के आदोलनो के वर्णन पढने से और भी पुष्ट हुए। इस सबध मे यह कहना आवश्यक है कि मैज्जिनी, गैरीबाल्डी और केवर के प्रेरक नेतृत्व मे इटलीवासियो द्वारा राष्ट्रीय ऐक्य और स्वतत्रता प्राप्त करने का भी यहाँ बहुत बडा प्रभाव पड़ा। मैज्जिनी के जीवन और उसकी कृतियो पर भारतीय भाषाओ में पुस्तकें लिखी गई, अनुवाद किये गए और भारत के राष्ट्रीय नेताओ ने अपने देशवासियो मे स्वदेश-प्रेम जाग्रत करने के लिए इटली के उदाहरण से काम लिया।

देश की घटनाओ का प्रभाव और भी अधिक हुआ। भारत मे लॉर्ड कर्ज़न ने कुशलता की खोज मे जो कठोर नीति अपनाई थी, उसने भारतीय नवयुवको की आशाओ और आकाक्षाओ को पैरो तले कुचल दिया था और वे यहाँ की परिस्थितियो से असन्तुष्ट हो उठे थे। सन् १८९२-१९०९ की अवधि मे ब्रिटिश सरकार ने कई अप्रिय एक्ट बनाए और कार्यान्वित किये। देश मे इनके विरोध का तूफान उठ खड़ा हुआ और भारतवासियो के मस्तिष्क मे विदेशी राज्य के प्रति घृणा का सचार हुआ। पिछले अध्याय मे कलकत्ता कार्पोरेशन एक्ट (सन् १८९९) और भारतीय विश्वविद्यालय एक्ट (सन् १९०४) के परिणामों का वर्णन किया जा चुका है। इस अवधि के अन्य अप्रिय कार्यो की ओर सक्षेप मे ध्यान दिलाना उचित होगा।

इन अप्रिय विधियो में सबसे पहला स्थान सन् १८९१ के स्वीकृति वय एक्ट (Age of Consent Act) का था। इस एक्ट मे स्वीकृत वय को १० से बढाकर १२ वर्ष कर दिया गया था। इस सुधार का मि मलाबारी ने उपक्रमण किया था किंतु श्री तिलक और प. शशधर ने इसका तीव्र विरोध किया था। सारे देश के

१. Pradhan : India's Struggle for Swaraj, page 75.

२. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ७५।

कट्टर लोगों में इसके प्रति बड़ा रोष था। सन् १९०४ में एक दूसरा एक्ट बना जिसके प्रति भारतीयो मे बडी तीखी भावना जाग्रत हुई। यह एक्ट सरकारी गोप्य विषयों से सबधित था। इस एक्ट में १८८९ के इडियन ऑफिशियल सीक्रेट्स एक्ट और १८९८ के एक्ट न ४ को दो दिशाओ में बढा दिया गया था। सन् १८८९ के एक्ट मे केवल सैनिक भेद देना ही दडनीय था अब उसमे सिविल (असैनिक) विषयो का भेद देना भी दंडनीय कर दिया गया। साथ ही १८९८ के एक्ट मे समाचार-पत्रो की समालोचना के सबध में जिन बातो को अपराध बताया गया था, उनमे यह जोड दिया गया कि ऐसी समालोचनाएँ, जिनसे विधि-निर्मित सत्ता अथवा सरकार के प्रति अनास्था अथवा घृणा जाग्रत हो, दडनीय है। सन् १८९८ के एक्ट के अनुसार साम्राज्य अथवा ब्रिटिश भारत मे विधि-निर्मित सरकार के प्रति, अभक्ति की भावनाएँ उत्तेजित करने को अथवा उत्तेजित करने के प्रयत्न को राजद्रोह बताया गया था। भारतीय दड सहिता मे एक नया विभाग (न १५३ ए) जोड दिया गया था जिसके अनुसार वर्ग-द्वेष को प्रोत्साहन देने वाले अपराधी दडनीय थे।

लॉर्ड कर्जन की सीमा प्रातीय और अफगानिस्तान तथा तिब्बत-सबधी नीति से भी भारतवासी अप्रसन्न थे। वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्तार और सैन्य-व्यय मे वृद्धि के विरुद्ध थे। इन्ही कारणो से वे चीन और दक्षिण अफ्रीका के लिए भारतीय सेना भेजने के विरोधी थे। ब्रिटिश साम्राज्यवादी योजनाओ मे भारतीय सेना के उपयोग के कारण भारतवासियो मे तीव्र रोष था।

उपर्युक्त बाते अप्रिय तो थी तथापि सन् १९०५ और बाद के वर्षों के सरकार-विरोधी आदोलन को जन्म देने के लिए ये बाते स्वयमेव अपर्याप्त थी। इन सब बातो के साथ मौलिक बात यह थी कि बग-भग के सबध मे व्यापक विरोध के होते हुए भी लॉर्ड कर्जन की सरकार की मूढतापूर्ण एव कुटिल दृढता की नीति ने लोगो के रोष को चरम सीमा पर ला दिया था और परिणामस्वरूप वह आदोलन फूट पडा।

( ३ )

सन् १९०५ मे १६ अक्तूबर को, प्रकटतः शासन मे सुविधा और कुशलता के कारणो से बग-भग किया गया। यह सच है कि ८ करोड जनसख्या का बगाल प्रात एक अध्यक्ष—और वह भी एक उप-गवर्नर—के लिए बहुत बडा दायित्व था। किंतु यह बात ध्यान में रखने योग्य है कि तत्कालीन बगाल मे बहुत से अ-बगाली लोग थे। बिहार और उडीसा, तत्कालीन बगाल के अन्तर्गत थे और उनकी जनसख्या २ करोड १० लाख थी। शासन मे कुशलता लाने की दृष्टि से बगाल को ऐसे दो भागो में बाँटा जा सकता था जिनमे से एक बगला बोलने वाला होता और दूसरा अन्य भाषाओ के बोलने वाला। वस्तुतः छै वर्ष बाद यह बात की भी गई।

किंतु सन् १९०५ के बग भग के अनुसार स्वय बंगाल को दो भागों में विभाजित किया गया। नये बगाल की कुल जन-सख्या ५ करोड ४० लाख थी इसमें से बंगला-भाषियो की संख्या केवल १ करोड ८० लाख थी। पूर्वी बगाल और आसाम के नये प्रात की कुल जन-सख्या ३ करोड १० लाख थी और इसमें २½ करोड़ बगलाभाषी थे और १ करोड ८० लख मुसलमान थे। स्पष्ट है कि इस विभाजन का उद्देश्य वस्तुत शासन में सुविधा का नही था वरन् वह तो बहुत कुटिल और गूढ था। जैसा कि लॉर्ड रोनल्डशे ने कहा है, "प्रात के जाग्रत वर्ग के अनुसार इस विभाजन द्वारा बगाली राष्ट्रीयता की बढती हुई दृढता पर आक्रमण किया गया था।"[१] जिस ढग से विभाजन की योजना बनाई गई और उसको कार्यान्वित किया, उससे और साथ ही इस विषय मे लॉर्ड कर्ज़न के व्याख्यानो से यह स्पष्ट है कि वास्तविक उद्देश्य फूट डालकर राज्य करने की नीति के अनुसार लोगो को धर्म के आधार पर विभाजित करना था और हिदुओ और मुसलमानो मे द्वेष भाव फैलाना था। श्री मजूमदार ने लिखा है "नई चेतना को कुचलने के लिए, लोगो को परस्पर विभाजित करने के उद्देश्य से लॉर्ड कर्ज़न पूर्वी बगाल गये। वहाँ पर इसी उद्देश्य से एकत्रित की हुई मुसलमानो की सभाओ मे उन्होने कहा कि यह विभाजन केवल शासन की सुविधा के ही लिए नही किया जा रहा था वरन् उसके द्वारा एक मुस्लिम प्रात भी बनाया जा रहा था जिसमे इस्लाम और उसके अनुयायियो की प्रधानता होगी ..।"[२] विभाजन के समर्थको ने भारतीय विरोध के लिए यह कारण प्रस्तुत किया है कि वकील राजनीतिज्ञो और सपादको को विभाजन के फलस्वरूप[३] भौतिक और राजनीतिक क्षति का डर था। किंतु उन्होने इस बात की ओर ध्यान नही दिया कि इस आदोलन की प्रेरक शक्ति एक प्रबल भावना थी।[४] मि नेविन्सन ने लिखा है · "रोष की मूल मे भावना है और क्योकि यह भावना है इसी कारण किसी भौतिक लाभ और शासन की सुविधा से इसकी क्षतिपूर्ति नही हो सकती।"[५] अत यह कहना असत्य है कि आदोलन के समर्थक भौतिक हितो से प्रेरित थे। दूसरी ओर अधिकाश

---

१ Ronaldshay Life of Lord Curzon. vol. I. page 332.

२ A. C. Mazumdar Indian National Evolution, page 207.

३ Frazer India under Curzon & After page 384. Also Ronaldshay Life of Lord Curzon. vol. Ik. page 332.

४ Ronaldshay . उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ३२२

५ Nevinson · The New Spirit in India. page 172.

लोगो के लिए प्रेरक शक्ति यह इच्छा थी कि सर्वसाधारण मे ऐक्य और राष्ट्रीयता की भावना बनी रहे। साथ ही यह भी सच है कि पूर्वी बगाल के बहुत से मुसलमानो को लॉर्ड कर्जन की बातो ने लुभा लिया और वे नए, मुस्लिम बहुमत प्रात मे अपने पुरस्कारो के स्वप्न देखने लगे। फिर भी केवल बगाल मे ही नही वरन् सारे देश मे अधिकाश लोगो ने विभाजन का तीव्र विरोध किया। फलत एक सुसगठित एव अनुशासनपूर्ण प्रबल आदोलन हुआ।

( ४ )

बीसवी शताब्दी के आरम्भिक वर्षों मे देश मे अकाल, प्लेग आदि राष्ट्रीय विपत्तियो का सामना करने के लिए सरकार ने सतोषजनक नीति नही अपनाई। सरकारी आर्थिक नीति तो राष्ट्रीय हितो के प्रतिकूल थी ही। परिणाम यह हुआ कि सरकार के प्रति रोष और भी अधिक बढा और साथ ही नई राष्ट्रीयता को पुष्टि मिली।

१८९६-९७ मे बडा भीषण दुर्भिक्ष पडा था। ब्रिटिश राज्य काल मे उस समय तक ऐसा भयकर अकाल नही पडा था। सन् १८९७ के वसतकाल मे सहायता पाने वाले अकाल-पीडितो की सख्या ४० लाख से ऊपर पहुँच गई थी। मरने वालो की सख्या भी बहुत बडी थी।[1] सहायता के लिए और मालगुजारी दोहराने के लिए सरकारी मशीन बडी धीमी चाल से चल रही थी, कष्ट और कठिनाइयो मे हाहाकार मचा हुआ था। बम्बई प्रात मे प्लेग की महामारी आरभ हो जाने से दशा और भी बिगड गई। सन् १८९८ के अन्त तक अभिलिखित मृत्यु-सख्या १,७३,००० पर पहुँच गई जो सभवत वास्तविक सख्या से बहुत कम थी। सरकार ने उपायो को सोत्साह अगीकार किया, किंतु उन्हे कार्यान्वित करने का ढग गलत था। पूना के प्लेग कमिश्नर मि रैण्ड ने ब्रिटिश सैनिको से काम लिया। ये सैनिक मकानो मे घुसकर पुरुषो, स्त्रियो और बच्चो की जाँच करते थे और प्लेग का सदेह होने पर उन्हे अलग अस्पतालो मे ले जाते थे। इससे लोगो मे बड़ा रोष फैला। उपद्रव आरभ हो गए। पत्रो मे उग्र लेख लिखे गए। एक भावुक नवयुवक ने अप्रिय प्लेग कमिश्नर मि रैण्ड को गोली से मार दिया। उसके साथी ने तत्काल पकडे जाने के भय से लेफ्टिनेट ऐपर्स्ट को गोली से मार दिया। ऐपर्स्ट, रैण्ड के पीछे एक गाडी मे आ रहा था। इस काण्ड के बाद कठोर दमन और आदोलन हुआ, महाराष्ट्र इसका विशेष क्षेत्र था।

सारे देश में असतोष का प्रबल ज्वार उमड़ रहा था। दुर्भाग्य से १८९९ में वर्षा न होने के कारण भारत मे फिर १८९९-१९०० मे भीषण दुर्भिक्ष पड़ा। यह

१. Frazer : India under Curzon and After, page 4.

दुर्भिक्ष पहले से भी अधिक भयकर था और इससे पहले से भी अधिक लोग पीड़ित हुए।

इन दारुण दैवी आपदाओ और कष्टो के कारण लोगो मे बडा असतोष हुआ और सरकार को विशेष रूप से दोष दिया गया। जनता के अनुसार उनके दु.खो की जड सरकार की वह आर्थिक नीति थी जो राष्ट्रीय हितो के प्रतिकूल थी। इस प्रकार सर्वसाधारण मे अपने विदेशी शासको के प्रति तीखापन बहुत बढ गया।

सरकार की राष्ट्र-विरोधी आर्थिक नीति ने ब्रिटिश राज्य के प्रति सर्वसाधारण के मस्तिष्क मे जो घृणा उत्पन्न और पुष्ट की उसके महत्व के बारे मे कोई अतिशयोक्ति नही की जा सकती। विदेशी राज्य से देश अत्यन्त निर्धन हो गया था। इस युग मे दादाभाई नौरोजी, रमेशचन्द्र दत्त, राणाडे, डी. एन. वाचा और सर विलियम डिगली के अनुमधानो और लेखो ने निर्धनता की उक्त स्थिति को विशेष रूप से स्पष्ट कर दिया था। सर थियोडोर मॉरिसन ने इस मत का प्रतिवाद करने का प्रयत्न भी किया किंतु भारतीय नेताओ और पत्रो ने भारत से इगलैंड के लिए होने वाले द्रव्य-निकास से सर्वसाधारण को भली-भाँति परिचित करा दिया था। भारत मे ब्रिटिश सरकार की इस नीति के कारण जनता का विदेशी शासको की न्यायप्रियता और सचाई मे से विश्वास उठ गया और ब्रिटिश-विरोधी भावनाएँ बढ़ गईं।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है लॉर्ड कर्ज़न का कुशलता, केन्द्रीकरण और अधिकारीकरण के लिए विशेष मोह था। और स्वशासन और भारतीयकरण के लिए विरोध था। १९०४ मे कर्ज़न ने भारतीयों के निराकरण को बडे चुभने वाले ढग से उचित ठहराया। उसमें लोगो के लिए एक खुली चुनौती थी। उनसे कहा गया कि सर्वोच्च सिविल पद केवल अगरेज़ो के ही लिए थे क्योकि उनमें अपने पैतृकाधिकार, पोषण और शिक्षा के कारण, शासन के लिए अनिवार्य, चरित्र-बल, शासन के सिद्धातो का बोध और मनोयोग था। कुछ शिक्षित भारतीयो ने इस चुनौती को स्वीकार किया और वे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का अन्त करने के लिए सगठन करने लगे।

इसी सदर्भ मे ध्यान देने योग्य कुछ आर्थिक प्रश्न है जिनके संबध मे भारत सरकार ने ब्रिटिश व्यावसायिक, औद्योगिक और वित्तीय स्वार्थों के लिए भारतीय हितो को निर्लज्जता के साथ बलिदान किया। सन् १८९४ में कपास-सीमा शुल्क का विवाद फिर उठ खड़ा हुआ और वित्तीय आवश्यकताओं के कारण जो ५ प्रतिशत का साधारण कर लगाया गया था उससे सूती माल को छूट देने पर बडा आंदोलन हुआ। भारत-मत्री ने इस कठिनाई को हल करने के लिए यह प्रस्ताव किया कि नई कर-सूची में विदेशो से आने वाले सूती माल को सम्मिलित किया

जाय और उसका सतुलन करने के लिए २० न से ऊँचे माप के भारत मे तैयार किये हुए सूत पर उत्पादन-कर लगाया जाय। भारतीयो का विरोध होते हुए भी दिसम्बर १८९४ मे इस प्रस्ताव को वैध कर दिया गया। किंतु लकाशायर को इतने पर भी सन्तोष नही हुआ। परिणाम यह हुआ कि १८९६ में दो नये प्रस्ताव स्वीकार किये गए। एक के अनुसार सूती माल पर आयात-कर घटाकर ३½ प्रतिशत कर दिया गया और दूसरे के द्वारा भारतीय मिलो के सूती माल पर ३½ प्रतिशत का प्रत्यक्ष उत्पादन कर लगा दिया गया। भारत परिषद् मे सर जेम्स पाइल और सर एलेक्ज़ेण्डर आर्बथ्नॉट ने इन अरक्षणीय एक्टो का विरोध करते हुए कहा "कि इस उत्पादन-कर से वस्तुत कोई सतुलन नही होता था क्योकि भारतीय मिलो के मोटे सूती माल मे और लकाशायर के बारीक माल मे कोई प्रतिद्वन्द्विता नही थी; भारतीय बाज़ार मे दोनो की माँग थी।" देश मे बड़ा आदोलन हुआ और अगरेज़ी राज्य के प्रति घृणा और तीखेपन को बडा पोषण मिला।

भारतीय मुद्रा और विनिमय का प्रबन्ध अगरेज़ी स्वार्थों के अनुसार होता था। भारतीय व्यापारी वर्ग इस कारण बडी कठिनाई अनुभव करता था। एक भारतीय लेखक ने भारतीय आलोचना को सकलित रूप मे इस प्रकार व्यक्त किया है.— "ये आलोचनाएँ मुख्यत', स्वर्ण रक्षित मान को भारतवर्ष मे स्वर्ण पाट के रूप मे रखने के स्थान पर, अन्य प्रतिभूतियो (Securities) मे लगाने के विरुद्ध थी; रेलवें-व्यय के सबध मे सरकार की तत्कालीन कठिनाइयो को दूर करने के लिए, उस रक्षित मान को काम मे लाने के विरुद्ध थी; कागज़ी द्रव्य के रक्षित मान को, भारत से लन्दन के लिए स्थानातरित करने के विरुद्ध थी; स्वर्ण मान की सुरक्षा के लिये सोने के स्थान पर चाँदी रखने के विरुद्ध थी; और ऊँचे भाव पर कौसिल के विनिमय पत्रो के असीमित विक्रय के विरुद्ध थी। इस विक्रय के कारण भारत मे सोने का आना रुक गया था जिसके फलस्वरूप देश की आवश्यकता से अधिक मात्रा मे कागजी द्रव्य का परिचलन अनिवार्य हो गया था। इस नीति का प्रभाव यह हुआ कि ७ करोड़ पौड से अधिक परिमाण की भारतीय सम्पत्ति, भारत से लन्दन के लिये स्थानातरित हो गई। इस भारतीय सपत्ति को अत्यल्प ब्याज पर लन्दन के शेधियो को उधार दिया गया जबकि भारत मे रुपये की कमी थी यहाँ तक कि एक समय पर सरकारी प्रतिभूतियो के आधार पर भी ऋण उगाहना सभव नही था यद्यपि ब्याज की दर अस्वाभाविक रूप से अधिक रखी गई थी।"[1] इस नीति के विरुद्ध भारतवासियो में प्रबल रोष फैलना स्वाभाविक ही था, और भारतीय व्यापारी वर्ग का सरकार पर से विश्वास उठ गया।

१. Indian Year Book, 1931. page 860 के एक उद्धरण से अनूदित।

( ५ )

भारत मे नई राष्ट्रीयता के जन्म और ब्रिटिश विरोधी भावनाओं की वृद्धि का पाँचवाँ कारण था, भारतवासियो के प्रति आग्ल-भारतीयो का अहकारयुक्त व्यवहार और आग्ल-भारतीय पत्रो का भारतीय-विरोधी दृष्टिकोण और प्रचार। इन वर्षो मे कितनी ही बार ब्रिटिश सैनिको और अन्य व्यक्तियो ने असहाय भारतीयो के साथ घातक मार-पीट की और कई बार आहत व्यक्ति मर भी गए किंतु गोरे अपराधी दंड से बच गए अथवा उन्हे बहुत साधारण-सा दड दिया गया। लॉर्ड कर्जन ने थोडे ही समय मे यह अनुभव किया कि इस प्रकार के अभियोगो से भारत मे ब्रिटिश राज्य के बने रहने के लिए बहुत बडा सकट है और फलत. ऐसे अभियोग ध्यान मे आने पर उसने अपराधियो को दड दिलाने की व्यवस्था की। एक अभियोग मे अपराधियो ने दो भारतीयो की हत्या की थी। उस सबध मे लॉर्ड कर्जन ने भारत-मत्री को अपने अभिलेख मे लिखा, "पता नही, इन अभियोगो के बारे मे आपके क्या विचार है। किंतु इनसे मेरी आत्मा तो कराह उठती है।"[1] उदाहरण के लिए इन दोनो अभागे अभियोगो की चर्चा की जा सकती है। एक मामले मे ब्रिटिश सैनिको ने "एक देशी स्त्री को बलात्कार से मार डाला। उन सैनिको को कोई दड नही दिया गया। इतना ही नही वरन् स्थानीय सैनिक अधिकारियो ने सारे मामले को दबा देने का प्रयत्न किया और स्थानीय सिविल अधिकारियो ने अपनी उदासीनता से उनके प्रयत्नो का समर्थन किया।"[2] दूसरे अभियोग मे सन् १९०२ में सियालकोट मे स्थित (9th. Lancers) घुडसवार दल के दो सैनिको ने एक भारतीय रसोइये को इतना पीटा कि वह मर गया। उस रसोइये का अपराध यह था कि उसने उनके लिये एक देशी स्त्री का प्रबन्ध करने के लिये मना कर दिया था। पहले अभियोग मे कोई कार्यवाही नही की गई—लॉर्ड कर्जन के हस्तक्षेप करने पर केवल कुछ अनुशासन सबधी कार्यवाही की गई।

इन अपराधो और हत्याओ का होना स्वय दुर्भाग्यपूर्ण था किंतु इससे भी बुरी बात यह थी कि आग्ल-भारतीय समाचार-पत्रो से ऐसे व्यवहार को प्रोत्साहन मिलता था। वस्तुत जातीय कटुता की भावनाओ को फैलाने मे आग्ल-भारतीय पत्रों ने जो काम किया वह अत्यन्त निद्य था। लाहौर के सिविल एण्ड मिलिट्री गजट-जैसे महत्त्वपूर्ण पत्र भी शिक्षित भारतीयो को गालियाँ देते थे।[3] वे आग्ल-भारतीयो को अपराध करने के लिए उत्तेजित करते थे; इन पत्रो को इसके लिए कोई दड नही दिया

१. Ronaldshay . Life of Lord Curzon. Vol-II. p. 246

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ७१.

३. शिक्षित भारतीयो को 'वाचाल बी. ए.', 'हीन जाति बी. ए.', 'गुलाम'

जाता था। मि. किंग्सफ़ोर्ड नामक एक अप्रिय मजिस्ट्रेट को गोली मारने के प्रयत्न में दो अगरेज़ स्त्रियो की मृत्यु हो गई। इस पर कलकत्ते के 'एशियन' ने लिखा, "मिस्टर किंग्सफ़ोर्ड को अब एक बहुत बड़ा अवसर मिला है। हमारा ऐसा ध्यान है कि वह पिस्तौल से निशाना मारने मे होशियार है। हम मौजर पिस्तौल की ओर उसका ध्यान आकर्षित करना चाहते है... .. .. हम आशा करते है कि मिस्टर किंग्सफ़ोर्ड को एक बडा शिकार हाथ लगेगा। हम उनके से अवसर के लिए ललचाते है। उनके निवासस्थान की ओर अथवा स्वय उनकी ओर यदि कोई अपरिचित देशी आदमी आय तो उसको गोली मार देना उनके लिये पूर्ण रूप से न्याय्य है।"[१]

आग्ल-भारतीय पत्रो मे ऐसे लेख प्रकाशित होते थे और उन पत्रो को कोई वैध दड नही मिलता था। इन लेखो के कारण कटुता की भावना बढती थी और कभी-कभी हिसा भी होती थी। भारतीय चरित्र पर उच्च पदो से जो कलंक लगाया जाता था उसके कारण भारतीयो को बड़ा क्षोभ होता था। फर्वरी १९०५ में लॉर्ड कर्ज़न ने कलकत्ता विश्वविद्यालय मे अपना दीक्षात भाषण दिया। उसमे उन्होने पश्चिमी लोगो की सचाई की और प्राच्यवासियो की धूर्तता की गाथा गाई। उसी व्याख्यान में यह कहा गया कि भारत राष्ट्र जैसी कोई चीज़ नही है। सारे देश में क्रोध का उफ़ान आया और विरोध मे भारत के विभिन्न भागो मे सभाएँ की गईं। वायसरॉय के शब्दो ने बहुत से बगाली नवयुवको को उग्र-दल का समर्थक बना दिया।

दक्षिण अफ़्रीका मे भारतीयो के साथ जो व्यवहार हो रहा था उसके कारण भी भारत मे ब्रिटिश-विरोधी भावनाएँ पुष्ट हुईं। आरभ मे भारतवासी शर्तबन्द मजदूर की तरह दक्षिण अफ्रीका गये थे किंतु उनके बाद मे कुछ व्यापारी और अन्य व्यवसायी भी गये थे। दक्षिण अफ्रीका मे, विशेषकर बोर उपनिवेशो मे सभी भारतीय समाज से बहिष्कृत थे। उन पर व्यक्तिगत कर लगता था। शहरो के बाहर कुछ निर्दिष्ट स्थानो मे "घूरो[२] पर उन्हे रहना पडता था।" कुछ उपनिवेशो मे वे राज मार्ग पर नही चल सकते थे और न रेल के पहले और दूसरे दर्जे मे यात्रा कर सकते थे। वे वहाँ का सोना नही रख सकते थे और न रात के ९ बजे के बाद

---

"घुड़सवार भिखमगे", "नीच जाति" आदि गालियाँ दी जाती थी—Nevinson : The New Spirit in India, pages 17-18 से अनुवादित।

१. Nevinson : The New Spirit in India, page 229.

२. Besant: How India Wrought for Freedom, page 280.

घर के बाहर रह सकते थे।[1] वस्तुतः वहाँ रहने की शर्तें इतनी अपमानजनक थी कि ब्रिटिश प्रधान मत्री ने बोर प्रजातत्र से अपने झगडे के कारणों मे इन शर्तों की भी गणना की। एक अवसर पर उन्होने कहा कि,"हमारी भारतीय प्रजा के इस अपमान से हमारा रक्त उबलने लगता है।" बोर युद्ध मे ब्रिटिश विजय हुई किंतु स्थिति में कोई सुधार नही हुआ वरन् दशा और बिगड गई। सन् १९०७ में ट्रासवाल में एशियाटिक रजिस्ट्रेशन एक्ट बना। इसके अनुसार भारतीयो को अपराधी जातियों की तरह अगुलियो की छाप देकर अपना निबधन कराना आवश्यक था। भारतवासियो ने इस अपमानजनक नियम को अस्वीकार किया और महात्मा गाधी[2] के नेतृत्व मे 'सत्याग्रह' किया। उन्होने अपना निबधन कराने के लिए मना कर दिया और फलत महात्मा गाधी और अन्य सहस्रो भारतीयो को कारावास दड दिया गया। सघर्ष कई वर्षों तक चला और उसमे भारतीयो का आर्थिक और नागरिक जीवन छिन्न हो गया।[3]

दक्षिण अफ्रीका की स्थिति की भारतवासियो के मस्तिष्क मे प्रतिक्रिया हुई। एक ओर तो महात्मा गाधी और उनके साथियो के साहसपूर्ण विरोध के लिए प्रशसाभाव था, सत्याग्रहियो की सहायता के लिए सार्वजनिक चन्दे किये गये और देश के विभिन्न भागो मे सहायता और सहानुभूति के लिए सभाएँ की गई। दूसरी ओर भारतवासियो के साथ जो व्यवहार किया जाता था उसके प्रति रोष था। भारतवासियो की दृष्टि मे गृह-सरकार और दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेशो की सरकारो मे कोई भेद नही था। सारा दोष ब्रिटिश सरकार पर मढा गया और इस प्रकार देश मे ब्रिटिश-विरोधी भावनाओ मे बहुत बड़ी वृद्धि हुई।

६

बीसवी शताब्दी के आरम्भिक वर्षों मे देश मे जो नया जीवन दिखाई दिया उसके कुछ कारणो का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। उनके अतिरिक्त और भी कारण थे—स्कूलो और कॉलेजो का प्रभाव, काग्रेस और भारतीय पत्रो के कई

---

१. Thompson The Reconstruction of India, page 76.

२ मिस्टर गाधी—जो उस समय इसी नाम से परिचित थे—आरम्भ मे एक मुकदमे मे १८९३ मे दक्षिण अफ्रीका गये थे। नेटाल मे भारतीयो की दशा देखकर उन्होने वही बसने का निश्चय किया। डरबन के पास उन्होने एक बस्ती बसाई। वहाँ के निवासियो के लिए सरल और प्राकृतिक जीवन का आदर्श था। वही गाधीजी ने सत्याग्रह के सिद्धान्त का पहली बार प्रतिपादन किया।

३. Kohu: History of Nationalism in the East, page 401.

दशाब्दियों के आन्दोलन का प्रभाव; स्वामी दयानन्द, स्वामी विवेकानन्द और श्रीमती एनी बीसेन्ट के महान् एव धार्मिक व्यक्तित्वों का प्रभाव; और आर्य समाज, रामकृष्ण मिशन, थियोसॉफिकल सोसाइटी तथा भारत सेवक समिति (Servant of India Society) आदि संस्थाओ के कार्यो का प्रभाव। वस्तुत: उस समय भारत मे अनेकागी पुनर्जागरण दिखाई दे रहा था। कला के नये केन्द्र खोले जा रहे थे, बकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय जैसे उपन्यासकारो और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे कवियो और द्रष्टाओ द्वारा भातीय भाषाओ की सम्पन्नता बढ रही थी, तिलक और भडारकर जैसे व्यक्तियो के अनुसधानो के फलस्वरूप ज्ञान की सीमाये बढ रही थी, भारतीय सगीत, प्राचीन साहित्य एव सस्कृति का पुनरुत्थान हो रहा था और सबसे बडी बात यह थी कि लोगो को अपने पूर्वजो की उपलब्धियो पर गर्व हो रहा था। पश्चिमी वस्तुओ और पश्चिमी पोशाक के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई, पश्चिमी शिक्षा और पश्चिमी रहन-सहन से विकर्षण हुआ। भारतीय वस्तुओ और भारतीय विचारधारा के प्रति प्रेम जाग्रत हुआ। विदेशो मे भी स्वदेश प्रेम और राष्ट्रीयता की नई भावना दिखाई पडी। वस्तुत १९०५ के राष्ट्रीय आन्दोलन को देश के धार्मिक पुनरुत्थान से प्रेरणा मिली। तिलक, अरविन्द, बारीन्द्र घोष, विपिन चन्द्र पाल और लाजपतराय—ये सब महत्वपूर्ण नेता धार्मिक भावनाओ से प्रेरित थे। अरविन्द घोष इस युग की भावनाओ का और इस युग की विचारधारा का मूर्तमान स्वरूप थे। वे राजनीतिक जीवन मे तीर की तरह आये और उसी वेग से लुप्त भी हो गये। उनकी दृष्टि मे राष्ट्रीयता, किसी राजनीतिक उद्देश्य अथवा भौतिक सुधार के किसी साधन से कही बडी चीज थी। उनकी दृष्टि मे उसके चारों ओर एक ऐसा तेज पुज था जो मध्यकालीन सन्तो की दृष्टि मे धर्म पर बलि हो जाने वालो के चारो ओर होता था।[1]

७

सन् १९०५ में नये राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय का एक कारण यह भी था कि काग्रेस के तरुण वर्ग की राजनीतिक भिक्षावृत्ति मे आस्था मिट चुकी थी। लॉर्ड कर्जन के आधीन भारत सरकार की नीति ने काग्रेस के स्वर की अवहेलना की और शिक्षित वर्ग को निरन्तर अपमानित किया तथा इस प्रकार तरुण राष्ट्रवादियो को उग्रवादी बना दिया। इन लोगो को अग्रेजो की न्यायप्रियता मे कोई विश्वास नही रहा था। ये लोग इस निश्चय पर पहुँचे थे कि प्रार्थना-पत्रो द्वारा कुछ प्राप्त करना असम्भव है। इन लोगो की दृष्टि में विदेशी राज्य स्वय अपमानजनक था। उनको आत्म-निर्भर स्वतन्त्र कार्य मे विश्वास था किन्तु अग्रेजो

१. Nevinson: The New Spirit in India, page 226

की उदारता और परोपकारिता से उन्हें किसी प्रकार की आशा नही थी। उन्होने अपना कार्य-क्रम निश्चित किया—विदेशी वस्तुओ का, विदेशी सस्थाओं का बहिष्कार; स्वदेशी वस्तुओं का प्रयोग और राष्ट्रीय सस्थाओ की स्थापना।

८

१९०५ मे बडे दिनो पर बनारस मे कांग्रेस अधिवेशन के समय नई भावना ने अपने आपको व्यक्त किया। सन् १९०४ के अधिवेशन का सभापतित्व सर हैनरी कॉटन ने किया था। उस अधिवेशन में सर कॉटन के नेतृत्व मे एक शिष्ट मडल नियुक्त किया गया था और उसे वायसरॉय के समक्ष अधिवेशन के प्रस्तावो को प्रस्तुत करने का काम सौपा गया था। किन्तु लॉर्ड कर्ज़न ने उस शिष्टमडल से मिलना अस्वीकार कर दिया और काग्रेस की अवहेलना की। फलतः यह निश्चय किया गया कि ब्रिटिश जनता को भारतवासियो के कष्टो से परिचित कराने के लिए श्री गोखले और लाला लाजपतराय का एक शिष्टमडल इग्लैण्ड भेजा जाय।

पुराने काग्रेसियो का भारत के ब्रिटिश शासको की न्यायनिष्ठा में से विश्वास उठ गया था किन्तु ब्रिटिश राजनीतिज्ञो और ब्रिटिश जनता की आन्तरिक न्याय-प्रियता मे उनका विश्वास अब भी बना हुआ था। आरम्भ से ही उन्होने इगलैंड मे कांग्रेस के काम पर ज़ोर दिया था। सन् १८८९ मे काग्रेस की ब्रिटिश कमेटी की स्थापना हुई थी और उसके निर्वाह के लिए ४५००० रु. स्वीकार किये गए थे। १८९३ मे एक ब्रिटिश पार्लियामेण्टरी कमेटी का सगठन किया गया था। इस कमेटी को हाउस ऑव कॉमन्स मे भारतीय दृष्टिकोण व्यक्त करने का काम सौपा गया था। पार्लियामेन्ट के सदस्यो और ब्रिटिश जनता को सही सूचना देने के लिए 'इंडिया' नामक साप्ताहिक पत्र निकाला गया। ब्रिटिश जनमत को शिक्षित और प्रभावित करने के लिए काग्रेस ने समय-समय पर प्रमुख भारतीयो के शिष्टमडल इग्लैंड भेजे थे। पहले शिष्टमडल को सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के आधीन १८८९ मे इग्लैंड भेजा गया था। दूसरा शिष्टमडल १८९० मे इग्लैंड गया। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है एक शिष्टमडल १९०५ मे भेजा गया। किन्तु उसके सदस्यो को—और कम से कम एक सदस्य को तो निश्चय ही बड़ी निराशा हुई। ब्रिटिश जनता अपने निजी विषयो मे अत्यन्त व्यस्त थी; ब्रिटिश समाचार-पत्र भारतीय आकाँक्षाओ को व्यक्त करने के लिए तैयार नही थे और भारतीय समस्याओं को लोगो तक पहुँचाना बहुत कठिन था।[1] लाला लाजपतराय ने बनारस अधिवेशन मे अपने देशवासियो से कहा कि स्वतन्त्रता पाने के लिए उन्हे केवल अपने आप पर ही भरोसा करना होगा।

---

१. Lajpat Rai. Young India, pages 169-170.

इस संदेश का बनारस अधिवेशन के तरुण वर्ग पर विशेष प्रभाव पड़ा। उस समय तक बंगाल का विभाजन हो चुका था और विदेशी के बहिष्कार और स्वदेशी के प्रचार का आन्दोलन आरम्भ हो चुका था। विषय समिति में महत्वपूर्ण मतभेद थे किन्तु पुराने राष्ट्रवादियों के झुक जाने से समझौता होगया। कांग्रेस शिविर में तरुण प्रतिनिधियो ने एक खुला सम्मेलन किया और एक नया राष्ट्रीय दल बनाया। इस दल ने काग्रेस के अन्तर्गत रहना निश्चित किया और निष्क्रिय विरोध एवं राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के कार्यक्रम को अपनाया।

सन् १८९२ के बाद काग्रेस ने फिर १९०५ मे पहली बार राजनीतिक सुधारों की माँग की। हाउस ऑव कॉमन्स में भारतीय प्रतिनिधित्व देने के लिये माँग की गई और साथ ही वायसरॉय की कार्यकारिणी परिषद् और बम्बई तथा मद्रास की कार्यकारिणी परिषदो में भी भारतीयो को नियुक्त करने के लिये मांग की गई।[1]

राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास में १९०६ की काग्रेस का विशेष महत्व है। इस अधिवेशन पर सभापति दादाभाई नौरोजी ने पहली बार स्वराज्य के लक्ष्य की घोषणा की। नरम दल के काग्रेसियो ने मुख्यतः तिलक[2] को सभापति न बनने देने के उद्देश्य से ८२ वर्ष के वृद्ध दादाभाई नौरोजी को इग्लैंड से विशेष रूप से बुलाया था। काग्रेस में विच्छेद का भय था किन्तु दादाभाई के कौशल ने और साथ ही जनमत ने स्थिति को बचा दिया। इस जनमत के कारण नरम दल के काग्रेसी, उग्र दल के बहुत निकट आ गये थे। नरम दल वालों के अनुसार बहिष्कार, स्वदेशी और राष्ट्रीय शिक्षा-संबंधी स्वीकृत प्रस्ताव, आवश्यकता से कही अधिक कठोर थे। अतः अगले वर्ष सूरत मे उन्होने इन प्रस्तावो मे संशोधन करने का प्रयत्न किया और वस्तुत. इसी प्रयत्न के कारण काग्रेस मे फूट पड़ी। सन् १९०७ में बड़े दिनो पर सूरत काग्रेस की फूट के लिये कौन उत्तरदायी है, यहाँ पर इस विवाद में पडने की कोई आवश्यकता नही है। दोनो दलों मे गंभीर मतभेद था और केवल शब्द परिवर्तन से वह मतभेद दूर नही हो सकता था। दोनो दल अपनी बात पर दृढ़ थे। एक को अपने बहुमत पर विश्वास था और दूसरे दल को अपने भविष्य और सार्वजनिक समर्थन पर विश्वास था। ऐसी परिस्थिति मे फूट अनिवार्य थी। समझौते के लिए सारे प्रयत्न असफल रहे[3] और १९०७ मे २७ दिसम्बर को उपद्रव और अव्यवस्था के अत्यन्त खेदपूर्ण वातावरण मे अधिवेशन विच्छिन्न हो गया।

---

१. सन् १९०५ के अधिवेशन का प्रस्ताव न० २ Besant: How India Wrought for Freedom, pages 432 and 433.

२. Athalye: Life of Lokmanya Tilak, page 151.

३. २७ दिसम्बर को सभापति ने निर्वाचन के बाद अपना आसन ग्रहण किया। तब

नरम दली नेताओ ने दूसरे दिन २८ दिसम्बर को काग्रेस पडाल में पुलिस के सरक्षण में एक सम्मेलन किया। कुल १६०० प्रतिनिधियो मे से इस सम्मेलन में १००० प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। इनमे लाला लाजपतराय भी थे। लगभग १०० प्रमुख कांग्रेसी नेताओ की एक कमेटी बनाई गई जिसे काग्रेस का विधान तैयार करने का काम सौपा गया। यह विधान १९०८ मे तैयार हुआ। इसमे कांग्रेस कार्य के लिये पुरानी पद्धति और परम्परा की पुष्टि की गई और वैधानिक साधनो—वर्तमान शासन व्यवस्था मे क्रमबद्ध सुधारो—द्वारा स्वराज्य प्राप्ति का लक्ष्य प्रकट किया गया।

इस पुनरुत्थापित काग्रेस ने १९०८ के बड़े दिन के अवसर पर डा० रासबिहारी घोष की अध्यक्षता मे मद्रास मे अपना अधिवेशन किया और इसमे ६०६ प्रतिनिधियो ने भाग लिया। यह काग्रेस, प्रचलित ढंग पर काम करती रही। प्रतिवर्ष बड़े दिन के अवसर पर वह देश के किसी महत्वपूर्ण नगर मे अपना सम्मेलन करती थी और राजनीतिक सुधार के लिए तथा लोगो की आर्थिक एव सामाजिक दशा ठीक करने के लिये अपनी माँग प्रस्तुत करती थी।

---

लोकमान्य तिलक एक प्रस्ताव प्रस्तुत करने को खडे हुए। उसके लिये नियमानुसार एक दिन पहले सूचना दी जा चुकी थी परन्तु सभापति ने आज्ञा प्रदान नही की। तिलक मच से नही हटे। नरम दल वालो ने उन्हे वहाँ से नीचे खीचना चाहा। उसी समय एक मराठी जूता मच की ओर फेका गया जो सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और फ़ीरोजशाह मेहता के लगा। कुछ ही देर मे बहुत से आदमी लाठियाँ लिये हुए दौड़ पड़े और वे जिस किसी को नरम दली होने का सन्देह करते, उसी को मारते। "भारतीय महिलाये पंडाल से बाहर खिसक गईं; मच के नेता भी खिसक गये—तिलक को उनके अनुयायी ले गये—किन्तु पडाल में बड़ा उपद्रव हुआ—कुर्सियाँ फेक कर मारी गईं, लाठियाँ चली और बहुत से सिर फूट गये।" अन्त में पुलिस ने आकर पडाल को खाली करा दिया। Nevinson: The New Spirit in India, pages 256-259.

## तेरहवाँ अध्याय

# भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलनः वैधानिक एवं क्रान्तिकारी

१

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम वर्षों मे लोकमान्य बालगंगाधर तिलक से प्रेरणा पाकर और उन्ही के नेतृत्व मे महाराष्ट्र मे सार्वजनिक आन्दोलन आरम्भ हुआ।

सर वैलेण्टाइन शिरोल ने तिलक को ब्रिटिश राज्यसत्ता के प्रति अभक्ति की प्रेरणा देने वालो मे अत्यन्त भयकर बताया है और उसके अनुसार वस्तुत तिलक ही भारतीय अशान्ति के जन्मदाता[1] थे। दूसरी ओर भारतीय राष्ट्रवादियो की भाषा मे, तिलक स्वदेशभक्तो के आदर्श थे और भारत में साम्राज्यवाद विरोधी सार्वजनिक आन्दोलन के वास्तविक सस्थापक थे। तिलक मे अपने देश और उसके निवासियो के लिए अत्यन्त प्रबल प्रेम था। अपने देश मे चारो ओर दु ख, और दारिद्रय, पतन और अज्ञता को देखकर उनका हृदय कराहता था। उन्होने अपने देशवासियो को उक्त व्याधियो से मुक्त करने के लिए अपनी प्रतिभा और सामर्थ्य का पूरा उपयोग किया। उन्हे लोगो के विदेशी एव पश्चिमी दृष्टिकोण के प्रति घृणा थी और उन्होने हिन्दू धर्म और भारतीय वस्तुओ के प्रति अपने देशबन्धुओ को जगाने के लिए यथासभव प्रयत्न किया। उन्हे प्राचीन भारत के वैभव पर और आर्यो की उपलब्धियो पर गर्व था। वे भारत को फिर उच्चतम स्तर पर ले जाना चाहते थे। उनके अनुसार विदेशी राज्य एक अभिशाप था और भारत की दुर्दशा का वही मुख्य कारण था। राजनीति मे उनका सिद्धान्त यह था कि लक्ष्य के न्याय्य होने पर उसके लिए सब साधन न्याय्य होते है। उनकी दृष्टि मे देश की स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए प्रत्येक उपाय उचित था। वे कुशल और चतुर राजनीतिज्ञ थे। सपादन-कला तो मानो उनकी रगो मे समाई हुई थी। उनमे असाधारण साहस था। विरोधी के नाते वे दृढ़ और भयकर थे। उन्हे जिस सामग्री पर काम करना था उसे वे अच्छी तरह जानते थे और उन्होने अपने ज्ञान का पूरा लाभ उठाया। लोगो मे नई भावना और नया जीवन भरने के लिए उन्होने हिन्दू देवताओ और महापुरुषो को अपना उपकरण बनाया। उन्होने महाराष्ट्र मे हिन्दू नवयुवको का सगठन करने के लिए गोहत्या-विरोधी समितियाँ

१. Chirol: Indian Unrest, pages 40–41.

खोली, अखाड खोले, लाठी चलाने के लिए क्लब स्थापित किये और इस प्रकार उनमे पौरुष और साहस की भावना भरकर उन्हे केवल हिन्दू-धर्म के लिए ही नही वरन् मातृ-भूमि की सेवा के लिए वीर सैनिक बनाया। वे लोगों को बलवान, पौरुष-युक्त, साहसी, निर्भय, स्वतन्त्र और आत्म-निर्भर बनाना चाहते थे। उन्होने मंच और समाचार-पत्र दोनों की सहायता से लोगो को स्वावलम्बी होने का तथा आत्म-निर्भर स्वतन्त्र कार्य करने का पाठ पढाया। उन्होने जीवन के आरम्भ मे ही अपना मार्ग निश्चित कर लिया था और उस मार्ग पर चलने के लिए उन्होंने कष्ट और कठिनाइयो का सामना किया। वे अपने अध्यवसाय, अनुराग, बलिदान, साहस और दृढ निश्चय की सहायता से उस मार्ग पर पूरी तरह बने रहे। अपने विचारों के कारण उन्हें तीन बार जेल जाना पड़ा। अन्तिम बार तो उन्हे छै वर्षों के लिए कारावास दण्ड दिया गया था। किन्तु यह सब होते हुए भी उन्हे अपने उद्देश्य में बहुत हद तक सफलता मिली। लोगो ने उनका आदर किया और वे देशभक्तों के सिरमौर हुए। उनके प्रयत्नो से देश, स्वतन्त्रता की देहली पर आ गया।

लोगो मे पौरुष, अनुशासन, सगठित कार्य एवं देशभक्ति की भावना भरने के उद्देश्य से तिलक ने १८९३ मे गणपति उत्सव मनाने की परम्परा डाली। स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियो को इन उत्सवो मे भाग लेने के लिए प्रेरणा दी गई और राजनीतिक प्रचार के लिए इन उत्सवो को काम मे लाया गया। ये उत्सव महाराष्ट्र मे लोकप्रिय होगए। और इस प्रकार प्रान्त मे राजनीतिक शिक्षा के लिए मूल्यवान उपकरण होगए।

गणपति उत्सव की सफलता से सन्तुष्ट होने पर तिलक ने १८९५ में शिवाजी उत्सव आरम्भ किया। इस बार उद्देश्य प्रत्यक्ष रूप से राजनीतिक था। तिलक, लोगो के सामने एक राष्ट्रीय महापुरुष का उदाहरण रखकर उन्हें स्वदेश सेवा के लिए प्रोत्साहित करना चाहते थे। उन्हे अपने प्रयत्नो मे सफलता मिली। इस उत्सव ने महाराष्ट्र की जनता और वहां के नवयुवको को विशेष प्रोत्साहन दिया और उनमे से बहुत से लोगो मे यह आकाक्षा हुई कि वे भी देश की उसी प्रकार सेवा करे जिस प्रकार शिवाजी ने अपने समय मे मातृ-भूमि की सेवा की थी।

इन अवसरो पर जुलूस निकाले जाते थे, उनमे नवयुवक अपनी लाठी चलाने की कला का प्रदर्शन करते थे, सभाएँ होती थी, धार्मिक एवं राष्ट्रीय गाने गाये जाते थे, कविताएँ पढी जाती थी और राजनीतिक व्याख्यान होते थे। यद्यपि स्वय तिलक राज्य के प्रति अभक्ति अथवा हिंसा का प्रचार नही करते थे तथापि उन्होने दूसरो को इस बात के लिए नही रोका कि वे विदेशी राज्य के विरुद्ध जनता को न भडकायें अथवा उसमें क्रान्ति और हिंसा का प्रचार न करे। दो चपेकर बन्धु क्रान्ति-कारी थे और उन्होने इन उत्सवों का जातीय घृणा और हिंसा के प्रचार के लिए

उपयोग किया। उनके द्वारा पढ़ी जाने वाली कविताएँ सर्वसाधारण को हिंसा के कामो के लिए उत्तेजित करने वाली होती थी:—"सुनिये। राष्ट्रीय युद्ध के लिए हम समर भूमि में प्राणों की बाज़ी लगाएँगे; हम अपने शत्रुओ के रक्त से पृथ्वी को रंग देगे, ये शत्रु हमारे धर्म का नाश करने वाले है, हम उन्हें मारकर ही मरेंगे.. . . .।" "क्या आपको अपनी दासता पर लज्जा नही आती. . . .ये दुष्ट गायों और बछडो की हत्या करते है. . . .मर जाओ किन्तु अग्रेज़ो को मार दो . यह देश हिन्दुस्तान कहलाता है, फिर यहाँ अग्रेज़ो का राज्य क्यो है।" [१]

जिस समय प्रान्त मे दुर्भिक्ष और प्लेग के कारण प्रबल असन्तोष और घोर दुःख छाया हुआ था, उस समय उपर्युक्त कविताओ को पढा गया। आर्थिक कठिनाइयो को कम करने लिए तिलक ने स्वेच्छापूर्ण सहायता का सगठन किया था। तिलक ने इस बात का भी प्रचार किया था कि जो किसान लगान देने मे असमर्थ हो वे लगान न दे। उन्होने लोगो से वीर बनने के लिए अपील की। उन्होने कहा कि जो लोग लगान नही दे सकते वे निर्भय होकर उसके लिए मना कर दे। उन्होने लोगो को शान्त रहने के लिए कहा और अन्न-उपद्रव रोकने के लिए पूर्ण प्रयत्न किया। इसी प्रकार जब पूना मे प्लेग का प्रकोप हुआ तो उन्होने सेवा की भावना से प्रेरित होकर बडे साहस से काम लिया और अपने आपको जोखिम मे डालकर एक प्लेग के अस्पताल का सगठन किया और लोगो की यथासभव सहायता करने के लिए स्वय नगर मे रहे। किन्तु लोगो के कष्टो की कोई सीमा नही थी और असन्तोष बराबर बढ रहा था। ऐसी दशा मे ब्रिटिश-विरोधी भावनाओ को पनपने के लिए उपर्युक्त वातावरण मिला और जनता मे सरकार-विरोधी प्रचार को सफलता मिली।

दामोदर और बालकृष्ण नामक दो चपेकर बन्धुओ ने एक सस्था बनाई थी जिसका उद्देश्य हिन्दू-धर्म के मार्ग की बाधाओ को दूर करना था। यह संस्था १८९५ मे पूना मे स्थापित की गई थी। आरम्भ मे शारीरिक और सैनिक शिक्षण का कार्यक्रम था किन्तु कुछ ही समय मे यह सस्था क्रान्तिकारी हो गई। पूना के अप्रिय प्लेग कमिश्नर रैण्ड और लेफ्टिनेण्ट एअर्स्ट को गोली से मारने के अपराध मे दामोदर चपेकर पर अभियोग चलाया गया और उसे दोहरी हत्या के लिए अभिशस्त किया गया।[२] चपेकर बन्धुओ की इस सस्था पर अन्य हिंसा के कामो का भी दायित्व था। दामोदर चपेकर ने अपने भाई के साथ बम्बई मे विक्टोरिया की मूर्त्ति को कलुषित करने का अपराध स्वीकार किया। इस सस्था के चार सदस्यो को फाँसी

१. Sedition Committee (Rowlatt) Report 1918, page 2.
२. Sedition Committee Report 1918, page 3.

दी गई और एक को दस वर्ष का कठोर कारावास दण्ड दिया गया। इनका अपराध यह था कि इन्होने पूना के एक मुख्य कान्स्टेबुल को गोली मारने का प्रयत्न किया था और दो भाइयो की इसलिए हत्या की थी कि इन भाइयो ने दामोदर चपेकर[१] को गिरफ़्तार करने के लिए सरकार को सूचना दी थी और उन्हे सरकार ने इनाम दिया था।

मि० रैण्ड और एअर्स्ट की हत्या से आग्ल-भारतीय क्षेत्रो मे उद्विग्नता छा गई और आग्ल-भारतीय पत्रो ने भारतीय पत्रो का मुह बन्द करने और तिलक पर अभियोग चलाने की माग की। तिलक पर, दोहरी हत्या के लिए वातावरण उत्पन्न करने का दोष मढा गया। तिलक का पत्र 'केसरी' जनता मे समार्जन के नियमो को बलात कार्यान्वित करने के लिए ब्रिटिश सैनिको के उपयोग का प्रबल विरोध कर रहा था काल, वैभव, मोदवृत्त और प्रतोद आदि अन्य भारतीय पत्र भी प्रबल विरोध कर रहे थे। जो नरम दली नेता पूना छोड कर चले गये थे वे भी सरकारी पद्धति के विरोध मे हल्ला मचा रहे थे। तिलक का कहना यह था कि केवल हल्ला मचाना निरर्थक था। आग्ल-भारतीय पत्रो ने इसका यह अर्थ लगाया कि तिलक ने हिसात्मक उपायो को काम में लाने का प्रतिपादन किया। इन सब बातो के साथ तिलक के एक व्याख्यान को जोड दिया गया। इस व्याख्यान मे जो सन् १८९७ मे १२ जून को शिवाजी उत्सव के अवसर पर दिया गया था तिलक ने अफज़ल खा की हत्या को न्याय्य ठहराया था। आग्ल- भारतीयो के अनुसार इस व्याख्यान से चपेकर बधुओ को दोहरी हत्या के लिए प्रत्यक्ष प्रोत्साहन मिला।

अपने व्याख्यान मे तिलक ने अपना यह मत प्रकट किया था कि "महापुरुष सामान्य नैतिक सिद्धान्तो से ऊपर होते है। .गीता मे कृष्ण ने कहा है कि यदि हम स्वार्थ की भावनाओ से प्रेरित न हो, तो अपने गुरुओ और सम्बन्धियो की हत्या में भी कोई पाप नही होता। शिवाजी ने अपने पेट के लिए कुछ नही किया। उन्होने दूसरो की भलाई के प्रशसनीय उद्देश्य से ही अफजल खा की हत्या की थी। ईश्वर ने हिन्दुस्तान म्लेच्छो को नहीं दिया था। कूपमण्डूक की भाँति अपने दृष्टिकोण को सीमित न करो। दण्ड सहिता से ऊपर उठकर भगवद्गीता के पवित्र वातावरण मे महापुरुषो के कृत्यो पर विचार करो।"[२]

आंग्ल-भारतीय आन्दोलन को सफलता मिली। १८९७ मे २७ जुलाई को तिलक को गिरफ्तार किया गया। उनके साथ ही 'केसरी' के मुद्रकऔर पूना के 'वैभव', 'मोदवृत्त' और 'प्रतोद' के सम्पादको को भी गिरफ्तार किया गया। नटु बन्धुओ पर

१. Sedition Committee Report 1918, पृष्ठ ४.

२. Chirol : Indian Unrest, pages 46-47.

प्रान्त के राजनीतिक आन्दोलन से सम्बन्धित होने का सन्देह किया गया। ये दोनों भाई दक्षिण के प्रमुख और धनी ज़मीदार थे। १८२७ के विनियम न० २५ के अन्तर्गत इनको देश से निर्वासित कर दिया गया और उनकी सम्पत्ति पर सरकार ने अधिकार कर लिया। सारे देश मे खलबली मच गई और चारो ओर तीखापन फैल गया।

तिलक के अभियोग का निर्णय एक अंग्रेज़ जज (मिस्टर जस्टिस स्ट्रैची) और ९ सदस्यो की एक विशेष जूरी ने किया। इनमे से छै सदस्य यूरोपियन थे जो मराठी भाषा से अपरिचित थे। अभियोग राजद्रोह का था और महाधिवक्ता के अनुसार उसका हत्या से कोई सम्बन्ध नही था। किन्तु जूरी को निर्देश देने मे जज ने महाधिवक्ता का स्थान ले लिया। कलकत्ते के 'इडियन मिरर' ने लिखा है : "मि. जस्टिस स्ट्रैची ने दुर्भिक्ष और प्लेग की निःसकोच रूप से चर्चा की यह बताया कि जनता को ब्रिटिश सैनिको का उपयोग पसन्द नही था . . .फिर पूना की हत्याओ की चर्चा की और अन्त में निस्सकोच होकर यह मत प्रकट किया कि उपर्युक्त बातो के कारण अनिवार्य रूप से सघर्ष और रोष का ऐसा वातावरण बना और ऐसी भावनाएँ उत्तेजित हुई कि उनकी पृष्ठ-भूमि मे मि० रैण्ड और लेफ्टिनेण्ट एअर्स्ट की हत्या होने मे कोई आश्चर्य की बात नही थी।"[1] जूरी के छ. सदस्यो ने तिलक को अपराधी ठहराया और उन्हे १८ महीने का कठोर कारावास दण्ड दिया गया।

श्री तिलक की अभिशस्ति से चारो ओर असन्तोष हुआ और जज के व्यवहार पर रोष हुआ। उसकी परिभाषा के अनुसार 'भक्ति का अभाव' 'अभक्ति' था। और इससे सर्वसाधारण मे बडी उद्विग्नता हुई। अँगरेज़ो के पत्र 'डेली हेराल्ड' ने भी सरकार को चेतावनी दी।[2] सारे भारतीय पत्रो की ओर से सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा कि "हमारी हार्दिक धारणा यही है कि श्री तिलक निर्दोष है और उनके दड पर सारा राष्ट्र अत्यन्त दुखी है।[3] सस्कृत के यूरोपियन विद्वानो को बडा धक्का

---

१. Athalye · Lafe of Lokmanya Tilak, page 99

२ Daily Herald की आलोचना का अनुवाद. "असन्तोष, अशिष्टता कुटिलता का बाहुल्य हो सकता है पर उसका कुछ महत्व नही है। वास्तविक राजद्रोह सिद्ध कीजिये और उसका अपराध से सम्बन्ध दिखाइये। हम उस दड का समर्थन करेगे। किन्तु लुटेरो की प्रशसा मे वक्रोक्ति के आधार पर·····सरकार का मार्ग सकटपूर्ण है।" Athalye : The Life of Lokmanya Tilak, pages 99-100.

३. उपर्युक्त पुस्तक, : पृष्ठ १००.

पहुँचा और प्रोफ़ेसर मैक्समुलर ने अनुकंपा के लिये एक प्रार्थना-पत्र तैयार किया। इसमें कितने ही प्रभावशाली व्यक्तियो ने हस्ताक्षर किये। यह प्रार्थना-पत्र महारानी की सेवा में भेजा गया। उसके फलस्वरूप 'ओरायॉन' के विद्वान् लेखक को रात में साहित्यिक काम करने के लिए कुछ सुविधायें दी गईं और उसे अवधि पूरी होने से छः महीने पहले ही छोड़ दिया गया।

२

भारत के राजनीतिक वातावरण में १८९९ से १९०४ तक निरुद्ध शाति रही। यह शाति आने वाले झझावात की द्योतक थी। सन् १९०५ के अन्तिम महीनों में यह झझावात फूट पड़ा और इसका प्रकोप सर्वत्र विशेषकर बगाल में चार वर्ष तक रहा।

इस तूफान का आरम्भ सन् १९०५ मे बगाल के विभाजन से हुआ। सन् १९०५ मे १९ जुलाई को सरकारी प्रस्ताव द्वारा विभाजन की योजना का प्रख्यापन किया गया। समस्त भारतीय जनता के अभूतपूर्व विरोध के होते हुए भी उसे इसी वर्ष १६ अक्टूबर को कार्यान्वित किया गया।

१९ जुलाई के प्रस्ताव के प्रकाशित होने के कुछ ही समय बाद, महाराजा जतीन्द्र मोहन ठाकुर की अध्यक्षता में एक सार्वजनिक सभा हुई। इसमें कलकत्ते के सभी प्रमुख व्यक्ति उपस्थित हुए और साथ ही सभा मे कुछ प्रमुख अगरेज़ भी आये।[1] सभा ने वायसरॉय के पास इस आशय का एक तार भेजने का निश्चय किया कि प्रस्ताव मे कुछ विशेष सशोधन कर दिये जायँ। इन सशोधनो की रूप-रेखा वही थी जिन्हे अन्त में १९११ में स्वीकार किया गया। इस प्रकार शासन की आवश्यकताएँ भी पूरी होती थी और सारी बगभाषी जनता भी एक प्रान्त में रहती थी। किन्तु लॉर्ड कर्ज़न दृढ थे—उनका कारण शासन के स्थान पर राजनीति से मुख्यतः सबधित था। वे दोनो जातियो के बीच एक खाई तैयार करना चाहते थे और साथ ही बगाल की नई राष्ट्रीयता को कुचलना चाहते थे। जनता भी विरोध करने के लिये दृढ थी। उसने विभाजन के सशोधन के लिए एक सगठित आन्दोलन करने का निश्चय किया। बगाल मे सर्वत्र विरोध सभाएँ की गईं और १९०५ में ७ अगस्त को कलकत्ते के टाउन हॉल मे विभाजन के निवारणार्थ एक विराट सभा हुई। इसके लिए इतना जन-समूह एकत्रित हुआ कि सभा को तीन स्थानो में विभाजित किया गया—दो सभाएँ टाउन हॉल में, एक नीचे की मज़िल में और दूसरी ऊपर की मज़िल मे और तीसरी सभा बेंटिक मूर्ति के पास मैदान में। इन सभाओ मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बहिष्कार की प्रतिज्ञा[2] को पढा और लोगो से उस

१. Bannerjee : A Nation in the Making.

२. प्रतिज्ञा इस प्रकार थी "मैं आज से एक वर्ष तक इग्लैंड की बनी हुई किसी वस्तु

पर हस्ताक्षर करने की अपील की। इसी ढंग की सभाएँ बंगाल में अन्य स्थानो पर हुईं। उनमे स्वदेशी के प्रयोग और ब्रिटिश वस्तुओ के बहिष्कार के प्रस्ताव स्वीकार किये गए और बहिष्कार संबधी प्रतिज्ञा की गई।[1]

इस आन्दोलन के होते हुए भी १६ अक्तूबर को विभाजन कर दिया गया। उस दिन सारे बगाल मे राष्ट्रीय शोक-दिवस मनाया गया। कलकत्ते के कार्यक्रम में चार बाते मुख्य थीः– (१) राखी बंधन–विभाजित प्रान्तो की एकता के प्रतीक स्वरूप पुरुषो की कलाइयो में लाल धागे बाँधे गए; (२) हडताल और उपवास; (३) पेरिस के एक भवन (Hotel des Invalides) के नमूने पर एक 'फेडरेशन हॉल' का शिलान्यास। इस भवन में बंगाल के सब जिलो की मूर्तिया रखी जानी थी। पृथक किये हुए जिलो की मूर्तियो को, फिर एक होने के दिन तक[2] ढका रखना था। और (४) बुनकर-उद्योग की सहायता के उद्देश्य से सुरेन्द्रनाथ बनर्जी द्वारा एक राष्ट्रीय निधि की स्थापना। इसके लिए सायंकाल को एक सार्वजनिक सभा हुई और ७०००० रुपये तो सभास्थल में ही एकत्रित हो गए।

विभाजन हुआ। पूर्वी बगाल और आसाम का नया प्रान्त बना। इस प्रान्त की राजधानी ढाका मे बनाई गई और उसके लिए सर बैमफील्ड फुलर को उप गवर्नर नियुक्त कर दिया गया। किन्तु आन्दोलन यथापूर्व गति से चलता रहा। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और विपिनचन्द्र पाल जैसे नेताओं ने सारे नये प्रान्त का परिभ्रमण किया, विराट सभाओ मे भाषण दिया और उपस्थित जनो से स्वदेशी और बहिष्कार की शपथ ग्रहण कराई। राष्ट्रीय पत्रो द्वारा प्रबल प्रचार किया गया। बगाल के अतिरिक्त अन्य प्रान्तो मे भी आन्दोलन फैल गया। सन् १९०५ के काग्रेस अधिवेशन ने राजनीतिक बहिष्कार और आर्थिक स्वदेशी, दोनो बातो के लिए स्वीकृति दी। सन् १९०६ में इस स्वीकृति की और भी प्रबल भाषा में पुष्टि की गई। दोनो आन्दोलनो को काफी सफलता मिली। इग्लैड से सूती और अन्य माल का आयात घट गया और भारत के बुनकर-उद्योग को और अन्य धधो को बडा प्रोत्साहन मिला।[3] स्कूल और कॉलेज के विद्यार्थियो मे ये आन्दोलन विशेष रूप

---

का क्रय नही करूगा। ईश्वर शक्ति दे।" Bannerjee . A Nation in the Making, pages 189-191.

१ २० जुलाई और २६ अक्टूबर के बीच बगाल मे लगभग २००० सभाएँ हुईं।

२. Bannerjee : उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २१३.

३. पूर्वी बगाल की सरकारी रिपोर्ट के अनुसार १९०५-०६ मे बहुत सी फैक्ट्रिया बनी और विदेशी आयात मे १६ प्रतिशत कमी हुई। १९०७ की मई में लन्दन के टाइम्स के अनुसार मैंचेस्टर से सूती कपड़े के आयात में

से प्रिय हो गए। विद्यार्थी गण नई राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत थे। विभाजन-विरोधी सभाओ मे वे बड़ी सख्या में उपस्थित होते थे। उन्होने बहिष्कार और स्वदेशी की प्रतिज्ञा की। वे वन्दे मातरम् का गान गाते थे और वन्दे मातरम् द्वारा परस्पर अभिवादन करते थे। राष्ट्रीय सेवा के लिये वे स्वयं सेवक बने और उन्होंने विदेशी कपड़ो की दुकानो पर धरना दिया। अपने उत्साह मे कुछ लोगो ने मर्यादा का उल्लघन किया किन्तु उनकी उग्रता को पूर्वी बगाल के शासन की प्रतिक्रियावादी दमनकारी और द्वेषपूर्ण नीति से ही प्रेरणा मिली। स्वदेशी सभाओ को बलपूर्वक विछिन्न किया गया; स्वदेशी के प्रचार को रोका गया। अश्विनीकुमार दत्त जैसे स्वदेशी के प्रचारको को परेशान किया गया और उन पर राजद्रोह का अभियोग लगाया गया। धरना देने वालो को गिरफतार किया गया और छोटे-छोटे अपराधो के लिये अत्यन्त कठोर (दृष्टान्त रूप) दण्ड दिया गया। "एक मामले मे चार नव-युवको ने विदेशी चीनी को नष्ट कर दिया। इसका मूल्य १ शिलिग २ पेस था। इन नवयुवको को तीन और चार महीनो का कारावास दंड दिया गया और उन पर काफी जुर्माना किया गया।"[१] जिला मजिस्ट्रेटो ने शिक्षण सस्थाओ के अध्यक्षो को यह आदेश दिया कि यदि किसी स्कूल के विद्यार्थियो ने आन्दोलन मे भाग लिया तो उस स्कूल को सरकारी सहायता नही दी जायगी, उसके विद्यार्थियों को छात्र वृति के लिये प्रतिद्वन्दिता करने का अधिकार नही होगा और विश्वविद्यालय द्वारा उनको अगीकार नही किया जायगा।"[२] कलकत्ते के 'स्टेट्समैन' ने इन आदेशो की निदा की और कहा कि इससे "देश पर मरने वालो की सेना तैयार होने मे सहायता मिलेगी।"[३] सर सुरेन्द्रनाथ लिखते है: "किंतु एक के बाद एक करके कई आदेश पत्र भेजे गये और प्रत्येक से उत्तेजना में वृद्धि हुई; रोग का शमन होने के स्थान पर उसका प्रकोप बढता ही गया।"[३] इनमे वन्दे मातरम् सबधी आदेश पत्र सबसे अधिक हास्यास्पद था। सर फुलर की सरकार ने सार्वजनिक सड़कों पर वन्दे मातरम्[४] की आवाज लगाना अवैध घोषित कर दिया। इस आदेश पत्र को कार्यान्वित करने के लिए सरकार ने अत्यन्त कठोर नियम बनाए। अप्रैल १९०६ मे बगाल प्रान्तीय सम्मेलन के लिये बारीसाल मे प्रतिनिधि एकत्रित हुए। पुलिस ने उन पर हमला

---

४२४,९२,५०० गज़ की कमी हुई। देखिये, Nevinson The New Spirit in India, pages 181-182

१. Nevinson: The New Spirit in India, page 185.

२. Bannerjee A Nation in the Making, page 204

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २०५.

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २०५

किया और सम्मेलन को भग कर दिया। सारे देश मे इस पर विरोध सभाएँ हुईं।"[१] कलकत्ते की एक सभा मे राय नरेन्द्र नाथ सेन ने कहा कि इस दमन का एकमात्र परिणाम यह होगा कि नवयुवक अराजकतावादी हो जाएँगे। मद्रास की एक सभा मे भारत मत्री से यह प्रार्थना की गई कि वे हस्तक्षेप करे और इस घटना से सबधित अधिकारियो को दड दे।"[२]

किंतु पूर्वी बगाल की सरकार ने अपना ढर्रा नही बदला। उसने केवल दमन की नीति को ही जारी नही रखा वरन् जनता मे फूट डालने और मुसलमानो का पक्ष लेने की नीति को भी आगे बढाया। मुसलमानो का समर्थन प्राप्त करने के लिए और विभाजन विरोधी आन्दोलन मे हिन्दुओ को पृथक करने के लिये सर बैम्फील्ड ने हर प्रकार के उपायो का उपयोग किया। ढाका के नबाब सलीमुल्ला ने आरभ मे विभाजन को "पाशविक व्यवस्था" बताया। उसका समर्थन प्राप्त करने के लिए उसे १ लाख पौण्ड का ऋण दिया गया। "बहुत से सरकारी पदो को मुसलमानो के लिये सुरक्षित रखा गया और कुछ स्थानो को उपयुक्त मुसलमान न मिलने पर रिक्त रखा गया।"[३] अधिकारियो की छेडछाड तो केवल हिदुओ के ही लिए थी। उन्हे सरकारी पदो से दूर रखा गया। हिन्दू स्कूलो को सरकारी अनुग्रह और सहायता से वचित किया गया। जब मुसलमान उपद्रव करते थे तो पुलिस अपराधियो को दड देने के लिये हिन्दू घरो पर छापा मारती थी। हिन्दू बस्तियो मे गुरखा सैनिको को सुरक्षा के लिये नियुक्त किया गया।[४] उप-गवर्नर ने इस बात की हसी करते हुए इस प्रकार व्यक्त किया कि उनको अपनी दो पत्नियो मे मुस्लिम पत्नी अधिक प्रिय थी। "मुसलमानो को इस बात का पूरा विश्वास हो गया था कि ब्रिटिश अधिकारी उनके सब अत्याचारो को[५] क्षमा कर देगे।" मुसलमान मौलवी चारो ओर यह कहते फिरते थे कि हिन्दुओ के प्रति हिसा करने के बदले मे अथवा हिन्दुओ की दुकाने लूटने और हिन्दू विधवाओ को भगाने के बदले मे मुसलमानो को कोई दड नही दिया जाएगा। एक लाख पुस्तिका प्रकाशित की गई उसमे इन्ही बातो का प्रतिपादन किया गया था।"[६] कामिला, जमालपुर और ढाका आदि कई स्थानो मे उपद्रव आरभ हो गए। ढाका मे तीन दिन और तीन रात तक मुस्लिम उपद्रवियों का आधिपत्य रहा और उन्होने धनी मारवाडी रत्नकारो को जी भरकर लूटा।[६]

१ Banneiji : A Nation in the Making, page 219
२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २३२
३ Nevinson · The New Spirit in India, page 192
४ Nevinson . The New Spirit in India, page 202.
५. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १९१.
६ Mazumdar . Indian National Evolution, page 235.

मिस्टर नेविन्सन ने इन घटनाओ के कुछ ही बाद पूर्वी बंगाल का दौरा किया। वे लिखते है:–"कुछ लोग मारे गए, मन्दिर भ्रष्ट किये गए, मूर्तिया तोड़ी गईं, दुकाने लूटी गईं और बहुत सी हिन्दू विधवाओ का अपहरण किया गया। कुछ नगर उजड़े हुए थे; हिन्दू जनता ने पक्के मकानो मे शरण ले ली थी; स्त्रियो ने तालाबो मे छिप कर राते बिताईं थी; सामुदायिक बलात्कार बढ गया था और मेरे परिभ्रमण के समय भी सारे जिलो मे आतंक छाया हुआ था।"[१]

पूर्वी बंगाल की सरकार की इस नीति के बडे दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हुए। "बंगाल में धार्मिक झगड़े आरम्भ हो गए।"[२] सरकार ने इसके लिए बहिष्कार आन्दोलन और हिन्दू स्वयसेवकों को दोष दिया। ये स्वय सेवक हिन्दू विधवाओं की और अन्य व्यक्तियो की मुस्लिम गुण्डो से रक्षा करने का असफल प्रयत्न करते थे। उपद्रव के अभियोगो से यह बात स्पष्ट है कि धार्मिक झगडों की जड़ मुसलमानो के इस विश्वास मे थी कि सरकार मुसलमानो के पक्ष मे है और मुसलमानो को न्यायालयो से डरने का कोई कारण नही है। वस्तुतः मुसलमानो का पक्ष लेने में सरकार बहुत आगे बढ गई थी। साम्प्रदायिक विष शासन की हर शाखा में प्रविष्ट हो गया था और न्यायालय भी उसके प्रभाव से बचे नही थे। कामिला के उपद्रव सम्बन्धी अभियोग मे जज ने प्रत्यक्ष रूप से मुसलमानो का पक्ष लिया।[३] सरकार का कहना यह था कि हिन्दू विभाजन विरोधी थे और सरकार के लिए विभाजन विरोधी आन्दोलन कुचलना आवश्यक था। परिणाम यह हुआ कि बंगाल में उग्र दल की बड़े वेग से वृद्धि हुई। राष्ट्रीयता की दो नई विचार धाराओ का जन्म हुआ। एक विचार धारा वैधानिक थी और इसके नेता अरविन्द घोष और विपिन चन्द्र पाल थे; दूसरी क्रान्तिकारी थी और इसके नेता बारीन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्रनाथ दत्त थे।

---

१. एक यूरोपीय मजिस्ट्रेट ने एक उपद्रव अभियोग की रिपोर्ट मे लिखा है "कुछ मुसलमानो ने डके की चोट यह घोषणा की थी कि सरकार ने उन्हे हिन्दुओ को लूटने की स्वतन्त्रता दे दी थी।" एक अपहरण अभियोग मे उसी मजिस्ट्रेट ने लिखा है कि मुसलमानो मे इस बात की घोषणा की गई थी कि सरकार ने उन्हे हिन्दू विधवाओ से निकाह करने की स्वतन्त्रता दे दी थी।"– Nevinson: The New Spirit in India, page 198.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १९३.

३. Bannerjee: A Nation in the Making, page 218. –उच्च न्यायालय ने उक्त जज के व्यवहार पर प्रबल आपत्ति की।

३

पिछले अध्याय मे नये राष्ट्रीय दल, उसके सिद्धान्तो और उसके कार्यक्रम का उल्लेख किया जा चुका है।[1] इस समय भारत मे विवेकानन्द के महान व्यक्तित्व की प्रेरणा से बहुत बडा हिन्दू पुनरुत्थान हो रहा था। इन दोनो (नये राष्ट्रीय, और हिन्दू पुनरुत्थान) आन्दोलनो ने एक दूसरे को प्रभावित किया और यह बात बगाल मे विशेष रूप मे प्रकट हुई। जैसा कि सर वैलेण्टाइन शिरोल ने कहा है — "इस नयी राष्ट्रीयता के युद्ध घोष "स्वदेशी" और "स्वराज्य" है और उनका अर्थ केवल आर्थिक और राजनीतिक स्वतत्रता नही है। उनका अर्थ विदेशी जाति, और विदेशी सभ्यता के आदर्शो के स्थान पर, सामाजिक, धार्मिक, बौद्धिक और नैतिक क्षेत्र मे पुरानी हिन्दू परम्पराओ का सगठित उत्थान करना है। इस विचार-धारा के कुछ प्रतिपादको की हार्दिक सचाई के बारे मे कोई सन्देह नही किया जा सकता। अरविन्द घोष की भाति उनको यह दृढ विश्वास है कि "देश की सारी नैतिक शक्ति हमारे साथ है, न्याय हमारे साथ है, प्रकृति हमारे साथ है और ईश्वरीय नियम जो सर्वोपरि है वह भी हमारे कार्य को न्याय्य ठहराता है।"[2] मिस्टर विपिन चन्द पाल लिखते है — "भारत मे राष्ट्रीय चेतना और आकाक्षाओ की पुनर्जाग्रति के कारण शक्ति उपासना के प्राचीन आदर्श का पुनरुत्थान हुआ है। दुर्गा, काली, जगद्धात्री और भवानी आदि शक्ति की विभिन्न प्रतिमाओ को नया अर्थ दिया गया है। ये प्राचीन देवी और देवता आधुनिक मस्तिष्क मे पुनः प्रतिष्ठित किये गये है और उनकी एक नयी ऐतिहासिक एव राष्ट्रीय व्याख्या भारत की आत्मा और मस्तिष्क के समक्ष रखी गई है।"[3]

लोगो के मस्तिष्क पर, विशेषकर बगाल के तरुणवर्ग पर इस नये राष्ट्रीय दल के नेताओ का बहुत बडा प्रभाव हुआ। सन् १९०६–१९०८ मे इस दल की शक्ति मे बहुत वृद्धि हुई और उसके प्रभाव ने बहिष्कार तथा स्वदेशी के आन्दोलनो को बहुत सहायता दी। इस दल के तत्वावधान मे राष्ट्रीय शिक्षण सस्थाये चलाई गई। कलकत्ते मे एक कालेज चलाया गया। अरविन्द घोष इसके प्रिन्सीपल थे। मच और पत्र, दोनो के द्वारा दल ज़ोरो से प्रचार कर रहा था। बिपिनचन्द्र पाल और अरविन्द घोष ने अपने मुख पत्रो—'न्यू इण्डिया' तथा 'बन्दे मातरम्'—द्वारा प्रबल और प्रभावशाली भाषा मे स्वतन्त्र भारत का आदर्श प्रस्तुत किया और धार्मिक राष्ट्रीयता के सिद्धान्तो की व्याख्या की। बिपिन चन्द्र पाल के अनुसार डोमीनियन स्टेटस

---

१ इसी पुस्तक का बारहवा अध्याय देखिये।

२ Chirol Indian Unrest, page 12.

३ B. C. Pal The Soul of India, pages 186-187.

(औपनिवेशिक स्वराज्य) का आदर्श अव्यवहार्य था। उन्होने कहा :— "क्या इगलैड जैसे छोटे देश के लिये भारत जैसे विशाल देश के साथ निष्पक्ष परिस्थितियो मे प्रतिद्वन्द्विता करना सभव है ? जब भविष्य मे भारत पूर्ण रूप से स्वतन्त्र होगा तो इगलैड उसको जापान की भाति अपना मित्र बनावेगा किन्तु साझेदारी नही करेगा क्योकि इस साम्राज्य की कम्पनी मे भारत अनिवार्य रूप से सबसे अधिक प्रभावशाली साझेदार होगा।[1] उन्होने अरविन्द घोष के साथ तरुण वर्ग के समक्ष पूर्ण रूप से स्वतन्त्र भारत का आदर्श प्रस्तुत किया और कहा कि हमे अग्रेजो से कोई दान नही लेना वरन् इस स्वतन्त्रता को अपने प्रयत्नो से प्राप्त करना है। इसके लिये जो साधन बताये गये वे इस प्रकार थे :—स्वदेशी का प्रयोग किया जावे, विदेशी वस्तुओ का पूर्ण रूप से बहिष्कार किया जावे, निष्क्रिय विरोध किया जावे और सरकारी नौकरियो का बहिष्कार किया जावे। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, अश्विनी कुमार दत्त और भूपेन्द्र नाथ बसु जैसे नरमदली नेताओ के कार्यक्रम मे नये दल के कार्यक्रम की अन्तिम बात नही थी। नये दल ने सरकारी नौकरियो के बहिष्कार के लिये ही प्रचार नही किया वरन् सरकार से स्वतन्त्र किन्तु समानान्तर जन शासन व्यवस्था बनाने के लिये भी कहा।

इस राष्ट्रीय दल को अपने जीवन के पहले दो वर्षो मे काफी सफलता मिली किन्तु बाद मे सरकारी दमन नीति के कारण इस दल के लिये काम करना अत्यन्त कठिन हो गया। साथ ही क्रान्तिकारी दल के अस्तित्व मे आने के कारण भी यह राष्ट्रीय दल पृष्ठभूमि मे पड़ गया।

४

राष्ट्रीय दल के प्रचार के साथ ही साथ, क्रान्तिकारी दल का भी अत्यन्त उग्र और उत्तेजक प्रचार हो रहा था। इस दल के नेता थे बारीन्द्र कुमार घोष और भूपेन्द्र नाथ दत्त। बारीन्द्र घोष, अरविन्द घोष के छोटे भाई थे और भूपेन्द्र दत्त, स्वामी विवेकानन्द के छोटे और अकेले भाई थे। इस दल का प्रचार 'युगान्तर' और 'सध्या' द्वारा होता था। जैसा कि सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी और राय नरेन्द्रनाथ सेन जैसे नरम दली नेताओ ने कहा इस आतकवाद और क्रातिवादी के लिये सरकार की दमनकारी एव प्रतिक्रियावादी नीति उत्तरदायी थी। इस नीति ने विशेषकर अप्रैल १९०६ मे बारीसाल सम्मेलन को बलात भग करने की घटना ने दोनो प्रातों के तरुण वर्ग के भावुक हृदयो को आतकवाद और क्रान्ति के मार्ग पर ढकेल दिया था।

बारीन्द्र घोष ने आरभ मे सन् १९०२ मे एक राजनीतिक प्रचारक की तरह

१. Chirol : Indian Unrest, pages 13-14

स्वतन्त्रता के आदर्श को फैलाने का प्रयत्न किया था। सन् १९०५ मे वे बगाल लौट कर आये और उस समय तक उन्हे यह दृढ विश्वास हो गया था कि देश मे विशुद्ध राजनीतिक प्रचार का कोई प्रभाव नही होगा और सकटो का सामना करने के लिए लोगों को आध्यात्मिक शिक्षण द्वारा ही समर्थ बनाया जा सकता है। उन्होने 'युगान्तर' नामक पत्र चलाया और उसके द्वारा सर्वसाधारण मे राजनीतिक एव धार्मिक प्रचार किया। उन्होने इसी उद्देश्य के लिए १४-१५ नवयुवक कार्यकर्त्ताओ को तैयार किया। "हमारी दृष्टि सुदूर भविष्य मे क्राति पर जमी हुई है और हम उसके लिए तैयार होना चाहते है ..."।[1]

बारीन्द्र घोष ने एक निबन्ध लिखा जिसके शीर्षक का भाव था 'भारत मे गीता के युग का पुनरागमन'। इस लेख द्वारा उन्होने अपने क्रातिकारी विचारो को समझाया। "श्रीकृष्ण ने गीता मे कहा था कि जब धर्म का पतन और अधर्म का उत्थान होगा, तब धर्म की सस्थापना के लिए और अधर्म के विनाश के लिए ईश्वरावतार होगा"। "वर्तमान परिस्थितियो मे धर्म का ह्रास और अधर्म का अभ्युदय दृष्टिगोचर हो रहा है। मुट्ठी भर विदेशी लुटेरे करोडो भारतवासियो को बरबाद कर रहे है और भारत की सपत्ति को लूट रहे है। इस दासता के चक्र मे अनगिनती लोगो की पसलिया चूर चूर हो गई है ... भारतवासियो, डरो नही ! ईश्वर निष्क्रिय नही रहेगा। वह अपने जगत का पालन करेगा। ईश्वर के शब्दो मे दृढ विश्वास रख कर ईश्वरीय शक्ति का आवाहन करो हृदय मे दिव्य ज्योति आने पर मनुष्य असम्भव कार्य भी कर सकते है।"[2]

उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कार्यक्रम मे ६ बाते बताई गई। पहली बात तो यह थी कि पत्रो की सहायता से प्रबल प्रचार द्वारा शिक्षित लोगो के मस्तिष्क मे दासता के प्रति घृणा जाग्रत कर दी जावे। दूसरी बात यह थी कि लोगो के मस्तिष्क से बेकारी और भूख का डर दूर कर दिया जावे और उनमे मातृभूमि और स्वतन्त्रता का प्रेम भर दिया जावे। इसके लिए सगीत और नाट्यकला को साधन बनाया गया। राष्ट्रीय वीरो और शहीदो के जीवन चरित्र का अभिनय द्वारा चित्रण करने के लिए कहा गया और साथ ही देश-भक्ति से ओत-प्रोत गानो को हृदयस्पर्शी संगीत द्वारा लोगो तक पहुचाने के लिए कहा गया।[3] तीसरी बात यह थी कि शत्रु की प्रदर्शनो और आन्दोलन—बन्देमातरम् जलूस, स्वदेशी सम्मेलन, बहिष्कार

---

१. सन् १९०८ को २२ मई को एक मजिस्ट्रेट के सामने बारीन्द्र घोष का वक्तव्य —Sedition Committee Report, 1918, page 20.

२. Chirol : Indian Unrest, pages 90 and 91.

३. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ९३।

सभा आदि--में व्यस्त रखा जावे। चौथी और अत्यन्त महत्वपूर्ण बात यह थी कि नवयुवकों की भर्ती की जावे, छोटे-छोटे जत्थों में उनका संगठन किया जावे, उन्हें शारीरिक व्यायाम, शस्त्रोपयोग और शक्ति-उपासना की शिक्षा दी जावे, उन्हें क्रांतिकारी साहित्य पढाया जावे, और उन्हें अनुशासन, आज्ञापालन और दल के भेद को गुप्त रखना सिखाया जावे। पांचवी बात शस्त्र प्राप्त करने के संबंध में थी--बम बनाये जावें, बन्दूकों और अन्य शस्त्रों की चोरी की जावे, विदेशों से शस्त्रों को क्रय करके भारत में गुप्त रूप से लाया जावे। अन्तिम बात धन के संबंध में थी--चन्दे तथा दान द्वारा और साथ ही क्रांतिकारी डकैतियों द्वारा इसकी व्यवस्था होनी थी। "अंग्रेजों की विधि पाशविक बल पर स्थित है और यदि हम अपने आपको स्वतंत्र करने के लिए पाशविक बल का प्रयोग करते हैं तो वह उचित ही है।"[1] बंगाल के नवयुवकों को इस बात का प्रोत्साहन दिया गया कि वे जगें, उठें और विदेशी राज्य का अन्त करें--"क्या शक्ति का बंगाली उपासक रक्त बहाने में संकोच करेगा? इस देश में अंग्रेजों की संख्या डेढ लाख से अधिक नहीं है और प्रत्येक जिले में अंग्रेजों की संख्या कितनी है? दृढ संकल्प होने पर ब्रिटिश राज्य का एक दिन में अन्त किया जा सकता है। प्राणों की बलि देने से पहले शत्रु के प्राण ले लो। स्वतंत्रता की वेदी पर शत्रु का रक्त बहाने के बाद अपने प्राणों की बलि देने पर ही देवी की उपासना पूर्ण होगी।"

बारीद्र घोष, भूपेन्द्रनाथ दत्त और उनके सहयोगियों के काम का परिणाम यह हुआ कि कितनी ही गुप्त और क्रांतिकारी संस्थाएं स्थापित हो गईं। "बारीन्द्र घोष और उनके साथियों ने 'अनुशीलन समिति' नाम की एक संस्था बनाई। कुछ ही समय में एक संस्था बंगाल की राजधानी कलकत्ता में और दूसरी संस्था पूर्वी बंगाल की राजधानी ढाका में काम करने लगी। एक समय पर तो ढाका संस्था की ५०० शाखाएं थीं।"[2]

ये संस्थाएं रूस और इटली की गुप्त संस्थाओं के नमूने पर बनाई गई थीं और इनके कार्यक्रम में आतंकवाद के कामों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। सन् १९०७ के बाद बंगाल के क्रांतिकारियों ने बहुत से आतंकपूर्ण अपराध किए। संभवतः इन लोगों का सबसे पहला काम ६ दिसम्बर १९०७ को मिदनापुर के पास बम द्वारा उप-गवर्नर की रेलगाडी उडाने का प्रयत्न था। २३ दिसम्बर १९०७ को फरीदपुर जिले में एक रेलवे स्टेशन पर ढाका के भूतपूर्व जिला मजिस्ट्रेट मि ऐलेन की पीठ में गोली मारी गई किंतु वह घातक सिद्ध नहीं हुई।

---

१ Chirol Indian Unrest, page 94.

२. Sedition Committee Report, 1918, pages 21 and 22.

बगाल मे क्रातिकारी अपराधो का इतिहास, उपर्युक्त दोनो घटनाओ से आरम्भ होता है। किन्तु आन्दोलन के आरभिक दिनो मे ही एक और घटना हुई और उसके फलस्वरूप इगलड और भारत मे बडा उद्वेग हुआ। क्रातिकारी दल ने, मुज़फ्फरपुर (बिहार) के जज मि किग्सफोर्ड की हत्या करने का काम, खुदीराम बोस और प्रफुल्ल चाकी नामक अपने दो सदस्यो को सौंपा था। बिहार आने से पहले मि किग्सफोर्ड कलकत्ते के मुख्य प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट थे और उन्होने स्वदेशी आन्दोलन के कार्यकर्त्ताओ को कठोर दण्ड दिये थे। उन्होने कई प्रतिष्ठित घरानो के नवयुवको को शारीरिक दण्ड दिया था।[1] और इसके कारण वे अत्यन्त अप्रिय हो गये थे। क्रातिकारी दल ने उनकी हत्या करने का निश्चय किया। पहले तो उन्होने एक बडे विलक्षण उपाय से काम लिया। उन्होने मि किग्सफोर्ड से मागी किसी पुस्तक को हथिया लिया। तदुपरान्त उन लोगो ने पुस्तक के पृष्ठो को बीच मे से काट लिया और रिक्त स्थान मे एक बम रख दिया और उसमे एक स्प्रिग लगा दी ताकि पुस्तक खोलने पर बम का विस्फोट हो जावे। पुस्तक को पार्सल से मि किग्सफोर्ड के पास भेज दिया गया किन्तु तुरन्त आवश्यकता न होने के कारण उन्होने उस पार्सल को नही खोला। कुछ महीने बाद किसी क्रातिकारी से यह भेद प्रकट हो गया। इस उपाय के असफल हो जाने पर खुदी राम बोस ओर प्रफुल्ल चाकी को हत्या के लिए नियुक्त किया गया और वे बम लेकर मुजफ्फरपुर गये। मि किग्सफोर्ड के बगले की ओर से एक गाडी आ रही थी और इन लोगो ने यह समझकर कि उसमे अत्यन्त अप्रिय मि किग्सफोर्ड होंगे, उस बम को गाडी पर फेंक दिया। किन्तु उस गाडी मे मिसेज कैनेडी और मिस कैनेडी नामक दो अग्रेज़ महिलाये थी और उस बम के कारण उनकी मृत्यु हो गई। सन् १९०८ की ३० अप्रैल को यह दुर्भाग्यपूर्ण घटना हुई। दो दिन बाद अपराधी पकडे गये--प्रफुल्ल चाकी ने तुरन्त गोली मार कर आत्महत्या कर ली। खुदीराम बोस पर मुकदमा चलाया गया। उसने हत्या का आक्षेप स्वीकार किया और उसको फाँसी दी गई। सर वैलेण्टाइन शिरोल लिखते है —"इस प्रकार वह बगाल के राष्ट्रवादियो के लिये राष्ट्रीय वीर और शहीद हो गया। विद्यार्थियो और अन्य व्यक्तियो ने उसके लिये शोक की पोशाक पहनी, दो तीन दिन के लिये स्कूल बन्द कर दिये गये और उसकी स्मृति मे श्रद्धाजलिया

---

१. सुशील सेन नामक १५ वर्षीय विद्यार्थी को बेत से मारा गया। इस घटना से देश मे बडा रोष उत्पन्न हुआ। Bannerjee · A Nation in Making, page 248. इसके अतिरिक्त देखिये P. C. Roy Life and Times of C. R. Das, page 51.

अर्पित की गई । बहुत से लोगो ने उसके चित्र खरीदे और बहुत से लोगों ने ऐसी धोतिया पहनी जिनके किनारे पर खुदीराम बोस का नाम बुना हुआ था।"[१]

मुज़फ्फरपुर की घटना के दो दिन ही बाद कलकत्ते मे एक बहुत बडे क्रान्तिकारी षड्यन्त्र का पता लगा। २ मई को कुछ बम, डाइनेमाइट और कारतूस पकडे गये। इनके अतिरिक्त कुछ पत्र-व्यवहार भी पुलिस के हाथो मे आया। इसके फलस्वरूप ३९ व्यक्ति पकडे गये और उन पर अभियोग चलाया गया। इन व्यक्तियो में अरविन्द घोष, बारीन्द्र घोष, हेमचन्द्र दास और नरेन्द्र गोसाई भी थे। नरेन्द्र गोसाई मुखबिर बन गया। इस विश्वासघात पर उसको जेल मे कनाई लाल दत्त और सत्येन्द्रनाथ बोस ने चोरी से प्राप्त किए शस्त्रो द्वारा गोली से मार दिया। इन दोनो व्यक्तियो पर पृथक अभियोग चलाया गया और उन्हे दण्ड दिया गया।[२] अन्य ३६ व्यक्तियो पर सम्राट के विरुद्ध युद्ध आरम्भ करने के लिये षड्यन्त्र का आक्षेप लगाया गया। १३ अप्रैल १९०९ को यह मुकदमा समाप्त हुआ और उसमे अरविन्द घोष और कुछ अन्य व्यक्तियो को छोड दिया गया। अन्य अपराधियो को कठोर दण्ड दिया गया। इन लोगो ने उच्च न्यायालय मे अपील की और उस न्यायालय ने इस अलीपुर षड्यन्त्र केस नामक अभियोग का १२ फरवरी १९१० को अन्तिम निर्णय दिया। चार अभियुक्तो को आजीवन देश-निर्वासन का दड मिला। अन्य अभियुक्तो को कठोर कारावास दण्ड दिया गया––तीन को १० वर्ष के लिये, सात को ७ वर्ष के लिये और तीन को ५ वर्ष के लिये।

मुज़फ्फरपुर और अलीपुर की घटनाओ से सम्बन्धित अन्य हत्याये हुई। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है, विश्वासघाती नरेन्द्र गोसाई को सितम्बर १९०८ मे गोली से मार दिया गया। दो महीने बाद नन्दलाल नामक पुलिस के दारोगा की हत्या कर दी गई। इस दारोगा ने खुदीराम बोस को गिरफ्तार किया था। १० फर्वरी १९०९ को अलीपुर षड्यन्त्र अभियोग और गोसाई हत्या अभियोग के सरकारी वकील आशुतोष विश्वास को कलकत्ते मे एक कचहरी से बाहर आने के समय गोली से मार दिया गया। तदुपरान्त २४ जनवरी १९१० को पुलिस के

---

१. Chirol . Indian Unrest, page 97.

२ खुदीराम बोस की तरह कनाई लाल भी अत्यन्त लोकप्रिय हो गया। जिस समय कनाई लाल और उसके साथी की अर्थिया जेल से श्मशान को जा रही थी, उस समय कालीघाट की सडको पर उनकी चरण रज लेने के लिये ५०००० व्यक्ति एकत्रित थे। P. C. Roy : Life and Times of C. R. Das. पृष्ठ ७२ से अनुवादित

डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट मि. शमसुल आलम को गोली से मार दिया गया। यह पुलिस अधिकारी अलीपुर अभियोग के सम्बन्ध मे हाईकोर्ट मे उपस्थित हुआ था।

क्रान्तिकारी दल मे अनुशासन बनाये रखने के लिये बडी कठोरता से काम लिया जाता था। किसी पर विश्वासघात का सन्देह होने पर उसे बडी निष्ठुरता से दण्ड दिया जाता था। नवम्बर १९०८ मे तीन विश्वासघातियो को गोली से मार दिया गया। क्रातिकारी दल, पुलिस अधिकारियो को, अभियोग निर्णय करने वाले मजिस्ट्रेटो को, सरकारी वकीलो को और सरकारी गवाहो को आतकित करने के लिये बडी दृढता और निर्भयता से काम लेता था। कितनी ही हत्याये और डकैतियाँ हुई। दमनकारी कानून, कठोर दण्ड, अथवा १९०९ और बाद मे १९१९ के सुधार भी इन लोगो को उनके निश्चित मार्ग से विचलित नही कर सके। सन् १९०८ और १९०९ के विचाराधीन युग मे हत्याओ और डकैतियो की सख्या बढती ही गई।[1] सन् १९०८ मे ७ नवम्बर को बगाल के उप-गवर्नर सर एण्ड्रिऊ फ्रेजर की हत्या करने का प्रयत्न किया गया किन्तु सफलता नही मिली। गोली मारने वाला पकडा गया, उस पर अभियोग चला और उसे १० वर्ष के लिये कठोर कारावास दड दिया गया।

५

सन् १९०६ से १९१० तक के वर्षो मे क्रातिकारी केवल बगाल मे ही सक्रिय नही थे वरन् वे भारत के अन्य प्रान्तो मे और विदेशो मे भी काम कर रहे थे। जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है क्रान्तिकारी आन्दोलन का जन्म महाराष्ट्र मे हुआ था और उसके फलस्वरूप मि० रैण्ड और लेफ्टिनेण्ट ऐयर्स्ट की हत्याये हुई थी। इनके अतिरिक्त दामोदर चपेकर की गिरफ्तारी और दोष-सिद्धि के लिये सूचना देने वाले दो भाइयो की भी हत्या की गई थी। सन् १८९९ के बाद दक्षिण मे पकटत पूर्ण शान्ति थी किन्तु क्रान्तिकारी काम को फिर आरम्भ करने के लिये महाराष्ट्र और लन्दन मे गुप्त रूप से तयारिया हो रही थी। इस आन्दोलन के नेता थे श्यामजी कृष्ण वर्मा और सावरकर बन्धु—गणेश और विनायक सावरकर।

ऐसा प्रतीत होता है कि श्यामजी कृष्ण वर्मा रैण्ड हत्या से किसी प्रकार सबधित थे और वे चुपचाप इगलैंड खिसक आये। सन् १९०५ तक तो वे छिपे हुए से रहे किन्तु उस वर्ष की जनवरी मे उन्होने लन्दन मे इडियन होम रूल सोसाइटी चलाई और एक पेस का इडियन सोशियोलोजिस्ट नामक मासिक पत्र निकाला। मिस्टर एस. आर राना नामक एक सज्जन पेरिस मे बस गये थे। उनके सहयोग से श्यामजी

१. विस्तृत वर्णन के लिये पढिये, Sedition Committee Report, 1918.

वर्मा ने ६ अध्यापक वृत्तियों और ३ छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की। प्रत्येक अध्यापक वृत्ति के लिये १००० रुपये और प्रत्येक छात्रवृत्ति के लिये २००० रुपये दिये जाने थे। इनका उद्देश्य यह था कि भारतीय नवयुवक विदेशों में शिक्षित होकर अपने आप को राष्ट्रीय कार्य के लिये तैयार करें। इस छात्रवृत्ति के द्वारा फर्गुसन कॉलेज पूना का विनायक दामोदर सावरकर नामक एक विद्यार्थी लन्दन पहुचा। यह विद्यार्थी बम्बई विश्वविद्यालय का स्नातक था। विनायक का गणेश नामक एक बडा भाई था। ये दोनों 'मित्र मेला' नामक एक समिति के नेता थे। इस समिति को १८९९ में गणपति उत्सव के सम्बन्ध में स्थापित किया गया था। जून १९०६ में विनायक सावरकर के लन्दन जाने के कुछ ही समय पहले यह समिति 'अभिनव भारत समिति' नामक एक क्रान्तिकारी सस्था में परिणत हो गई।

जिस समय विनायक सावरकर लन्दन पहुँचा, उस समय श्याम जी कृष्ण वर्मा इडिया हाउस में प्रबल क्रान्तिकारी प्रचार कर रहे थे। इडिया हाउस, इण्डियन होम रूल सोसाइटी का कार्यालय था। किन्तु इण्डिया हाउस के उनके कामों के सम्बन्ध में पार्लियामेण्ट में प्रश्न किये जाने पर वे १९०७ में पैरिस चले गये। वहाँ जाने के बाद भी उन्होंने समिति के कार्य से अपना सम्पर्क सजीव रखा और मि० राना और इण्डियन सोशियालिजिस्ट द्वारा उसका निर्देशन करते रहे। दिसम्बर १९०७ में उन्होंने अपने पत्र में लिखा —"ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में किसी आन्दोलन को गुप्त रूप से ही चलाया जा सकता है। अगरेज सरकार को होश में लाने के लिये रूसी उपाय ही एकमात्र उपाय है। जब तक अग्रेजों का अत्याचार समाप्त न हो जावे और वे देश से भाग न जावें तब तक उन उपायों को निम्नतर दृढतापूर्वक काम में लाना चाहिये।"[1]

लन्दन आने के बाद ही विनायक सावरकर ने इडिया हाउस के कामों में सक्रिय भाग लेना आरम्भ कर दिया। उसने सबसे पहले मेजिनी के स्वलिखित जीवन चरित्र का मराठी में अनुवाद किया और उसे अपने भाई गणेश के पास भेज दिया। यह अनुवाद पूना में छपा और जनता को प्रस्तुत किया गया। इस अनुवाद के पश्चात् विनायक सावरकर ने "The Indian War of Independence, 1857 (सन् १८५७ का भारतीय स्वतन्त्रता सग्राम) नामक पुस्तक लिखी। इडिया हाउस के लिये यह क्रातिकारी पाठ्य-पुस्तक थी। प्रत्येक रविवार को समिति की सभा में उक्त पुस्तक के उद्धरण पढे जाते थे और राजनीतिक हत्याओं की नीति का क्रम-बद्ध प्रतिपादन किया जाता था। मई १९०८ में इडिया हाउस में विद्रोह दिवस मनाया गया।

१ Sedition Committee Report, page 6.

इस अवसर पर श्यामजी कृष्ण वर्मा ने दो सन्देश पत्र भेजे । एक सन्देश के शीर्षक मे शहीदो को सबोधित किया गया था और दूसरे सन्देश मे गम्भीर चेतावनी दी गई थी । इन सदेशो को विद्रोह दिवस की सभा मे पढा गया और आगन्तुको मे उनका वितरण किया गया और उनसे इन सदेश पत्रो को पृथक रूप से भारत भेजने की प्रार्थना की गई । जून १९०८ मे इडिया हाउस मे एक व्याख्यान दिया गया । इस व्याख्यान मे बम के प्रयोग को न्याय्य ठहराया गया और उन्हे बनाने की प्रक्रिया बताई गई । लगभग इसी समय इडिया हाउस के सदस्य रिवालवर से निशाना लगाने का अभ्यास भी करने लगे ।

धीरे-धीरे इडिया हाउस के सदस्य विनायक सावरकर के नेतृत्व को मानने लगे । सावरकर ने भारत मे क्रातिकारी काम की तैयारियो को भी आगे बढाया । फर्वरी १९०९ मे उसने २० नवीनतम प्रकार की पिस्तौलो का पार्सल बम्बई भेजा । इस पार्सल के साथ पिस्तौलो के कारतूस भी थे । इन चीजो को एक बक्स के झूठे तले के नीचे छिपा दिया गया था और इस बक्स का इडिया हाउस के एक चतुर्भुज अमीन नामक रसोइये के सामान के साथ पार्सल किया गया था ।"[1] ये पिस्तौले अभिनव भारत समिति के सदस्यो के काम मे आनी थी । यह समिति विनायक के बडे भाई गणेश के नेतृत्व मे काम कर रही थी । किन्तु पार्सल के भारत पहुचने से पहले ही गणेश सावरकर को २ मार्च १९०९ को सम्राट के विरुद्ध युद्ध छेडने के अपराध मे गिरफ्तार कर लिया गया । पार्सल एक मित्र के नाम था जिसे पहले ही फोड लिया गया था ।

गणेश सावरकर के विरुद्ध यह आक्षेप था कि उन्होने लघु अभिनव भारत मेला नामक शीर्षक के अन्तर्गत १९०८ के आरम्भ मे भडकाने वाली कविताओ का एक सकलन प्रकाशित किया था । अभियोग का अन्तिम निर्णय बम्बई के उच्च न्यायालय ने किया । उसके जज के शब्दो मे इस सकलन से इस बात का प्रचार होता था कि, "तलवार हाथ मे लो और सरकार को मिटा दो क्योकि वह विदेशी और अत्याचारणी है ।"[2] ९ जून १९०९ को गणेश सावरकर को आजीवन देश-निर्वासन का दड मिला । विनायक को समुद्री तार द्वारा दड की सूचना दी गई । रविवार, २० जून को समिति की बैठक मे विनायक विशेष रूप से उग्र था और उसने अग्रेजो से बदला लेने की अपनी शपथ को दोहराया ।[3]

बगाल सबधी समाचारो ने भी इडिया हाउस के सदस्यो को उत्तेजित किया ।

---

१ Sedition Committee Report, page 9.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ९

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ९

एक सदस्य मदनलाल धीगरा ने भारतीय नवयुवको को फाँसी देने और निर्वासित करने के विरोध मे अग्रेजो का रक्त बहाने का निर्णय किया।[1] उसने १ जुलाई १९०९ को भारत मत्री के कार्यालय के ए डी सी सर फ्रैसिस कर्जन वाइली को लन्दन मे इम्पीरियल इस्टीट्यूट[2] के सम्मेलन के अवसर पर गोली से मार दिया। धीगरा पकडा गया और उसे प्राण दण्ड दिया गया। इडिया हाउस का सगठन समाप्त हो गया। विनायक सावरकर को गिरफ्तार करके बम्बई[3] भेजा गया क्योकि कुछ भीषण आक्षेपो के सबध मे बम्बई सरकार उस पर अभियोग चलाना चाहती थी। बाद मे अभियोग निर्णय के अनुसार उसे आजीवन कारावास का दण्ड दिया गया।

सर वैलेण्टाइन शिरोल के अनुसार विनायक ने अभिनव भारत समिति के सदस्यो को नासिक के जिला मजिस्ट्रेट मि जैकसन की हत्या करने के लिये भडकाया। जो भी हो उन सदस्यो ने गणेश सावरकर पर अभियोग चलाने वाले जैकसन से बदला लेने का निश्चय किया और २१ दिसम्बर १९०९ को औरगाबाद के एक ब्राह्मण नवयुवक ने मि जैकसन को पिस्तौल से मार दिया। यह पिस्तौल लन्दन से विनायक द्वारा भेजी हुई पिस्तौलो मे से एक थी। मि जैकसन की हत्या के सिलसिले मे सात व्यक्तियो पर अभियोग चलाया गया। ये सब चितपावन ब्राह्मण थे। इनमे से तीन को प्राणदड दिया गया।[4]

जैकसन हत्या सम्बन्धी जाच मे, नासिक षडयत्र अभियोग नामक मामले का पता लगा। इसमे ३८ अभियुक्त थे, उनमे से २७ को विभिन्न अवधिओ के लिये कारावास दड दिया गया। इस षड्यत्र का दायित्व नासिक की अभिनव भारत समिति पर था। इस समिति का सगठन रूसी क्रातिकारी समितियो के नमूने पर किया गया था। सदस्यो को पश्चिमी भारत के विभिन्न भागो मे छोटे-छोटे समुदायो मे बाट दिया गया था। प्रत्येक समुदाय के सदस्य साथ मिलकर काम करते थे और वे परस्पर गुप्त शपथ से बन्धे हुए थे। यद्यपि सभी समुदायो का उद्देश्य एक ही था और उन्हे

१. Sedition Committee Report, page 9, गिरफ्तारी के समय धीगरा की जेब से इस आशय का एक वक्तव्य पाया गया।

२ इस अवसर पर डा लल्काका की भी मृत्यु हुई।

३ मार्ग मे वह जहाज मे से छिप कर निकल गया और फ्रास मे मार्सेलीज अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अन्तर्गत उसने सुरक्षा की माग की किन्तु वह फिर कैद कर लिया गया।

४ Sedition Committee Report, page 10

शस्त्र भी एक ही स्थान से प्राप्त होते थे तथापि एक समुदाय के सदस्य दूसरे समुदाय के सदस्यो से बिल्कुल अपरिचित थे। गणेश सावरकर के हाथो मे उनका नेतृत्व था और विनायक सावरकर उनका मित्र, प्रेरक और निर्देशक था। वह लन्दन से, टाइप्की हुई प्रतिया बम बनाने के लिये हिदायते देता था और उनके लिये क्रातिकारी साहित्य भेजता था। वह विदेशो से शस्त्र भेजता था और उन्हे आतकपूर्ण कामो के लिये प्रेरित करता था।

निकट के देशी राज्यो मे भी अभिनव भारत समिति की उप शाखाए थी। ग्वालियर मे एक नव भारत समिति थी। इसके २२ सदस्यो पर सम्राट् के विरुद्ध युद्ध सगठित करने के अपराध मे अभियोग चलाया गया। ग्वालियर षड्यत्र केस के इन अभियुक्तो को विभिन्न अवधियो के लिये कारावास दड दिया गया।

अभिनव समिति की एक शाखा १९०७ से सतारा मे काम कर रही थी। सन् १९१० मे उसके तीन सदस्यो पर सम्राट् के विरुद्ध षडयत्र का परिचित आक्षेप लगाया गया। सतारा षडयत्र केस के सभी अभियुक्तो का अपराध सिद्ध हुआ और उन्हे कारावास दड दिया गया।

क्रातिकारी आन्दोलन, पश्चिमी भारत के विभिन्न भागो मे फैल गया था। क्रातिकारियो के प्रभाव से गुजरात भी नही बचा था। नवम्बर १९०९ मे अहमदाबाद मे लॉर्ड और लेडी मिटो जिस गाडी मे शहर मे घूम रहे थे, उसे उडाने का प्रयत्न किया गया। दो नारियल बम फेके गये पर वे फटे नही। बाद मे उनमे से एक बम को कौतूहलवश एक पथिक ने उठाया और विस्फोट के कारण उसका एक हाथ उड गया।

९

सन् १९०६ से १९१० तक के वर्षो मे दक्षिण के क्रातिकारियो का काम उपर्युक्त ढग से चल रहा था। मद्रास प्रान्त भी सक्रिय था। अप्रैल १९०७ मे बिपिन चन्द्र पाल ने व्याख्यान देने के उद्देश्य से मद्रास का परिभ्रमण किया था और स्वराज्य के आदर्श को प्रस्तुत करके नवयुवको के मस्तिष्क को उद्वेलित कर दिया था। अरविन्द घोष के विरुद्ध राजद्रोह अभियोग मे गवाही न देने के अपराध मे बिपिन चन्द्र को अक्तूबर १९०७ मे छ महीने का कारावास दड दिया गया। मि पाल के दो मद्रासी प्रशसको ने १९०८ की ९ मार्च को उनके छूटने की प्रसन्नता मे एक सभा की। उस सार्वजनिक सभा मे स्वराज्य का झडा फहराया गया और प्रत्येक विदेशी वस्तु के बहिष्कार करने की प्रतिज्ञा की गयी। इन दोनो प्रशसको—सुब्रह्मण्यम् शिव और चिदम्बरम पिलाई—को १२ मार्च को गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिन टिनेवली मे भीषण उपद्रव हुआ। सरकारी सत्ता की अवहेलना की गई और सरकारी सम्पत्ति को जानबूझ कर नष्ट किया गया। उस नगर मे सब-रजिस्ट्रार

के कार्यालय के अतिरिक्त सब पुलिस चौकियो और थानो पर आक्रमण किया गया। इन इमारतो के सारे सामान को—मेजो, कुर्सियो और अभिलेखो को—जला दिया गया। नगरपालिका कार्यालय को नष्ट कर दिया गया। इस उपद्रव मे भाग लेनेके सम्बन्ध मे २७ व्यक्तियो के अपराध सिद्ध हुए और उन्हे दड दिया गया।"[१]

पत्र सम्पादको और लोकप्रिय वक्ताओ पर अभियोग चलाये गये। सत्ता का केन्द्र पाडेचरी मे बनाया गया और एक नवयुवक समुदाय ने क्रातिकारी काम के लिये सगठन करना आरम्भ किया। इस काम के लिये प्रोत्साहन और निदर्शन एम पी तिरूमल आचार्य और वी वो एस ऐयर से मिला। तिरूमल आचार्य भारतीय क्रातिकारियो के पेरिस समुदाय और लन्दन के इडिया हाउस, दोनो से सम्बन्धित था और ऐयर लन्दन मे विनायक सावरकर के साथ और बाद मे पेरिस समुदाय के साथ रह चुका था। मि ऐयर ने पाडेचरी पहुंच कर एकत्रित नवयुवको को क्रातिकारी काम के लिये तैयार करना आरम्भ किया और उन्हे पिस्तौल से निशाना लगाने की शिक्षा दी। इन अभ्यास करने वालो मे वाची ऐयर नामक एक नवयुवक था जिसने बाद मे १७ जून १९११ को टिनेवली के जिला मजिस्ट्रेट मि ऐश को गोली से मारा। उस पर अभियोग चला और उसे प्राण दड दिया गया। उसके साथियो को भी पकडा गया और एक षड्यत्र का रहस्योद्घाटन हुआ। टिनेवली षड्यत्र अभियोग मे ९ व्यक्तियो का अपराध सिद्ध हुआ और उन्हे विभिन्न अवधिओ के लिये कारावास दड दिया गया।

इसी अध्याय मे लन्दन और पेरिस मे भारतीय क्रातिकारियो के काम की चर्चा की जा चुकी है। इस विचाराधीन युग मे यूरोप महाद्वीप मे भारतीय क्रातिकारियो का एक पूरा समुदाय काम कर रहा था। इसके नेता थे श्याम जी कृष्ण वर्मा, एस आर राना और कामा दम्पति। ये लोग भारत के विद्यार्थियो और अन्य शिक्षित वर्गो मे प्रचार के लिये भारत के विभिन्न भागो मे गुप्त रूप से क्रातिकारी साहित्य भेजते थे। श्याम जी वर्मा के इडियन सोशियोलॉजिस्ट की चर्चा की जा चुकी है। उसके अतिरिक्त श्रीमती कामा वन्दे मातरम् नामक एक पत्र का सम्पादन करती थी। यह पत्र जिनेवा से प्रकाशित होता था और इसका काफी चलन था। क्रातिकारी प्रचार का विदेशो मे एक केन्द्र अमेरिका मे प्रशान्त महासागर के तट पर था। दो पृथक् सस्थाए थी—एक का नाम इडो-अमेरिकन एसोसियेशन था और दूसरी का नाम यग इडिया एसोसियेशन था। इनका मुख्य केन्द्र कैलिफोर्निया मे था और इनकी शाखाएँ शिकागो, न्यूयार्क और अमेरिका के अन्य महत्वपूर्ण नगरो मे थी। "इन

१. Sedition Committee Report, page 163.

सस्थाओ मे विद्यार्थी, विशेषकर बगाली विद्यार्थी मुख्य कार्यकर्त्ता थे। इनको आयरिश अमेरिकन फेनियन्स का सहयोग प्राप्त था। इन की विचारधारा से अमेरिका मे आकर बसने वाले अधिकाश भारतवासी प्रभावित हुए। ये वह लोग थे जिन्होने प्रशान्त तट पर एशिया विरोधी आन्दोलन मे कष्ट सहे थे। इन मे से कुछ लोग सिख ओर पुराने सिपाही थे। यह बात कम महत्व की नही थी क्योकि इन सैनिको द्वारा उन सैन्य दलो मे जिन मे पहले ये सैनिक काम करते थे, अब सीधा सम्पर्क स्थापित किया जा सकता था और कम से कम जिन वर्गो मे भारतीय सेना की भर्ती होती थी, उनको तो प्रभावित किया ही जा सकता था। तीन वर्ष पूर्व सिपाहियो मे जो पर्चे बाटे गये थे वे अमरीका मे ही छपे थे।"[1]

इडो अमेरिकन एसोसियेशन मुख्यत एक प्रचार समिति थी। इसके मुखपत्र का नाम 'फ्री हिदुस्तान' था और यह नियत समय पर प्रकाशित होता था। किंतु यग इडिया एसोसियेशन का आयर्लैंड की क्रातिकारी सस्थाओ के ढग पर सगठन किया गया था ओर उसका मुख्य काम विस्फोटको का अध्ययन करना और भारत को गुप्त रूप से शस्त्र भेजना था। सर वैलेण्टाइन शिरोल के अनुसार इन दोनो सस्थाओ का भारत के विभिन्न स्थानो--दक्षिण,बगाल और पजाब--की सस्थाओ से सम्बन्ध था ओर उनका राजद्रोहपूर्ण समाचार-पत्र और साहित्य, मुद्रित और प्रकाशित करने वालो से पत्र-व्यवहार होता रहता था।

७

सन् १९०७-८ मे पजाब का आन्दोलन वस्तुत क्रातिकारी नही था। जैसा कि पजाब के उप गवर्नर सर डेनिजल ने उस समय कहा, यह सब सच है कि १९०७ की गर्मियो मे वहा की स्थिति गम्भीर थी। सारे प्रान्त मे प्रबल असतोष था और उसके कारण लाहौर और रावलपिडी मे उपद्रव भी हुए। किंतु बगाल, महाराष्ट्र और मद्रास की तरह पजाब मे आतकवादी गुप्त समितिया नही थी।

राष्ट्रीय आन्दोलन ने पजाब के शिक्षित वर्ग को झकझोर दिया था। स्वामी दयानन्द की शिक्षा के फलस्वरूप हिंदू नवयुवको मे स्वतन्त्रता और स्वदेशी की भावना को पनपने मे सहायता मिली। भारतीय पत्र प्रबल प्रचार कर रहे थे और कुछ पत्र तो वैधानिक सीमाओ को भी पार कर गये थे। उनके सम्पादको और मुद्रको पर अभियोग चलाया गया और उनको दड दिया गया। आग्ल-भारतीय पत्र जातीय घृणा और द्वेष का प्रचार कर रहे थे किंतु उनके विरुद्ध कोई भी कार्यवाही नही की गयी। लाहौर का सिविल और मिलिटरी गजट इन पत्रो का अग्रणी था।

---

१. Chirol Indian Unrest, page 147.

२. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ १४७.

वह शिक्षित वर्ग के विरुद्ध क्रमपूर्ण लेख लिखता था और उन्हे तरह-तरह की गालिया देता था। उसने विद्रोह के सकट का हल्ला मचाया। उसमे यहा तक कहा गया कि विद्रोह की पचासवी वर्ष गाठ पर (१० मई १९०७ को) अग्रेजो के विरुद्ध नया व्युत्थान होगा। इस झूठे प्रचार पर विश्वास किया गया और पजाब के कई शहरो मे अग्रेजो की रक्षा के लिये प्रबन्ध किया गया और अग्रेज निवासियो को किलो मे रहने के लिये जगह दी गई। नेविन्सन ने लिखा है —"किंतु इस भविष्यवाणी के होते हुए भी कोई व्युत्थान नही हुआ।"[1]

किंतु सन् १९०७-८ मे पजाब की स्थिति बडी गम्भीर हुई और इसके कई कारण थे। एक ओर तो आग्ल-भारतीय पत्र भारत-विरोधी प्रचार बडे जोरो से कर रहे थे दूसरी ओर बगाल का राष्ट्रीय आन्दोलन उमड रहा था। इसी समय प्लेग और अकाल का दैवी कोप हुआ और सरकार ने विवेक-शून्य भूमि विषयक नीति अपना कर स्थिति को और भी बिगाड दिया। अप्रैल १९०७ मे 'इडिया' और 'पजाबी' नामक दो भारतीय पत्रो पर अभियोग चलाया गया। 'इडिया' के मालिक और सम्पादक को पाच वर्ष का कारावास दड दिया गया और मुद्रक को एक राजद्रोह-पूर्ण पत्र छापने के अपराध मे दो वर्ष का कारावास दिया गया। यह पत्र अमरीका से आया था और इसमे भारतीय सेना को भडकाया गया था।[2] 'पजाबी' ने एक बेगार के मामले मे सम्पादकीय आलोचना की थी। एक सरकारी अधिकारी ने दो गाव वालो से बलात् काम कराया था और बेगार के कारण उन दोनो की मृत्यु हो गई थी। अपील पर निर्णय के अनुसार 'पजाबी' के मालिक को ६ महीने का कारावास दड दिया गया और उसपर १००० रुपया जुर्माना किया गया और सम्पादक को छः महीने का कारावास दड दिया गया और उसपर २०० रुपया जुर्माना किया गया। इस अभियोग का अन्तिम निर्णय लाहौर हाई कोट ने १६ अप्रैल १९०७ को सुनाया। पता लगने पर बडी भीड एकत्रित हुई और वह जेल जाते हुए बन्दियो से मिली। उत्साह और उद्वेग के कारण अन्त मे एक उपद्रव हो गया।

आरम्भ मे पजाब के झगडे भूमि विषयक थे।[3] लॉर्ड मिण्टो के जीवन लेखक ने इस बात को स्वीकार किया है कि "नहर उपनिवेशोमे स्थानीय सरकार ने विवेक शून्य नीति अपनाई और इसी के कारण झगड़े हुए।"[4] मालगुज़ारी को

---

१. Nevinson : The New Spirit in India, page 20.

२ Nevinson : The New Spirit in India, page 18.

३ उपद्रव के कारणो के लिये देखिये—Lajpat Rai : Story of my Deportation, Appendix B.

४. Buchan : Lord Minto : page 256.

काफी बढा दिया गया; सभी उपनिवेशो मे, विशेषकर बारी दोआब क्षेत्र मे सिचाई की दर को बढा दिया गया, और सब से बडी बात यह थी कि चेनाब उपनिवेश मे फिर से प्राप्त की हुई भूमि के अधिकार के सम्बन्ध मे सरकार ने अपने वचनो का पालन नही किया। पजाब विधान परिषद् मे एक उपनिवेश विधेयक शीघ्रता से स्वीकार किया गया और उसके द्वारा १८९३ के एक्ट की शर्तो को बदल दिया गया। इन कार्यवाहियो का प्रबल विरोध हुआ। इस आन्दोलन के नेता मि अजीतसिह और सैयद हैदर रिज़ा थे। उन्होने आन्दोलन चलाने के लिये एक सस्था बनाई जिसका नाम इडियन पेट्रियट्स एसोसियेशन था। सारे प्रान्त मे, विशेष कर प्रभावित क्षेत्र मे सभाए की गयी। २२ मार्च १९०७ को लायलपुर मे एक सभा हुई। इसमे लाला लाजपतराय को बोलने के लिये आमन्त्रित किया गया था। उन्होने सरकारी कार्यवाहियो की आलोचना की और उन्हे बढते हुए असतोष के लिये उत्तरदायी ठहराया। इस सभा मे मि अजीत सिह ने भी व्याख्यान दिया। एक ही सभा मे दोनो नेताओ ने भाषण दिया। सभवत. इसी सयोग के कारण लाला लाजपतराय और मि अजीत सिह— दोनो ही सज्जनो को सन् १८१८ के पुराने और कुटिल विनियम के अन्तर्गत भारत से एक साथ निर्वासित कर दिया गया।

रावलपिडी ज़िले मे मालगुजारी मे विशेष रूप से वृद्धि की गई। अप्रैल १९०७ मे इस अत्यधिक मालगुजारी के विरोध मे दो सभाए की गयी। दूसरी सभा २१ अप्रैल को हुई और इसमे मि अजीतसिह प्रमुख वक्ता थे। जब मि अजीतसिह की भाषा वस्तुत उग्र हो गयी तो सभाध्यक्ष लाला हसराज ने उन्हे रोक दिया, परन्तु कुछ ही दिनो बाद सभाध्यक्ष को और साथ ही २१ अप्रैल की सभा से सम्बन्धित लाला अमोलक राम और लाला गुरदास राम नामक दो प्रतिष्ठित वकीलो को यह सरकारी सूचना दी गई कि भारतीय दड सहिता की न. १२४ ए और न. ५०५ धाराओ के अन्तर्गत उन पर अभियोग चलाया जावेगा और इन लोगो को २ मई को ११ बजे न्यायालय मे उपस्थित होने के लिये कहा गया। लाला लाजपतराय अपने वकील मित्रो की यथासभव सहायता करने के लिये रावलपिडी पहुँचे। इन सब के मतानुसार सूचनापत्र अवैध था और उन्होने न्यायालय मे उपस्थित न होने का निश्चय किया। परन्तु उन्होने मि. अज़ीज़ अहमद और मि. बोधराज नामक दो नये बैरिस्टरो को अपनी ओर से कार्यवाहियो में भाग लेने के लिये अधिकार दिया। २ मई को ज़िलाध्यक्ष के न्यायालय के सामने बड़ी भीड़ एकत्रित हो गई और हडताल करने वाले मजदूरो के कारण यह भीड और भी बढ गई। उस दिन सरकारी तोपखाने मे, रेलवे वर्कशाप मे और रायबहादुर सरदार बूटासिह के निजी कारखाने मे मजदूर लोग काम पर नही गये। जब ग्यारह बजने पर भी ज़िलाध्यक्ष नही आया तो

भीड मे बडी अशान्ति हुई। आखिर साढे बारह बजे जिलाध्यक्ष आया और उसने सार्वजनिक जाच को भविष्य के लिये —सभवत पजाब सरकार के आदेशानुसार स्थगित कर दिया। जब भीड को जाच स्थगित होने का पता लगा तो उसका रोष सीमा से बाहर हो गया और वह तितर बितर नही हुई वरन् उसने एक प्रमुख मार्ग पर अपना जलूस निकाला, एक चर्च और मिशन भवन को नष्ट किया और उसके सामान मे आग लगा दी, यूरोपियनो के कुछ मकानो और बागो को नष्ट किया और एक हिदू कारखाने को, जिस के मजदूर हडताल पर थे, क्षति पहुँचाई। पुलिस दिखाई नही दी परन्तु बाद मे सैनिको का पहरा बैठा दिया गया।[1]

इस उपद्रव के बदले मे उक्त तीन वकीलो के साथ तीन अन्य प्रमुख वकीलो को और ६० अन्य व्यक्तियो को गिरफ्तार किया गया। अभियोग का निर्णय होने तक इन वकीलो को गर्मी के महीनो मे बडी कष्टपूर्ण दशा मे जेल मे रखा गया। १ अक्तूबर को निर्णय सुनाया गया और सब वकीलो को छोड दिया गया। मजिस्ट्रेट के अनुसार गवाही झूठी और बनाई हुई थी। अन्य अभियुक्तो मे से पाच को दड दिया गया। इनमे से तीन को उपद्रव करने और आग लगाने के अपराध मे ७ वर्ष का कारावास दड दिया गया।

बाद मे पजाब की स्थिति मे सुधार हुआ। इसका मुख्य कारण यह था कि लॉर्ड मिण्टो ने उपनिवेश विधेयक को निषिद्ध कर दिया। वाइसरॉय के मतानुसार उक्त विधेयक न्याय्य नही था। इस सम्बन्ध मे उन्होने लॉर्ड मॉर्ले को लिखा —"जो बात गलत है उसको अस्वीकार करने का अर्थ आन्दोलन के सामने सिर झुकाना नही है और न उस से कोई दुर्बलता ही प्रदर्शित होती है। इस डर से कि कही दूसरे लोग दुर्बलता न समझे, किसी गलत नीति से चिपके रहना, स्वय दुर्बलता है।"[2] "अत लॉर्ड मिटो ने विधेयक को निषिद्ध कर दिया और इसके परिणाम अत्यन्त हितकर हुए।[3]

---

१. Nevinson . The New Spirit in India, page 19.
२. Nevinson : The New Spirit in India, page 19.
३. Buchan : Lord Minto, page 157.

## चौदहवाँ अध्याय

# दमन और सुधार

१

भारत की १९०५-६ की घटनाओ के कारण भारतीय शासन के दोनो नये अध्यक्ष चिन्तित हुए। नवम्बर १९०५ मे लॉर्ड कर्जन के स्थान पर लॉर्ड मिण्टो वाइसरॉय हो गये थे और दिसम्बर १९०५ मे प्रगतिवादी जॉन मॉर्ले भारत मन्त्री हो गये थे। ६ जून १९०६ को मि जॉन मॉर्ले (बाद मे लॉर्ड मॉर्ले) ने लार्ड मिटो को एक पत्र लिखा और उसमे उन्होने लॉरेंस, शिरोल, सिडनी लो जैसे प्रमुख लेखको के दृष्टिकोणो की ओर ध्यान आकर्षित किया। ये लोग हाल ही मे भारत मे प्रवास करके आये थे और इन्होने "वहा एक नई भावना को बढते हुए और फैलते हुए देखा था।" इन लोगो का यह मत था कि भविष्य मे यथा पूर्व ढग से भारत का शासन करना असभव है और सरकार को काग्रेस सस्था और काग्रेस सिद्धातो के साथ व्यवहार रखना होगा।"[१] इन्ही विचारो को भारतीय नरम दल के दूरदर्शी नेता, सन् १९०५ के काग्रेस अधिवेशन के सभापति और 'भारत सेवक समिति' के सस्थापक श्री गोपाल कृष्ण गोखले ने बडी कुशलता के साथ अत्यन्त प्रभावपूर्ण शब्दो मे व्यक्त किया था। मार्च १९०६ मे सम्राज्ञीय विधान परिषद मे बजट सम्बन्धी अपने व्याख्यान मे श्री गोखले ने लॉर्ड मिण्टो से एक सार्वजनिक अपील की। "शिक्षित वर्गो को शान्त करने की समस्या को मुलझाने मे ब्रिटिश राजनीतिज्ञता की परीक्षा होगी। उन्हे शान्त करने का केवल यही उपाय है कि उनको अपने देश के शासन मे अधिकाधिक साथ लिया जावे।[२] परिषद के अधिवेशन के बाद श्री गोखले इगलैड गये और भारत मन्त्री से कई बार मिले। ऐसा प्रतीत होता है कि मि मॉर्ले को श्री गोखले की सद्भावनाए प्राप्त हुई और कुछ सामान्य सुधारो के लिये उन्हे गोखले का समर्थन भी मिला।[3] भारत मत्री और वाइसरॉय मे परामर्श होने के बाद यह

१ Morley Recollections Vol II, pages 172-174

२ Buchan Lord Minto, page 231

३. मि मॉर्ले ने १ अगस्त १९०६ की भेट मे गोखले से कहा. "अब आपकी दिशा में युक्त सुधारो के लिये अभूतपूर्व अवसर है . इसके लिये केवल एक बात का ही डर है और वह है आपके मित्रोका विरोध .....मै आपको किसी दायित्व मे नही बाधता . पर आप प्रयत्न करे। यदि मच और पत्रो द्वारा आपके साथियो ने उपेक्षा की तो सब मिट्टी मे मिल जायगा।" मि गोखले ने हार्दिक सहयोग दिया और उन्होने भारत में अपने मित्रो

निश्चय हुआ कि भारत सरकार उक्त सुधारो का उपक्रमण करे। इस सम्बन्ध में मि मॉर्ले के १५ जून १९०६ के पत्रोत्तर मे लॉर्ड मिटो ने लिखा, "भारत सरकार द्वारा उपक्रमण करने की बात को मैं विशेष महत्व देता हू।"[१]

इसके लिये लॉर्ड मिटो ने सब से पहली बात तो यह की कि उन्होने अपनी कार्यकारिणी परिषद की अगस्त १९०६ मे एक कमेटी नियुक्त की और एक लेख द्वारा कमेटी को उस का उद्देश्य और उसका कार्य क्षेत्र बताया। "कमेटी को इन विषयो पर विचार करना था (१) देशी नरेशो की परिषद और यदि यह सभव न हो तो क्या वाइसरॉय की विधान परिषद मे उनका प्रतिनिधित्व किया जा सकता है, (२) वाइसरॉय की कार्यकारिणी परिषद मे एक भारतीय सदस्य की नियुक्ति, (३) केन्द्रीय और प्रान्तीय विधान परिषदो मे प्रतिनिधित्व मे वृद्धि, (४) बजट पर विचार प्रकट करने के लिये समय मे वृद्धि और साथ ही संशोधन प्रस्तुत करने के अधिकार मे वृद्धि।[२] इस कमेटी के अध्यक्ष सर ए टी ऐरन्डाल थे।

कमेटी ने अक्तूबर १९०६ मे अपनी रिपोर्ट दी परन्तु वाइसरॉय की कार्यकारिणी मे उस पर विचार करने मे बहुत समय लगा जिस के फलस्वरूप सुधार सम्बन्धी भारत सरकार का राजपत्र, भारत मन्त्री के पास सन् १९०७ की मार्च के अन्त मे भेजा गया। मि मॉर्ले ने अपनी परिषद से तुरन्त ही परामर्श किया और भारत सरकार को स्थानीय सरकारो की सम्मति जानने के लिये कहा। स्थानीय सरकारो और जनता का मत जानने मे एक वर्ष से अधिक समय लगा और इस प्रकार सुधारो के सम्बन्ध मे १ अक्तूबर १९०८ से पहले कोई भी कार्यवाही नही की जा सकी।

२

इन्ही दिनो मे देश के विभिन्न भागो मे स्थिति बडी गम्भीर होती जा रही थी। पूर्वी बगाल और आसाम प्रान्त के उप-गवर्नर ने बडे अविवेक और अकौशल से काम लिया। लोगो को आतकित करने के उद्देश्य मे उसने प्रान्त के बहुत से महत्वपूर्ण स्थानो मे गुरखा सैनिको के जत्थो को स्थापित कर दिया। लॉर्ड मिटो को "इस बात का पूरा विश्वास था कि सर बैम्फील्ड के कौशलशून्य शासन से बडा भारी

---

के लिये अत्यन्त आशापूर्ण पत्र लिखा।" Morley Recollections. Vol II. pages 181-182

१ Buchan · Lord Minto, page 234--letter dated 11-7-1906

२. Buchan Lord Minto, page 240

३. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ, २३७.

खतरा था पर वह इस सम्बन्ध मे कोई कार्यवाही करने से इस लिये झिझकते थे कि सरकार के आलोचक उसका गलत अर्थ अवश्य लगावेगे। जुलाई १९०६ मे एक घटना हुई जो वाइसरॉय अथवा भारत मन्त्री को विशेष रूप से अप्रिय नही थी। दो स्कूलो के विद्यार्थियो ने सिराजगज मे बडा उग्रतापूर्ण और उच्छृखलतापूर्ण व्यवहार किया था। इस पर उप-गवर्नर ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से उक्त दोनो स्कूलो को बहिष्कृत करने के लिये कहा। भारत सरकार के अनुसार तत्कालीन परिस्थितियो मे यह काम अविवेकपूर्ण था और उसने सर बैम्फील्ड से अपना निवेदन वापिस लेने के लिये कहा। इस पर सर बैम्फील्ड ने वाइसरॉय को यह लिखा कि या तो स्कूलो को बहिष्कृत किया जावे अथवा उसका त्याग-पत्र स्वीकार किया जावे। लार्ड मॉर्ले ने लिखा है—"लार्ड मिटो आन्दोलन के समय मे उप-गवर्नर बदलने के विरोधी तर्को के प्रति सजग थे किंतु यह बात प्रतिदिन अधिकाधिक स्पष्ट होती जा रही थी कि नये प्रान्त का शासन अविश्वसनीय है और उसमे अन्य नई समस्याएँ उत्पन्न हो सकती है—अतः त्याग-पत्र स्वीकार किया गया, मैंने भी अपनी स्वीकृति तार द्वारा तुरन्त भेज दी।"[1]

पजाब की सरकार ने अपने यहा की स्थिति को बिगाड लिया था। जैसा कि पहले[2] कहा जा चुका है पजाब झगडे आरम्भ मे भूमि विषयक थे। पजाब सरकार ने कष्टो को कम करने और झगडे के कारणो को दूर करने के स्थान पर कठोर व्यवहार से काम लेने का निश्चय किया और १८१८ के पुराने विनियम न ३ के अन्तर्गत लाला लाजपतराय और सरदार अजीतसिह को देश से निर्वासित करने के लिये भारत सरकार पर जोर डाला। लाला लाजपतराय का कई क्षेत्रो मे प्रमुख स्थान था। वे एक धार्मिक सुधारक थे, आर्य समाज के नेता था और शिक्षा प्रसारक थे। वे परोपकारी थे और साथ ही सामाजिक कार्यकर्ता थे। सर्व साधारण और दुखी लोगो से उन्हे सच्चा प्रेम था। वे एक प्रमुख काग्रेसी भी थे और नये उग्र दल के तीन महत्वपूर्ण नेताओ मे से एक थे। वे अग्रेजो में और विशेष कर उर्दू मे ओजस्वी और प्रभावशाली वक्ता थे। सरकार उनकी स्वतन्त्रता और उनके बढते हुए प्रभाव से शकित हो गई थी। दूसरी ओर सभी—सहमत और भिन्नमत—देशवासी उन्हे सत्यशील और निस्वार्थ-प्रेरित देशभक्त मानते थे। उनके अनुसार वे सरकार के विरुद्ध षडयत्र रचने मे अथवा सैनिको में राजद्रोह का प्रचार करने मे अथवा अन्य कोई

---

१. Morley: Recollections, page 84.

२. इस पुस्तक का १३ वा अध्याय देखिये।

गुप्त काम करने मे असमर्थ थे।[1] सरकारी नीति के सम्बन्ध मे उनकी आलोचना स्पष्ट और निष्कपट थी। भूमि विषयक आन्दोलन से उनका सम्बन्ध न के बराबर था। इस सम्बन्ध मे केवल एक बार उन्होने सरदार अजीतसिह के साथ एक सभा मे भाषण दिया था। सरदार अजीतसिह लायलपुर जिले के एक खेतिहर थे और पहले उन्हे बहुत कम लोग जानते थे। सन् १९०६-७ के भूमि विषयक आन्दोलन के एक प्रमुख सगठनकर्त्ता के नाते वे प्रसिद्ध हो गये। वे एक प्रभाव शाली और साथ ही उग्र वक्ता थे और अत्यन्त लोकप्रिय थे। खेतिहर आन्दोलन के शीघ्रता से बढने के कारण सरकार को घबराहट हुई और उसे रोकने के लिये सरकार ने सरदार अजीत सिह और लाला लाजपतराय को निर्वासित करना ही उचित समझा। स-परिषद् गवर्नर-जनरल ने इन दोनो सज्जनो को गिरफ्तार करके निर्वासित करने के लिये अनुज्ञा-पत्र दिया और ९ मई १९०७ को इन दोनो व्यक्तियो को निर्वासित करके माडले (बर्मा) भेज दिया गया। ११ मई १९०७ को वाइसरॉय ने एक अध्यादेश (Ordinance) प्रकाशित किया। इसके अनुसार सार्वजनिक सभा आयोजित करने के अधिकार को कठोरता से सीमित कर दिया गया। सभा का आयोजन करने वालो को सभा की तिथि से सात दिन पहले सरकार को लिख कर सूचित करने के लिये कहा गया। मजिस्ट्रेटो को सभाओ को रोकने का अधिकार दिया गया। सरकार द्वारा स्वीकृत सभाओ मे पुलिस के लिये उपस्थित रहने का नियम था। यह अध्यादेश स-परिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा निर्दिष्ट क्षेत्रो मे लागू किया जाना था। इस अध्यादेश को पजाब और पूर्वी बगाल मे तुरन्त ही लागू कर दिया गया।

लाला लाजपतराय के निर्वासन से देश के विभिन्न भागो मे बडा उद्वेग हुआ और उसके फलस्वरूप तरुण वर्ग, विशेष कर बगाल के तरुण वर्ग उत्तेजित हुए और उन्होने उग्रवाद, हिसा और आतकवाद को अपनाया।

---

१ लाला लाजपतराय के निर्वासन के सम्बन्ध मे श्री गोखले ने सम्राज्ञीय विधान परिषद मे कहा —"केवल पजाब मे ही नही वरन् अन्य प्रान्तो मे भी सहस्रो व्यक्ति लाला लाजपतराय का आदर करते है। उनका चरित्र उच्च कोटि का है और उनके विचार पवित्र है। ऐसे एक प्रमुख धार्मिक एव सामाजिक सुधारक और राजनीतिक कार्यकर्त्ता को जिसके सभी काम स्पष्ट और प्रकट रूप से हुए, बिना किसी अभियोग के देश से निर्वासित कर देने के कारण सारे देश के लोग आश्चर्य और दु ख से जडवत हो गये।" Page 43 Proceedings of the Indian Legislative Council, Vol XLVI 1907-8

दोनो बगालो की दशा पहले ही बिगडी हुई थी। सरकार विभाजन विरोधी आन्दोलन का निष्ठुरता से दमन कर रही थी और मुसलमानो का पक्ष ले रही थी। सरकार की इस नीति के कारण लोग वचन और कर्म दोनो मे उग्र होते जा रहे थे । "कुछ बगाली पत्रो ने सब प्रतिवन्धो को दूर हटा दिया और वे झिझक छोड कर तीव्र आलोचना करने लगे।"[1] बगाल सरकार ने इन पत्रो पर अभियोग चलाने का निश्चय किया। क्रमपूर्वक आक्रमण किया गया और सब से पहली चोट 'बन्दे मातरम्' पर हुई। यह अग्रेजी का राष्ट्रवादी दैनिक पत्र था और इसके सम्पादक मडल मे बाबू अरविन्द घोष भी थे। सरकार ने अगस्त १९०७ मे अरविन्द घोष और मुद्रक पर राजद्रोह का आक्षेप लगाया। सब लोग यह बात भली भाति जानते थे कि अरन्विद घोष उक्त पत्र से तन, मन, धन, सभी से सम्बन्धित थे किंतु सम्पादक के नाम को प्रमाणित करने के लिये कोई साक्षी नही मिला।[2] जब मि. बिपिन चन्द्र पाल को प्रमाण देने के लिये बुलाया गया तो उन्होने कार्यवाहियो मे भाग लेना अस्वीकार कर दिया क्योकि उनके मतानुसार अभियोग देश के हितो के विरुद्ध था। इस अपराध के लिये स्वय मि. पाल पर अभियोग चलाया गया और उन्हे छ· महीने का कारावास दड दिया गया। अरविन्द घोष के विरुद्ध अभियोग नही चल सका और उन्हे छोड दिया गया । मुद्रक का दोष सिद्ध हुआ और उसे तीन महीने का कारावास दड दिया गया।

लगभग इसी समय 'सध्या' और 'युगान्तर' नामक बगला के प्रभावशाली पत्रो के सम्पादको—श्री ब्रह्म बान्धव उपाध्याय और भूपेन्द्रनाथ दत्त—पर अभियोग चलाया गया। मि उपाध्याय ने एक लिखित वक्तव्य दिया और उसमे उन्होने यह कहा·—"मै इस अभियोग निर्णय मे भाग नही लेना चाहता। स्वराज्य का उद्देश्य ईश्वर-प्रेरित है और इस सम्बन्ध मे अपने काम के लिये मै देश के विदेशी शासको के प्रति उत्तरदायी नही हूँ। इन विदेशियो के स्वार्थ हमारे राष्ट्रीय विकास के मार्ग मे विघ्नरूप है और ऐसा होना अनिवार्य ही है।"[3] ब्रिटिश न्यायालयो से असहयोग का यह सबसे पहला उदाहरण है । आगे चल कर युद्धोत्तर असहयोग आन्दोलन मे इस प्रकार का असहयोग एक सामान्य बात थी। उक्त अभियोग अभी समाप्त भी नही हुआ कि कलकत्ते के कैम्बैल अस्पताल मे अभियुक्त की मृत्यु हो गयी। दूसरे अभियोग मे मि. दत्त अपने को दोष-मुक्त सिद्ध नही कर सके और

---

१. Ray· The Life and Times of C. R. Das, page 55

२ उस समय कोई ऐसा कानून नही था जिस के अनुसार आजकल की तरह पत्रो को अपने सम्पादक का नाम प्रकट करना अनिवार्य हो।

३. Ray उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ५७

उन्हे एक वर्ष का कठोर कारावास दड दिया गया। अगले कुछ ही महीनो में 'युगान्तर' पर चार मुकदमे चलाये गये और हर बार सम्पादक और मुद्रक को कारावास दण्ड दिया गया किंतु पत्र बराबर प्रकाशित हुआ और बराबर प्रचार करता रहा।

एक ओर तो बगाल और पजाब मे ये अभियोग चल रहे थे और दूसरी ओर भारत सरकार एक विशेष प्रेस (समाचार-पत्र सम्बन्धी) कानून बनाने के लिये भारत मन्त्री पर जोर दे रही थी। जुलाई १९०७ मे इस विषय पर भारत से एक राजपत्र भेजा गया। लॉर्ड मार्ले ने स्वीकार किया है कि इस राजपत्र ने उन्हे "कँपा दिया"।[1] पर भारत सरकार कठोर और दमनकारी नीति को व्यवहार मे लाने के लिये तुली हुई थी। भारत मत्री ने आरम्भ मे विरोध किया। कई बार उन्होने सरकारी सदस्यो[2] के व्यवहार की तीव्र आलोचना की और उनके लिये गर्हित रूसी नाम चीनॉव्निक्स (Tchinovnicks) का उपयोग किया। इसके बाद जब भारत सरकार ने राजद्रोहपूर्ण सभाओ को रोकने के उद्देश्य से एक विधेयक बनाने के लिये लॉर्ड मार्ले की अनुमति मागी तो वे क्रोध से उबल पडे।[3] उन्होने वाइसरॉय को लिखा कि "जिन लोगो ने आपका ऐरन्डाल के सुधारो मे विरोध किया था" और "जिन लोगो ने लाहौर और रावलपिडी के झगडो का बहाना लेकर उन सुधारो को रद्द करने के लिये कहा था, आप उन लोगो की बातो पर रत्ती भर भी ध्यान न दीजिये।"[4] उन्होने प्रेषित प्रस्तावो को असाधारण, प्रतिक्रियावादी और अनावश्यक बताया और उन्हे निषिद्ध कर दिया। लेकिन अन्त मे भारत सरकार की प्रबल एव आग्रहपूर्ण मागो के आगे भारत मत्री को झुकना पडा।[5] भारत सरकार ने कई दमनकारी एक्ट बनाये और उन्हे देश मे बडी कठोरता के साथ लागू किया।

३

राजद्रोह पूर्ण सभाओ को रोकने वाला एक्ट १ नवम्बर १९०७ को बना। स्वय गृह सदस्य के अनुसार इस एक्ट मे दमन के लिये प्रचुर सामर्थ्य निहित थी।[6]

१. Morley : Recollections, Vol II, Page 226

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २१४.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २३१-२३३—लॉर्ड मॉर्ले का उत्तर पढने योग्य है।

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २३१

५. भारत मन्त्री ने बड़े सकोच के साथ अपनी इच्छा और आत्मा के विरुद्ध स्वीकृति दी।

६. Proceedings of the Legislative Council, Vol. XLVI Page 25.

सभाओ का विनियमन करने के लिये ११ मई को जो अध्यादेश लागू किया गया था उसकी अवधि १० नवम्बर को समाप्त होने वाली थी क्योकि विधि के अनुसार अध्यादेश केवल ६ महीने के लिये ही सीमित होता है। यद्यपि उस अध्यादेश के प्रतिबन्धो को जारी रखने के लिये कोई कारण नही था,[1] तथापि भारत सरकार ने १९०७ के एक्ट द्वारा उन्हे नया जीवन प्रदान करने का निश्चय किया। परिषद ने कुछ सुधार किये लेकिन इतने पर भी एक्ट उग्र रूप मे दमनकारी था। एक्ट ने भारत सरकार को उसे किसी भी प्रान्त मे लागू करने का अधिकार दिया। किसी भी उद्देश्य के लिये २० से अधिक व्यक्तियो की सभा करने के लिये स्थानीय अधिकारियो को सभा की तिथि से तीन दिन पूर्व सूचना देना आवश्यक था। सार्वजनिक सभा की परिभाषा इतनी विस्तृत की गयी कि उ के अनुसार व्यक्तिगत घरो मे सामाजिक मिलन को भी सार्वजनिक सभा माना जा सकता था। इस बात से ही लॉर्ड मार्ले काप गये थे। उन्होने लिखा कि सैन्य अधिकारियो के उपक्रमण पर प्रेस कानून बनाना स्वय एक नई और बुरी बात थी, पर व्यक्तिगत मिलन को सार्वजनिक सभा बना देने की बात तो उससे भी बढ कर है।

"उप-गवर्नर अथवा अन्य अधिकारी, किसी भी निर्दिष्ट क्षेत्र मे किसी भी व्यक्ति को जिसके विचारो से वह असहमत है, व्याख्यान देने से रोक सकता है। .. इसके स्थान पर ईमानदारी से गला घोट देना अच्छा होगा।"[2] अधिकारियो को किसी भी सभा को रोकने और सभा मे किसी भी बोलने वाले का मुह बन्द करने का अधिकार दिया गया था। ये अधिकारी सार्वजनिक शान्ति के नाम पर कोई भी प्रतिबन्ध लगा सकते थे। स्वीकृत सभाओ मे पुलिस के आदमी भेजे जाते थे। जैसा कि सर राश बिहारी घोष ने कहा, इन उपायो द्वारा देश के राजनीतिक जीवन को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया था।[3] प्रवर-समिति मे दो महत्वपूर्ण सुधार हुए—एक तो यह कि एक्ट केवल तीन साल के ही लिए लागू रहना चाहिए और दूसरा यह कि एक्ट की धाराओ के अनुसार किसी स्थानीय सरकार द्वारा

---

१. इस विधेयक पर अपने विचार प्रकट करते हुए श्री गोखले ने निम्नलिखित तथ्य बताये "पिछले ६ महीनो मे पजाब और दिल्ली मे केवल एक सभा हुई थी और उस के फलस्वरूप शान्ति और व्यवस्था मे कोई विघ्न नही पडा। पूर्वी बगाल मे केवल एक सभा हुई थी और फरीदपुर मे विचाराधीन विषयो पर कठोर नियत्रण के कारण प्रस्तावित सभा का विचार छोड दिया गया था।

२. Morley . Recollections, Vol. II, pages 232–33

३. Proceedings of the Legislative Council, Vol. XLVI page 54.

निर्दिष्ट क्षेत्र मे, यह एक्ट केवल छ महीनें के लिए लागू होना चाहिए। किन्तु इन सुधारो से इस अत्यन्त दमनकारी एक्ट की कठोरता में न तो कोई कमी हुई और न हो ही सकती थी। डा० राश बिहारी घोष के अनुसार इस एक्ट का किसी सभ्य सरकार की विधि की अपेक्षा रूसी यूकेस ( Ukase ) से अधिक सारूप्य था।[1]

४

नरमदली नेताओ के पूर्व कथन के अनुसार[2] सरकार की दमनकारी नीति ने असन्तोष को गुप्त धाराओ मे ढकेल दिया। बहुत सी गुप्त समितिया बनी और बगाली नवयुवको मे क्रान्तिकारियो की सख्या बहुत बढ गई। आतकवादी अपराध प्रकट हुए। "सरकारी तत्र घबराया और अपनी भूलो के परिणामो से उद्विग्न हुआ। उसने व्यवस्था और शान्ति स्थापित करने के लिए एक के बाद एक करके विभिन्न दमनकारी उपायो से काम लिया, सार्वजनिक जीवन ठडा पड गया और उसका विकास रुक गया।[3] सन् १९०८ की ८ जून को एक ही दिन मे भारत सरकार ने दो अत्यन्त दमनकारी एक्ट बनाये—एक तो विस्फोटक पदार्थ एक्ट था और दूसरा समाचार-पत्र (अपराध-उत्तेजक) एक्ट था। इनको बनाने के लिए परिषद की कार्य पद्धति के सामान्य नियमो को ठुकरा दिया गया। इसके अतिरिक्त उस दिन परिषद मे कोई स्वतन्त्र भारतीय सदस्य भी उपस्थित नही था।

सन् १८८४ का विस्फोटक एक्ट अभी लागू था। उसकी सहायता के लिए १८७८ का भारतीय शस्त्र एक्ट था। इन दोनो के अतिरिक्त भारतीय दड सहिता की कुछ धाराओ के अन्तर्गत विस्फोटक पदार्थो से क्षति पहुँचाने वालो को आजीवन निर्वासन तक का दण्ड दिया जा सकता था। परन्तु भारत सरकार की दृष्टि मे ये कानून अपर्याप्त थे और उसने इस कमी को पूरा करने के लिए और बम के उपयोग के कारण उत्पन्न हुई नई स्थिति का सामना करने के लिए सन् १९०८ का एक्ट बनाया।

नये एक्ट के क्षेत्र के अन्तर्गत विस्फोटको के अतिरिक्त विस्फोटक बनाने वाले पदार्थो और उपकरणो की भी गणना थी। सन्देहात्मक परिस्थितियो मे किसी व्यक्ति के पास उक्त कोई वस्तु प्राप्त होने पर १४ वर्ष के निर्वासन अथवा पाच वर्ष के

१. Proceedings of the Legislative Council, Vol. XLVI, page 49

२. उपर्युक्त पुस्तक, Speech of Dr. Ghosh, page 53—"यह नीति एकउद्देश्य के लिए अवश्य समर्थ है. उससे गुप्त राजद्रोह के कीटाणुओ का प्रचार होगा।"

३. Bannerjee : A Nation in the Making, page 249.

कारावास का दण्ड था।[१] जिन विस्फोटो के कारण मृत्यु हो जाती थी उनसे एक्ट का कोई सम्बन्ध नही था—ऐसे मामलो मे हत्या के अन्तर्गत दण्ड दिया जा सकता था, अन्य विस्फोटो के लिए कठोर दण्ड था।[२] यदि वस्तुत. कोई विस्फोट न हुआ हो किन्तु उसके लिए उद्देश्य या प्रयत्न का प्रमाण हो तो २० वर्ष के लिए निर्वासन और सात वर्ष के लिए कारावास का दण्ड था।[३] अन्त मे विस्फोटको की तैयारी के लिए स्थान, धन, सामग्री अथवा अन्य किसी प्रकार से सहायता देने वाले व्यक्ति, अपराधी की ही भाति दण्डनीय थे।[४]

८ जून १९०८ का दूसरा एक्ट, समाचार-पत्र (अपराध उत्तेजक) एक्ट था। गृह सदस्य के अनुसार यह एक्ट तनिक भी दमनकारी नही था, भारतीय मत इसके बिल्कुल विपरीत था। गृह सदस्य के शब्दो मे इस एक्ट का उद्देश्य,"हत्या, अथवा सन् १९०८ के विस्फोटक पदार्थ एक्ट के अन्तर्गत किसी हिसात्मक अपराध[५] के लिए उत्तेजना देने वाले पत्रो का अस्तित्व मिटा देना था।" अपराधी छापेखानो को ज़ब्त करने का,और पत्र के उच्छेद करने का नियम था।[६] यदि जिला मजिस्ट्रेट की सम्मति मे किसी पत्र से हिसात्मक कामो को उत्तेजना मिलती है तो उसके प्रेस को एक्ट के अधिकार के बल पर वह जब्त कर सकता है। यदि किसी प्रेस से उक्त आशय का कोई पत्र निकलने वाला हो तो जिलाधीश को यह प्रतिबन्ध आज्ञा देने का अधिकार था कि सम्बन्धित व्यक्ति उसके समक्ष उपस्थित होकर, कारण व्यक्त करे कि वह आज्ञा स्थायी क्यो न कर दी जावे।[७] यदि प्रस्तुत प्रमाण से ज़िला मजिस्ट्रेट सन्तुष्ट हो कि समाचार-पत्र ने अपराध किया है तो उक्त सप्रतिबन्ध आज्ञा स्थायी की जा सकती थी[८] और वह (जिला मजिस्ट्रेट) किसी भी पुलिस अधिकारी को प्रेस तथा उससे सम्बन्धित अन्य सपत्ति को कुर्क करने का अधिकार दे सकता

---

१ Clause V of the Act. Agarwala The Lawyers Vade Mecum for Criminal Courts Vol I, page 53

२ Clause III उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ५१-५२.

३ Clause IV उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ५२-५३

४ Clause VI उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ५३

५ Clause LIL Ghosh Press and Press Laws in India, page 63

६. Proceedings of the Legislative Council, Vol. XLVII, page 12.

७. Clause III. Ghose : उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ६३-६४.

८. Clause III उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ६४.

था।[1] विशेष परिस्थितियो मे मजिस्ट्रेट अपनी आज्ञा को स्थायी करने से पहले भी कुर्की का वारट दे सकता था।[2] भारत मत्री के हस्तक्षेप करने पर इस जब्ती के विषय में[3] न्याययुक्त कार्यवाही का दिखावा सा हो सकता था। आज्ञा के स्थायी बनाने के पन्द्रह दिन के अन्दर हाईकोर्ट मे अपील की जा सकती थी।[4] अन्त मे एक्ट ने प्रान्तीय सरकार को, समाचार-पत्र के मुद्रक अथवा प्रकाशक की १८६९ के प्रेस तथा पुस्तक निबन्धन एक्ट के अनुसार[5] की हुई घोषणा को रद्द करने का अधिकार दिया था, जिसके फलस्वरूप समाचार-पत्र का वैध अस्तित्व समाप्त हो जाता था।[6]

५

इस समय एक ओर तो परिषद मे शीघ्रता से ये एक्ट बनाये जा रहे थे और दूसरी ओर सरकार, विभाग न० १२४ए और १५३ए के अन्तर्गत, भारत के लगभग सभी भागो मे राजद्रोह के अभियोग चला रही थी। निर्णय करने वाले मजिस्ट्रेटो ने इतने कठोर दण्ड दिये कि स्वय भारत मन्त्री ने उन्हे "वीभत्स, अत्यन्त उग्र और अरुचित" बताया।[7] ऐसा प्रतीत होता है कि आतकवादी अपराधो से कर्मचारी तन्त्र और आग्ल-भारतीय वर्ग घबरा गये थे और इसी कारण उन्होने प्रतिकार और अपरिमित दमन की नीति का प्रतिपादन किया। लार्ड मार्ले ने इस नीति से भय-भीत होकर विरोध किया, चेतावना भेजी—लेकिन सब व्यर्थ।[7] १९०८ मे १४ जुलाई को उन्होने लार्ड मिटो को लिखा, "राजद्रोह और अन्य अपराधो के सम्बन्ध मे जो दिल दहला देने वाले दण्ड दिये जा रहे है उनके कारण मै अत्यन्त चिन्तित और चकित हू। आज ही मैंने यह पढा है कि बम्बई मे पत्थर फैकने वालो को बारह महीने का कारावास दण्ड दिया गया है। वस्तुत. यह अतिक्रमण है। तिनेवेली-तूती-कोरन वाले मामले मे दो आदमियो को जो दण्ड दिया गया है वह अरक्षणीय है—एक को आजीवन निर्वासन दिया है और दूसरे को दस वर्ष का कारावास। ये बाते चल नही सकती। ऐसी वीभत्स बातो का रक्षण करने के लिए मै किसी भी शर्त पर

---

१ Clause IV उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ६४-६५
२ Clause II उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ६४
३ Morley Recollections, page 260
४ Clause V, Ghose · उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ६५
५. Clause VII उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ ६५
६. Proceedings of the Legislative Council. Vol XLVII, page 13
७. Morley Recollections Vol. II pages 269–70.

सहमत नहीं हूं। इसी कारण मैं इन गलतियों और भूलों की ओर आपका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित करना चाहता हूं। हम व्यवस्था चाहते हैं। लेकिन व्यवस्था लाने के लिए आत्यन्तिक कठोरता के उपयोग से सफलता नहीं मिलेगी, उसका परिणाम उलटा होगा और लोग बम का सहारा लेंगे।"[1]

इस प्रकार केवल भारतीय नेताओं के ही अनुसार नहीं वरन् सर्वोच्च अधिकारियों के अनुसार भी बम का मार्ग, दमन की नीति का परिणाम था। लॉर्ड मॉर्ले तो वस्तुत और भी आगे बढ़े। उन्होंने अशान्ति का सारा दायित्व कर्मचारी तन्त्र के कट्टर रूढ़िवादियों पर डाला। उन्होंने लॉर्ड मिंटो को लिखा: "इस अशान्ति का दायित्व आप पर या मुझपर नहीं है, यह तो उन अतिविश्वासी और अत्यन्त-व्यस्त चोनोविनक्स (Tchinovniks) पर है जो पिछले पचास वर्षों से भारत का सचालन करते रहे हैं।"[2]

और अब भी इन्हीं लोगों की जीत हुई। सन् १९०८ के राजद्रोह सम्बन्धी अभियोगों का वर्णन करना न तो यहाँ सभव है और न आवश्यक ही है। केवल कुछ अभियोगों का उल्लेख कर देना पर्याप्त होगा। मद्रास में तीन महत्वपूर्ण अभियोग हुए। तिनेवेली अभियोग, चिदम्बरम पिलाई और सुब्रहमण्य शिव के विरुद्ध था। इसमें मद्रास के उच्च न्यायालय ने दण्ड घटाकर, दोनों को छ वर्ष के लिए निर्वासित किया। 'इंडिया' के सम्पादक श्री निवास आयगर को पाच वर्ष के लिए निर्वासित किया गया। 'स्वराज्य' के सम्पादक और मालिक ने सरकार से लिखित क्षमा माँगी लेकिन फिर भी उनपर अभियोग चलाया गया।[3] बगाल में समाचार-पत्र (अपराध-उत्तेजक) एक्ट के अन्तर्गत 'बन्दे मातरम्' 'युगान्तर' आदि के विरुद्ध कार्यवाही की जा रही थी, राजद्रोह के अभियोग जिन पत्रों का गला न घोंट सके, उनके अस्तित्व को नये एक्ट के प्रहार ने समाप्त कर दिया। मध्य प्रान्त में एक पृष्ठ के एक देसी पत्र के सम्पादक हरी किशोर को पाँच वर्ष का कठोर कारावास दण्ड दिया गया। और जहा वह पृष्ठ मुद्रित होता था, उस छापेखाने को जब्त कर लिया गया। सयुक्त प्रान्त में 'उर्दू-ऐ-मोअल्ला' के सम्पादक को दो वर्ष का कठोर कारावास दण्ड दिया गया और उस पर ५०० रुपये जुर्माना किया गया—उस सम्पादक का अपराध यह था कि उसने मिस्र में ब्रिटिश सरकार की शिक्षा सम्बन्धी नीति की आलोचना की थी।

---

१. Morley : Recollections, पृष्ठ २६९-७०.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २६३.

३. क्षमा याचना के कारण इन लोगों को केवल ९ और छ महीने का कारावास दण्ड दिया गया। 'हिन्दू' (मद्रास) के सम्पादक ने लिखित क्षमा मागी और भविष्य के लिए आश्वासन दिया। अत. उन पर अभियोग नहीं चलाया गया।

अलीगढ के होतीलाल वर्मा नामक एक सज्जन को सात वर्ष के लिए निर्वासित किया गया—अपराध यह था कि उन्होने बन्दे मातरम् को एक ऐसा तार भेजा था जिसकी भाषा राजद्रोहात्मक थी, इसके अतिरिक्त उन्होने एक राजद्रोह फैलाने वाले पर्चे को प्रचार के लिए लोगो मे घुमाया था। बम्बई मे 'हिन्द स्वराज्य' 'बिहारी' और 'अरुणोदय' के सम्पादको को जेल भेज दिया गया। इनके अतिरिक्त एक अभियोग 'केसरी' के सम्पादक और राष्ट्रीय दल के लोकप्रिय नेता श्री तिलक पर चलाया गया। इस अभियोग की ओर केवल बम्बई का ही नही वरन् सारे भारत का ध्यान आकर्षित हुआ और साथ ही देशभर मे क्रोध का तूफान उमड पड़ा। २९ जून १९०८ को यह अभियोग बम्बई के उच्च (दण्ड) न्यायालय के सुपुर्द किया गया। मि० जस्टिस दवर ने एक विशेष जूरी की सहायता से अभियोग का निर्णय किया। तिलक ने स्वय अपनी प्रतिरक्षा की और वे कुल २१ घटे और १० मिनट तक बोले। उन्होने अपने (मराठी) लेखो के सरकारी (अग्रेजी) अनुवाद पर आपत्ति प्रकट की। इसके अतिरिक्त उनका तर्क यह था कि आग्ल-भारतीय पत्रो की आलोचनाओ का उत्तर देने के लिए उन्होने केवल अपने सम्पादकीय कर्त्तव्य का पालन किया था और दमन की नीति के सकटो की ओर ध्यान आकर्षित किया था। वे सरकार को सचेत करना चाहते थे और उसका ध्यान सुधार तथा सहयोग की सही नीति की ओर आकर्षित करना चाहते थे। श्री तिलक के स्पष्टीकरण को स्वीकार नही किया गया और जूरी के ९ मे से सात सदस्यो ने उन्हे दोषी ठहराया। जज ने इस निर्णय का अनुमोदन किया और उन्हे ६ वर्ष का निर्वासन दण्ड दिया और उन पर १००० रु० जुर्माना किया। निर्णय सुनाने से पहले तिलकको एक बार बोलने का अवसर दिया गया और उन्होने यह महत्वपूर्ण शब्द कहे —"मे केवल यह कहना चाहता हूँ कि जूरी का निर्णय चाहे जो हो, मै अपने आपको निश्चित रूप से निर्दोष मानता हू। विभिन्न वस्तुओ के भाग्य का सचालन करने के लिए उच्चतर शक्तियाँ है और ऐसा प्रतीत होता है कि जिस आदर्श का मै प्रतिनिधित्व करता हूँ वह ईश्वरेच्छा के अनुसार मेरे स्वतन्त्र रहने की अपेक्षा मेरे कष्टो से अधिक फलीभूत होगा।"[१]

निर्णय का पता लगते ही बम्बई के बाज़ार बन्द होने लगे और विद्यार्थीगण स्कूलो और कॉलेजो से चले आये; मज़दूरो ने काम छोड दिया और पूरे छ दिन तक हड़ताल रही। सारे देश में शोक सभाये हुईं और सहानुभूति के प्रस्ताव स्वीकार किये गये।

---

१ Athalye · Life of Lokmanya Tilak, p. 208 से एक उद्धरण का अनुवाद.

६

इतने पर भी दमन का प्याला पूरा नही भरा था। दिसम्बर १९०८ मे भारत सरकार ने परिषद की एक ही बैठक मे एक अत्यन्त दमनकारी एक्ट तैयार किया। इसका उद्देश्य आतकवादी अपराधो और अराजकतावादी षड्यन्त्रो से सम्बन्धित व्यक्तियो के अभियोगो का शीघ्र निर्णय करना था और साथ ही कुछ स्वयसेवक सस्थाओ को अवैध घोषित करना था। १९०८ के दण्ड विधि (सशोधन) एक्ट के दो भाग थे—पहले भाग मे अराजकता सम्बन्धी अपराधो के लिए एक विशेष ढग से अभियोग-निर्णय की व्यवस्था की गई थी, दूसरा भाग सस्थाओ से सम्बन्धित था। पहले भाग के अनुसार मजिस्ट्रेट अभियोग-निर्णय के लिए अभियुक्त को अप्रतिवादित रूप से विशेष न्यायालय के सुपुर्द कर सकता था। यह विशेष न्यायालय हाईकोर्ट के तीन जजो से निर्मित होता था किन्तु वह जूरी से भिन्न था। परीक्षण मे पहले साक्षियो की मृत्यु हो जाने की दशा मे भी, उनका वक्तव्य मान्य था और तीनो जजो का निर्णय अन्तिम था। इस भाग की धाराओ के विषय मे सर हार्वे एडमसन ने परिषद मे कहा —"वस्तुत तीन के स्थान पर एक अभियोग निर्णय होगा और वह एक ऐसे न्यायालय मे होगा, जिसे, अपने अवमान को दण्ड देने का पूरा अधिकार होगा और जो विचाराधीन अभियोगो पर अनुचित आलोचना सहन नही करेगा।"[१] दूसरे भाग के अनुसार, किसी भी सस्था को जो उसके मत से न्याय, व्यवस्था और शान्ति मे हस्तक्षप करती हो, सरकार अवैध घोषित कर सकती थी। अवैध सस्थाओ की बैठक मे भाग लेने वालो को, अथवा उसके लिए चन्दा देने या लेने वालो को अथवा अन्य किसी प्रकार से उसे सहायता देने वालो को एक्ट के अनुसार छ महीने तक का कारावास दण्ड दिया जा सकता था। अवैध सस्थाओ की सभा आयोजित करने वालो को, अथवा आयोजन मे सहायता देने वालो को अथवा आयोजन के लिए प्रोत्साहन देने वालो को एक्ट के अनुसार तीन वर्ष तक का कारा-वास दण्ड दिया जा सकता था।

इस एक्ट के अन्तर्गत, उन सब स्वयसेवक सस्थाओ को जो बगाल मे सन् १९०२ से जनता की विभिन्न प्रकार की सामाजिक सेवाये कर रही थी, अवैध घोषित कर दिया गया क्योकि सरकार को इस बात का सन्देह था कि वे सस्थाये गुप्त रूप से क्रान्तिकारी आन्दोलन मे भाग ले रही है। फलत कुछ ही समय मे इन सस्थाओ का अस्तित्व मिट गया।

इस वर्ष का अन्तिम दमनकारी कृत्य अत्यन्त कठोर भी था। बगाल के ९ प्रमुख सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओ को १८१८ के विनियम न० ३ के अन्तर्गत एक साथ देश

१. Proceedings of the Council. Vol. XLVII, page 57.

से निर्वासित कर दिया। ये लोग नरम दली नीति के लिए सुपरिचित थे। सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी लिखते हैं —

"दिसम्बर १९०८ मे एक दिन प्रात.काल लोगो को यह जानकर आश्चर्य हुआ कि अश्विनी कुमार दत्त, कृष्ण कुमार मित्र, सतीशचन्द्र चटर्जी, शचीन्द्र प्रसाद बोस और सुबोध मलिक को १८१८ के विनियम न० ३ के अन्तर्गत देश से ब्रजमोहन कालेज से निर्वासित कर दिया गया है।"[1] अश्विनी कुमार बारीसाल के नेता और सस्थापक थे, कृष्णकुमार मित्र, ब्रह्मसमाज के एक प्रमुख नेता थे और भी परिचित व्यक्ति उनका आदर करते थे, सतीश चटर्जी और शचीन्द्र बोस प्रसिद्ध स्वदेशी कार्यकर्त्ता थे और सुबोध मलिक एक सम्पन्न और धनी घराने के सदस्य और सत्यशील देशभक्त थे। इस निर्वासन से देश मे बडा उद्वेग हुआ, और नरमदल तथा उग्र दल दोनो के ही लोगो ने, समान रूप से इस कृत्य की निन्दा की।

७

भारत सरकार एक ओर तो निष्ठुर दमन की नीति का अनुसरण कर रही थी और साथ ही वैधानिक एव क्रान्तिकारी, दोनो ही विचारधाराओ के उग्रवादियो को दबाने का पूर्ण प्रयत्न कर रही थी और दूसरी ओर वह नरम दल वालो, मुसलमानो, जमोदारो और देशी नरेशो को अपने पक्ष मे लेने के लिए प्रस्ताव तैयार कर रही थी। १ अक्टूबर १९०८ के राजपत्र मे इन प्रस्तावो को रूप दिया गया और उन्हे अगली डाक से भारत मन्त्री के पास भेज दिया गया। भारत परिषद को एक छोटी सी समिति ने भारत सरकार के इस राजपत्र का सावधानी से परीक्षण किया। उसके बाद पूरी परिषद ने उस पर विचार किया। अन्त मे लॉर्ड मॉर्ले ने इस सम्बन्ध मे अपने प्रस्तावो को रूप देना आरम्भ किया। ५ नवम्बर १९०८ को उन्होने लॉर्ड मिटो को लिखा'— "यह विषय गम्भीर है, आपका सहयोग अत्यन्त महत्वपूर्ण है। हमको ऐसे प्रस्ताव प्रस्तुत करने है कि उनसे न तो कर्मचारी तन्त्र कुपित हो, न आग्ल-भारतीय कुपित हो और साथ ही मुसलमान और दक्षिणपक्षी काग्रेसी भी कुपित न हो। यह काम साधारण नही है।"[2] लेकिन लार्ड मॉर्ले ने अपना काम पूरा किया और अपने राजपत्र को परिषद के समक्ष रखा और उसका अनुमोदन प्राप्त किया।" (मत्रिमंडल) के दो सदस्यो ने मतभेद प्रकट किया और यह मतभेद केवल सरकारी बहुमत के प्रश्न पर था।"[3] "आश्वासन मिलने पर मत्रिमडल ने भी अपनी स्वीकृति दी.....उस

१. Bannerjee A Nation in the Making, page 249.
२. Morley : Recollections, Vol. II, page 281.
३. उपर्युक्त पुस्तक पृष्ठ २८२.

समय वह घरेलू महत्व के अविलम्ब्य कामों[1] मे फसा हुआ था।" २७ नवम्बर १९०८ को यह राजपत्र भारत भेज दिया गया।

इसी बीच दो नवम्बर को, महारानी विक्टोरिया की प्रसिद्ध उद्घोषणा की पचासवा वर्षगाठ पर, सम्राट एडवर्ड ने भारतीय जनता और देशी राज्यो के शासको के लिए एक राजकीय सन्देश भेजा और उसमे आगत राजनीतिक सुधारो का पूर्वाभास दिया। वाइसराय ने जोधपुर मे एक विराट दरबार मे उक्त सन्देश को पढकर सुनाया। वर्तमान उद्घोषणा ने सन् १८५८ के सिद्धान्तो की पुष्टि की और उन्हे कार्यान्वित करने के प्रयत्नो का वर्णन किया और कहा ––"आरम्भ से ही प्रतिनिधि सस्थाओ के सिद्धान्त को व्यवहार मे लाया गया था और अब वह समय आ गया है कि उस सिद्धान्त को सविवेक विस्तृत किया जा सकता है .. इन उद्देश्यो के लिए बडे परिश्रम के साथ जो साधन बनाये जा रहे है मै उनकी चर्चा नही करूँगा। निकट भविष्य मे आप लोग उनसे परिचित हो जावेगे।"[2] १७ दिसम्बर १९०८ को लॉर्ड मॉर्ले ने हाउस ऑव लार्ड्स मे एक विस्तृत व्याख्यान मे सरकारी सुधार प्रस्तावो पर प्रकाश डाला और दोनो––१ अक्टूबर १९०८ के और २७ नवम्बर १९०८ के––राजपत्रो को पार्लियामेण्ट के समक्ष प्रस्तुत किया। दिसम्बर के अन्त मे––वाम-पक्ष से विहीन––काग्रेस ने मद्रास मे अपना अधिवेशन किया और मॉर्ले-मिटो योजनाओ का हार्दिक स्वागत किया। एक सक्षिप्त विधेयक मे इन प्रस्तावो को रूप दिया गया और भारत मत्री ने २३ फरवरी १९०९ को उसे लॉर्ड भवन मे प्रस्तुत किया। यही विधेयक २५ मई १९०९ को भारतीय परिषद एक्ट बन गया।

## पन्द्रहवां अध्याय

# मुस्लिम साम्प्रदायिकता का आरम्भ

१

एक ओर तो मि मॉर्ल और लॉर्ड मिटो मे राजनीतिक सुधारो के विषय मे काग्रेस को अपने साथ लेने की आवश्यकता पर पत्र-व्यवहार हो रहा था और भारत

१. Morley : Recollections, Vol. II, page 283

२. सन् १९०८ की राजकीज उद्घोषणा Morley : Recollections. Vol. II. के अन्त मे एक परिशिष्ट के रूप मे विस्तृत रूप से उद्धृत की गई है।

मत्री, श्री गोखले से, उनका और उनके साथियो का समर्थन प्राप्त करने के लिये बातचीत कर रहे थे, दूसरी ओर भारत मे ब्रिटिश कर्मचारी तत्र भारतीय राजनीति मे साम्प्रदायिकता घुसाकर, और प्रस्तावित राजनीतिक सुधारो मे पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन को प्रविष्ट करा कर, राजनीतिक प्रगति का हनन करने के लिये प्रयत्नशील था। यह एक आश्चर्यपूर्ण, लेकिन साथ ही महत्वपूर्ण तथ्य है कि लॉर्ड मॉर्ले से न केवल परामर्श ही नही किया गया वरन् ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हे इस कुटिल उद्देश्य से अपरिचित भी रखा गया। उन्हे जिस समय इस बात का पता लगा, उससे पहले ही लॉर्ड मिटो, मुसलमानो को गुरुत्व और पृथक राजनीतिक प्रतिनिधित्व देने के सम्बन्ध मे सरकार को वचनबद्ध कर चुके थे। वस्तुत लॉर्ड मिटो ने, फूट डाल कर राज्य करने की उसी नीति का अनुसरण किया था, जिसे १८५७ के व्युत्थान के बाद आरम्भ किया गया था और जिसे बग भग द्वारा लॉर्ड कर्ज़न ने एक मजिल और आगे बढा दिया था। अस्तु, सन् १९०६ की इस कुटिल चाल का पूर्ण महत्व समझने के लिये भारत मे ब्रिटिश राज्य के अन्तर्गत मुसलमानो के इतिहास का सक्षिप्त सिहावलोकन करना आवश्यक होगा।

२

भारतीय मुसलमान जाति भाषा की दृष्टि से अन्य लोगो से भिन्न नही है। जिनके पूर्वज बाहर से आये थे, ऐसे मुसलमानो की सख्या बहुत थोडी है। इनके अतिरिक्त अन्य सभी मुसलमान, इस्लाम स्वीकार करने वाले भारतीयो की सन्तान है। जिस प्रदेश मे यह लोग रहते है, वही की भाषा बोलते है, कुछ लोग धार्मिक एव साम्प्रदायिक उद्देश्य से अरबी और उर्दू भी सीख लेते है। ये लोग, देश मे हिन्दुओ, सिक्खो, ईसाइयो, पारसियो और अन्य लोगो के साथ-साथ—साधारणतया प्रेमपूर्वक —रहते है। यह सच है कि धार्मिक और सामाजिक विषयो मे उनका अलग समुदाय है और कितनी ही बार अन्य धर्मावलम्बियो से उनके सम्बन्ध तीखे हो गये है और इसके फलस्वरूप कभी-कभी रक्तमय उपद्रव भी हो गये है।

ब्रिटिश प्रभुता स्थापित होने से पहले देश के शासन और सार्वजनिक जीवन मे मुसलमानो का स्थान बहुत महत्वपूर्ण था। यद्यपि मराठो और सिक्खो की उदयमान शक्ति के समक्ष उनकी सत्ता का ह्रास हो रहा था, तथापि देश के अधिकाश भागो मे उनका शासन बना हुआ था। पश्चिम मे सतलज से लेकर पूर्व मे ब्रह्मपुत्र नदी तक सारे उत्तर भारत मे, सैनिक एव असैनिक विभागो मे सारे महत्वपूर्ण और साथ ही अधिकाश पद मुसलमानो के हाथो मे थे।

भारत मे ब्रिटिश राज्य स्थापित होने पर सारा दृश्य बदल गया। लगभग एक शताब्दी तक (अर्थात् १९वी शताब्दी की आठवी दशाब्दी तक) अगरेज़ो की दृष्टि में मुसलमान उनके शत्रु थे—उनके राज्य के विरोधी थे—और वे मुसलमानो

को कुचलने के लिये प्रयत्नशील थे। श्री मुहम्मद नुमान लिखते हैं—"अगरेजो को यह निश्चय हो गया था कि नई सत्ता के विस्तार तथा अस्तित्व के लिये मुसलमानो को कुचलना अनिवार्य है, अत. उन्होने जान बूझ कर ऐसी नीति अपनाई जिससे मुसलमानो की आर्थिक बरबादी हो, प्रतिभा कुठित हो और उनका सामान्य पतन हो।"[१]

यद्यपि ईस्ट इडिया कम्पनी को बगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी का अधिकार मुगल सम्राट से मिला था, तथापि उसकी नीति आरम्भ से ही मुस्लिम-विरोधी थी। स्थायी बन्दोबस्त के विषय के एक अधिकारी विद्वान मि जेम्स ओ किनेले लिखते है, कि इस बन्दोबस्त ने "हिन्दु उगाही करने वालो को (जो अब तक केवल महत्वपूर्ण पदो पर आसीन थे) ऊपर उठा कर ज़मीदार बना दिया। मुसलमानों के राज्य मे जो सम्पत्ति मुसलमानो को मिलती, अब हिन्दुओ को उसी सम्पत्ति को एकत्रित करने का अधिकार दिया गया।" साथ ही बगाल मे (और बाद मे सारे देश मे) सेना मे मुसलमानो को भर्ती के लिये द्वार बन्द कर दिया गया,—सैनिक कार्य मुसलमानो का मनोवान्छित व्यवसाय[२] था।" कलकत्ते के तत्कालीन फारसी पत्र 'दूरबीन' के एक लेख के अनुसार, "बडी और छोटी सभी प्रकार की नौकरिया धीरे-धीरे मुसलमानो से छीन कर, अन्य जाति के लोगो को, विशेषकर हिन्दुओ को, दी जा रही है। हाल ही मे सुन्दरबन के कमिश्नर के कार्यालय मे कई स्थान रिक्त हुए। उनके लिये विज्ञापन मे कमिश्नर ने कहा कि नियुक्तिया केवल हिन्दुओं मे से ही की जावगी।"[३] अन्य व्यवसायो मे भी मुसलमानो की स्थिति बहुत गिर गई। "सन् १८५२ से १८६८ तक २४० भारतीयो को उच्च न्यायालय मे वकालत करने की अनुमति दी गई, इन मे मुसलमान केवल एक ही था।"[४] भारतीय उद्योग और हस्तशिल्प कुचलने के लिये जो नीति जान बूझ कर अपनाई गई थी, उससे भी मुस्लिम समूह पर प्रतिकूल प्रभाव पडा क्योकि अधिकाश शिल्पी तथा बुनकर लोग मुसलमान थे। अशोक महता और अच्युत पटवर्धन लिखते हैं.— "लेकिन मुसलमानो पर सब से बडा अन्याय शिक्षा के क्षेत्र मे किया गया। स्कूलो मे फ़ारसी और अरबी

---

१ Noman Muslim India, page 23.

२. H C Bowen · Mohammedanism in India, page 45

३ सन् १८७१ मे बगाल मे गज़ट की हुई नौकरियो की कुल सख्या २१४१ थी. इनमे मुसलमान ९२ थे, हिन्दू ७११ थे और १३६८ यूरोपियन थे। Noman : Muslim India, page 22.

४. H.C. Bowen . Mohammedanism in India, page 45.

के लिये कोई स्थान नही था।"[१] विगतकाल मे धनी मुसलमानो द्वारा दान की हुई शिक्षण निधियो को, अब उच्चतर शिक्षा के लिये निर्दिष्ट कर दिया गया। यह शिक्षा मुसलमानो की आवश्यकताओ के लिये अनुपयुक्त थी और इस से अन्य लोगो को ही लाभ हुआ। विगत शताब्दी की सातवी दशाब्दी मे हुगली कॉलेज मे लगभग ३०० विद्यार्थी थे, इन मे से केवल तीन मुसलमान थे।"[२] मि. नुमान लिखते है —"साराश यह है, कि शिक्षण नीति के कारण मुसलमानों मे बेकारी बढी और मुसलमानो के लिये अन्य मार्ग बन्द हो गये। आर्थिक नीति ने भारतीय मुसलमानो को निर्धन बना दिया। सेना मे उनकी सख्या बहुत थोडी कर दी गई; और हस्तशिल्प को कुचलकर उन्हे असहाय बना दिया गया। १८५७ का विद्रोह इन्ही नीतियो का परिणाम था और उसे कोई माननीय शक्ति टाल नही सकती थी।"[३]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अठारहवी शताब्दी के पिछले चतुर्थांश और उन्नीसवी शताब्दी के पूर्वार्द्ध मे (वस्तुत आठवी दशाब्दी के आरम्भ तक) सरकारी नीति निश्चित रूप से मुसलमानो के विरोध और हिन्दुओ के पक्ष मे थी और उस नीति ने मुसलमानो को राजनीतिक एव आर्थिक क्षेत्र में नीचे गिरा कर उन्हे नैराश्य की ओर ढकेल दिया।

वहाबी नेताओ ने इस असन्तोष के वातावरण मे मुसलमानो का सगठन किया और उनके रोष को सरकार तथा उच्च वर्गों के विरुद्ध विद्रोह मे परिणत कर दिया। वहाबी आन्दोलन आरम्भ मे विशुद्ध रूप से धार्मिक था और इसकी प्रेरणा अरब देश से मिली थी। सैयद अहमद ब्रेल्वी हज करने के लिये मक्का गये थे और वे अरब मे फैले हुए वहाबी आन्दोलन से प्रभावित हुए थे। सन् १८२० मे भारत लौटने पर इस्लाम मे सुधार और शुद्धि के उद्देश्य से उन्होने वहाबी आन्दोलन आरम्भ किया। "उन्होने अपने शिष्यो की सहायता से मुस्लिम जनता को झकझोर दिया और सारे देश मे जोश की लहरे दौडा दी। इस आन्दोलन मे इतना वेग था कि डा. हण्टर ने 'उसे भारतीय इतिहास का एक अत्यत महत्वपूर्ण धार्मिक पुनरुत्थान' बताया है।"[४]

यह वहाबी आन्दोलन मूलत: धार्मिक होते हुए भी क्रान्तिकारी था और साथ ही सर्वसाधारण से सबधित था। सर विलियम हण्टर के अनुसार बहाबी लोग

---

१. Mehta and Patwardhan : The Communal Triangle in India, page 87.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ८८.

३. Noman : Muslim India, pages 26-27.

४. Mehta and Patwardhan: The Communal Triangle in India, page 95.

"प्रगतिवादी थे और श्रद्धा की बातो पर हाथ रखते थे; राजनीति मे यह लोग साम्यवादी और लाल प्रजातत्रवादी थे।"[१] इन लोगो ने बगाल के निर्धन किसानों का सगठन किया; फरीदपुर, नादिया और चौबीस परगना मे खेतिहर विद्रोह का नेतृत्व किया। एक सरकारी रिपोर्ट के अनुसार इन लोगो की सख्या अस्सी हज़ार थी। ये लोग निम्नतम वर्गो के सदस्य थे और इन मे परस्पर पूर्ण समता का व्यवहार था।

सरकार ने वहाबी आन्दोलन का निष्ठुरता से दमन किया। लेकिन अन्तिम रूप से समाप्त होने से पहले इस आन्दोलन ने १८५७ के व्युत्थान को जन्म देने मे सहायता दी। सर जॉन केपी के अनुसार, "विद्रोह के मुख्य चालक . मुसलमान थे।" इसी सबध मे मि एच. सी. ब्राउन कहते हैं: "ये मुसलमान निश्चित रूप से वहाबी थे।"[२] सन् १८५७ के विद्रोह के बाद भी वहाबी लोग सीमा प्रदेश मे युद्ध करते रहे और उन्हे सारे देश से जन और धन की सहायता मिलती रही... .... ।[३]

सत्य तो यह है कि १८५७ के व्युत्थान का आधार अत्यन्त विस्तृत था किन्तु अगरेजो की दृष्टि मे न तो वह हिन्दु विद्रोह था और न वह राष्ट्रीय विद्रोह था वरन् वह मुस्लिम विद्रोह था और इसी कारण दमन करने मे विशेष कोप मुसलमानो पर हुआ.. और कम से कम एक दशाब्दी तक सरकारी नीति मुसलमानो के विरोध और हिन्दुओ के पक्ष मे रही।

धीरे-धीरे ब्रिटिश कर्मचारियो को भारतीय परिस्थिति के पूर्ण रूप से बदल जाने का भान हुआ और उन्होने सरकारी नीति को उलटने की आवश्यकता अनुभव की। भविष्य मे मुसलमानो की ओर से किसी सकट का भय नही था क्योकि "विद्रोह (उनकी ओर से) प्रभुता पाने का अन्तिम प्रयत्न था और उसे पूरी तरह कुचल दिया गया था। भविष्य मे केवल अपनी शक्ति के बल पर विद्रोह करने के लिये वे असमर्थ थे किन्तु प्रभावशाली वे अब भी थे। ऐसी दशा मे उनके साथ शत्रुतापूर्ण व्यवहार छोड कर अब उन्हे अपने पक्ष मे लेना अधिक उपयोगी था। इसके अतिरिक्त पश्चिमी शिक्षा प्राप्त, पूजीवादी मध्यम वर्गो[४]—मुख्यत: हिन्दुओ की ओर से अब राष्ट्रीयता का सकट दिखाई दे रहा था। बहुत से महत्व-पूर्ण ब्रिटिश अधिकारियो ने, अगरेजो और भारतीय मुसलमानो मे मेल और मित्रता की आवश्यकता की ओर, सरकार और उच्चतर मुस्लिम वर्गों का ध्यान

१ Hunter : The Indian Mussalmans, page 206-7.
२. Mehta & Patwardhan : उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ९६.
३. Mehta and Patwardhan : The Communal Triangle in India, page 96.
४. W. C. Smith : Modern Islam in India, page 196.

आकर्षित किया।[1] सभवत. इन अधिकारियो मे सबसे अधिक प्रभावशाली थे सर विलियम हण्टर जिनकी पुस्तक 'दि इडियन मुसलमान्स' सन् १८७१ मे प्रकाशित हुई थी। अस्तु, कारण चाहे जो कुछ हो परन्तु १८७० के बाद ब्रिटिश नीति मे परिवर्तन हुआ और धीरे-धीरे मुसलमानो के साथ मित्रता की नीव रखी गई। भारत मे आग्ल-मुस्लिम मित्रता के लिये प्रयत्न करने वालो मे सर सैयद अहमद और अलीगढ के एम ए ओ कॉलेज के प्रिन्सीपल बेक का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

सर सैयद अहमद के पूर्वज ईरानी सामन्त थे जिनका मुगल दरबार मे काफ़ी मान और प्रभाव था। सैयद अहमद को अपने जीवन के आरम्भ मे ही यह निश्चय हो गया था कि भारत का भविष्य जीर्ण मुगल साम्राज्य के हाथो मे नही वरन् अगरेजो के हाथ मे है।[2] मुगल सम्राट के यहा नौकरी करने के स्थान पर उन्होने सन् १८३७ मे कम्पनी की नौकरी शुरू की। विद्रोह के समय वे बिजनौर मे सदर अमीन थे। इस समय तक वे एक योग्य जज और प्राच्य सम्बन्धी एक महाविद्वान के नाते काफी प्रसिद्ध हो चुके थे। दिल्ली के मकबरो, खडहरो और उन की कारीगरी के सम्बन्ध मे सैयद अहमद ने 'आसारे सनदियाल' नामक एक पुस्तक लिखी थी जिसका एक फ्रासीसी विद्वान ने अनुवाद किया था और इसकी ओर काफी ध्यान आकर्षित हुआ था। विद्रोह के समय उन्होने अगरेजो का पूर्ण साथ दिया और कितने ही अगरेजो के प्राण बचाये।

विद्रोह के बाद सर सैयद ने अवनत मुस्लिम समाज के पुनरुत्थान और आग्ल मुस्लिम मित्रता के लिये काम करने का निश्चय किया और उन्होने अपने शेष जीवन मे इन दोहरे उद्देश्यो के लिये असाधारण दृढता और निष्ठा से काम किया। अपनी जाति के उत्थान के लिये उन्होने सामाजिक सुधार और पश्चिमी शिक्षा का प्रतिपादन किया—और इन दिशाओ मे उनका काम इतना प्रख्यात है कि यहा उसका विस्तृत वर्णन करना आवश्यक नही है। केवल यह कहना ही पर्याप्त होगा कि अपने मुस्लिम समाज की शिक्षा के लिये उन्होने जो काम किया, अलीगढ का मुस्लिम विश्वविद्यालय उसका स्थाई स्मारक है।

---

१. "वे मुसलमान जिनके राजनीतिक उद्देश्य हमारे उद्देश्यो से तद्रूप थे"—Sir John Strachey : India, its Administration and Progress, page 308.

२ An Indian Mussalman : Indian Muslims and Muslim Politics–An Article in the Hindustan Review, January 1909, page 51.

विद्रोह के कुछ समय बाद सर सैयद ने अपने सह-धर्मावलम्बियों के माथे से राजद्रोह का कलंक मिटाने के उद्देश्य से लॉयल मुहम्मडन्स ऑव इडिया (भारत के राजभक्त मुस्लमान) नामक पत्र निकाला। बाद मे यह बन्द हो गया किन्तु सर सैयद अपने उद्देश्य के लिये काम करते रहे। उन्हें यह बात भली भाति ज्ञात थी कि जब तक मुसलमानो और ईसाइयों मे धार्मिक वैर है तब तक भारतीय मुसलमानो मे ब्रिटिश राज्य के प्रति भक्ति नही होगी और उस समय तक ईसाई शासक भी उन्हे राज-भक्त नही समझेंगे।[1] अत उन्होने मुसलमानो और ईसाइयो मे धार्मिक मेल करने का प्रयत्न किया। इस उद्देश्य के लिये उन्होने एक पुस्तिका लिखी और उसमे यह बताया कि इस्लाम के एक अध्यादेश के अनुसार इस्लाम मतावलम्बी यहूदियो और ईसाइयो के साथ भोजन कर सकते है। ईसाइयो के धर्म ग्रन्थ बाइबल पर उन्होंने एक टीका लिखी जिसका उद्देश्य मुसलमानो और ईसाइयो के पारस्परिक भ्रमो को दूर करना था। और जब सर विलियम हण्टर की पुस्तक प्रकाशित हुई तो सर सैयद ने 'पायोनियर' मे प्रबल एवं प्रत्युक्ति पूर्ण लेख लिखे। जस्टिस शाह दीन का कहना है कि इन लेखो से "बहुत से अविश्वासी अधिकारियो को भी विश्वास हुआ और मुसलमानो की राजभक्ति पर जो सन्देह के बादल थे, वे कुछ ही समय में दूर हो गये।"[2] उसके बाद जब अलीगढ का एम ए ओ कॉलेज स्थापित किया गया तो सर सैयद ने उस समय (सन् १८८७ मे) लॉर्ड लिटन के समक्ष एक सम्बोधन पत्र प्रस्तुत किया और अपने उद्देश्य को इस प्रकार व्यक्त किया—प्राच्य शिक्षा और पाश्चात्य साहित्य तथा विज्ञान मे मेल हो; भारतीय मुसलमान, ब्रिटिश सम्राट के अनुरूप तथा उपयोगी प्रजाजन हो; और उन्हे—विदेशी राज्य की दीनपूर्ण दासता के कारण नही वरन् सुशासन से प्राप्त होने वाले आशीर्वादो के बोध से—राजभक्ति की प्रेरणा मिले।[3] इस प्रकार सर सैयद ने भारतीय मुसलमानों में राजभक्ति की भावना भरने के लिये और साथ ही उनके लिये अगरेज शासको की कृपा प्राप्त करने के लिये, यथासभव प्रयत्न किया।

३

१८८५ मे इडियन नैशनल काग्रेस की स्थापना हुई और उस समय सभी विचारशील व्यक्तियो के समक्ष यह प्रश्न था —सर सैयद अहमद क्या करेगे? क्या वह काग्रेस मे सम्मिलित होगे अथवा वह अपने अनुयायियों के साथ अलग रह कर राष्ट्रीय मोर्चे मे फूट डालेगे? कुछ काग्रेसी जन आशायुक्त थे। सन् १८६० मे

१ Shah Din. Sir Syed Ahmed as a Political Leader, page 423. Hindustan Review, December 1905.
२. उपर्युक्त प्रति—पृष्ठ ४१४.
३. Hindustan Review, Jan. 1909, page 53.

अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'कॉजेज़ ऑव दी इडियन रिवोल्ट' में सर सैयद ने विधान परिषदो में भारतीयों को साथ लेने की नीति का प्रतिपादन किया था। तदुपरान्त सन् १८६६ मे उन्होने ब्रिटिश इडियन ऐसोसियेशन स्थापित करने का प्रतिपादन किया था। इस सस्था को काग्रेस का पूर्वाभास बताया गया है और इस अवसर पर उनका व्याख्यान वस्तुत· अपूर्व था। उन्होने लोगों से कहा कि आप भय छोड़िये, पौरुषयुक्त बनिये और अंगरेजो को झिझक छोड कर सचाई के साथ बताइये कि आपके कष्ट क्या है। घर मे बैठ कर सरकारी नीति पर क्षुब्ध होने तथा उसकी बुराई करने और अगरेज़ों के सामने उसे न्यायपूर्ण ठहराने की आदत की उन्होने निन्दा की। उन्होने कहा, "आप मेरी इस बात का विश्वास कीजिये कि यह नैतिक कायरता अयुक्त है .. .... भारत के हित मे यह बात कही अच्छी होगी कि लोग सरकार के कामो पर स्पष्टता और सत्यता के साथ अपनी सम्मिति प्रकट करे।"[1] सन् १८७७ मे जब सर सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने इन्डियन सिविल सर्विस आन्दोलन के सम्बन्ध मे देश का परिभ्रमण किया तो समकालिक परीक्षाओ की व्यवस्था करने के पक्ष मे अलीगढ की सभा मे सर सैयद ने अध्यक्ष पद ग्रहण किया।[2] उन्होने हल्बर्ट बिल और भारतवासियो तथा अगरेज़ो के साथ समान न्याय के सिद्धान्त का हृदय से समर्थन किया। और सब से बडी बात यह थी कि १८८४ मे पजाब के अपने परिभ्रमण मे सर सैयद ने सभी भारतवासियो के समान हितो पर ज़ोर दिया, देश के प्रति अपना प्रबल प्रेम प्रकट किया और सहयोग तथा सयुक्त कार्य के लिये हृदयस्पर्शी अपील की। अपने एक व्याख्यान मे उन्होने कहा: "हम (हिन्दुओ और मुसलमानो) को अपने हृदय और अपनी आत्मा मिला कर एक साथ काम करना चाहिये। सयुक्त होने पर हम एक-दूसरे को सहारा दे सकते है। अन्यथा पारस्परिक विरोध से दोनो ही का नाश और पतन होगा।"[3] इडियन एसोसियेशन के मान-पत्र का उत्तर देते हुए उन्होने बगालियो की प्रशसा की और कहा: "मेरी दृष्टि मे इस बात का विशेष महत्व नही है कि कौन किस धर्म का अनुयायी

१ Hindustan Review, December 1902, page 505

२. दस वर्ष बाद सार्वजनिक सेवा आयोग के सदस्य के नाते सर सैयद ने समकालिक परीक्षाओ के सम्बन्ध मे सर रमेश मित्र और राव बहादुर नूलकर के मत का समर्थन नही किया वरन् समकालिक परीक्षाओ के विरोध में बहुमत की रिपोर्ट पर हस्ताक्षर किये।

३ २७ जनवरी १८८४ को गुरदासपुर के व्याख्यान से उद्धृत—Eminent Mussalmans, published by G. Nateson and Co. Madras, page 32.

है क्योकि इस सम्बन्ध में कोई बात स्पष्ट नही होती। किन्तु यह बात निश्चित रूप से स्पष्ट है कि हम लोग एक ही देश के निवासी है, हम सब के शासक एक ही है और दुर्भिक्ष के कारण हम लोग समान रूप से कष्ट उठाते है।"[1]

उक्त बातों के कारण यह आशा की जाती थी कि उन भारतीय नेताओ को जो भारतीय राष्ट्र बनाने के लिये और साथ ही जनता की आवश्यकताओ, इच्छाओं और शिकायतो को व्यक्त करने के उद्देश्य से राष्ट्रीय मच बनाने के लिये प्रयत्नशील थे, सर सैयद अपना सहयोग प्रदान करेगे। किन्तु अपनी अगीकृत मातृभूमि की अपेक्षा अपनी जाति के लिये उनका प्रेम प्रबल सिद्ध हुआ और वे केवल एक साल पहले की अपनी इस दृढ धारणा को भूल गये कि "पारस्परिक विरोध से दोनो ही का नाश और पतन होगा।" उन्होने काग्रेस से केवल असहयोग ही नही किया वरन् बनारस के राजा शिवप्रसाद के साथ मिल कर एक सक्रिय रूप से विरोधी सस्था की स्थापना भी की।

इस विच्छेद पूर्ण कृत्य के कारणो पर विस्तृत रूप से विवाद किया गया है। सर सैयद के समर्थको ने इसका दायित्व काग्रेस के प्रचार की उग्रता पर डाला है। मुसलमान पिछडे हुए थे और स्वभाव से जल्दी ही उत्तेजित हो जाते थे और ऐसी दशा मे काग्रेस के विनाश का और एक दूसरे खुले विद्रोह का डर था। उससे मुस्लिम समाज को और सारे राष्ट्र को क्षति पहुचती। इन बातो के अतिरिक्त उक्त समर्थको के अनुसार काग्रेस कार्यक्रम मे धार्मिक अल्पसख्यको के अधिकारो और हितो के सरक्षण की कोई व्यवस्था नही थी।[2] दूसरी ओर सर सैयद के विरोधियो ने उनके पृथक रहने का दायित्व अधिक स्वार्थपूर्ण कारणो पर डाला है। इन लोगो के अनुसार सर सैयद अपनी जाति के लोगो को सरकार का कृपापात्र बनाना चाहते थे, अपनी जाति को अन्य जातियो की अपेक्षा अधिक राजभक्त जताना चाहते थे; और राष्ट्र के स्थाई हितो को क्षति पहुचाने की जोखिम उठा कर भी अपनी जाति के तत्कालीन स्वार्थों को प्रोत्साहित करना चाहते थे।

सर सैयद के साथ अलीगढ के कालेज मे मौलाना शिबली ने पन्द्रह वर्ष तक काम

---

१. Eminent Mussalmans (Nateson), पृष्ठ ३३.

२. यह सच है कि सर सैयद के अनुसार विशुद्ध एव साधारण निर्वाचन व्यवस्था भारतीय परिस्थितियो के लिये अनुपयुक्त थी। जनवरी १८८३ मे सी पी स्थानीय स्वशासन विधेयक पर विधान परिषद मे उन्होने अपने विचार विस्तारपूर्वक प्रकट किये और यह बताया कि इस प्रकार के निर्वाचन में बहुत से महत्वपूर्ण दोष होगे। उनका अभिप्राय यह था कि अल्पसंख्यको के प्रतिनिधियो का नाम निर्देशन किया जावे। यह कहना गलत है कि उस समय उन की दृष्टि साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों पर थी।

किया और उन्ही के सामने सर सैयद प्रगतिशील राष्ट्रवादी से बदल कर प्रतिक्रिया-शील सम्प्रदायवादी बने। मौलाना शिबली स्वय राष्ट्रवादी थे और यह एक दु ख की बात है कि उन्होने इस दुर्भाग्यपूर्ण परिवर्तन के कारणो को प्रकट करना "हमारे उद्देश्य के लिये क्षतिपूर्ण"[१] समझा। अस्तु, "मौलाना साहिब के उस समय चुप रहने का चाहे जो कारण हो, अब समय ने हमे उसका उत्तर दे दिया है। सर सैयद की राजनीति मे परिवर्तन का दायित्व अलीगढ कॉलेज के तत्कालीन यूरोपियन प्रिसीपल की कूट नीति पर था।"[२] इसी बात को सितम्बर १८९९ मे प्रिन्सीपल बेक के मरने पर सर जॉन स्ट्रेची ने लन्दन टाइम्स के अपने लेख मे मूक भाव से स्वीकार किया —"यह एक ऐसे अगरेज़ का देहावासन है जो एक दूर देश मे साम्राज्य निर्माण के कार्यो मे सलग्न था। उसकी मृत्यु अपने कर्त्तव्य पद पर खडे हुए एक सैनिक की भाति हुई है। मुसलमानो को आरम्भ मे मि बेक पर सन्देह था और उन लोगो ने मि. बेक को ब्रिटिश भेदिया समझ कर उसका विरोध किया किन्तु थोडे ही समय मे उसने अपनी सचाई और नि स्वार्थता से उनके विश्वास को प्राप्त कर लिया।[३]

प्रिन्सीपल बेक को अपने साम्राज्यवादी काम मे सफलता मिली। उन्होने सर सैयद को बहका कर उनके हृदय मे यह विश्वास जमा दिया कि आग्ल-मुस्लिम गठ-बधन से मुसलमानो की स्थिति सुधरेगी और राष्ट्र वादियो के साथ मिलने से उनके दु ख और कष्ट फिर बढ जायेगे। इसके अतिरिक्त सर सैयद को इस बात का भी दृढ विश्वास दिलाया गया कि सरकार का समर्थन करने से उनकी जाति को अपनी उन्नति के लिये विशेष सुविधा मिलेगी। इस प्र कार उनके असाधारण प्रभाव द्वारा मुसलमानो को--विशेष कर उत्तर भारत के मुसलमानो को—काग्रेस से दूर रखा गया।[४] एक भारतीय मुसलमान ने लिखा है :--"आरभ मे सहारे की आवश्यकता

१. मौलाना शिबली ने सर सैयद के बारे मे लिखा है कि प्रकृति ने उन्हे सारे भारत का नेता बनने की प्रतिभा दी थी। किन्तु उनके चारो ओर के वातावरण ने उन्हे प्रभावित किया और उन्होने राष्ट्रीय आन्दोलन से मुसलमानो को दूर खीच लिया। "ऐसा क्यो हुआ ? .....इसका उत्तर अनावश्यक है। .... केवल यही नही वरन इसका उत्तर हमारे उद्देश्य के लिये क्षतिपूर्ण हो सकता है।" Ashok Mehta and Achut Patwardhan· The Communal Triangle in India, pages 23 and 24 से अनुवादित।

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २४.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६१.

४ Mehta & Patwardhan: The Communal Triangle in India, page 24.

हो सकती थी किन्तु अपने पैरो पर खडे होने की सामर्थ्य आ जाने पर भी मुसलमान इस बात का साहस न कर सके कि वे राजनीतिक क्षेत्र मे स्वतन्त्र रूप से चले। सरकार की मनोवृत्ति से पूरी तरह परिचित होने पर वे इस परिणाम पर पहुचे थे कि काग्रेस मे सम्मिलित होने से उनकी मुक्ति सभव नही थी। ·  ··  वर्ग स्वार्थ, अविश्वास, जातीय घृणा, सरकार के कृपापात्र बनने की अभिलाषा और अपना पथक अस्तित्व बनाये रखने की भावना के कारण मुसलमानो और काग्रेस वालो के बीच एक चौडी खाई बनी रही ·  ·  ··।[1]

सबसे पहले काग्रेस अधिवेशन के दूसरे वर्ष सर सैयद ने मुस्लिम शिक्षण काग्रेस (बाद मे सम्मेलन) की स्थापना की। शिक्षित मुसलमानो का ध्यान और अनुराग केन्द्रित करने के लिये और साथ ही उन्हे काग्रेस और राजनीतिक आलोचना से दूर रखने के लिये इस सस्था के अधिवेशन, काग्रेस अधिवेशन के ही दिनो में किये जाते थे। सर सैयद और उनकी जाति की राजनीति थी ब्रिटिश सरकार का समर्थन, उसके साथ सक्रिय सहयोग, ब्रिटिश सत्ता के प्रति राजभक्ति का प्रदर्शन और सरकारी कामो पर आलोचना की निन्दा।

४

सन १८५९ की पजाब सैन्य पुनर्सगठन कमेटी की भाषा के अनुसार देशी आदमियो का परस्पर सतुलन करने की नीति को ब्रिटिश सरकार ने १८६१ मे भारतीय सेना मे सबसे पहली बार लागू किया। केवल सर सैयद का ही नही वरन् सैन्य अधिकारियो का भी यह विश्वास था कि १८५७ के विद्रोह का बल विभिन्न प्रान्तो, सम्प्रदायो, समुदायो और जातियो के लोगो की एक्य भावना मे निहित था—सब लोग सेना मे घुल मिल कर रहते थे। भविष्य मे ऐसे विद्रोहो की सभावना मिटा देने के उद्देश्य से भारतीय सेना को वर्ग आधार पर फिर से सगठित किया गया। किन्तु अपनी साख जमाने के उद्देश्य से सिविल शासन मे उचित नीति को व्यवहार मे लाना आवश्यक समझा गया। सरकारी पदो के लिये नियुक्ति करने मे और राजभक्ति के आधार पर पुरस्कार और उपाधि वितरण करने मे, विद्रोह के बाद दशाब्दियो तक, साधारणतया कोई जातीय भेद-भाव नही किया गया। सर एल्फ्रेड लायल ने लिखा है —"हमको अनिवार्य न्याय और उपयोगिता के आधार पर उचित नीति को व्यवहार मे लाना चाहिये। भारत मे सामयिक एव अल्प-कालीन पक्षपात के कारण हम उक्त आधार को बराबर तोड-मरोड नही सकते।

---

१. An Indian Mussalman · Indian Mussalmans and Indian Politics, Hindustan Review, January 1909, page 55.

हम मुसलमानो की किसी ऐसी बात का जो अन्य भारतीय प्रजा के प्रति अन्याय-पूर्ण हो, सरक्षण नही दे सकते। हमको सरकारी नौकरियो के लिये सर्वोत्तम आदमियो को छाटना चाहिये फिर चाहे वे किसी भी समुदाय के लोग क्यो न हो।"[१] किन्तु कुछ समय बीतने पर मुसलमानो ने सरकार पर विशेष व्यवहार के लिये ज़ोर दिया। मुस्लिम सस्थाये वाइसरॉयो और गवर्नरो को मानपत्र भेट करने मे इस बात की ओर सदैव ध्यान दिलाती थी कि मुसलमान लोग पिछडे हुए हैं और वे सस्थायें सरकार से इस बात की प्रार्थना करती थी कि सतुलन लाने के लिये मुसलमानो की अधिक पदो पर नियुक्ति की जावे।[२] और जैसा कि सर जॉन वुडबर्न ने कहा है, ब्रिटिश शासको का उत्तर सदैव यह होता था कि "इसका उपाय आपके और आप के नेताओ के हाथो मे है। शिक्षा के सब विभागो मे योग्यता प्राप्त करने के अवसर आपको सुलभ है—विशेषकर कुछ ऐसे सक्रिय व्यवसायो के लिये जिनमे मुसलमान अन्य लोगो से श्रेष्ठतर है।"[३] लॉर्ड कर्ज़न ने और भी ज़ोरदार शब्दो मे कहा: "कुछ ऐसी बाते है जो मै नही कर सकता, मै आपके पक्ष मे विशेष सुविधा या छूट का प्रबध नही कर सकता।" "उन लोगो को ऊपर उठाने के लिये" लॉर्ड कर्ज़न को कृत्रिम उपकरणो मे विश्वास नही था।[४]

किन्तु कुछ ही समय मे सरकारी नीति बदल गई। यह परिवर्तन भारत मे ब्रिटिश राज्य की सुरक्षा और उसके स्थायित्व के लिये किया गया। धीरे-धीरे सुधारो के लिये आन्दोलन करने वाला और शासन मे भारतीयकरण की माग पर ज़ोर देने वाला वर्ग बढ रहा था। तरुण राष्ट्रवादी स्वतन्त्र एव आत्म-निर्भर कार्य की बाते करने लगे थे। हिन्दू नवयुवको मे एक नई भावना उत्पन्न हो रही थी। ब्रिटिश कर्मचारी तन्त्र यह अनुभव करने लगा था कि असधेय व्यक्तियो को अलग कर अन्य लोगो को अपने पक्ष मे सम्मिलित करने का समय आ गया है। राजभक्तो—मुसलमानो, नरम दल वालो, देशी नरेशो और ज़मीदारो, ताल्लुकेदारो— को अपने पक्ष मे सगठित करने की नीति को भारत मंत्री के लिये प्रेषित भारत सरकार के सुधार सबधी पहले राजपत्र मे रूप दिया गया। लॉर्ड कर्ज़न के राज्य काल मे बगाल का जो विभाजन हुआ—उसकी चर्चा एक पिछले अध्याय में की जा चकी है। उसी स्थल पर मुसलमानो का पक्ष लेने की नीति का भी वर्णन

---

१ Quoted in Kayastha Samachar, August 1902, page 122।

२. उपर्युक्त पत्र, पृष्ठ १२१

३. उपर्युक्त पत्र, पृष्ट १२३

४. उपर्युक्त पत्र, पृष्ठ १२२

किया जा चुका है। यहा उस सबध में कुछ और लिखना आवश्यक प्रतीत नही होता। अब केवल इस बात का विवरण करना शेष है कि १९०९ के सुधारो मे मुसलमानो को अपने पक्ष मे लेने की नीति किस प्रकार विकसित हुई ।

५

जैसा कि पहले कहा जा चुका है १८८५–८६ मे सर सैयद ने अधिकाश मुसलमानो को राजनीति से दूर रहने और शिक्षा की ओर ध्यान देने के लिये प्रोत्साहित किया था। किन्तु अपने जीवन के अन्तिम दिनो मे "सर सैयद ने काग्रेस की माँगों के औचित्य को अनुभव किया। उन्होने सरकारी परिषदो मे अपने देश-वासियो की निम्न स्थिति को तीखेपन के साथ अनुभव किया यहा तक कि सुदूर भविष्य मे भी शासको और शासितो के बीच समान व्यवहार की बात उन्हे दुराशामात्र प्रतीत हुई।"[१] इसका बहुत बडा कारण यह था कि उनके पुत्र सैयद महमूद से जो इलाहाबाद हाई कोर्ट के न्यायाधीश थे १८९२ मे विवश करके त्याग पत्र दिलाया गया था। अस्तु, कारण चाहे जो कुछ हो, सन् १८९३ मे सर सैयद ने मुस्लिम हितो के सरक्षण के लिये एक राजनीतिक सस्था स्थापित करना स्वीकार किया। इस सस्था का नाम था मुहम्मडन डिफेस एसोसियेशन ऑव अपर इडिया। इसमे विभिन्न प्रान्तो के छटे हुए प्रतिनिधि लिये गये और सैयद महमूद तथा प्रिन्सीपल बेक इसके मन्त्री बनाये गये। इस सस्था का उद्देश्य सरकार के समक्ष प्रतिनिधित्व द्वारा मुस्लिम हितो की रक्षा करना और उनको प्रोत्साहित करना था। उसकी नीति भारत मे ब्रिटिश राज्य को सुदृढ करने वाले उपायो का समर्थन करने की और मुसलमानो मे राजभक्ति की भावना फैलाने की थी—यह नीति आन्दोलन और राजनीतिक प्रचार के विरुद्ध थी । इस सस्था का मुख्य काम था मुसल-मानो को काग्रेस से दूर रखना, हिन्दुओ और मुसलमानो के बीच खाई बनाये रखना और आगल-मुस्लिम सहयोग को प्रोत्साहित करना। मि बेक के शब्दो मे, "काग्रेस का उद्देश्य देश की राजनीतिसत्ता को अग्रेजो से हिन्दुओ को हस्तान्तरित करना है। उसकी मागे हैं—शस्त्र एक्ट को रद्द करना, सैन्य व्यय को घटाना और इस प्रकार सीमा प्रदेशीय मोर्चों को दुर्बल बनाना। इन माँगो के साथ मुसलमानो की कोई सहानुभूति नही हो सकती । . . इन आन्दोलन करने वालो से लड़ने के लिये और लोकतन्त्रीय शासन की स्थापना रोकने के लिये अग्रेजो और मुसलमानो का एक होना आवश्यक है। लोकतन्त्रीय शासन देश की आवश्यकताओ और प्रवृत्तियो के लिये अनुपयुक्त है। अत: हम सरकार के प्रति राजभक्ति और आग्ल-मुस्लिम सहयोग का प्रतिपादन करते है।"[२]

१. Eminent Mussalmans, page 35.
२. Mehta and Patwardhan : The Communal Triangle in

देश के विभिन्न स्थानो मे अन्य मुस्लिम सस्थायें—जैसे अजुमने इस्लामिया और यग मेन्स मुहम्मडन एसोसियेशन— अस्तित्व मे आ गई थी। यद्यपि ये सस्थायें राजनीतिक मामलो मे थोडी बहुत दिलचस्पी लेती थी किन्तु वे मुख्यत: अ-राजनीतिक थी। अलीगढ और अन्य भारतीय तथा विदेशी विश्वविद्यालयो मे शिक्षा पाये हुए मुस्लिम काग्रेसके ही ढगकी एक नियमित राजनीतिक सस्थाकी आवश्यकता अनुभव करने लगे थे। सितम्बर १९०१ मे सर मुहम्मद शफी ने लाहौर के 'ऑबजर्वर' मे कई लेख लिखे और एक भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना करने के विचार का प्रतिपादन किया। उसी वर्ष (१९०१ मे) मुसलमानो के अधिकारो के रक्षण के लिये प्रान्तीय और अखिल भारतीय कार्पोरेशन बनाने के लिये यू पी मे सिफारिश की गई। किन्तु ये विचार कार्यान्वित नही हुए। अन्त मे १ अक्टूबर १९०६ मे प्रसिद्ध मुस्लिम शिष्ट मण्डल के सदस्यो ने शिमला मे विचार विनिमय किया और इसके फलस्वरूप दिसम्बर १९०६ मे अखिल भारतीय मुस्लिम लीग बनाई गई।

मौलाना मुहम्मद अली ने सन् १९२३ मे बताया—और यह भेद पहले भी प्रकट था—कि उक्त शिष्ट मण्डल का अभिनय अग्रेज सूत्रधारो के निर्देशानुसार किया गया था।[१] अलीगढ कॉलेज के प्रिन्सीपल ऑर्कबोल्ड[३] के द्वारा व्यवस्था की गई थी और उन्होने शिमला मे वाइसराय के निजी सहायक कर्नल डनलप स्मिथ के साथ शिष्ट मडल के सगठन और वाइसरॉय के समक्ष प्रस्तुत किये जाने वाले निवेदन पत्र के सबध मे सारी बाते निश्चित कर ली थी। अलीगढ मे सर सैयद के उत्तराधिकारी नवाब मोहसिन-उस-मुलक और राजभक्त मुसलमानो के नेताओ को १० अगस्त १९०६ के पत्र मे उक्त बातो की सूचना दी गई। पत्र इस प्रकार था —

"महामहिम वाइसरॉय के निजी सहायक कर्नल डनलप स्मिथ ने मुझे बताया है कि महामहिम मुस्लिम शिष्ट मडल से भेट करने के लिये सहमत है। उन्होने यह सलाह दी है कि महामहिम से भेट करने की अनुमति मांगने के लिये व्यवहारा-

---

India, pages 59-60

१ Congress Presidential Address Indian Annual Register 1924 Vol. II. Supplement, page 27

२ अपने मरने से पहले प्रिन्सीपल बेक ने अपने उत्तराधिकारी के लिये प्रबध कर दिया था और इस प्रकार बेक का पद सर थियोडोर मॉरिसन को मिला जो बाद मे भारत परिषद के सदस्य हुए। उस समय मॉरिसन का स्थान आर्कबोल्ड ने लिया। यह अग्रेज भी मि. बेक की भाति मुस्लिम हितों का उत्साही समर्थक था।

नुसार एक पत्र उनके पास भेज दिया जावे । इस सबध मे मुझे कुछ बाते उपयुक्त मालूम होती है । उस नियमानुसार पत्र मे कुछ प्रतिनिधि मुसलमानो के हस्ताक्षर होने चाहिये । स्वय शिष्ट मडल मे सब प्रान्तो के प्रतिनिधि होने चाहिये । तीसरी बात निवेदन पत्र से सबधित है । मेरा सुझाव यह है कि हम उस पत्र का आरभ राजभक्ति की गभीर अभिव्यक्ति द्वारा करे । बाद मे हम स्वशासन की दिशा मे सरकारी प्रयत्न की सराहना करे किन्तु उसी सबध मे हम अपना यह भय भी प्रकट कर दे कि निर्वाचन सिद्धान्त मुस्लिम अल्पसख्यको के हितो के प्रतिकूल होगा । तदुपरान्त विनयपूर्वक यह सकेत किया जाना चाहिये कि मुसलमानो की माग को पूरा करने के लिये धर्मानुसार प्रतिनिधित्व देने अथवा नाम निर्देशन करने की व्यवस्था की जावे । इसके अतिरिक्त हमे यह भी कहना चाहिये कि भारत जैसे देश मे जमीदारो को उपयुक्त महत्व देना आवश्यक है ।

व्यक्तिगत रूप से मेरा यह विचार है कि नामनिर्देशन की व्यवस्था का समर्थन करना मुसलमानो के लिये हितकर होगा—निर्वाचन पद्धति के प्रयोग करने का समय अभी नही आया है । निर्वाचन द्वारा मुसलमानों के लिये उचित अनुपात मे स्थान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन होगा । दृष्टिकोण के सबध मे मुझे पृष्ठ भूमि मे रखा जावे । यह दृष्टिकोण आपकी ओर से व्यक्त होना चासिये । आप लोगो के लिए प्रस्तावित निवेदन पत्र तैयार कर सकता हू, अथवा दोहरा सकता हू । यदि इस पत्र को बम्बई मे भाषाबद्ध किया जावे तब भी मै उसे देख सकता हू क्योकि जैसा कि आप परिचित है, ऐसी बातो को मै उपयुक्त भाषा मे लिखना अच्छी तरह जानता हू । कृपया इस बात का ध्यान अवश्य रखिये कि समय अधिक नही है और प्रबल सगठन करने के लिये हमे शीघ्रता करनी चाहिये ।"[1]

इस पत्र के आदेशों का अक्षरश पालन किया गया और हिज हाईनेस आगा खा के नेतृत्व मे विभिन्न प्रान्तो के ३५ प्रभावशाली मुसलमानो के एक शिष्ट मडल का सगठन किया गया और इस शिष्ट मडल ने १ अक्टूबर १९०६ को शिमला मे वाइसरॉय से भेट की । निवेदन पत्र मि आर्क बोल्ड के अनुसार ही तैयार किया गया था और उसे मुख्यत मि सैयद हसन बिलग्रामी और सर अली इमाम ने लिखा था और सभवत वह प्रिन्सीपल आर्कबोल्ड द्वारा दोहराया गया था ।

१ अक्टूबर १९०६ को शिमला मे लॉर्ड मिण्टो के समक्ष जो पत्र प्रस्तुत किया गया था, वह एक लम्बा और महत्वपूर्ण लेख्य था । उस मे मुस्लिम वर्ग की

१. Mehta & Patwardhan : The Communal Triangle in India, page 62.

ओर से दो महत्वपूर्ण मागे की गई थी। एक तो यह "कि किसी भी प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष निर्वाचन व्यवस्था मे अथवा अन्य किसी व्यवस्था मे जिस से उनके पद और बल पर प्रभाव पडता हो, मुसलमानो की स्थिति केवल इनकी संख्या के ही अनुरूप नही वरन् उनके व्यावहारिक महत्त्व और उनकी साम्राज्य सेवा के अनुरूप भी होनी चाहिए और साथ ही इस सम्बन्ध में इस बात पर समुचित ध्यान दिया जाना चाहिए कि लगभग एक शताब्दी पहले भारत मे उन की क्या स्थिति थी।"[१] दूसरी बात यह कि प्रचलित निर्वाचन और नाम निर्देशन व्यवस्थाओ से मुसलमानो को पर्याप्त सख्या मे अथवा उचित प्रकार का प्रतिनिधित्व नही मिला था। अत: प्रस्तावित सुधारो मे उन्हे पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रो द्वारा अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार दिया जावे। निवेदन पत्र मे मुस्लिम प्रतिनिधित्व के लिए एक विस्तृत योजना की रूप-रेखा दी गई। इस योजना मे स्थानीय स्वशासन सस्थाओ से लेकर विधान परिषद् और विश्वविद्यालयो तक सभी सस्थाओ मे प्रतिनिधित्व के प्रश्न को लिया गया था।[२] सम्राज्ञीय विधान परिषद् के सम्बन्ध मे शिष्ट मडल ने कहा "(अ) परिषद् मे मुसलमान प्रतिनिधियो का अनुपात उनकी जातीय सख्या शक्ति के आधार पर निश्चित नही किया जावे और किसी भी दशा में मुस्लिम प्रतिनिधिगण निष्क्रिय अल्प सख्यक नही हो, (ब) निर्वाचन की नियुक्तियो को नाम निर्देशन की अपेक्षा यथासभव अधिक मान्यता दी जावे, (स) मुसलमान सदस्यो को छाटने के लिये, सरकार द्वारा निर्दिष्ट हैसियत के मुसलमान ज़मीदारो, वकीलो, व्यापारियो, प्रान्तीय परिषदो के सदस्यो और विश्वविद्यालय के सभ्यों का निर्वाचन क्षेत्र बनाया जावे और चुनने की पद्धति सरकार द्वारा निश्चित की जावे।"[३]

इन दो महत्वपूर्ण मागो के अतिरिक्त शिष्ट मंडल ने नौकरियों मे अधिक प्रतिनिधित्व के लिये, कार्यकारिणी मे भारतीय सदस्य नियुक्त होने की दशा में उनके हितो के संरक्षण के लिए और एक मुस्लिम विश्वविद्यालय की स्थापना में सहायता के लिए भी माग की। उस निवेदन पत्र के अन्त में यह कहा गया कि सरकार मुस्लिम हितो को प्रोत्साहित करके उन की राजभक्ति की भावना को सुदृढ करेगी और इस प्रकार राजनीतिक प्रगति और राष्ट्रीय समृद्धि की नीव रखेगी।[३]

लॉर्ड मिंटो ने अपने उत्तर मे शिष्ट मडल के दृष्टिकोण को मान्यता दी और इस बात का आश्वासन दिया कि "ऐसी किसी भी शासन व्यवस्था में जिसका मुझ

१. Hindustan Review, February 1909, page 145
२. उपर्युक्त पत्र, पृष्ठ १४९-१५०.
३. उपर्युक्त पत्र, पृष्ठ १५०.

से सम्बन्ध होगा, मुस्लिम हितो और राजनीतिक अधिकारो को सरक्षण प्राप्त होगा।"[१] वह वाक्यावली इतनी महत्त्वपूर्ण है कि उसे विस्तार पूर्वक उद्धृत करना उपयुक्त होगा। वाइसरॉय ने कहा —

"मै आपके सम्बोधन का सार यह समझ पाया हूँ कि किसी भी प्रतिनिधित्व व्यवस्था मे जिस मे निर्वाचन प्रणाली को अपनाया अथवा बढ़ाया जावे, मुसलमानों का प्रतिनिधित्व एक समाज के रूप मे होना चाहिए। आपने इस बात का सकेत किया है कि बहुत से वर्तमान निर्वाचन क्षेत्रो से मुसलमानो के चुने जाने की आशा नही की जा सकती। यदि संयोगवश वह चुन भी लिया जाता है तो वह एक विरोधी बहुसंख्यक वर्ग का प्रतिनिधित्व नही कर सकता। आप लोगो की यह माग उचित है कि मुसलमानो की स्थिति उन की सख्या शक्ति से न आकी जावे वरन् उसका माप उन की राजनीतिक महत्ता और साम्राज्य सेवा के आधार पर की जावे। मै आप से पूर्णत. सहमत हूँ। कृपया मुझे गलत न समझियेगा; मै किसी साधन या व्यवस्था का निर्देश नही कर रहा। किंतु आप की भाति मुझे इस बात का पूर्ण विश्वास है कि इस महादेश की विभिन्न जातियो की धारणाओ और परम्पराओं से असबद्ध निर्वाचन व्यवस्था का भविष्य कुटिलता और असफलता से भरा हुआ है।"[२]

इस प्रकार भारत मे सम्राट् के प्रतिनिधि ने साम्प्रदायिक निर्वाचन के सिद्धात को स्वीकार किया। लॉर्ड मिटो की जीवनी मे मौलिक उद्देश्य को एक महत्त्वपूर्ण वाक्य मे इस प्रकार प्रकट किया गया है —"इस व्याख्यान ने नि सदेह रूप से मुसलमानो को राजद्रोही दल मे भर्ती होने से रोक दिया; उपद्रव के बादल मंडरा रहे थे और उन दिनो इस रोक का असाधारण मूल्य था।"[३]

भारत सरकार को अपनी प्रतिनिधित्व योजना बनाने मे पूरे दो वर्ष लगे और इस योजना मे मुसलमानों के लिये साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धात को

१. An Indian Mohammedan : British India, page 486

२. Buchan : Lord Minto, page 244.

३. Buchan : Lord Minto, page 244 यहा लॉर्ड मिटो के व्याख्यान के सम्बन्ध मे लॉर्ड मार्ले के मत का अभिलेख करना उचित होगा। उन्होने कहा, "मुस्लिम विवाद मे अब मै आपका अनुसरण नही करूँगा। मै आप को यह याद दिलाना चाहता हूं कि उनके असाधारण अधिकारो के बारे मे आपके व्याख्यान ने ही यह मुस्लिम हौआ खड़ा कर दिया है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरा निर्णय सर्वोत्तम था।" (Recollections, Vol. II, page 325) इसी अध्याय में आगे चल कर लॉर्ड मार्ले के प्रस्ताव की चर्चा की गई है।

रूप दिया गया। भारतीय विधान परिषद मे मुसलमानो के प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध मे भारत सरकार ने १ अक्तूबर १९०८ को भारत मन्त्री के पास अपना राजपत्र भेजा और उसमे लिखा ––"हमने मुसलमानो की मागो और हिदुओ के दृष्टिकोण पर भली भाति-ध्यान दिया है। हमारे विचार से मुसलमानो की मागो को पूरा करने के लिए उन्हे चार निर्वाचन स्थान प्रदान किये जावे और जब तक निर्वाचन के लिए उपयुक्त प्रबन्ध न हो, तब तक पाचवें स्थान के लिये नाम निर्देशन किया जावे। अधिकतम मुस्लिम जनसख्या वाले चार प्रान्तो को––अर्थात् बगाल, पूर्वी बंगाल तथा आसाम, पजाब और यू पी. को––उक्त चार निर्वाचन-स्थान स्थायी रूप से प्रदान कर दिये जावे और पाचवे स्थान की पूर्ति यथाक्रम बम्बई और मद्रास से की जावे क्योकि इन प्रान्तो मे मुस्लिम जनसख्या कम है।"[१] भारत सरकार के मतानुसार निर्वाचन क्षेत्र बनाने के सम्बन्ध मे सभी प्रान्तो के लिए एक ही व्यवस्था अपनाना सभव नही था। राजपत्र मे कहा गया, "हमारा यह मत है कि जिन प्रान्तो मे नियमित मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र द्वारा चुनाव सभव है, वहां उस व्यवस्था को अपना लिया जावे, जहा निर्वाचन क्षेत्र नही बन सकते वहा मुस्लिम सस्थाओ से लाभ उठाया जावे, और जहा उपर्युक्त दोनो बाते सभव न हो वहा सरकार नाम निर्देशन करे।"[२] प्रान्तीय परिषदो के लिए मुसलमानो को कुछ स्थान प्रदान किए गए थे। इन के लिए भी पृथक् निर्वाचन क्षेत्रो द्वारा चुनाव की व्यवस्था की गयी और निश्चित मालगुजारी अथवा आय-कर देने वालो को अथवा भारतीय विश्वविद्यालयो के पाच वर्ष से अधिक अवधि के निबन्धित स्नातको को मताधिकार दिया गया।

मुसलमानो और जमीदारों के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्रो के सम्बन्ध में लॉर्ड मॉर्ले ने भारत सरकार की योजना का अनुमोदन नही किया। भारतीय विधान मडल के सम्बन्ध मे अन्य जातियो के लिए प्रान्तीय परिषदो के गैर-सरकारी सदस्यो द्वारा परोक्ष निर्वाचन की व्यवस्था थी। इसी प्रकार प्रान्तीय परिषदो के लिए चुगी और जिला मंडलो के सदस्यो द्वारा निर्वाचन की व्यवस्था थी। लॉर्ड मॉर्ले ने २७ नवम्बर १९०८ के अपने राजपत्र मे इन प्रस्तावो का कई कारणो से विरोध किया। एक कारण तो यह था––और यह आपत्ति भारतीय राष्ट्रवादियो को भी थी––कि पृथक् निर्वाचन क्षेत्रो से हिंदुओ और मुसलमानो के बीच की खाई अधिकाधिक चौडी होती जायगी। इसके अतिरिक्त भारत मन्त्री को दो मुख्य आपत्तिया और थी। एक तो यह कि भारत सरकार के प्रस्तावों

१. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Vol. I, page 293.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २९४.

ने हिन्दुओ और मुसलमानो मे द्वेषपूर्ण भेदभाव किया था, और दूसरा यह कि बहुत सी स्थितियो मे मुसलमानो को दुहरा मताधिकार दिया गया था। इन दोषो को दूर करने के उद्देश्य से लॉर्ड मार्ले ने विभिन्न जातियो और वर्गों के अभ्यर्थियो के चुनाव के लिए एक सयुक्त निर्वाचन मडल की योजना का प्रस्ताव रखा। इस योजना मे विभिन्न जातियो और वर्गो के अनुपातानुसार उन्ही विभिन्न जातियो और वर्गों के चुने हुए प्रतिनिधियो द्वारा निर्वाचन मडल बनाने का प्रस्ताव किया गया। उदाहरण के लिए मान लीजिये कि किसी निर्दिष्ट स्थान से तीन हिदू और एक मुस्लिम प्रतिनिधि चुन कर भेजे जाने थे। ऐसी दशा मे उपर्युक्त योजना के अनुसार तीन और एक के अनुपात मे ७५ हिदुओ और २५ मुसलमानो का निर्वाचन मडल बनाया जा सकता था। इस मडल को बनाने के लिए विभिन्न निर्वाचन क्षेत्रो जैसे (१) निश्चित रकम से अधिक मालगुजारी देने वाले जमीदारो, (२) ग्राम्य अथवा तहसील मडलो के सदस्यो, (३) जिला मडलो के सदस्यो, (४) और नगरपालिका सस्थाओ के सदस्यो द्वारा, इन क्षेत्रो के लिए निर्दिष्ट सख्या के अनुसार प्रतिनिधि चुनवाने की व्यवस्था थी। इन निर्वाचन क्षेत्रो से बहुमत पाने वाले ७५ हिदू और २५ मुसलमान चुने जाने थे। निर्वाचित मुसलमानो की सख्या २५ से कम होने की दशा मे नाम निर्देशन द्वारा कमी को पूरा करने की व्यवस्था थी।"[1] निर्वाचन मडल के प्रत्येक सदस्य को एक वोट देने का अधिकार था। इस प्रकार उपर्युक्त योजना के फलस्वरूप एक मुस्लिम और तीन हिदू सदस्य चुने जा सकते थे।

लॉर्ड मार्ले ने अपनी इस योजना को भारत सरकार के समक्ष रखा और इस सम्बन्ध मे उन्होने ये ध्यान देने के योग्य शब्द लिखे — "यह सच है कि इस योजना मे प्रारम्भिक निर्वाचक और अन्तिम रूप से निर्वाचित व्यक्ति के बीच बहुत बडी दूरी है, साथ ही यह पद्धति सरल प्रतीत नही होती। परन्तु मै इतना अवश्य कह सकता हूँ कि अल्पसख्यको के प्रतिनिधित्व के लिए इससे सरलतर कोई व्यवस्था नही हो सकती। एक वोट की प्रणाली इस योजना का अनिवार्य अग है, उसे सतोषप्रद रूप से कार्यान्वित किया जा सकता है और निर्वाचक उसे समझ सकते है। साथ ही इस योजना मे कई महत्वपूर्ण लाभ है। इस योजना मे सभी सम्बन्धित वर्ग सार्वजनिक निर्वाचन क्षेत्र के अन्तर्गत रहेगे और हिदुओ की आलोचना का आधार मिट जावेगा—, दूसरी बात यह है कि इस योजना मे एक ऐसे सिद्धात को मान्यता दी गई है कि उसके द्वारा विशेष वर्गो और सस्थाओ की प्रतिनिधित्व सम्बन्धी माग का सामना किया जा सकता है,

१. Mukherjee Indian Constitutional Documents, Vol. I, page 312.

तीसरी बात यह है कि इस योजना के अनुसार निर्वाचित व्यक्ति उसी स्थान का रहने वाला होगा जिसका कि निर्वाचन मडल प्रतिनिधित्व करता है, चौथी बात यह है कि इस योजना के कारण स्थानीय स्वशासन को हितकर प्रोत्साहन मिलेगा और जनता का ध्यान स्थानीय सस्थाओ की ओर आकर्षित होगा और प्रान्तीय विधान परिषद् के साथ इन स्थानीय संस्थाओ का सम्बन्ध घनिष्टतर हो जावेगा।"[1]

भारत की तत्कालीन परिस्थितियो के लिए लॉर्ड मार्ले की प्रस्तावित योजना सर्वोत्तम थी। इस योजना मे देश के राष्ट्रीय हितो को क्षति पहुचाए बिना ही सब जातियो और वर्गो के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई थी और उसमे एक जाति और दूसरी जाति के बीच कोई द्वेषपूर्ण भेद-भाव नही किया गया था। किंतु होना कुछ और था, मुसलमानो ने और उनके मित्र ब्रिटिश कर्मचारियो[2] ने इस बात पर जोर दिया कि पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रो द्वारा ही मुस्लिम हितो की उचित रूप से रक्षा की जा सकेगी और सयुक्त निर्वाचन मडल की व्यवस्था से उन्हे ठीक ढग का प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होगा और अन्त मे भारत मन्त्री को इन लोगो के आगे झुकना पडा।

६

यह बात बडी आश्चर्यपूर्ण प्रतीत होती है कि केवल दो वर्ष की एक शैशवपूर्ण सस्था, लॉर्ड मॉर्ले जैसे आधुनिक, अत्यन्त दृढ और अनुभवी भारत मन्त्री को अपने रोब मे ले आई, किंतु हुआ यही। दिसम्बर १९०६ मे विभिन्न प्रान्तो के मुसलमान ढाका मे मुस्लिम शिक्षण सम्मेलन के लिए एकत्रित हुए थे और उन्ही लोगो ने वही पर अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की थी। दिसम्बर १९०७ मे कराची मे उसका सविधान बनाया गया था किंतु उसका अनुसमर्थन मार्च १९०८ मे लखनऊ मे हुआ। इस प्रकार मुस्लिम लीग का पहला नियमानुसार अधिवेशन दिसम्बर १९०८ मे अमृतसर मे हुआ। सर सैयद अली इमाम इस अधिवेशन के सभापति थे। सविधान के अनुसार लीग मे एक स्थायी अध्यक्ष का पद था। सन् १९१३ तक हिज हाइनेस आगा खा अध्यक्ष पद पर रहे किंतु

१. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Vol. I, page 316.

२. मि. रैमज़े मैकडोनैल्ड के अनुसार भारतीय राजनीति मे साम्प्रदायिकता की माग और उसके प्रवेश का दायित्व अग्रेज़ अधिकारियो पर था। इस सम्बन्ध मे देखिये— Ramsay Macdonald : The Awakening of India, page 176.

उस वर्ष लीग की नीति मे मौलिक परिवर्तन हो जाने के कारण त्यागपत्र देकर अलग हो गये ।

कांग्रेस की भाति अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की भी विभिन्न प्रान्तो मे और साथ ही लन्दन मे शाखाए बनाई गई । लन्दन शाखा के अध्यक्ष थे सर सैयद अमीर अली । सविधान मे लीग के उद्देश्य को इस प्रकार व्यक्त किया गया — "(१) भारतीय मुसलमानो मे ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति की भावनाओ को बढाना और सरकार के उद्देश्य तथा उस की नीति के सम्बन्ध मे यदि कोई भ्रम-पूर्ण धारणा हो तो उसे दूर करना, (२) भारतीय मुसलमानो के राजनीतिक एव अन्य अधिकारो की रक्षा करना और उनकी आकाक्षाओ तथा आवश्यकताओ को सरकार के समक्ष मृदु भाषा मे प्रस्तुत करना, (३) पहले दोनो उद्देश्यो को बिना किसी प्रकार की क्षति पहुचाये मुसलमानो और भारत की अन्य जातियो मे मित्रता की भावनाओ का प्रसार करना ।"[१]

इस प्रकार लीग एक राजभक्त सस्था थी जिसका सगठन सरकार के समक्ष मुसलमानो की विशेष मागे प्रस्तुत करने के लिए किया गया था । पहले दो वर्षो (१९०६ और १९०७) मे लीग की केन्द्रीय समिति और प्रान्तीय शाखाओ ने अपने प्रस्तावो मे केवल एक राग अलापा था और वह यह था कि मुसलमानो के हित मे सरकारी उपहारो—नौकरियो और पदो—के प्रचुर वितरण का अनुग्रह किया जावे ।[२] परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता गया, लीग का दृष्टिकोण अधिकाधिक स्वतन्त्र होता गया और वह मागे पूरी न की जाने की दशा मे अभक्ति के लिए धमकी भी देने लगी । सन् १९०८ मे सर सैयद अली इमाम ने सभापति के पद से अपने भाषण मे शिक्षित मुसलमानो की ओर से कहा, "मातृभूमि के लिये हमारा प्रेम और आदर किसी से कम नही है ।" उन्होने यह भी कहा कि व्यावहारिक राजनीति के महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर कांग्रेस और लीग मे कोई भेद नही है ।[३] अन्तर मुख्यत उद्देश्य

१ Hindustan Review, April 1909, pages 346-347.

२ Hindustan Review, April 1909, page 350.

३ उन्होने १४ बातो की सूची दी —(१) न्यायपालिका और कार्यकारिणी का पृथक्करण, (२) अपमानजनक औपनिवेशिक अध्यादेशो का खडन, (३) प्रारम्भिक शिक्षा का विस्तार, (४) सार्वजनिक नौकरियो के उच्च पदो पर अधिकाधिक भारतीयो की नियुक्ति, (५) समार्जन की व्यवस्था ··, (६) स्थानीय स्वशासन मे सरकारी हस्तक्षेप की नीति का परित्याग, (७) सैन्य व्यय मे उचित कमी; (८) भारत की सामरिक जातियो के लिए स्वय सेवको की भाति लड़ने के अधिकार की मान्यता; (९) भारतीयो की सैनिक अफसरो के पदो पर नियुक्ति, (१०) होम चार्जेज का समुचित

और पद्धति मे था। काग्रेस औपनिवेशिक ढग पर स्वशासन प्राप्त करना चाहती थी लीग प्रशासनीय सुधारो की माग से सतुष्ट थी और वह चाहती थी कि एक उदार व्यवस्था मे शिक्षित भारतीयो की स्वाभाविक आकाक्षाए मे पूर्ण हो।[1] इस सम्बन्ध मे सर अली इमाम ने कहा —"क्या इस स्वशासन के आदर्श ने लोगो को उत्तेजित नही कर दिया है ? उसके कारण लोगो मे अधैर्य आ गया है। सतुलन के अभाव मे उग्रता आ गई है और इस उग्रता ने अराजकता, बम, गुप्त समितियो और हत्याओ को जन्म दिया है।"[2] अत लीग ने अपने लिए एक नम्र आदर्श निश्चित किया और शान्तिपूर्ण उपायो को अपनाया।"

किंतु साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के सम्बन्ध मे उसने बडी कठोर नीति अपनाई और मागे पूरी न की जाने की दशा मे राजभक्ति और समर्थन की नीति छोड देने की धमकी दी। लीग ने सयुक्त निर्वाचन मडल की योजना का विरोध किया और "विशुद्ध रूप से साम्प्रदायिक आधार पर प्रतिनिधित्व के लिए" ज़ोर दिया। "साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए इग्लैड और भारत मे मच और पत्रो को सहायता से एक बडे आन्दोलन का सगठन किया गया।" इग्लैड मे मि अमीर अली और मेजर सैयद हसन बिलग्रामी ने लॉर्ड मॉर्ले को अपने पक्ष मे लाने के उद्देश्य से लन्दन टाम्इस मे पत्र लिखे। लेकिन जब इन पत्रो का कोई प्रभाव नही हुआ तो एक शिष्टमडल का सगठन किया गया और उसने भारत मन्त्री से भेट की। लॉर्ड मॉर्ले का उत्तर कूट नीति पूर्ण था और उस से कोई बात निश्चित नही होती थी। लॉर्ड मॉर्ले के अस्पष्ट आश्वासन से सतुष्ट न होने के कारण अखिल भारतीय मुस्लिम लीग फिर लॉर्ड मिटो के पास पहुची।"[3] और उसके समक्ष वही निवेदन किया जो लन्दन मे लॉर्ड मॉर्ले के सामने किया जा चुका था। इस भेट मे लीग को सफलता प्राप्त हुई। भारत सरकार ने मुस्लिम मागो का समर्थन किया, भारत मन्त्री झुक गए और उन्होने मुसलमानो के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्रो की योजना को स्वीकार कर लिया।

---

विभाजन, (११) मालगुज़ारी की सीमा, (१२) ग्राम समितियो की स्थापना, (१३) भारतीय शिल्प और धधो का सरक्षण और उनका प्रोत्साहन, (१४) शासको और शासितो के बीच समान व्यवहार। Hindustan Review April 1909, pages 350-351 से अनवादित।

१ उपर्युक्त पत्र, पृष्ठ ३५१.

२ उपर्युक्त पत्र, पृष्ठ ३५४.

३. उपर्युक्त पत्र, पृष्ठ ३५६

७

एक ओर तो मुसलमानों की नई साम्प्रदायिक संस्था पृथक निर्वाचन क्षेत्रों की माग पर जोर दे रही थी और दूसरी ओर देश के राष्ट्रवादी—हिन्दू और मुसलमान—नेता तथा समाचार-पत्र उसका प्रबल विरोध कर रहे थे। लाला लाजपतराय और श्री सी. वाई चिन्तामणि[1] दोनों ने बडी योग्यता के साथ राष्ट्रवादी पक्ष को प्रस्तुत किया और मुस्लिम मागों के अनौचित्य और उनकी कुटिलता पर प्रकाश डाला। उन्होने पृथक साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र के सिद्धान्त को स्वीकार करने और साथ ही अल्पसख्यकों को उनकी सख्या-शक्ति से अधिक प्रतिनिधित्व देने के दुष्परिणामो को बताया। कुछ देशभक्त मुसलमानो ने भी इन लोगों का समर्थन किया। सन् १९०८ मे नबाब सादिक अली खा, बैरिस्टर ने लखनऊ मे कहा "इस योजना में वर्ग और धर्म के आधार पर प्रतिनिधित्व का सिद्धान्त अत्यन्त कुटिलतापूर्ण है। मुसलमानों को यह सिखाना ठीक नही है कि उनके और हिन्दुओं के राजनीतिक हित भिन्न है। मेरी अपनी सम्मति यह है कि स्वय मुसलमानों के दृष्टिकोण से भी यह सिद्धान्त कुटिलतापूर्ण है।"[2] उसी अवसर पर एक दूसरे मुसलमान ने स्पष्ट शब्दो मे कहा· "भारत मे एक राष्ट्र बनाने के प्रयत्न को निष्फल करने के उद्देश्य से यह कहा जाता है कि मुसलमानो के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र होने चाहिए। इस व्यवस्था से पारस्परिक विच्छेद को प्रोत्साहन मिलेगा दूसरी ओर सयुक्त क्षेत्र से निर्वाचित होने की दशा मे पारस्परिक सम्पर्क घनिष्टतर होगा।"[3] सन् १९११ मे मि रैमजे मैकडोनलड ने अपनी पुस्तक मे लिखा —"मुस्लिम समाज के कुछ दूरदर्शी सदस्य अब इस बात को अनुभव करने लगे है कि उनसे गलती हो गई है। उनमे से कुछ लोगो ने बडे तीखेपन के साथ मुझे यह बताया कि किस प्रकार उनके कुछ नेताओ ने आगल-भारतीय अधिकारियो द्वारा रचे हुए अभिनय मे सहयोग प्रदान करने की स्वीकृति दे दी थी; अन्य कुछ लोग इस मत के है कि जो कुछ हुआ वह ठीक है लेकिन धीरे-धीरे उन्हे भी यह बोध हो रहा है कि आगे खतरा है और वे यह अनुभव कर रहे है कि उन्होने इतनी लम्बी चौडी मागे न की होती तो ज्यादा अच्छा होता।[4]

मुसलमानो में चाहे जो मतभेद हो कि लीग की नीति बुद्धिमतापूर्ण थी अथवा

१ Hindustan Review, April 1909, page 320 to 336

२ उपर्युक्त मासिक पत्र, पृष्ठ ३२३

३. उपर्युक्त मासिक पत्र, पृष्ठ ३२४.

४ Macdonald: The Awakening of India, page 129.

नही किन्तु इस बात से सभी भारतीय सहमत थे कि लोगों को एक होने से[1] रोकने के लिये ब्रिटिश कर्मचारीतन्त्र ने बडी चालाकी की चाल चली थी और इस प्रकार सुधारो को उनकी बहुत बडी उपयोगिता से वचित कर दिया था। अप्रैल १९०९ के 'हिन्दूस्तान रिव्यू' मे एक भारतीय मसलमान ने लिखा है —"मेरे जाति-भाइयो का भारत मे एक असधेय अल्स्टर बनाने का प्रयत्न श्लघ्य नही है।" उसी लेखक ने इस सबध मे यह सच्ची भविष्यवाणी की —"इस प्रयत्न से यूनान की पौराणिक गाथाओ के पैंडोरा का दूर्भाग्य पिटारा खुल जावेगा और भारत को एक अत्यन्त जटिल और गभीर परिस्थिति का सामना करना पडेगा।"[2]

---

१ मि मैकडोनल्ड लिखते है :—"यह कहना कठिन है कि अग्रेज अधिकारियो ने इस नीति को जान बूझ कर, फूट डाल कर राज्य करने के कुटिल उद्देश्य से अपनाया अथवा भारत को ठीक न समझने के कारण और अपने कामो के फल का अनुमान न कर सकने की दशा मे यह उनकी एक भयकर भूल थी। लॉर्ड मिटो के व्याख्यानो, उत्तर मे लॉर्ड मॉर्ले के व्याख्यानो और परस्पर-विरोधी राजपत्रो के तथ्यो पर अभी प्रकाश पडना बाकी है।"—The Awakening of India, page 176

२ Hindustan Review, April 1909, page 357.

## सोलहवां अध्याय

# मार्ले-मिण्टो सुधार

१

भारत के नरम दली नेताओ ने मॉर्ले मिण्टो सुधारो का सोत्साह स्वागत किया लेकिन १९०९ के भारतीय परिषद् एक्ट के अन्तर्गत, भारत सरकार द्वारा निर्मित विनियमो की दिसम्बर, १९०९ के काग्रेस अधिवेशन मे तीव्र आलोचना की गई। इन विनियमो को १५ नवम्बर १९०९ के सुधार सम्बन्धी सरकारी प्रस्ताव मे रूप दिया गया था। उन पर अपना मत प्रकट करते हुए सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कहा, "इन नियमो और विनियमो ने सुधारो की योजना को वस्तुत निरर्थक कर दिया है।"[1] अस्तु, सुधारो—एक्ट और विनियमो—के गुणो और दोषो का विवेचन करने मे पहले, स्वय सुधारो की रूपरेखा का परीक्षण करना उपयुक्त होगा।

२

लॉर्ड मॉर्ले और मिण्टो के नामो से सम्बन्धित पहला महत्त्वपूर्ण सुधार यह था कि भारत मत्री और वाइसराय, दोनो की परिषदो मे भारतवासियो को नियुक्त करने की व्यवस्था की गई थी।

वाइसरॉय की कार्यकारिणी परिषद् मे किसी भारतीय को नियुक्त करने के प्रश्न पर मार्च १९०६ मे लॉर्ड मिण्टो ने अपनी परिषद् के कुछ सदस्यो के साथ सबसे पहली बार विचार किया था। वाइसरॉय ने सुधारो से सम्बन्धित कमेटी से भी इस प्रश्न पर विचार करने के लिए कहा। कमेटी के आधे सदस्य पक्ष मे और आधे सदस्य विपक्ष मे थे। लेकिन परिषद् मे इस प्रस्ताव का प्रबल विरोध हुआ[2]—केवल एक सदस्य ने उसके पक्ष मे अपना मत दिया। किन्तु इतने पर भी वाइसरॉय अपने मत पर दृढ रहे क्योकि उनकी सम्मति मे विपक्षियो के विरोध का आधार अत्यन्त सकीर्ण था। इन लोगो के अनुसार "असाधारण उत्तरदायित्व के पद पर किसी देशी आदमी का विश्वास करना अत्यन्त जोखिमपूर्ण था।"[3] इसके अतिरिक्त लॉर्ड मिटो ने सरकारी विरोध को विशेष महत्त्व नही दिया लेकिन दूसरी ओर परिषद् मे भारतीय सदस्य की नियुक्ति न होने की दशा मे उन्हे "देशी

१ Mrs. Besant How India Wrought for Freedom, page 495.

२ लॉर्ड किचनर और सर डेजिल इबटसन ने प्रबल विरोध किया था।

३. Buchan Lord Minto, page 253.

आन्दोलन" का डर था। इस सम्बन्ध में भारत मन्त्री और इंग्लैण्ड के अन्य राजमन्त्री भारत परिषद् तथा वाइसरॉय की कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों और लॉर्ड रिपन तथा लॉर्ड एल्गिन जैसे व्यक्तियों की सम्मतियों की उपेक्षा करने को तैयार नहीं थे।[1] लॉर्ड मॉर्ले ने लॉर्ड मिन्टो को लिखा "भारतीय सदस्य के सम्बन्ध में मुख्य विचारणीय बात है आपकी और मेरी परिषद् के सदस्यों का दृष्टिकोण,[2] और दूसरी बात है आंग्ल भारतीय कोप और भय के उफान की जोखिम।"[3] लेकिन जुलाई १९०७ में लॉर्ड मॉर्ले ने इसी दिशा में एक महत्त्वपूर्ण पग बढाने का निश्चय किया और अपनी परिषद् में एक या दो भारतीयों को नियुक्त करने का अपना उद्देश्य प्रकट किया। इसी विचार से अगस्त १९०७ में एक एक्ट द्वारा भारत परिषद् के संविधान में संशोधन किया गया और उसी मास में भारत परिषद् के लिए दो भारतीय सदस्य नियुक्त कर दिये गए। ये सदस्य थे मि० एम० के० गुप्त और सैयद हुसेन बिलग्रामी। मि० गुप्त सिविल सर्विस के सदस्य थे और मि० बिलग्रामी एक योग्य, चालाक और राजभक्त व्यक्ति थे। १ अक्टूबर १९०६ को वाइसरॉय के समक्ष मुस्लिम शिष्ट मंडल ने जो निवेदनपत्र प्रस्तुत किया था, मि० बिलग्रामी उसके लेखक थे और नियुक्ति के समय वे हैदराबाद के निजाम के प्रमुख परामर्शदाता थे।

लॉर्ड मॉर्ले ने अपनी परिषद में दो भारतीयों की नियुक्ति को विशेष महत्त्व दिया। वाइसरॉय की कार्यकारिणी के लिए भारतीय सदस्य नियुक्त करना इसी दिशा में अगला कदम था और अब केवल समय का प्रश्न था।[4] अस्तु, २४ मार्च

---

१. लॉर्ड रिपन और लॉर्ड एल्गिन का विरोध इस आधार पर था कि भारतीय सदस्य से सैनिक और विदेशी भेद गुप्त न रह सकेंगे।

२ भारत परिषद ने एकमत से इस प्रस्ताव का विरोध किया था।

३ Morley · Recollections, Vol. II, page 212.

४. लॉर्ड मॉर्ले ने अपनी परिषद् में दो भारतीयों को नियुक्त करने के सम्बन्ध में १८ जुलाई १९०७ को लॉर्ड मिंटो को एक पत्र में बताया कि वाइसरॉय की परिषद् में भारतीय सदस्य नियुक्त करने की दिशा में यह पहला कदम था। देखिये Morley · Recollections, Vol. II, page 226

भारतीय दृष्टिकोण को हिन्दुस्तान रिव्यू (सितम्बर १९०७) में इस प्रकार व्यक्त किया गया.—भारतीय जनमत और भावनाओं को संतुष्ट करने के लिए एक दिखावा किया गया है। दाहिने हाथ से जो दिया गया है उसे बायें हाथ से ले लिया गया है। वेस्टमिस्टर के आंग्ल-भारतीय मंदिर में उन लोगों का प्रवेश नहीं है जो भारत सरकार की हां में हां नहीं मिला

१९०९ को बगाल के तत्कालीन महाधिवक्ता मि० एस० पी० सिन्हा की भारत सरकार का विधि सदस्य नियुक्त किया गया। मि० सिन्हा बाद मे सर सत्येन्द्र और अन्त मे लॉर्ड सिन्हा के नाम से प्रसिद्ध हुए।

यह समझना गलत होगा कि इस नियुक्ति का विरोध नही हुआ। जब १७ दि० १९०८ को लॉर्ड मॉर्ले ने लॉर्ड भवन मे, वाइसरॉय की कार्यकारिणी के लिए स्थान रिक्त होने पर, किसी भारतीय की नियुक्ति करने के लिए अपना उद्देश्य पहली बार प्रकट किया तो उसका प्रबल विरोध किया गया। इस पर लॉर्ड मॉर्ले ने वाइसरॉय को लिखा —"यह सौभाग्य की बात है कि आपकी कार्यकारिणी मे भारतीय सदस्य नियुक्त करने के लिए मुझे पार्लियामेण्ट की स्वीकृति प्राप्त करने की वैधानिक आवश्यकता नही है, मे इस बात को अच्छी तरह जानता हू कि लॉर्ड भवन से स्वीकृति नही मिल सकती।"[1]

वाइसरॉय की कार्यकारिणी मे एक भारतीय सदस्य की नियुक्ति का विरोध केवल आग्ल-भारतीयो, अधिकारियो और भारत मन्त्री तथा वाइसरॉय की परिषदो के सदस्यो ने ही नही किया वरन् भारतीय मुसलमानो ने भी किया। उन्हे इस बात का डर था कि यदि केवल एक भारतीय की नियुक्ति की गई तो वह व्यक्ति अवश्य ही हिदू होगा। एक मुस्लिम शिष्टमडल ने भारत मन्त्री से भेट की और दो भारतीयो की नियुक्ति के लिए माँग की ताकि उनमे से एक मुसलमान अवश्य हो। लॉर्ड मॉर्ले के मतानुसार यह प्रस्ताव अव्यवहार्य था—क्योकि उस दशा मे अग्रेजो का अनुपात आपत्तिजनक रूप से घट जाने का भय था—"और यह एक अत्यन्त गम्भीर परिवर्तन था।"[2]

३

सन् १९०९ के भारतीय परिषद् एक्ट का दूसरा महत्त्वपूर्ण सुधार, भारत की विभिन्न विधान परिषदो मे सम्बन्धित था।

इस सम्बन्ध मे एक्ट ने पहली बात तो यह की कि उसने प्रत्येक विधान परिषद्

---

सकते। इस समिति के लिए दत्त और गोखले की तो बात ही क्या, मेहता यहा तक कि अमीर अली भी, उपयुक्त सदस्य नही हो सकते। जिन दो व्यक्तियो को नियुक्त किया गया उनसे किसी प्रकार की क्षति की आशका नही है तथापि एक विशेष विधेयक स्वीकार किया गया है' परिषद् की सख्या बढाई गई है ताकि किसी अग्रेज को भारतीय के लिए अपना स्थान न छोडना पडे।

१. Morley Recollections, Vol. II, page 293

२ Indian Speeches of John Morley, page 265.

की सख्या-शक्ति को बढा दिया। एक्ट के विनियमो ने उनकी सख्या इस प्रकार निश्चित की —सम्राज्ञीय विधान परिषद्, ६९, बगाल विधान परिषद्, ५२, मद्रास, बम्बई और यू पी —प्रत्येक की विधान परिषद्, ४७, पूर्वी बगाल तथा आसाम की विधान परिषद्, ४१, पजाब विधान परिषद्, २५, बर्मा विधान परिषद् १६।[1] सन् १९११ मे जब बग भग रद्द किया गया[2] तो बगाल के अतिरिक्त दो अन्य प्रान्त बनाए गए। इस परिवर्तन के बाद इन प्रान्तो की विधान परिषदो की सख्या इस प्रकार थी —बगाल, ५२, बिहार तथा उडीसा, ४४; और आसाम, २५। इसके अतिरिक्त सरकार के अध्यक्ष को प्रान्तीय विधान परिषद् के लिए विशिष्ट विधान कार्य मे परामर्श देने के उद्देश्य से एक या दो विशेषज्ञो का नाम निर्देशन करने का अधिकार दिया गया।

प्रत्येक विधान परिषद् मे तीन प्रकार के—(१) सरकारी, (२) निर्वाचित; और (३) नाम निर्देशित गैरसरकारी—सदस्य थे। उनकी तुलनात्मक सख्या निम्न तालिका मे व्यक्त की गई है। सख्याएँ सन् १९१२ के आधार पर है और उनमे सरकार के अध्यक्ष अथवा विशेषज्ञो की गणना नही की गई है।

| विधान परिषद् का नाम | निर्वाचित सदस्य | नाम निर्देशित गैर सरकारी सदस्य | सरकारी सदस्य | कुल सख्या |
|---|---|---|---|---|
| भारतीय | २७ | ५ | ३६ | ६८ |
| मद्रास | २१ | ५ | २० | ४६ |
| बम्बई | २१ | ७ | १८ | ४६ |
| बगाल | २८ | ४ | २० | ५२ |
| यू पी | २१ | ६ | २० | ४७ |
| पूर्वी बगाल तथा आसाम | १८ | ५ | १७ | ४० |
| पजाब | ८ | ६ | १० | २४ |
| बर्मा | १ | ८ | ६ | १५ |
| बिहार तथा उडीसा | २१ | ४ | १८ | ४३ |
| आसाम | ११ | ४ | ९ | २४ |

१ सन् १९०५ मे जो बगाल का विभाजन किया गया था उसे सन् १९११ मे रद्द कर दिया गया और प्रान्तीय सीमाओ को फिर से निश्चित किया गया और तीन प्रान्त बनाए गए—(१) बगाल, (२) आसाम, और (३) बिहार तथा उडीसा।

२. सन् १९०९ से पहले परिषदो की सख्या इस प्रकार थी —सम्राज्ञीय

सम्राज्ञीय विधान परिषद् के सम्बन्ध मे भारत सरकार का मौलिक प्रस्ताव यह था कि उसमे सरकारी और गैर सरकारी सदस्यो की संख्या बराबर रखी जाय, ऐसी दशा मे वाइसरॉय अपनी वोट से पलडा झुका सकता था। किंतु भारत मन्त्री ने इस प्रस्ताव को स्वीकार नही किया और उन्होने केन्द्र मे सरकारी बहुमत बनाए रखना आवश्यक समझा। हाँ, प्रान्तीय विधान परिषदो के सम्बन्ध मे लॉर्ड मॉर्ले ने भारत सरकार को सरकारी बहुमत का विचार छोड देने की सलाह अवश्य दी। लेकिन इसके दो कारण थे। पहली बात तो यह थी कि इन परिषदो के अधिकार बहुत सीमित थे और दूसरी बात यह थी कि प्रान्तो के सरकारी अध्यक्षो को इन परिषदो द्वारा स्वीकार किए हुए विधेयको को निषिद्ध कर देने का अधिकार मिला हुआ था। तथापि निर्वाचित सदस्यो को केवल बगाल मे ही बहुमत प्राप्त हुआ।

विनियमो मे, नामनिर्देशित (गैर सरकारी) सदस्यो के सम्बन्ध मे कोई विशेष अर्हता निश्चित नही की गई। कुछ ऐसे हित थे जिन्हे निर्वाचन द्वारा प्रतिनिधित्व प्राप्त नही हो सकता था अथवा जिन्हे अपर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होता था। नाम निर्देशन का उद्देश्य ऐसे हितो को प्रतिनिधित्व प्रदान करना था। इसी दृष्टि से सम्राज्ञीय विधान परिषद् के लिए यह निश्चित किया गया कि नाम-निर्देशित सदस्यो मे एक व्यक्ति भारतीय व्यावसायिक समुदाय का प्रतिनिधि होना चाहिए, एक पजाब का मुसलमान होना चाहिए और एक पजाब का जमीदार होना चाहिए। सरकारी व्यक्तियो मे कुछ लोग पदेन सदस्य होते थे और अन्य सदस्य सरकार के अध्यक्ष द्वारा नामनिर्देशित किए जाते थे। पदेन सदस्यो मे सरकार के अध्यक्ष और कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यो की गणना थी।

किन्तु निर्वाचित सदस्यो के सबध मे बहुत से नियमो को बडे परिश्रम के साथ बनाया गया--उन पर पृथक् रूप से विचार करना उपयुक्त होगा।

४

विनियमो ने प्रत्येक विधान परिषद् के सदस्यो की सख्या को निश्चित कर दिया था और यह सख्या बर्मा मे १ से लेकर बगाल मे २६ तक थी--जो बाद मे बढाकर २८ कर दी गई।[1] इन सदस्यो का प्रादेशिक क्षेत्रो से तो बहुत सीमित रूप मे निर्वाचन होता था। भारत सरकार के अनुसार भारत की परिस्थितियाँ पश्चिमी देशो की परिस्थितियो से भिन्न थी और इस कारण प्रादेशिक निर्वाचन क्षेत्रो से

---

विधान परिषद्, २५, मद्रास, २४, बम्बई, २४, बगाल, २१, यू० पी०, १६, पूर्वी बगाल तथा आसाम, १६, पजाब, १०; और बर्मा, १०।

१. अन्य आकडो के लिए इसी अध्याय का तीसरा खड देखिए।

विभिन्न जातियो, समुदायो और वर्गो का उचित प्रतिनिधित्व नही हो सकता था। सरकार ने अपनी धारणाओ को सिद्ध करने के लिए पिछले चुनावो के आकडे उद्धृत किए, "सन् १८९३ से सम्राज्ञीय परिषद् के गैरसरकारी निर्वाचित सदस्यो मे से ४५ प्रतिशत, वृत्तिमत् मध्यमवर्ग के लोग थे, ज़मीदारो को २७ प्रतिशत स्थान मिले थे, और मुसलमानो को केवल १२ प्रतिशत स्थान प्राप्त हुए थे—और काफी बडे भारतीय व्यापारी समुदाय को जिसका महत्त्व दिन प्रतिदिन बढ रहा था, किसी प्रकार का भी प्रतिनिधित्व प्राप्त नही हुआ था।"[१] इसी प्रकार सन् १८९३ से प्रान्तीय परिषदो मे कुल ३३८ गैरसरकारी सदस्य निर्वाचित हुए थे और "इनमे से १२३ (अर्थात् ३६ प्रतिशत) सदस्य वकील थे और केवल ७७ (अर्थात् २२ प्रतिशत) जमीदार थे।[२] ससार के विभिन्न भागो के प्रतिनिधि भवनो की रचना से परिचित लोगो को इन आकडो मे कोई असाधारण बात प्रतीत नही होगी। कलकत्ते के 'स्टेट्समैन' ने इन प्रतिनिधि भवनो के सबध मे उस समय यह लिखा — "इग्लैंड के हाउस ऑव कॉमन्स, फ्रास के चेम्बर ऑव डेपुटीज और अमेरिका के हाउस ऑव रिप्रेजेंटेटिव्स मे वकीलो का बहुमत है।" और ऐसा होना स्वाभाविक भी है "क्योकि विधान कार्य मे विज्ञ आलोचना की आवश्यकता होती है और इस काम को अपने शिक्षण के कारण वकील लोग साधारण आदमियो की अपेक्षा अधिक कुशलता के साथ कर सकते है। महाराजा और बडे जमीदार समझदारी से बात कर सकते है लेकिन उनमे यह मेधा शक्ति नही होती जिसके द्वारा वकील अपने पक्ष का समर्थन प्राप्त कर लेते है। अत परिषदो मे जमीदारियो की सख्या बढाने के प्रयत्न से सरकार ऐसे लोगो की प्रतिनिधि शक्ति बढाना चाहती है जो विधान कार्य के लिए अनुपयुक्त है। इस प्रकार सरकार उस वर्ग का परित्याग भी कर रही है जिसने सभी जगह अपनी योग्यता का प्रदर्शन किया है। जो लोग विज्ञ आलोचना के लिए निपुण है उन का स्थान ऐसे लोगो को दिया जा रहा है जो आलोचना कर ही नही सकते।"[३] साथ ही इस बात को ध्यान मे रखना चाहिए कि "वकील और अध्यापक वस्तुत अपनी वृत्ति के हितो के प्रतिनिधि की हैसियत से परिषदो मे नही बैठते वरन् वे अपनी शिक्षा, नीक्षण बुद्धि और वाक् शक्ति के कारण कृषकवर्ग का प्रतिनिधित्व प्राप्त कर लेते है।[३] इस प्रकार उक्त दृष्टिकोण के अनुसार

१ Mukherjee: Indian Constitutional Documents. Vol I. page 285,

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २६१

३ Hindustan Review, September 1906, page 276— दूसरा उद्धरण लन्दन के 'नेशन' से लिया गया है। और उक्त मासिक पत्र के पृष्ठ १७६ पर उद्धृत किया गया है।

भारत और पश्चिमी देशो मे कोई अन्तर नही था। इसके अतिरिक्त किसी और दृष्टि से भी भारत और पश्चिमी देशो मे और कोई ऐसा मौलिक अन्तर भी नही था जिसका तत्कालीन राजनीतिक प्रतिनिधित्व की समस्या पर प्रभाव हो। स्वय पश्चिमी देशो मे भूमि और अन्य कुछ हितो को बहुधा अपर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है, और धार्मिक अल्पसख्यको—जैसे यहूदियो और प्रोटेस्टैण्ट देशो मे रोमन कैथोलिक मतावलम्बियो—को अपर्याप्त प्रतिनिधित्व प्राप्त होता है। और उन्हे कभी-कभी तो किसी भी प्रकार का प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होता। और इन मे से किसी भी देश ने कभी भी वर्ग और सम्प्रदाय के आधार पर पृथक् निर्वाचन क्षेत्रो की पद्धति को नही अपनाया। किंतु भारत सरकार के निर्णयानुसार भारत की विशेष परिस्थितियो के लिए वर्ग और सम्प्रदाय के आधार पर विशेष निर्वाचन क्षेत्रो की आवश्यकता थी।

सन् १९०९ के एक्ट सम्बधी विनियमो मे तीन प्रकार के निर्वाचन क्षेत्र बनाए थे —(१) साधारण निर्वाचन क्षेत्र—इन मे प्रान्तीय विधान परिषदो के अथवा नगरपालिका और जिला मडलो के गैरसरकारी सदस्यो की गणना थी; (२) वर्ग निर्वाचन क्षेत्र —इन मे (अ) जमीदारो के निर्वाचन क्षेत्रो का तथा (ब) मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रो की गणना थी, और (३) विशेष निर्वाचन क्षेत्र— इन मे नगर-पालिका कार्पोरेशनो, विश्वविद्यालयो, वाणिज्य मडलो तथा बन्दरगाह मडलो की और रोपक तथा व्यापारिक हितो की गणना थी।

सम्राज्ञीय विधान परिषद् के २७ निर्वाचित सदस्यो का चुनाव इस प्रकार होना था —(१) साधारण निर्वाचन क्षेत्रो मे १३ सदस्य (बगाल, बम्बई मद्रास और यू पी —इन मे से प्रत्येक प्रान्त मे दो सदस्य, और पजाब, बिहार तथा उडीसा, आसाम, बर्मा और मध्य प्रान्त—इन मे से प्रत्येक प्रान्त से एक सदस्य, ये प्रतिनिधि प्रातीय विधान परिषदो के गैरसरकारी सदस्यो द्वारा चुने जाने थे)[1], (२) जमीदारो के निर्वाचन क्षेत्रो से ६ सदस्य (बगाल, बम्बई, मद्रास, यू पी, बिहार तथा उडीसा, और मध्य प्रान्त—इन मे से प्रत्येक प्रान्त से एक सदस्य)[2]; (३) पृथक् मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रो से ६ सदस्य (बगाल से दो[3] और

१ मध्य प्रान्त की विधान परिषद् १९१४ मे बनी, उस से पहले नगरपालिका और जिला बोर्डों के ५० प्रतिनिधियो के निर्वाचन मडल द्वारा सदस्य का चुनाव किया जाता था।

२ पजाब के जमीदारो मे से एक व्यक्ति को नाम निर्देशन द्वारा वाइसराय नियुक्त करता था।

३. इनमे से एक सदस्य को विशेष मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र से चुना जाता था;

मद्रास, बम्बई बिहार तथा उडीसा, और यू पी, इन मे से प्रत्येक प्रान्त मे से एक सदस्य)[1] (४) विशेष निर्वाचन क्षेत्रो मे दो सदस्य (एक बगाल के वाणिज्य मडल का प्रतिनिधि और एक बम्बई के वाणिज्य मडल का प्रतिनिधि)।[2]

इसी प्रकार प्रान्तीय विधान परिषदो के सदस्य तीन प्रकार के (साधारण, वर्ग और विशेष) निर्वाचन क्षेत्रो द्वारा चुने जाते थे। उदाहरण के लिए बम्बई की विधान परिषद को लीजिये। उस मे निर्वाचित सदस्यो की कुल सख्या २१ थी और उनका चुनाव इस प्रकार होता था --(१) साधारण निर्वाचन क्षेत्रो से आठ सदस्य--प्रान्त के चार विभागो मे से प्रत्येक से एक नगरपालिका मडलो का प्रतिनिधि और एक जिला बोर्डो का प्रतिनिधि[3], (२) जमोदारो के निर्वाचन क्षेत्रो से तीन सदस्य--दक्षिण के सरदारो का एक प्रतिनिधि, गुजरात के सरदारो का एक प्रतिनिधि और सिध जागीरदारो का तथा जमीदारो का एक प्रतिनिधि, (३) मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रो से चार सदस्य--बम्बई नगर से एक, प्रान्त के दक्षिणी विभाग से एक, उत्तरी विभाग से एक और केन्द्रीय विभाग से एक, और (४) विशेष निर्वाचन क्षेत्रो से छै सदस्य--बम्बई कार्पोरेशन का एक प्रतिनिधि, बम्बई विश्व विद्यालय का एक प्रतिनिधि, बम्बई तथा अहमदाबाद के मिल मालिको के दो प्रतिनिधि और बम्बई तथा कराची के चैम्बर्स ऑव कॉमर्स (वाणिज्य मडल, तथा भारतीय व्यापारी वर्ग के दो प्रतिनिधि।

विनियमो मे (अ) निर्वाचन के अभ्यर्थियो और (ब) मतदाताओ के लिए अर्हताये भी निश्चित की गई थी। "ऐसे किसी व्यक्ति को निर्वाचन के लिए

दूसरे सदस्य को यथाक्रम बगाल के मुस्लिम जमीदारो और बगाल के मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्र से चुना जाता था।

१ पजाब के लिए, वाइसरॉय एक मुसलमान को नाम निर्देशित करता था।

२ ये वाणिज्य मडल यूरोपीय थे, भारतीय वाणिज्य समुदाय के सदस्य का वाइसरॉय द्वारा नाम निर्देशन होता था।

३ प्रत्येक नगरपालिका और जिला बोर्ड के गैरसरकारी सदस्य अपने क्षेत्र की जनसख्या के अनुसार प्रत्येक विभाग अथवा कमिश्नरी के दो निर्वाचन मडलो के लिए अपने प्रतिनिधि भेजते थे। प्रत्येक निर्वाचन मडल, प्रान्तीय परिषद् के लिए एक सदस्य चुनता था। अन्य कुछ प्रान्तो मे जैसे बगाल मे प्रतिनिधियो का चुनाव नगर पालिका बोर्ड अथवा जिला बोर्ड की आमदनी के अनुसार होता था। बम्बई मे हर नगरपालिका बोर्ड को प्रति १०,००० आदमियो के लिए एक प्रतिनिधि और हर जिला बोर्ड को प्रति १ लाख आदमियो के लिए एक प्रतिनिधि चुनने का अधिकार था। विभागीय निर्वाचन मडल इन्ही प्रतिनिधियो द्वारा निर्मित होता था।

अभ्यर्थी होने का अधिकार प्राप्त नही होगा जो (१) ब्रिटिश प्रजाजन नही है, अथवा (२) सरकारी अधिकारी है, अथवा (३) स्त्री है, अथवा (४) विकृत मस्तिष्क है, अथवा (५) २१ वर्ष से कम आयु का है, अथवा (६) दिवालिया है, अथवा (७) सरकारी नौकरी से निकाल दिया गया है, अथवा (८) किसी दड न्यायालय द्वारा, छै महीने से अधिक कारावास अथवा देशनिर्वासन के उपयुक्त अपराध के फलस्वरूप, दडित है, अथवा अपने सद्व्यवहार के लिए जमानत से बधा हुआ है, अथवा (९) वकालत करने के अधिकार से वचित कर दिया गया है, अथवा (१०) कुख्याति और पूर्व चरित्र के कारण गवर्नर-जनरल द्वारा सार्वजनिक हित की दृष्टि से निर्वाचन के लिए अनुपयुक्त घोषित कर दिया गया है।"[1] इन मे से पिछली चार [2] अनर्हताओ की परिषद् गवर्नर-जनरल के आदेश द्वारा दूर किया जा सकता था। भारतवासियो ने इस विनियम की तीव्र आलोचना की क्योकि उसके अनुसार पिछले (१९०५-१९०९) के आन्दोलन मे भाग लेने वाले लोग परिषदो के चुनाव के लिए खडे होने से वचित कर दिए गए थे। इन सामान्य अर्हताओ के अतिरिक्त, वर्ग निर्वाचन क्षेत्रो के अभ्यर्थियो के लिए विशेष अर्हताए निश्चित की गई थी।

इसी प्रकार मतदाताओ की अर्हतायें निश्चित की गई थी। उनके अनुसार स्त्रियो, अल्पवयस्को और विकृत मस्तिष्क के व्यक्तियो को किसी भी निर्वाचन मे वोट देने का अधिकार नही था। (अ) जमीदारो के निर्वाचन क्षेत्रो और (ब) मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रो के लिए पृथक् रूप से अर्हतायें निश्चित की गई थी।

(अ) जमीदारो के निर्वाचन क्षेत्रो की अर्हतायें सम्राज्ञीय तथा प्रान्तिय परिषदो के लिए, हिन्दुओ तथा मुसलमानो के लिए[3] और विभिन्न प्रान्तो के

१ विनियम न ४—देखिये Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Vol. I, pages 350–1.

२. सन् १९१४ के बाद अनर्हता न (१) को भी स-परिषद गवर्नर-जनरल के आदेश से रद्द किया जा सकता है।

३. उदाहरण के लिए पूर्वी बगाल की अर्हताओ को उद्धृत किया जाता है। "मताधिकार के लिए हिदू जमोदार को ५०००) रु. मालगुजारी देने का नियम है लेकिन मुस्लिम जमोदारो को केवल ७५०) रु. मालगुजारी देने पर मताधिकार प्राप्त हो जाता है। हिदू जमीदार को १२५० रु. उपकर देने पर मताधिकार मिलता है किंतु मुस्लिम जमीदार को केवल १८८ रु.उपकार देने की आवश्यकता है। अवैतनिक मजिस्ट्रेट अथवा आयकर देने वाले अथवा पेशन पाने वाले मुसलमान को मताधिकार दिया गया है किंतु हिदुओ के लिए ये अर्हताए अपर्याप्त है। मुसलमानो के साथ यह पक्षपात एक ऐसे प्रान्त में है जहां वे

लिए विभिन्न थी। सम्राज्ञीय परिषद् के लिए वही बडे जमीदार वोट दे सकते थे जिन की आय[1] एक निश्चित रकम से अधिक थी अथवा जो एक निश्चित रकम से अधिक मालगुजारी देते थे[2] अथवा जिन्हे उच्च उपाधिया मिली हुई थी[3] अथवा जिन्हे अवैतनिक यशस्कर पद[4] प्राप्त थे। इसी प्रकार प्रान्तीय परिषदो के लिए सम्राज्ञीय परिषदो की अपेक्षा कुछ नीची अर्हताए निश्चित की गई थी।

(ब) मुस्लिम निर्वाचन क्षेत्रो की अर्हताये भी सम्राज्ञीय तथा प्रान्तीय परिषदो के लिए और विभिन्न प्रान्तो के लिए विभिन्न थी। उनमे से प्रत्येक का विवरण देना सभव नही किन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि प्रान्तीय परिषदो की अपेक्षा सम्राज्ञीय परिषद् के लिए मतदाताओ की सख्या कम थी और उन मतदाताओ की सूची मे उन लोगो की गणना थी जो निश्चित रकम से अधिक मालगुजारी देते थे अथवा प्रान्तीय परिषदो के सदस्य थे अथवा भारतीय विश्वविद्यालयो के सभ्य थे अथवा निश्चित अवधि से पहले के स्नातक थे अथवा सरकारी पेंशन पाते थे।

वर्ग निर्वाचन क्षेत्रो के अभ्यर्थियो के लिए, अन्य अभ्यर्थियो की भाति, उपर्युक्त सामान्य अर्हताओ के अतिरिक्त, उनके वर्ग विशेष की अर्हताये भी आवश्यक थी।

इस विवरण को समाप्त करने से पहले कुछ अन्य बातो की ओर ध्यान दिलाना भी उपयुक्त होगा। स्वीकृत व्यवस्था मे पहली बात तो यह थी कि परिषदो के सभी सदस्यो को अपना स्थान अगीकार करने से पहले सम्राट् के प्रति निष्ठा की शपथ ग्रहन करनी पडती थी, दूसरी बात यह थी कि सदस्यो का कार्यकाल साधारणतया तीन वर्ष के लिए निश्चित था, तीसरी बात यह थी कि १९०९ के विनियमो मे, भारत सरकार ने अपनी २४ अगस्त १९०७ की जाति और धर्म के आधार पर निर्वाचन क्षेत्रो की प्रस्तावित योजना को रूप नही दिया था, और अन्तिम बात यह थी कि १९०९ के एक्ट को व्यवहार मे लाने के लिए जो विनियम बनाए गए थे वे लॉर्ड मिटो के शब्दो मे, "अत्यन्त जटिल और भ्रमपूर्ण थे।"[5]

---

बहुसख्यक है।"—Macdonald : The Awakening of India, page 176.

१ मद्रास मे यह रकम १५००० रुपए थी।

२ साधारणतया यह रकम १०००० रुपए थी।

३ बगाल मे जिन लोगो को राजा और नवाब की उपाधियाँ प्राप्त थी उन्हे मताधिकार दिया गया था।

४ मध्यप्रान्त मे अवैतनिक मजिस्ट्रेट भी वोट दे सकते थे।

५. Quoted in R. S. Iyengar's Indian Constitution, page 155.

कारण यह था कि लॉर्ड मिटो के शब्दानुसार सरकार "सुधारो से लोक प्रतिनिधित्व को दूर रखने के लिए बहुत चिन्तित थी। मैंने इस बात का भरसक प्रयत्न किया कि सुधारो से उसकी झलक भी न मिले। हम किसी भी प्रकार की संसद के पक्ष में नही है; हम परिषद् बनाना चाहते है लेकिन उनके लिए हम ससद के ढग पर चुनाव के पक्ष मे नही है.....।"[1]

इस प्रकार नई परिषदो को जानबूझ कर दोषपूर्ण बनाया गया था ताकि सदस्यता की दृष्टि से भी उनमे और ब्रिटिश ससद (पार्लियामेंट) मे कोई सादृश्य न हो। किन्तु इस से कही अधिक महत्त्वपूर्ण कारण एक और था। उसकी ओर पहले भी सकेत किया जा चुका है और उसकी झलक २४ अगस्त १९०७ के सरकारी लेख मे भी मिलती है।[2] वह कारण यह था कि "देशी आदमियो मे परस्पर सतुलन बनाए रखने की नीति के" अनुसार, अगरेज शासक, एकता की ओर प्रवृत्त भारतीय जनता को परस्पर असम्बद्ध विभागो मे बाटना चाहते थे।

५

सन् १९०९ के भारतीय परिषद् एक्ट ने परिषदो के आकार और गैरसरकारी सदस्यो की सख्या मे ही विस्तार नही किया वरन् उसने भारत की विभिन्न सरकारों को परिषदों के कार्य-विस्तार के लिए नियम बनाने का अधिकार भी दिया। इन नियमो ने परिषदो को राजस्व सबधी वक्तव्यो पर विचार करने का, उन पर प्रस्ताव प्रस्तुत करने का और सार्वजनिक महत्त्व के विषयो पर प्रस्ताव प्रस्तुत करने, विचार करने और उन पर वोट लेने का अधिकार प्रदान किया।

सन् १९०९ के सुधारो से सार्वजनिक महत्त्व के, विशेषकर राजस्व सबधी, विषयो पर विचार करने के अधिकारो की दिशा मे विशेष प्रगति हुई। उदाहरण के लिए सम्राज्ञीय विधान परिषद् मे अर्थ सदस्य द्वारा वित्तीय विवरण प्रस्तुत कर दिए जाने के बाद कोई भी सदस्य उस वक्तव्य पर अपने प्रस्ताव के लिए सूचना दे सकता था। यह प्रस्ताव उस वक्तव्य के किसी भी निम्नलिखित विषय के सबध में प्रस्तुत किया जा सकता था—कर व्यवस्था मे कोई परिवर्तन, कोई नया ऋण, अथवा स्थानीय सरकार के लिए कोई अतिरिक्त अनुदान। नियत तिथी को प्रस्ताव प्रस्तुत किया जाता था, उस पर विचार होता था और परिषद् उस पर अपना मत प्रकट करती थी। इस प्रकार के सब प्रस्तावो पर विचार करने के बाद प्रत्येक शीर्षक अथवा समूह पर पृथक् रूप से विचार करने की व्यवस्था थी। कोई भी सदस्य

१. R. S. Iyengar's Indian Constitution, पृष्ठ १५७.

२. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Vol. I, page 262.

इन शीर्षको पर प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकता था और परिषद् उन पर विचार करती थी और अपना मत प्रकट करती थी। इन शीर्षको की चर्चा समाप्त करने के बाद, अर्थ मत्री २४ मार्च अथवा उससे पहले किसी तिथी को बजट प्रस्तुत करता था। वित्तीय विवरण के आकडो मे यदि किसी प्रकार का परिवर्तन किया जाता था तो अर्थ सदस्य उस पर प्रकाश डालता था और साथ ही यह भी बताता था कि परिषद द्वारा स्वीकार किए हुए किसी प्रस्ताव को मान्यता क्यो नही दी गई।[1] तदुपरान्त कुल बजट पर सामान्य रूप से विचार करने के लिए एक दिन निश्चित किया जाता था लेकिन किसी सदस्य को उस पर किसी प्रकार का प्रस्ताव प्रस्तुत करने का अधिकार नही था, उस समय बजट के सम्बन्ध मे परिषद् का मत भी नही लिया जाता था।"[2] वित्तीय विषयो पर विचार करने के सबध मे सदस्यो के अधिकारो पर उपर्युक्त प्रतिबधो के अतिरिक्त दो प्रतिबध और थे। पहला प्रतिबध तो यह था कि सरकारी आय[3] और व्यय[4], दोनो ही के कुछ शीर्षको के सबध मे परिषद् को किसी प्रकार की चर्चा करने का अधिकार ही नही था, और दूसरा प्रतिबध यह था कि परिषद् का अध्यक्ष किसी प्रस्ताव अथवा उसके किसी अश को प्रस्तुत किए जाने से रोक सकता था। और उसे इस निषेध के लिये कारण बताने की आवश्यकता नही थी।[5]

नियमो के अनुसार सम्राज्ञीय विधान परिषद् को सार्वजनिक हित के सामान्य विषयो से सबधित प्रस्तावो पर भी विचार करने का अधिकार था। इस अधिकार पर भी कुछ प्रतिबन्ध थे और अध्यक्ष किसी ऐसे प्रस्ताव को जो उसके मत मे

---

१. Rule No 21 (1). R. S. Iyengar: Indian Constitution, page CCII

२. Rule No. 22 (2) उपर्युक्त पुस्तक

३ आय के निम्नलिखित शीर्षको पर विचार करने का अधिकार नही था — मुद्राक शुल्क, सीमा शुल्क, देशी राज्यो के उपहार, निर्धारित कर, सैन्य राजस्व, विशुद्ध रूप मे प्रान्तीय राजस्व—R. S. Iyengar: Indian Constitution, page CCII.

४. व्यय के निम्नलिखित शीर्षको पर विचार करने का अधिकार नही था — क्षतिपूर्ति, ऋण पर ब्याज, धर्म सम्बन्धी व्यय, राजनीतिक व्यय, प्रादेशिक और राजनीतिक पेशन, राजकीय रेल मार्ग, सेना, जल सेना, सैन्य निर्माण, सुरक्षा, वैधानिक व्यय, विशुद्ध रूप से प्रान्तीय व्यय,—Iyangar Indian Constitution, page CCII.

५. Rule No. 8 *Ibid*, page CCI.

सार्वजनिक हित के प्रतिकूल हो, निषिद्ध कर सकता था। प्रस्ताव प्रस्तुत करने के लिए साधारणतया १५ दिन पहले सूचना देना आवश्यक था। सूचना एक नियत प्रपत्र पर लिख कर देनी होती थी। सशोधनो को विवाद के समय मे प्रस्तुत किया जा सकता था। परिषद् को प्रस्ताव और सशोधनो पर मत प्रकट करने का अधिकार था। परिषद् द्वारा स्वीकार किए हुए प्रस्ताव सरकार के लिए सिफारिश के ढग पर होते थे और सरकार उन्हे स्वीकार अथवा अस्वीकार करने के लिए स्वतन्त्र थी।

नये विनियमो ने प्रश्न करने के अधिकार को भी विस्तृत किया—प्रश्न करने वाले सदस्य को उत्तर के स्पष्टीकरण के लिए अनुपूरक प्रश्न करने का अधिकार दिया गया। लेकिन अन्य सदस्यो को अनुपूरक प्रश्न करने का अधिकार नही दिया गया।

इसी प्रकार प्रस्ताव प्रस्तुत करने, अनुपूरक प्रश्न करने और आर्थिक वक्तव्य पर विचार करने के अधिकार प्रत्येक प्रान्तीय परिषद् के सदस्यो को भी प्रदान किए गये थे और इस सबध मे पृथक् रूप से विशेष नियम बनाए गए थे।

६

सन् १९०९ के भारतीय परिषद् एक्ट ने कार्यकारिणी परिषदो की रचना के सबध मे भी निर्देश किया। भारत सरकार ने १९०८ के अपने राजपत्र के अन्तिम भाग मे यह विचार प्रकट किया था—"अनुभव से हम सभवत इस परिणाम पर पहुचेगे कि बडे प्रान्तो मे उपगवर्नरो की शासन शक्ति बढाने के लिए कार्यकारिणी परिषदो की स्थापना करना बाँछनीय है ....और मद्रास तथा बम्बई के गवर्नरो की सहायता के लिए उन प्रेसिडेन्सियो की वर्तमान कार्यकारिणी परिषदो का विस्तार करना आवश्यक है।"[1] लॉर्ड मॉर्ले ने इस प्रश्न को अधिक सुनिश्चित रूप दिया और इस सम्बन्ध मे पार्लियामेण्ट से सुनिश्चित अधिकार प्राप्त करने के लिए उस अवसर को उपयुक्त अनुभव किया। भारत मन्त्री की इच्छा यह थी कि बम्बई और मद्रास की कार्यकारिणी परिषदो मे सदस्यो की सख्या को बढा कर चार कर दिया जावे और उन मे कम से कम एक भारतीय सदस्य की नियुक्ति की जावे।[2] इस सबध मे वे पार्लियामेट से अधिकार प्राप्त करना चाहते थे। भारतीय सदस्य की नियुक्ति के लिए व्यवहार द्वारा परपरा डालने का विचार था, उसके लिए कोई वैधानिक व्यवस्था करने का उद्देश्य नही था। एक्ट (सन् १९०९) के विभाग २ (१) ने स-परिषद् भारत मत्री को प्रेसिडेन्सियो के

१. Mukherjee: Indian Constitutional Documents. Vol. I, page 309.

२. Mukherjee : Indian Constitutional Documents. Vol. I. page 324.

गवर्नरो की परिषदो के लिए चार सदस्य नियुक्त करने का अधिकार प्रदान किया। लॉर्ड मॉर्ले के मतानुसार अन्य बड़े प्रान्तो के लिए भी कार्यकारिणी परिषदो की स्थापना करने की आवश्यकता थी। अतः उन्होंने पार्लियामेंट से सभी उप-गवर्नरो के प्रान्तो के लिए, कार्यकारिणी परिषदो की स्थापना के निमित्त, एक सामान्य अधिकार की माँग की और इसी आशय की एक धारा को भारतीय परिषद् विधेयक मे जोड़ दिया। इस विधेयक को लॉर्ड मॉर्ले ने लॉर्ड भवन मे प्रस्तुत किया किन्तु प्रबल विरोध के कारण विधेयक को बीच ही मे छोड़ देना पडा। कुछ समय बाद उसी विधेयक को सशोधित रूप से हाउस ऑव कॉमन्स मे प्रस्तुत किया गया और इस बार उसे दोनो भवनो की स्वीकृति प्राप्त हो गई। इस प्रकार पार्लियामेंट ने स-परिषद गवर्नर-जनरल को भारत मत्री की सहमति से बगाल के लिए कार्यकारिणी परिषद् की स्थापना करने का अधिकार प्रदान किया। इन सदस्यो की संख्या चार से अधिक नही हो सकती थी। अन्य प्रान्तो के लिए कार्यकारिणी परिषदो की स्थापना करने के सबध मे स-परिषद गवर्नर-जनरल को और कोई प्रत्यक्ष अधिकार प्रदान नही किया गया। केवल इतना ही नही वरन् पार्लियामेंट ने अन्य किसी कार्यकारिणी परिषद् की स्थापना को रोकने के सबध मे अपने अधिकार को सुरक्षित रखा। भारत सरकार को, भारत मत्री का अनुमोदन मिलने पर भी अन्य किसी प्रान्त के लिए कार्यपालिका परिषद् की स्थापना करने का अधिकार नही था। इस सबध मे एक्ट ने निम्नलिखित निर्देश दिया :—"स-परिषद् गवर्नर-जनरल को (बगाल के विषय की भाँति), भारत मत्री की सहमति से, उप-गवर्नरो के प्रातो मे उन (उप-गवर्नरो) की सहायता के लिए·····उद्घोषणा द्वारा कार्यकारिणी परिषद् स्थापित करने का वैध अधिकार होगा। किन्तु यह आवश्यक है कि उद्घोषणा करने से पहले, उसका मसविदा अधिवेशन के समय पार्लियामेंट के प्रत्येक भवन के समक्ष, कम से कम साठ दिन तक रखा जावेगा। यदि इस अवधि के समाप्त होने से पहले, दोनो मे से कोई भवन, उस मसविदे अथवा उसके किसी भाग के विरुद्ध, सम्राट् के समक्ष सम्बोधन प्रस्तुत करता है, तो उस (मसविदे) पर किसी प्रकार की कार्यवाही नहीं की जावेगी किन्तु नया मसविदा बनाने का अधिकार पहले की ही तरह बना रहेगा।"[१] दूसरे शब्दो मे इसका अर्थ यह था कि एक्ट ने सरकार को अन्य कार्यकारिणी परिषदो की स्थापना करने का अधिकार तो दिया किन्तु साथ ही पार्लियामेंट के प्रत्येक भवन को उसे निषिद्ध करने का अधिकार भी दिया। उप-गवर्नरों की परिषदों के

१. Section 3 (2) of the Act. Mukherjee: Indian Constitutional Documents, Vol. I, पृष्ठ २४७.

सदस्यो की नियुक्ति, सम्राट् की स्वीकृति से गवर्नर-जनरल द्वारा की जानी थी।

७

सन् १९०९ के भारतीय परिषद् एक्ट मे किसी मत्रणा परिषद् की स्थापना के लिए कोई व्यवस्था नही की गई थी। भारत सरकार ने अपने मौलिक प्रस्तावो मे केन्द्र और प्रान्तों के लिए मत्रणा परिषदो की स्थापना के विचार को विशेष महत्त्व दिया था। विधान परिषदो के अधिवेशन इतने कम होते थे कि "उन मे विश्वस्त और आत्मीय रूप से परामर्श करना सभव नही था। साथ ही पद्धति की जटिलता के कारण अधिवेशन के लिए शीघ्रता से आयोजन करना भी सभव नही था।"[1] फलत· सम्राज्ञीय तथा प्रान्तीय मत्रणा परिषदो की स्थापना के लिए प्रस्ताव किया गया। इस प्रस्ताव के अनुसार सम्राज्ञीय परिषद् मे साठ सदस्य—विभिन्न प्रान्तो के चालीस बडे जमीदार और बीस देशी नरेश—होने थे, सदस्यो का कार्यकाल पाच वर्ष होना था; और प्रस्तुत विषय पर परामर्श देने के अतिरिक्त परिषद् को कोई अधिकार नही दिया जाना था। प्रस्ताव मे कहा गया कि "साधारणतया परिषद् की कार्यवाही गुप्त होगी और उसे प्रकाशित नही किया जावेगा... किन्तु सरकार उचित समझने पर उसका उपयोग करने के लिए स्वतत्र होगी।"[2] इसी प्रकार प्रान्तीय मत्रणा परिषदे होगी। हर प्रान्त की परिषद् मे, सम्राज्ञीय मत्रणा परिषद् के लिए उस प्रान्त के सदस्यो के अतिरिक्त "छोटे ज़मीदारो, उद्योग धधो, वाणिज्य समुदाय, पूजीपतियो और वृत्तिमूत् वर्गों[3] के प्रतिनिधिगण होगे।

मत्रणा परिषदो की स्थापना से सबधित उपर्युक्त प्रस्ताव का भारतीय जनमत के नेताओ ने प्रबल विरोध किया। इन नेताओ ने प्रस्तावित मत्रना परिषदो को केवल निरर्थक और छलपूर्ण[4] ही नही वरन कुटिलता युक्त भी बताया। उनको इस बात की आशका थी कि ब्रिटिश जनमत को धोखा देने के लिए इन परिषदो का उपयोग किया जावेगा। "लाला लाजपत राय के देश निर्वासन जैसे सरकारी कृत्यो की समस्त शिक्षित वर्ग निन्दा कर रहे है। इन कृत्यो के सबध मे प्रस्तावित मत्रणा परिषदो के समक्ष सरकारी प्रस्ताव रखे जावेगे और सदस्यो को फुसला कर उन प्रस्तावो पर परिषद का अनुमोदन प्राप्त कर लिया जावेगा।" "तब सरकार उन

१. Section 3 (2) of the Act, Mukherjee Indian Constitutional Documents, Vol. I, page 256.

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २५८.

३ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २५९.

४ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २७३.

प्रस्तावो को प्रकाशित करेगी और इस प्रकार अनभिज्ञ किन्तु सहज-विश्वासी ब्रिटिश जनता को धोखे मे डालने का तथा ससार की आखो मे धूल झोकने का प्रयत्न करेगी"[1] किन्तु "यदि मत्रणा परिषद् साहस से काम लेती है और निन्दा का प्रस्ताव पास करती है, तो अग्रेज शासक बडी सरलता से अपने मन को समझा लेगे और उस प्रस्ताव को प्रकाशित नही करेगे।"[2]

देशी नरेशो तथा कुछ प्रान्तीय सरकारो ने भी मत्रणा परिषदो की स्थापना के प्रस्ताव का विरोध किया। तत्कालीन मद्रास सरकार भी इस प्रस्ताव के प्रबल विरोध मे थी। देशी शासको के विरोध का मुख्य कारण यह था कि प्रस्तावित परिषदो मे उनको और बडे जमीदारो को एक ही श्रेणी मे रखा जा रहा था। कुछ प्रान्तीय सरकारे भी देशी नरेशो के दृष्टिकोण से सहमत थी। इस विरोध के कारण भारत सरकार ने अपनी मौलिक योजना को छोड़ दिया और अक्टूबर १९०८ के राजपत्र मे अपने सशोधित प्रस्तावो को प्रस्तुत किया। इनमे तीन बाते उल्लेखनीय थी—(१) भारत सरकार ने एक छोटी (केन्द्रीय) परिषद् बनाने का विचार प्रकट किया, केवल देशी शासकगण ही इस परिषद् के सदस्य हो सकते थे, उनकी छांट वाइसरॉय द्वारा होनी थी, उनका कार्यकाल वाइसरॉय की सदिच्छा पर निर्भर था, और वाइसरॉय उनसे अपनी इच्छानुसार व्यक्तिगत अथवा सामूहिक रूप से परामर्श कर सकता था[3], (२) नई योजना मे भारत सरकार ने ब्रिटिश भारत के प्रतिष्ठित व्यक्तियो की एक पृथक् परिषद् बनाने के प्रस्ताव को कोई स्थान नही दिया और उसके विचार को उस समय के लिए स्थगित कर दिया, और (३) भारत सरकार ने उन प्रान्तो के लिये, जिनके अध्यक्ष इस पक्ष मे हो, मत्रणा परिषदो की स्थापना करने के लिए सिफारिश की। इनका आकार भारत सरकार द्वारा निश्चित होना था किन्तु इनके सदस्यो की छाट "मेधा शक्ति, व्यक्तिगत प्रभाव अथवा प्रतिनिधिपूर्ण स्थिति" के आधार पर सबधित प्रान्तीय सरकार द्वारा होनी थी।[4]

भारत मत्री ने इन प्रस्तावो को न तो पसन्द ही किया और न उनका समर्थन ही किया। उनके मत से, देशी शासको को सम्राज्ञीय मत्रणा परिषद् बनाने के संबध मे, उन नरेशो के सम्मिलन की दृष्टि से, व्यय, पूर्व-परपरा, प्रवास व्यवस्था

१. Mukherjee Indian Constitutional Documents, page 273.

२ Hindustan Review, September 1907, page 285.

३ Mukherjee: Indian Constitutional Documents, Vol I, page 276.

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २८१।

आदि की अनेक व्यवहारिक कठिनाइया थी[1] जिनको सरलता से दूर नही किया जा सकता था। "यदि परिषद् के सम्मेलन करने का उद्देश्य नही है तो वह (परिषद्) बिलकुल निरर्थक होगी।" प्रान्तीय मत्रणा परिषदो के सबध मे लॉर्ड मॉर्ले का यह विचार था कि नई परिषदे--चाहे वे छोटी हो या बडी—निश्चित रूप से पुरानी विधान परिषदो के साथ प्रतिद्वन्द्वता करेंगी। "इसके अतिरिक्त यह सदेह भी किया जावेगा कि नई परिषदे, पुरानी परिषदो पर रोक लगाने के लिए बनाई गई है।"[2] लॉर्ड मॉर्ले के मतानुसार, भारत सरकार, महत्वपूर्ण नरेशो तथा विभिन्न स्थानो के, प्रमुख एव प्रतिष्ठित पुरुषो के साथ, नियमबधनो से मुक्त रह कर निजी रूप से परामर्श करने को वर्तमान परम्परा को विकसित करके, अपने सभी प्रस्तावित उद्देश्यो को पूर्ण कर सकती थी।

भारत मत्री के विरोध के कारण भारत सरकार के प्रस्ताव का अन्त हो गया और इसका फल यह हुआ कि १९०९ के सुधारो मे केन्द्रीय अथवा प्रान्तीय सरकारो के लिए मत्रणा परिषदो की योजना को कोई स्थान प्राप्त नही हुआ।

---

१ Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Vol. I, page 311.

२ उर्युपक्त पुस्तक, पृष्ठ ३१२

# युग ३

(सन् १९०९ से १९१९ तक)

## सत्रहवाँ अध्याय

# शासन तथा संविधान से संबंधित परिवर्तन

१

ब्रिटिश राज्याधीन भारत के इतिहास मे सन् १९०९ से १९१९ तक का युग सब से छोटा है, किन्तु उसका महत्त्व उसके वर्षों की सख्या के आधार पर नही आका जा सकता। वस्तुत यह युग अत्यन्त महत्त्व की घटनाओ से परिपूर्ण है। इस युग मे ब्रिटिश सम्राट ने—सम्राज्ञी और एक प्रमुख राज्यमन्त्री के साथ——भारत भूमि पर पहली बार पदार्पण किया, सम्राज्ञीय परिषदो तथा अन्तर्राष्ट्रीय सस्थाओ मे भारत को पहली बार बराबरी का स्थान दिया गया, उप-भारत-मन्त्री के पद पर पहली बार एक भारतवासी की नियुक्ति की गई, तथा पहली बार ब्रिटिश सरकार ने भारत मे अपना लक्ष्य उत्तरदायी राजनीतिक सस्थाओ की स्थापना करना बताया, और स्वायत्त स्वशासक प्रातो के सघीय भारत का चित्र क्षितिज पर उठता हुआ दिखाई दिया। इसी समय मे, जनता की इच्छाओ के अनुसार बगाल के विभाजन मे सशोधन हुआ, भारत की राजधानी कलकत्ते से दिल्ली के लिए स्थानान्तरित की गई और वहाँ एक नया सम्राज्ञीय नगर बसाने का निर्णय किया गया, और विभिन्न राजनीतिक सस्थाओ मे—राष्ट्रवादियो के नरम और उग्र पक्ष और साथ ही मुस्लिम लीग मे—ऐक्य हुआ और राष्ट्र के नेताओ ने परस्पर मिलकर राजनीतिक प्रगति के लिए एक सर्वमान्य योजना बनाई। इसी दशाब्दी मे, ब्रिटिश राज्य को बल द्वारा उखाड फेंकने के लिए सन सत्तावन के बाद सब से बडा षड्यन्त्र रचा गया, होम रूल (स्वशासन) प्राप्त करने के लिए और अयुक्त विधियो को कार्यान्वित होने से रोकने के लिए एक बहुत बडा सगठित आदोलन किया गया, सिक्खो के तीर्थस्थान मे एक ब्रिटिश जनरल की आज्ञानुसार जलियावाला बाग का भीषण हत्याकाड हुआ, पजाब मे मार्शल-लॉ (फौजी कानून) की घोषणा की गई और शासन का काम फौजी अधिकारियो को सौप दिया गया और दमन की अत्यन्त कठोर तथा अत्यन्त व्यापक नीति अपनाई गई। सन् १९१४-१८ के यूरोपीय महायुद्ध का भारत पर भी प्रभाव पडा और देश को धन और जन की बहुत बडी बलि देनी पडी, इसी समय इन्फ्लुएंज़ा का भीषण प्रकोप हुआ और लोगो के कष्ट कई गुने बढ गए। इस महामारी के कारण कुछ ही सप्ताहो मे दसियो लाख आदमी मर गये। इन मरने वालो की सख्या विभिन्न आकडो के अनुसार साठ लाख से एक करोड तक थी। इन बातो के अतिरिक्त प्रशासनीय एव सविधानीय महत्त्व के कितने

ही परिवर्तन हुए—निष्केन्द्रीकरण की नीति का विकास हुआ; सन् १९११ मे भारतीय उच्च-न्यायालय एक्ट बना, सन् १९१२ मे भारतीय शासन एक्ट बना, लोक-सेवा आयोग की नियुक्ति हुई और उसकी रिपोर्ट सामने आई; मि माटेग्यु और ब्रिटिश शिष्टमडल के अन्य सदस्य भारत आये; सन् १९१८ मे भारत के वैधानिक सुधारो पर रिपोर्ट प्रकाशित हुई और सन् १९१५, १९१६ तथा १९१९ में भारतीय शासन एक्ट बनाए गए ।

२

भारतीय निष्केन्द्रीकरण कमीशन ने अपनी विस्तृत रिपोर्ट फरवरी १९०९ मे प्रस्तुत की । इस कमीशन के अध्यक्ष मि हॉब हाउस थे जो बाद मे सर चार्ल्स के नाम से प्रसिद्ध हुये । इस रिपोर्ट ने एक ओर तो भारत सरकार तथा प्रातीय सरकारो के पारस्परिक सबध की ओर दूसरी ओर प्रातीय सरकारो तथा स्थानीय अधिकारियो के पारस्परिक सबध की समस्या पर विचार प्रकट किए और शासन मे सरलता लाने के उद्देश्य से[1] उच्चतर अधिकारियो के नियन्त्रण को कम करने के लिये कितनी ही सिफारिशे की। कमीशन की मुख्य सिफारिशो को तीन शीर्षको मे बाटा जा सकता है —(१) वे सिफारिशे जिनका प्रान्तीय सरकारो के सविधानो से सम्बन्ध था और जिनमे कमिश्नरी तथा जिलो के अफसरो को अधिकार सौपने के लिए कहा गया था, (२) वे सिफारिशे जिनका वित्तीय विक्षेपण से सबध था, और (३) वे सिफारिशे जिनमे स्थानीय स्वशासन का क्षेत्र विस्तृत करने के लिए कहा गया था ।

प्रातीय सरकारो के सविधान के सबध मे कमीशन का यह मत था कि सब बडे प्रातो मे "मद्रास और बम्बई की ही भाँति परिषद् व्यवस्था की जावे और गवर्नरो की नियुक्ति—अनिवार्य रूप से नही किन्तु साधारणतया—गृह-सरकार द्वारा की जावे। हमारे विचार से परिषद्-सरकारो मे गवर्नर के अतिरिक्त कम से कम चार सदस्य और होने चाहिए।·· इस विस्तार के कारण विशिष्ट योग्यता के भारतवासियो की नियुक्ति करना भी सभव होगा ।"[2] किन्तु लॉर्ड मॉर्ले ( और दस वर्ष बाद मि माटेग्यु भी ) आगे बढने को तैयार नही थे कि गवर्नरो के पदो पर सिविल सर्विस के सदस्यो के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो की नियुक्ति के लिए सिफारिश की जावे । ऐसा करने पर सिविल सर्विस के सदस्यो मे रोष फैलने का डर था, ये लोग इन उच्च पदो पर पहुँचने के लिए आँखें लगाए रहते थे । कमीशन

१ Report on Indian Constitutional Reforms 1918, page 3.

२. Mukherjee: Indian Constitutional Documents, Vol I, page 724.

न वित्तीय कमिश्नरो के पदो को और राजस्व मडलो को तोडने की तथा कलक्टरो और कमिश्नरो के अधिकारो को बढाने की सिफारिश की। कमीशन ने प्रशा की जिला कमेटियो के ढग पर जिला मत्रणा परिषदो की स्थापना के प्रस्ताव को स्वीकार नही किया। इस प्रस्ताव को श्री रमेशचन्द्र दत्त और श्री गोखले ने प्रस्तुत किया था।

कमीशन ने साधारणतया प्रान्तो की १९०४ की अर्ध-स्थायी वित्तीय बन्दोबस्त की व्यवस्था का अनुमोदन किया। उसके सबध मे कमीशन ने कुछ सशोधनों और परिवर्तनो के लिए अपने सुझाव भी दिए। इनमे से अधिकाश सुझावो को सरकार ने स्वीकार किया और १८ मई १९१२ के प्रान्तीय वित्त संबधी अपने प्रस्ताव में उनको रूप दिया।

भारत सरकार प्रान्तीय सरकारो के साथ अपने वित्तीय सबधों मे, यथासभव स्थिरता लाने के लिए उत्सुक थी किन्तु प्रान्तीय बन्दोबस्त को स्थायी घोषित करने से पहले उसने कुछ कथित विषमताओ का और निष्केन्द्रीकरण कमीशन के सुझावों का परीक्षण करना आवश्यक समझा। भारत सरकार, विभिन्न प्रान्तों के साथ विषम व्यवहार सबधी आक्षेप को मानने के लिए तैयार नही थी। उसका कहना यह था कि "प्रथम तो इस आक्षेप के अस्तित्व के विषय मे ही सन्देह है——और यदि उसका कोई अस्तित्व है भी, तो वह केवल ऐतिहासिक है।" "पच्चीस वर्षों के सौदे के फलस्वरूप एक ऐसी समता स्थापित हो गई है कि उसे कागजी लिखा पढी से दूर नही किया जा सकता।" इस बात का डा० ज्ञानचन्द ने सफलतापूर्वक प्रत्युत्तर दिया है। उनके अनुसार "सन् १९११ के बन्दोबस्त मे किसी प्रकार का भी साम्य नही था।" अस्तु, भारत सरकार की धारणा के अनुसार विभिन्न प्रान्तो मे साम्य था और उसने कुछ अन्य त्रुटियो को दूर करने के बाद प्रान्तो के बन्दोबस्त को स्थायी कर दिया। पहली बात तो यह थी कि कुछ प्रान्तो मे निश्चित अनुदान की रकम बहुत बढ गई थी। भारत सरकार ने निष्केन्द्रीकरण कमीशन की सिफारिशों के अनुसार प्रान्तो के बन्दोबस्त को दोहराया और राजस्व की कुछ मदो को पूर्णत· अथवा अशत प्रान्तीय शीर्षक मे सम्मिलित कर दिया——इस प्रकार जगलों की पूरी आमदनी प्रान्तो को दे दी गई; बम्बई को प्रान्तीय आबकारी की पूरी आमदनी पर अधिकार दिया गया और मध्य प्रान्त तथा यू. पी. को आबकारी की तीन चौथाई आमदनी पर अधिकार दिया गया; पंजाब को आधी मालगुजारी पर अधिकार दिया गया और बर्मा को ५/८ भाग पर; और सिचाई की प्रमुख योजनाओ में पंजाब का साझा बढाकर पचास प्रतिशत कर दिया गया। निश्चित अनुदानो को इसी अनुपात मे घटा दिया गया।

दूसरी बात यह थी कि निष्केन्द्रीकरण कमीशन की सिफारिशों के अनुसार

सम्राज्ञीय निधि से प्रान्तो को बडे अनुदान देने की नीति को भी दोहराया गया। पुरानी नीति मे केन्द्रीय हस्तक्षेप अधिक था, अनुचित वितरण होता था और कम आवश्यक कामो मे धन का उपयोग होता था। इस पृष्ठ भूमि मे कमीशन ने अनुदान देने के सबध मे तीन सिद्धान्तो को व्यवहार मे लाने की सिफारिश की। (१) प्रान्तीय सरकारो की इच्छाओ का ध्यान रखा जावे, (२) ये अनुदान विविध प्रान्तो मे विभिन्न कार्यो के लिए हो सकते है, (३) उनके कारण केन्द्रीय हस्तक्षेप अधिक नही होना चाहिए। भारत सरकार ने इन सिद्धान्तो को स्वीकार किया और अनुदान सबधी नए नियमो मे उनको रूप दिया।

तीसरी बात यह थी कि भारत सरकार ने प्रान्तो के बजट के नियत्रण के सबध मे निष्केन्द्रीकरण कमीशन की सिफारिशों के अनुसार नए नियम बनाए। भविष्य मे, विभाजित शीर्षको पर और राजस्व तथा व्यय की समची रकमो पर ही नियत्रण किया जा सकता था। प्रान्तीय सरकारो को (केन्द्रीय सरकार के आधीन) अपने आकलन अवशेष मे से नियत परिमाण से अधिक धन लेने का अधिकार दिया गया। कुछ विशेष परिस्थितियो मे प्रान्तीय सरकारे घाटे का बजट भी बना सकती थी। किन्तु भारत सरकार की दृष्टि मे स्वतन्त्र रूप से कर लगाने का अधिकार अथवा द्रव्य बाजार से प्रान्तीय ऋण उगाहने का अधिकार अव्यवहार्य था।

वित्तीय बन्दोबस्त स्थायी करने से पहले, भारत सरकार ने १९१२ के प्रस्ताव द्वारा उपर्युक्त परिवर्तन किए। किन्तु इनका कोई बहुत बडा महत्त्व नही था। अधिकाश दोष अब भी यथावत थे। विभाजित शीर्षको की और केन्द्रीय वितरण की पुरानी व्यवस्था बनी रही, प्रान्तीय व्यय का असाम्य दूर नही हुआ, कर लगाने और ऋण उगाहने के स्वतत्र अधिकार प्रान्तो को अब भी नही मिले। तथापि १९१२ के प्रस्ताव ने प्रान्तो के साथ वित्तीय बन्दोबस्त को स्थायी कर दिया।

३

भारतीय निष्केन्द्रीकरण कमीशन की सबसे अधिक महत्वपूर्ण सिफारिशे, भारत मे स्थानीय स्वशासन के विस्तार से सबधित थी। सन् १८८२ के प्रस्ताव के अनुसार स्थानीय स्वशासन की व्यवस्था का पुनर्सगठन और विस्तार करने के लिए प्रान्तो मे नगरपालिका तथा स्थानीय स्वशासन एक्ट बनाए गए थे। किन्तु उनके फलस्वरूप अगले २५ वर्षो मे नगरपालिका तथा ग्राम्य मडलो मे जो प्रगति हुई थी वह निराशाजनक थी। इस अत्यल्प प्रगति के तीन मुख्य कारण थे। पहली बात तो यह थी कि 'स्थानीय आय बहुत थोडी थी और उस आय की मदे लचीली नही थी।'[१]

१. सन् १९११-१२ मे भारतीय नगरपालिकाओ की आय और उनकी मुख्य मदे इस प्रकार थी.—जमीन और मकानो पर टैक्स १०,५६,०३० पौड; चुगी ९,१५,१०१ पौड; पानी ५,२६,१२७ पौड; अन्य टैक्स ८,५९,१९२

दूसरी बात यह थी कि स्थानीय मामलो मे न तो लोगो के अनुराग मे ही कोई विशेष वृद्धि हुई थी और न उन स्थानीय विषयो की व्यवस्था करने के लिए लोगो की सामर्थ्य मे ही वृद्धि हुई थी।[1] तीसरी बात यह थी कि इन स्थानीय सस्थाओ पर सरकार का अत्यधिक नियत्रण था।[2]

भारतीय निष्केन्द्रीकरण कमीशन ने इन दोषो को—यदि पूरी तरह नही तो कम से कम बहुत हद तक—दूर करने के लिए कितने ही सुझाव दिए। किन्तु दुर्भाग्य से भारत सरकार ने उन पर विचार और निर्णय करने मे बहुत समय लगाया। फल यह हुआ कि सन् १९१५ मे सरकारी नीति निश्चित होने के समय तक प्रस्ताव पुराने और असगत हो गए। कुछ ही समय बाद राजनीतिक सुधारो का प्रश्न उठाया गया और यह निश्चय किया गया कि स्थानीय स्वशासन के क्षेत्र मे सबसे पहला और परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए ज्यादा से ज्यादा बडा कदम आगे बढाया जावे। अत भारत सरकार ने सन् १९१५ के अपने

---

पौड, सरकारी अनुदान ५,९९,८५२ पौड उसी वर्ष व्यय की मुख्य मदे इस प्रकार थी—सडके ४८९१९३ पौड, अस्पताल आदि २६९३०१ पौंड, शिक्षा २३८४८७ पौड, सार्वजनिक स्थानो और सडको पर रोशनी २३५४७७ पौड।

ग्राम्य मडलो की आय की मदे और भी सकुचित थी। उनकी आय की सबसे बडी मद भूमि सबधी उपकर है....यह उपकर जमीन के वार्षिक मूल्य के सोलहवे भाग से अधिक नही होता। सरकार पूरक अनुदान द्वारा सहायता करती है। यह अनुदान उपर्युक्त आय का २५ प्रतिशत होता है। विशेष कामो के लिए सरकार विशेष अनुदान भी देती है। सन् १९११-१२ मे २० करोड से अधिक लोगो पर ग्राम्य मडलो का कुल व्यय ३३०२६७० पौड था।—देखिये—Material and Moral Progress Report 1911-12 pages 117 to 119

१ Report on Indian Constitutional Reforms 1918, page 6.

२ अधिकाश नगरपालिकाओ के अध्यक्ष अब भी सरकारी अधिकारी थे। सन् १९१५ मे ६९५ अध्यक्षो मे से केवल २२८ निर्वाचित गैर सरकारी व्यक्ति थे, ५१ नाम निर्देशित गैर सरकारी व्यक्ति थे, अन्य ४२२ सरकारी अधिकारी थे। लगभग सभी प्रान्तो मे जिला मडलो के अध्यक्ष जिलो के कलक्टर थे।

प्रस्ताव को दोहराया और सशोधित योजना को १४ मई १९१८ के नए प्रस्ताव में रूप दिया।

सरकार ने अपने उद्देश्य को इस प्रकार व्यक्त किया "कि स्थानीय सस्थाए ज्यादा से ज्यादा प्रतिनिधिपूर्ण होनी चाहिए उनको वास्तविक अधिकार प्राप्त होने चाहिये—उन पर अनावश्यक नियत्रण नही होना चाहिये और उनको अनुभव द्वारा कार्य-सचालन सीखने की स्वतन्त्रता होनी चाहिये ।[1] इस उद्देश्य के निमित्त १९१८ के प्रस्ताव में निम्नलिखित सुझाव दिए गए –

पहला सुझाव तो यह था कि नगरपालिका मडलो मे तथा ग्राम्य मडलो में निर्वाचित सदस्यो का काफी बडा बहुमत होना चाहिए। साधारणतया तीन चौथाई सदस्य चुने हुए होने चाहिये; अल्पसख्यको को विशेष प्रतिनिधित्व देने के लिए—" साम्प्रदायिक अथवा आनुपातिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था अपनाने के स्थान पर नाम निर्देशन का उपयोग किया जाना चाहिए;[2] और वोट देने की अर्हताओं को काफी घटा देना चाहिए। केवल विशिष्ट मत्रणा देने के उद्देश्य से कुछ सरकारी अधिकारियो का नाम निर्देशन किया जाना चाहिए किन्तु उन्हे वोट देने का अधिकार नही मिलना चाहिए।

दूसरा सुझाव यह था कि नगरपालिका मडलो के अध्यक्ष साधारणतया गैर-सरकारी, निर्वाचित व्यक्ति होने चाहिए। यदि कोई मडल सरकारी अधिकारी

---

सरकारी नियत्रण के लिए यत्नपूर्वक व्यवस्था की गई थी—विशेषकर वित्त और नियुक्तियो के सम्बन्ध में। चुगी के बजट के लिए और टैक्स व्यवस्था मे परिवर्तन के लिए कमिश्नर अथवा प्रान्तीय सरकार की अनुमति की आवश्यकता होती थी। प्रान्तीय सरकारो को अध्यक्ष को पद-च्युत करने अथवा मडल को निलबित करने का अधिकार था। कमिश्नर अथवा कलक्टर ऐसे किसी भी प्रस्ताव को जिससे शान्ति भग होने का डर हो, निषिद्ध कर सकते थे। कलक्टर को निरीक्षण के विस्तृत अधिकार दिए गए थे।

ग्राम्य मडलो के नियत्रण के लिए और भी कठोर व्यवस्था थी किन्तु वह थी चुगियो के ही ढग पर।

निष्केन्द्रीकरण कमीशन के मतानुसार स्थानीय सस्थाओ पर भीतर और बाहर से सरकारी नियत्रण अत्यधिक था।

१. Para. 4 of the Resolution, Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Vol. I, page 699.

२. Para 5 of the Resolution उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ७००

को चुनना चाहता हो तो गैरसरकारी व्यक्तियो का स्पष्ट बहुमत उसके पक्ष में होना चाहिए। बडे शहरो मे, अध्यक्ष के अतिरिक्त, सरकार के अनुमोदन से मडल द्वारा नियुक्त एक एग्जीक्यूटिव अफसर भी होना चाहिए। जिला मडलों के सबध मे प्रस्ताव ने प्रान्तीय सरकारो पर इस बात के लिए जोर दिया कि उनके अध्यक्ष, यथासभव निर्वाचित व्यक्ति हो। यदि यह सभव न हो तो गैरसरकारी अध्यक्षों की नियुक्ति को प्रोत्साहन दिया जाए और ऐसी दशा मे विशेष एग्जीक्यूटिव अफसरो की नियुक्ति भी की जाए। यदि कोई जिला मडल इस नियुक्ति के व्यय को बचाना चाहता हो तो उसके लिए यह आवश्यक था कि वह गैरसरकारी बहुमत से सरकारी अफसर को अध्यक्ष-पद के लिए निर्वाचित करे।

प्रस्ताव ने तीसरी बात यह की कि उसने मडलो के कर लगाने के अधिकार को थोडा-सा बढा दिया—अब ये मडल, कानून द्वारा निश्चित सीमाओं के अदर विभिन्न टैक्सो और उपकरो को घटा-बढा सकते थे। किन्तु ऋणग्रस्त नगरपालिकाओ के लिए, स्थानीय सरकार की स्वीकृति प्राप्त करना आवश्यक था।

विचाराधीन प्रस्ताव की चौथी बात यह थी कि उसने निष्केन्द्रीकरण कमीशन के इस सुझाव को स्वीकार किया कि यदि किसी नगरपालिका अथवा ग्राम्य मडल को किसी सेवा के लिए व्यय करना पडता हो तो उस सेवा पर उसका नियत्रण होना चाहिए। यदि किसी सेवा पर सरकारी नियत्रण रखना आवश्यक हो तो वह सेवा प्रान्तीय सरकार के आधीन होनी चाहिए।[१]

कमीशन की सिफारिशों के अनुसार, प्रस्ताव ने पाँचवी बात यह की कि उसने मडलो को बजट बनाने की स्वतन्त्रता दे दी। "उन पर केवल यही नियत्रण होना चाहिए ·· कि वे प्रान्तीय सरकार द्वारा निश्चित, आकलन अवशेष के न्यूनतम परिमाण को बनाए रखे। इसके अतिरिक्त स्थानीय सरकारो को दोषी नगरपालिकाओं को कर्तव्य-पालन के लिए विवश करने का और ऋण के सबध मे नियत्रण करने का अधिकार होना चाहिए।"[२] प्रस्ताव के अनुसार कुछ और बातो मे भी नियत्रण की कमी हुई—जैसे विशेष कामों के लिए स्थानीय राजस्व के उपयोग के सबध मे, विशेष अनुदानो के सबध में, सार्वजनिक निर्माण सबधी व्यय के विषय मे और स्थानीय प्रबन्ध के विषय मे। किन्तु उनके निरीक्षण और नियत्रण के सबध में कमिश्नरों और

१. Para 12 of the Resolution, Mukherjee: Indian Constitutional Documents, Vol. I, page 707.

२. Para 13, उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ७०७-८.

कलक्टरो के सामान्य अधिकारो को यथावत् बनाए रखा गया। प्रस्ताव ने प्रान्तों मे स्थानीय स्वशासन विभाग बनाने के लिए भी सिफारिश की।

अन्त मे, निष्केन्द्रीकरण कमीशन के सुझावो के अनुसार, प्रस्ताव ने ग्राम्य पचायतो की स्थापना के विचार का भी समर्थन किया····उसका उद्देश्य गाँवो मे सामूहिक जीवन को विकसित करना था। इन पचायतो का सगठन, ज़िला अधिकारियो की देखरेख मे होना था और उनको प्रशासनीय एव न्यायिक—दोनों ही तरह के—काम सौपे जाने थे। इन पचायतो को बनाने के लिए, नियम बधनो से स्वतत्र रूप मे, चुनाव होना था। प्रस्ताव के अनुसार पचायत के सदस्य अपना अध्यक्ष चुन सकते थे और यह आवश्यक नही था कि वह अध्यक्ष गाँव का मुखिया ही हो। उन पचायतो को अपना व्यय चलाने के लिए भूमि-उपकर का कुछ भाग मिलना था और इसके अतिरिक्त उन्हे विशेष कामो के लिये विशेष टैक्स लगाने का, अधिकार भी मिल सकता था। इन पचायतों को गाँवो की सफाई और शिक्षा का प्रबन्ध करना था और (निश्चित सीमाओ के अन्तर्गत) छोटे-छोटे दीवानी और फौजदारी अभियोगो का निर्णय करना था।

सन् १९१९ के सुधारो के बाद विभिन्न प्रान्तो मे उपर्युक्त सुझावो की दिशा मे विधान बनाए गए, नई प्रान्तीय विधायिका-सभाओ ने अपने अस्तित्व मे आने के तीन वर्ष के भीतर ही स्थानीय स्वशासन ऐक्टो को बनाकर अपनी स्वीकृति दे दी।

४.

सन् १९०९ और १९१९ के बीच, बहुत से प्रशासनीय परिवर्तन भी हुए; इनमे से सबसे ज़्यादा महत्व के परिवर्तनो को स्वय सम्राट् ने १२ दिसम्बर १९११ को दिल्ली दरबार मे घोषित किया।

सन १९०१ मे लॉर्ड कर्जन ने सबसे पहली बार यह विचार प्रकट किया था कि सम्राट् भारत आकर राज्याभिषेक सबधी दरबार करे। किन्तु १९१० मे[1] लॉर्ड भवन मे लॉर्ड मॉर्ले के एक व्याख्यान से यह विदित होता है "कि दरबार करने का विचार स्वय सम्राट् का था। कुछ लोगो ने,जो इस योग्य थे, दरबार न करने के पक्ष मे परामर्श दिया; लेकिन सम्राट् ने अपने विचार मे परिवर्तन नही किया।"[2]

सम्राट् के भारत आने का और१९११मे दिल्ली-दरबार करने का मुख्य उद्देश्य

---

१. मई १९१० मे एडवर्ड सप्तम का देहान्त हो गया था। नवम्बर १९१० में लॉर्ड हार्डिज, लॉर्ड मिण्टो के स्थान पर भारत के वाइसराय हो गए थे।

२. Speech of Lord Morley published as an Appendix to Speeches of Lord Hardinge, Vol. I, page 445. Ganesh and Co., Madras.

साम्राज्यीय सबंध को दृढ करना था। ब्रिटिश राजनीतिज्ञ इस बात को अनुभव कर रहे थे कि पिछले कुछ वर्षो की घटनाओ के कारण बहुत-से भारतवासियों की सद्भावनाएँ लुप्त हो गई थी और राजभक्ति की भावनाएँ अत्यन्त कम हो गई थी और ब्रिटिश सदुद्देश्यो के प्रति विश्वास जमाने के लिए और राजभक्ति की भावनाओं को फिर से जगाने के लिए ब्रिटिश सद्भावनाओं के महत्त्वपूर्ण प्रदर्शन की आवश्यकता थी। इस पृष्ठभूमि मे, उक्त उद्देश्य के लिए, इससे बढ कर कोई बात नही हो सकती थी कि ब्रिटेन के नये राजा और रानी का मुगल साम्राज्य और हिन्दू नरेशो की राजधानी दिल्ली मे, भारत के सम्राट् और सम्राज्ञी के नाते से राज्याभिषेक किया जाय, और सम्राट् (भारत के विगतकालीन सम्राटो की तरह) लोगों की शिकायतो को दूर करे और उन पर अनुग्रह करे; और भारतीय जनता तथा देशी शासको की भेट को स्वय स्वीकार करे। अत १२ दिसम्बर १९११ को दिल्ली मे—सन् १९०३ के दरबार की अपेक्षा कही अधिक वैभवपूर्ण—दरबार करने का निश्चय किया गया। इसके अतिरिक्त उस अवसर पर भारतवासियो की सद्भावना और राजभक्ति को फिर से प्राप्त करने के लिए कुछ घोषणाएँ करने का भी निश्चय किया गया।

दिल्ली-दरबार मे सम्राट् की तीसरी तथा अन्तिम घोषणा सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण थी। इस घोषणा के स्मरणीय शब्द इस प्रकार है—"भारत सरकार की राजधानी कलकता से, भारत की प्राचीन राजधानी दिल्ली को स्थानान्तरित की जायगी और उसके साथ ही उस परिवर्तन के फलस्वरूप यथासभव शीघ्रता से बंगाल को गवर्नर की प्रेसीडेन्सी बनाया जायगा, बिहार, छोटा नागपुर तथा उडीसा को स-परिषद उप-गवर्नर का प्रान्त बनाया जायगा और आसाम को चीफ कमिश्नर का प्रान्त बनाया जायगा; और इस सबध मे आवश्यक प्रशासनीय परिवर्तन किए जायँगे। तथा प्रान्तीय सीमाओं को फिर से निश्चित किया जायगा।"[1]

बहुत-से लोग इन परिवर्तनो के विपक्ष मे थे और यदि उनका पहले से पता होता तो उन पर तीक्ष्ण और उग्र विवाद हुआ होता। स्वय सम्राट् द्वारा घोषणा करने के कारण इन परिवर्तनो के साथ कुछ श्रद्धा की भावना जुड गई थी, तथापि इंगलैंड और भारत, दोनो ही स्थानो मे, उनकी तीव्र आलोचना की गई।

भारत सरकार ने २५ अगस्त १९११ के अपने राजपत्र मे इन परिवर्तनो का उपक्रमण किया था। उस राजपत्र से ऐसा प्रतीत होता है कि इन प्रस्तावों को प्रान्तीय स्वाधीनता के हित मे प्रस्तुत किया गया था। "वर्तमान जटिल स्थिति

१. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Vol. I, page XLIV.

को सुलझाने का सभवत यही उपाय है कि प्रान्तो को धीरे-धीरे अधिकाधिक स्वशासन का अधिकार दिया जाय। इस प्रकार अन्त मे भारत मे बहुत-सी सरकारें बन जायँगी जो सारे प्रान्तीय विषयो मे स्वाधीन होगी। इन सबके ऊपर भारत-सरकार होगी जिसे कुशासन की दशा मे हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा, और जिसका कार्यक्षेत्र साधारणतया साम्राज्यीय विषयो तक ही सीमित होगा। इस उद्देश्य के लिए यह आवश्यक है कि सर्वोच्च सरकार किसी प्रात-विशेष की सरकार से जुडी हुई नही होनी चाहिए।"[1] किन्तु भारत मत्री तथा भारत सरकार के वित्त-सदस्य ने राजपत्र के उक्त वाक्यो के सबध मे भारतवासियों की स्पष्ट व्याख्या को स्वीकार नही किया। लॉर्ड क्रिउवे के अनुसार, भारत को औपनिवेशिक ढग पर स्वशासन कभी भी प्राप्त नही हो सकता था। "इस दिशा मे भारत का कोई भविष्य दिखाई नही देता।"[2] लॉर्ड हार्डिज के वित्त मत्री सर विलियम मेअर से जब श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने १९११ के राजपत्र की नीति के अनुसार प्रान्तों को वित्तीय स्वाधीनता प्रदान करने के लिए आग्रह किया तो उन्होने श्री बनर्जी को "अधीर आदर्शवादी बताया।"

'इन बातो से, और साथ ही निष्केन्द्रीकरण कमीशन के साधारण प्रस्तावो को स्वीकार करने मे भी भारत सरकार के सकोच से, यह परिणाम निकलता है कि "प्रान्तीय स्वाधीनता" के उद्देश्य का—कम से कम भारत मत्री और वाइसरॉय को कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यो की विचारधारा मे—कोई विशेष महत्त्व नही था।[3]

इस सम्बन्ध मे एक कारण और बताया गया है जो ज्यादा सही मालूम देता है—इग्लैण्ड की लिबरल पार्टी आरम्भ से ही बगाल विभाजन के विरोध मे थी और लॉर्ड मॉर्ले के वास्तविक विचार वही थे जो उन्होने पद ग्रहण करने से कुछ समय पहले प्रकट किए थे। उन्होने भारत मत्री बनने के बाद, २६ फर्वरी १९०६ के अपने व्याख्यान मे, अपने विचारो को फिर प्रकट किया। मि० मॉर्ले ने (जो उस समय तक लॉर्ड नही बने थे) कहा कि "अब बगाल का विभाजन एक निश्चित एव वास्तविक तथ्य है किन्तु इस बात मे कोई सन्देह नही है कि यह काम अधिकांश

---

१. Para 3 of the Despatch, Mukherjee : Indian Constitutional Documents, vol. I, page 454.

२. Lovell : History of Indian Nationalism, page 89. Extract from the speech of 24th June 1912 in the House of Lords.

३. Bannerjee : A Nation in the Making, page 300.

सबधित लोगों की इच्छाओ के पूर्ण विरोध मे हुआ है।"[१] लॉर्ड मॉर्ले ने फर्वरी १९१२ मे लॉर्ड भवन मे इस बात को फिर स्वीकार किया कि उस समय "विभाजन को तुरन्त रद्द करने के लिए कोई कदम न उठानेके कारण, मेरे कितने ही मित्र कई महीनो तक मुझ से नाराज रहे थे।"[२] किन्तु मि० मॉर्ले की दृष्टि मे विभाजन को तुरन्त रद्द करना अनीतियुक्त था। वे सिविल सर्विस के सदस्यो के साथ उलझना नही चाहते थे; उन्हे सुधारो के सम्बन्ध मे इन लोगो से काम लेना था। इसके अतिरिक्त उस समय विभाजन रद्द करने का लोगो पर यह प्रभाव होता कि लिबरल सरकार, पिछली ब्रिटिश सरकार की भारत सम्बन्धी सारी नीति, बदलना चाहती है। लॉर्ड मॉर्ले ने कहा, "उस समय चुप रहने का एक कारण और था··· उस नीति के परिणामो पर अपना मत निश्चित करने के लिए हमे पर्याप्त समय नही मिलता था।"[३] अन्तिम बात यह थी कि "दिसम्बर १९०६ मे विभाजन रद्द करने का यह अर्थ लगाया जाता कि सरकार कोलाहल के आगे झुक गई।"[४]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि लिबरल सरकार सन् १९०६ मे पद ग्रहण करने के समय से ही विभाजन रद्द करने के लिए चिन्तित थी और वह उसके लिए केवल उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा मे थी। सन् १९११ मे उसे यह अवसर प्राप्त हुआ—हाल ही मे एक नए वाइसरॉय ने पद ग्रहण किया था, सन् १९०९ के सुधार कार्यान्वित हो चुके थे, विभाजन-विरोधी आन्दोलन लगभग समाप्त हो चुका था, और सम्राट् तथा सम्राज्ञी राजभक्ति की भावनाओ को फिर से जगाने के लिए भारत जाने वाले थे। ऐसे समय पर विभाजन रद्द करने का कृत्य सम्राट् का अनुग्रह माना जाएगा और उसे सरकार की दुर्बलता नही समझा जाएगा। मुसलमानो को यह नीति कम आपत्तिजनक हो, इस उद्देश्य से सरकार ने राजधानी को, मुगलो के केन्द्र दिल्ली के लिए स्थानान्तरित करने का निर्णय किया। अन्य कारणो से भी[५] राजधानी को कलकत्ते से हटाना वाछनीय था और उस परिवर्तन के लिए इस अवसर का लाभ उठाया गया।

---

१. लार्ड हार्डिज ने मि० बनर्जी से पारस्परिक वार्तालाप मे कहा था, "दस वर्ष में आप लोगो को प्रान्तीय स्वाधीनता प्राप्त हो जाएगी।"—Bannerjee : A Nation in the Making, पृष्ठ ३००।

२. Speeches of John Morley pages 107 and 108.

३. Lord Hardinge's Speeches, Vol. I. Appendix, page 505.

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ५०४

५. "राजनैतिक दृष्टि से कलकत्ते की स्थिति केन्द्रीय नही थी; वहाँ से भारतीय रियासतो की, सामरिक जातियो की और महत्त्वपूर्ण उत्तरी पश्चिमी सीमा

मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि दिल्ली दरबार करने की और साथ ही भारतवासियो की, विशेषकर बगालियो की, सद्भावना प्राप्त करने की नीति, लॉर्ड हार्डिज के भारत आने से पहले ही इग्लैण्ड मे निश्चित कर ली गई थी और उस नीति के सम्बन्ध मे लॉर्ड हार्डिज का समर्थन प्राप्त कर लिया गया था। उनके कलकत्ता आने पर बंगाल के नेताओ ने विभाजन-विरोधी सभा करने का और उनके इस सम्बन्ध मे लोगो की भावनाएँ जताने का निश्चय किया। लॉर्ड हार्डिज ने श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी को तुरन्त बुलाया और उन्हे सभा करने अथवा सार्वजनिक आन्दोलन करने के विचारो को छोड़ देने के लिए समझाया और उनके स्थान पर एक स्मारक प्रस्तुत करने की सलाह दी। उन्होने इस बात का आश्वासन दिया कि वे उस स्मारक पर भली-भाँति विचार करेगे। सार्वजनिक सभा करने का विचार छोड दिया गया और स्मारक तैयार किया गया। इस स्मारक मे बगाल के २५ जिलो मे से १८ जिलो के प्रतिनिधियो ने हस्ताक्षर किए और उसे सन् १९११ मे जून के अन्त मे वाइसरॉय के पास भेज दिया। श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी लिखते है, "विभाजन का सशोधन करने के सम्बन्ध मे सरकार ने अपनी सिफारिशो को २५ अगस्त १९११ के राजपत्र मे रूप दिया, स्मारक मे जो तर्क दिए गए थे, उनमे से कुछ को सरकार ने स्वीकार किया और अपने राजपत्र मे उनका प्रबल समर्थन किया।"[1]

राजधानी बदलने का और साथ ही विभाजन रद्द करने का इग्लैण्ड और भारत दोनो ही स्थानो मे विरोध किया गया, मुख्य आपत्ति, परिवर्तन करने की प्रक्रिया के सम्बन्ध मे थी। लॉर्ड कर्जन ने परिवर्तन के उपर्युक्त ढग को अवैधानिक, तथा एक दृढ लिबरल सरकार के लिए अशोभनीय, बताया। लॉर्ड मिटो के मतानुसार, भारत के प्रान्तीय अध्यक्षो तथा इग्लैण्ड के आग्ल-भारतीय अधिकारियो के परामर्श के बिना, इतने महत्त्वपूर्ण निर्णय करना गलत था। अन्य आक्षेपो के अनुसार, सरकार ने स्वार्थी, वृत्तिमत् लोगो के कृत्रिम तथा अस्वाभाविक आन्दोलन के सामने हार स्वीकार की थी और इस प्रकार पूर्वी बगाल के राजभक्त मुसलमानो के साथ बहुत बडा अन्याय किया था।

प्रदेश की दूरी बहुत ज्यादा थी।" "इसके अतिरिक्त १९०७ के बगाली क्रान्तिकारी आन्दोलन ने स्थिति को अत्यन्त जटिल बना दिया था, अन्य प्रान्तो के विधायक सदस्य कलकत्ता आकर बगाली विचारो से प्रभावित होते थे।" तीसरी बात यह थी कि कलकत्ता मे भारत सरकार की उपस्थिति के कारण प्रान्तीय सरकार बिलकुल नगण्य और अशक्त हो गई थी।"—Indian Insistent by Sir Harcourt Butler, page 70-71 से अनूदित।

१. Bannerjee: A Nation in Making, page 85.

कलकत्ता से राजधानी हटाना, भारत में बसे हुए यूरोपियनो के हितों के विरुद्ध था। इस सम्बन्ध मे विरोध का दूसरा कारण यह था कि ब्रिटिश सत्ता समुद्री-शक्ति पर निर्भर थी; इस दृष्टि से कलकत्ता को छोडना अयुक्त था। तीसरे आक्षेप का आधार, नई राजधानी दिल्ली का इतिहास था; वहाँ कितने ही साम्राज्यो का कब्रिस्तान था।[1] लॉड कर्ज़न ने कहा, "वस्तुत दिल्ली के इतिहास की जितनी कम चर्चा की जाए, उतना ही अच्छा है।"[2]

इस प्रकार उक्त कारणो से सन् १९११ के राजपत्र की नीति का विरोध किया गया। लॉर्ड भवन मे लॉर्ड मॉर्ले और लॉर्ड क्रिउवे ने उनका प्रबल प्रत्युत्तर दिया और विरोध धीरे-धीरे ठडा पड गया। नई राजधानी बसाने के सम्बन्ध मे लॉर्ड हार्डिज की सरकार ने लगभग ४० लाख पोड के व्यय का अनुमान किया था, दूसरी ओर लॉर्ड कर्जन ने १ करोड २० लाख पौड के व्यय का अनुमान किया था।[3] आगे चल कर लॉर्ड कर्जन की बात ज्यादा सही निकली। वस्तुत राजधानी को केन्द्रीय तथा निष्पक्ष स्थिति मे लाने के निमित्त, भारत जैसे निर्धन देश के लिए यह एक अत्यन्त बडा परिमाण था जिस को भयकर कहने मे भी कोई अत्युक्ति नही होगी।

५.

सन् १९११ के दिल्ली दरबार के प्रशासनीय परिवर्तनों को कार्यकारिणी-आदेशों और उद्घोषणाओं द्वारा कार्यान्वित किया गया। इस सम्बन्ध में सरकार को पिछले विधानों के अन्तर्गत अधिकाश अधिकार प्राप्त थे, कुछ विषयो के लिए अनुपूरक विधान बनाने की भी आवश्यकता हुई।

सब से पहले तो भारतमन्त्री ने सन् १८५३ के एक्ट के विभाग न १६ के अन्तर्गत यह घोषणा की कि भविष्य मे गवर्नर-जनरल, बगाल की फोर्ट विलियम

---

१. For a study of this mentality read "1957", a novel by Hamish Blair.

२. Lord Hardinge's speeches, vol. I Appendix page 465.

३. लॉर्ड हार्डिज ने आस्ट्रेलिया की राजधानी कैनबेरा बसाने के व्यय से नई राजधानी बसाने के व्यय की तुलना की। कैनबेरा बसाने का व्यय १ करोड ३० लाख पौड था। इसी सम्बन्ध में उन्होंने बताया कि वाइसरॉय भवन और सेक्रेटेरियेट भवन का कुल व्यय लन्दन में बैंक ऑव इगलैंड की नई इमारत के अनुमानित व्यय के आधे से कुछ ही अधिक होगा।

प्रेसीडेसी का गवर्नर नही होगा और उस प्रेसीडेसी के लिए एक पृथक् गवर्नर की नियुक्ति होगी ।[1] २२ मार्च १९१२ की उद्घोषणा द्वारा नई प्रेसीडेसी का क्षेत्र फिर से निश्चित किया गया । सन् १९०५ मे बगला बोलनेवाली जनता की जिन पाँच कमिश्नरियो को पृथक् किया गया था, उन्हे अब फिर पुराने प्रान्त के साथ मिला दिया गया और इस प्रकार बगाल की एक नई प्रेसीडेसी बनाई गई ।

२२ मार्च १९१२ की दूसरी उद्घोषणा द्वारा बिहार तथा उडीसा का नया प्रान्त बनाया गया । इस प्रान्त के लिए एक उपगवर्नर, कार्यकारिणी परिषद् तथा विधान परिषद् की व्यवस्था की गई ।

उपर्युक्त दिनाक की तीसरी उद्घोषणा द्वारा आसाम को एक चीफ कमिश्नर का प्रान्त बनाया गया ।

आवश्यक अनुपूरक व्यवस्था करने के लिए ब्रिटिश पार्लियामेट ने सन् १९१२ का गवर्नमेट ऑव इडिया एक्ट बनाया ।

इस ऐक्ट ने पहली बात तो यह की कि उसने बगाल के गवर्नर और उसकी परिषदो को वही अधिकार प्रदान किए जो मद्रास और बम्बई के गवर्नरो को और उनकी कार्यकारिणी तथा विधान परिषदो को प्राप्त थे ।

ऐक्ट ने दूसरी बात यह की कि उसने बिहार तथा उडीसा के लिए एक कार्यकारिणी परिषद् की स्थापना की ताकि १९०९ के भारतीय परिषद् ऐक्ट की धाराओं के कारण उसके बनाने मे विलम्ब न हो ।

अन्त मे ऐक्ट ने चीफ कमिश्नरो के प्रान्तो के लिये भी विधान परिषदो की स्थापना करने का प्राधिकार दिया । सन् १९१२ के ऐक्ट के विभाग न ३ के अन्तर्गत दो विधान परिषदे बनाई गई—एक आसाम के लिए (नवम्बर १९१२ मे) और एक मध्य प्रान्त के लिए (नवम्बर १९१३ मे) ।

सन् १९१२ की एक उद्घोषणा द्वारा दिल्ली का एक छोटा-सा प्रान्त बनाया गया—इसमे नई राजधानी के चारो ओर का थोडा-सा प्रदेश सम्मिलित किया गया । इस प्रान्त के लिए एक चीफ कमिश्नर की व्यवस्था की गई । यह चीफ कमिश्नर स-परिषद् गवर्नर-जनरल के आधीन होना था ।

सन् १९१२ के प्रशासनीय परिवर्तनो के फलस्वरूप सरकार ने भारतीय सविधान से सम्बन्धित विधियो को सहिताबद्ध करने की आवश्यकता को अनुभव किया । ऐसे बहुत-से ऐक्ट थे जो अयुक्त हो गए थे और व्यवहार मे भी नही आते थे, किंतु वे रद्द नही किए गए थे, और भारत सरकार के अधिकार विभिन्न विधानो

---

१ २१ मार्च १९१२ को लॉर्ड कारमाइकेल को बगाल का पहला गवर्नर नियुक्त किया गया ।

मे बिखरे हुए थे और समय तथा शक्ति का अपव्यय किए विना उन अधिकारों को जानना अत्यन्त कठिन था। अत जुलाई १९१५ मे पार्लियामेट ने एक कॉन्सॉलिडेटिग ऐक्ट' बनाया।

सन् १९१५ के इस ऐक्ट का उद्देश्य उपयोग मे आने वाली सब विधियो को एकत्र करके एक सहिता के रूप मे प्रस्तुत करना था। इसी कारण उस ऐक्ट मे पिछले विधानो मे किसी प्रकार का सशोधन करनेवाले कोई खड नही थे। "उसने सन् १७७० के बाद के ४७ ऐक्टो की व्यवहार मे न आनेवाली धाराओ को रद्द किया और व्यवहार मे आनेवाली अन्य सब धाराओ को एकत्र किया और उनको १३५ विभागो और ५ अनुसूचियो के एक ऐक्ट के रूप मे प्रस्तुत किया।

उस विधेयक पर जो बाद मे सन् १९१५ का ऐक्ट बना, पार्लियामेट ने, दोनो भवनो की एक सयुक्त प्रवर समिति नियुक्त की थी। उसके समक्ष कुछ ऐसे प्रस्ताव आए जो उसके मतानुसार ऐक्ट के क्षेत्र से बाहर थे और इसी कारण प्रवर समिति ने उनको स्वीकार नही किया। इन प्रस्तावो को एक नए सशोधनकारी विधेयक के रूप मे प्रस्तुत किया गया। यह विधेयक सन् १९१६ मे ऐक्ट बन गया।

सन् १९१६ के भारतीय शासन (सशोधन ऐक्ट) ने कुछ साधारण परिवर्तन किए। उसकी धाराओ के अनुसार देशी राज्यो के कुछ छँटे हुए लोग भारतीय सिविल सर्विस परीक्षाओं की प्रतियोगिता मे भाग ले सकते थे, देशी राज्यो और नेपाल प्रदेश के शासकों और निवासियो की सैनिक एव असैनिक पदों पर नियुक्ति की जा सकती थी, देशी राज्यो के शासको और निवासियो को विधान परिषदो के लिए नामनिर्देशित किया जा सकता था।

६

विचाराधीन समय मे ब्रिटिश पार्लियामेट ने एक ऐक्ट और बनाया, जिसका भारत सरकार के सविधान से सम्बन्ध था। यह था सन् १९११ का भारतीय उच्च न्यायालय ऐक्ट।

सन् १८६१ और १८६५ के विधानो ने उच्च न्यायालयो के सविधान, उनके क्षेत्राधिकार और उनकी सख्या[1] आदि को विनियमित किया था।

सन् १९११ के ऐक्ट ने मुख्य न्यायाधीश सहित, सब न्यायाधीशो की

१ सन् १९११ मे भारत मे चार उच्च न्यायालय थे—एक कलकत्ता मे, एक बम्बई मे, एक मद्रास मे और एक इलाहाबाद मे। सन् १८६५ के ऐक्ट में जो अधिकार दिया गया था वह इलाहाबाद हाईकोर्ट बनाने से समाप्त हो गया था। अत एक नया ऐक्ट बनाया गया और उसमे भविष्य के लिए उक्त धारा जोड दी गई।

अधिकतम सख्या को सोलह से बढा कर बीस कर दिया ।

ऐक्ट ने दूसरी बात यह की कि उसने सम्राट् को आवश्यकताओं के अनुसार समय-समय पर नए उच्च न्यायालयों को स्थापित करने का और उनकी स्थापना के फलस्वरूप उनके क्षेत्राधिकार मे आवश्यक परिवर्तन करने का प्राधिकार दिया।

अन्त मे ऐक्ट ने स-परिषद् गवर्नर-जनरल को किसी उच्च न्यायालय के लिए अस्थायी अतिरिक्त न्यायाधीश नियुक्त करने का अधिकार दिया। इन न्यायाधीशो का कार्य-काल दो वर्ष से अधिक नही हो सकता था ।

इन अधिकारों का दो नए उच्च न्यायालय बनाने के लिए उपयोग किया गया—एक उच्च न्यायालय सन् १९१५ मे पटना मे स्थापित किया गया और दूसरा सन् १९१९ मे लाहौर मे स्थापित किया गया ।

७

सन् १९०९ के सुधारो के बाद भी सिविल सर्विस के उच्चतर पदों के सम्बन्ध मे भारतवासियों की स्थिति मे कोई परिवर्तन नही हुआ । शिक्षित वर्गों में बहुत बडा असतोष था और उसको १७ मार्च १९११ को माननीय मि. सूबाराव ने साम्राज्यीय विधान परिषद् मे व्यक्त किया। उन्होने इस अवसर पर "देश के सिविल शासन के क्षेत्र मे, भारतीयो की अधिकाधिक एव उच्चतर पदों पर नियुक्ति के सम्बन्ध मे, भारतवासियों के अधिकारो पर विचार करने के लिए, एक राजकीय कमीशन नियुक्त करने की सिफारिश की ।"[१]

सरकार ने उस प्रस्ताव को स्वीकार किया और उसके फलस्वरूप २१ अगस्त १९१२ को एक राजकीय कमीशन की नियुक्ति की गई। लॉर्ड इस्लिंग्टन इस कमीशन के अध्यक्ष थे, उनके अतिरिक्त कमीशन के ११ सदस्य और थे, जिन मे तीन भारतीय थे—श्री गोखले, मि अब्दुर्रहीम और मि. चौबाल ।[२] कमीशन

१. Indian Legislative Council proceedings. Vol. XLIX-page 492

२. कमीशन के सदस्यो की छाँट के सम्बन्ध मे भारत मे तीव्र आलोचना हुई। आग्ल-भारतीयो को तो यह आपत्ति थी कि सिविल सर्विसवालो को कम प्रतिनिधित्व दिया गया था, इसके अतिरिक्त कमीशन मे मि रैमज़े मैकडोनैल्ड को नियुक्त किया गया था और वे कर्मचारीतन्त्र के तीव्र आलोचक थे। भारतवासियो को यह आपत्ति थी कि उनको अत्यल्प प्रतिनिधित्व दिया गया था और कमीशन मे सर वैलेण्टाइन शिरोल को नियुक्त किया था। केवल मुस्लिम वर्ग प्रसन्न थे क्योकि सर अब्दुर्रहीम के अतिरिक्त कमीशन मे सर वैलेण्टाइन शिरोल, सर थियोडोर मॉरिसन और लॉर्ड रोनैल्ड शे थे, ये सब सदस्य मुस्लिम-पक्ष के प्रबल समर्थक थे।

को साम्राज्यीय तथा प्रान्तीय दोनो ही सेवाओ के सम्बन्ध मे निम्नलिखित विषयो का परीक्षण करके उनपर अपनी रिपोर्ट देनी थी —(१) भर्ती करने की प्रक्रिया और शिक्षण तथा परीक्षण की व्यवस्था; (२) सेवा, वेतन, छुट्टी और निवृत्ति-वेतन की शर्तें; (३) गैर-यूरोपियनो की नियुक्ति पर प्रचलित प्रतिबन्ध और साम्राज्यीय तथा प्रान्तीय सेवाओ के विभाजन की वर्तमान व्यवस्था।[1] इसके अतिरिक्त कमीशन को सामान्य रूप से इन सार्वजनिक नौकरियो की आवश्यकताओ पर विचार करना था और उनमे उपयुक्त परिवर्तन के लिए सिफारिश करनी थी।

अगस्त १९१५ मे कमीशन ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। मि अब्दुर्रहीम की रिपोर्ट अलग थी और इसे श्री गोखले का "पूर्ण अनुमोदन प्राप्त था; वस्तुतः इसे उन्ही के परामर्श से तैयार किया गया था।"[2] किन्तु १९ फरवरी १९१५ को श्री गोखले का देहान्त हो गया और इस पृथक् रिपोर्ट पर उनके हस्ताक्षर न हो सके।

रिपोर्ट को उस समय प्रकाशित नही किया गया क्योकि सरकार, महायुद्ध के दिनो मे, किसी विवाद मे पडने से बचना चाहती थी। लेकिन जब महायुद्ध के शीघ्र समाप्त होने की आशा नही दिखाई दी, तो अन्त मे उस रिपोर्ट को जनवरी १९१७ मे प्रकाशित कर दिया गया। मॉण्ट फोर्ड रिपोर्ट का कहना है कि, "उस समय तक महायुद्ध ने भारतवासियों की आशाओं को बहुत ज्यादा बढा दिया था. (फलत). रिपोर्ट की निन्दा की गई उसे बिल्कुल अपर्याप्त बताया गया, रिपोर्ट ने भारतीय जनमत को सतुष्ट करने के स्थान पर उसे और ज्यादा चिढा दिया।"[3]

कमीशन के सामने सब से ज्यादा महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि सार्वजनिक नौकरियो के उच्चतर पदो पर भारतीयो की नियुक्ति के सम्बन्ध मे वास्तविक कठिनाइयो को किस प्रकार दूर किया जाए। साम्राज्यीय सिविल सर्विस की अधिकाश शाखाओ के लिए साधारणतया यूरोप के लोगो मे से भर्ती की जाती थी। जिन विभागो के लिए भारत मे भर्ती की जाती थी, उनमे भी उच्चतर पदो के लिए यूरोपियनो, आग्ल-भारतीयो और ईसाइयो को अधिमान दिया जाता था। ५०० रुपये प्रतिमास अथवा उससे अधिक वेतन के पदो पर भारतीयो का अनुपात केवल १९ प्रतिशत था। ८०० रुपये अथवा उससे अधिक वेतन के

१. Islington Commission Report, 1912–15–17. page 2
२. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ ३९४,
३. Report on Indian Constitutional Reforms 1918, page 5.

पदो पर उनका अनुपात केवल १० प्रतिशत था।[1] वेतन मे क्रमश वृद्धि के साथ भारतीयों का अनुपात उसी क्रम से घटता जाता था, यहाँ तक कि ऐसे पद थे जिन पर भारतीयो की कभी नियुक्ति ही नही हुई थी।

भारतवासियो ने यह उपाय सुझाया था कि इगलैंड तथा भारत, दोनो ही स्थानो मे प्रतियोगितापूर्ण समकालिक परीक्षाओ की व्यवस्था की जाए। कमीशन ने इस सुझाव को स्वीकार नही किया क्योकि उसके मतानुसार ऐसी व्यवस्था को अपनाने के लिए अभी उपयुक्त समय नही आया था। कमीशन का तर्क यह था कि भारत के विभिन्न प्रान्तो और समुदायो मे शिक्षण-सुविधाओ का पर्याप्त और समान रूप मे प्रसार नही हुआ था। इसके अतिरिक्त दूसरा यह था कि "भारतीय स्कूलो और कॉलेजो मे, इगलैंड के स्कूलो और कॉलिजो की भाँति, चरित्र के विकास और उसके निर्माण के लिए कोई निश्चित सुरक्षा नही थी।"[2] कमीशन की दृष्टि मे सरकारी छात्रवृत्तियो की व्यवस्था से भी समस्या का हल नही हो सकता था। उसने उच्चतर पदो मे भारतवासियो के लिए एक निश्चित अनुपात सुरक्षित रखने के सिद्धात का भी अनुमोदन नही किया। यह सच है कि इस प्रश्न पर विचार करने का उचित दृष्टिकोण यह नही था कि प्रत्येक विभाग मे कितने भारतीय नियुक्त किए जाने चाहिएं तथापि मि. अब्दुर्रहीम का यह कहना बिल्कुल ठीक था, "कि यूरोप से अधिकारियो का आयात, विशुद्ध आवश्यकता से सीमित होना चाहिए।"[3] किंतु कमीशन के सदस्यो का दृष्टिकोण दूसरा ही था और उन्होने भारतीयो के लिए अनुपात निश्चित करने के सुझाव को कोई मान्यता नही दी। इस सम्बन्ध मे उनका एक तर्क तो यह था "कि जातीय आधार पर अनुपात निश्चित करने का सिद्धान्त अवाछनीय है" और दूसरा तर्क यह था कि "कि हम इस बात को जानते हैं कि न्यूनतम सीमा की प्रवृत्ति अधिकतम सीमा की ओर बढने की हुआ करती है।[4] लेकिन इन तर्कों के होते हुए भी कमीशन के निजी प्रस्ताव मुख्यत जातीय भावनाओ पर अवलम्बित थे।

कमीशन का सब से पहला प्रस्ताव तो यह था कि जिन नौकरियों के लिए साधारणतया भारत मे भर्ती की जाती है, उनमे कुछ और नौकरियो को भी सम्मिलित कर दिया जाए। अपने दूसरे प्रस्ताव के अनुसार कमीशन ने अन्य नौकरियो

१. ये आकड़े सन् १९१३ के हैं—देखिए—Islington Commission Report, pages 24 to 26.

२ उपर्युक्त रिपोर्ट पृष्ठ ३०।

३. उपर्युक्त रिपोर्ट पृष्ठ ४११.

४. उपर्युक्त रिपोर्ट पृष्ठ २६.

को तीन वर्गो मे विभाजित किया.—(१) आई सी एस (भारतीय सिविल सर्विस), आई पी एस. (भारतीय पुलिस सर्विस) आदि नौकरियाँ—जिनमे "अधिकाश अफसरो की भर्ती यूरोप मे की जानी चाहिए।"[१] आई सी एस के ७५ प्रतिशत पदो के लिए इगलैड मे प्रतियोगिता-पूर्ण परीक्षाओ के द्वारा भर्ती की जानी थी। अभ्यर्थियो की अधिकतम आयु २४ वर्ष से घटा कर १९ वर्ष कर दी गई थी जिसके फलस्वरूप भारतवासियो के लिए इस द्वार से प्रवेश पाना असभव हो गया था। अन्य २५ प्रतिशत पदो के लिए, भारत मे निश्चित योग्यता के अभ्यर्थियो मे से नामनिर्देशन होना था। पुलिस सर्विस के लिए भारत मे केवल १० प्रतिशत अभ्यर्थियो की भर्ती होनी थी, धीरे-धीरे यह अनुपात २० प्रतिशत तक बढाया जाना था। (२) दूसरे वर्ग मे शिक्षा, डाक्टरी, सार्वजनिक निर्माण आदि से सम्बन्धित नौकरियो की गणना थी इसमे यूरोप-वासियो और भारतवासियो, दोनो की ही भर्ती करना वाछनीय समझा गया। (३) तीसरे वर्ग मे वैज्ञानिक और टैक्निकल नौकरियो की गणना थी। भारत मे टैक्निकल शिक्षा की सस्थाएँ खुल जाने पर कालान्तर मे उक्त नौकरियो की भर्ती भारत मे होनी थी किंतु उस समय उनके लिए विदेशो मे ही भर्ती की जानी थी।

ये प्रस्ताव केवल अपर्याप्त ही नही थे वरन् ये ब्रिटिश जातीय श्रेष्ठता की धारणा पर और साथ ही कुछ नौकरियो मे अग्रेजो का बहुत बडा अनुपात बनाए रखने की नीति पर अवलम्बित थे। ऐसी दशा मे यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि उनके प्रकाशित होने पर भारत मे सर्वत्र उनकी निन्दा की गई।

कमीशन ने विभिन्न सार्वजनिक सेवाओ के सदस्यो के वेतन मे वृद्धि करने के लिए भी सिफारिश की, जिसका कुल जोड़ मि चौबाल के अनुसार, ८८ लाख रुपये से भी अधिक था। कमीशन के दो भारतीय सदस्यो ने इस बात को निर्विवाद रूप से सिद्ध भी किया कि भारत मे इन सिविल अधिकारियो के वेतन, भत्ते आदि मे किसी प्रकार की वृद्धि करने के लिए कोई कारण नही था क्योकि उनको पहले से ही जो वेतन, भत्ता, आदि दिया जा रहा था, वह इग्लैड, सीलोन अथवा हागकाग की सिविल सर्विस की अपेक्षा कही अधिक था।

कमीशन की अन्य सिफारिशे टैक्निकल ढग की थी और उन पर यहाँ विचार करना आवश्यक नही है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, कमीशन की रिपोर्ट की भारत मे सभी जगह निन्दा की गई और उसे असतोषप्रद तथा अपर्याप्त बताया गया। यहाँ तक कि भारतीय वैधानिक सुधारो की रिपोर्ट ने भी यह लिखना आवश्यक समझा कि, "भविष्य की नीति, (इस्लिग्टन कमीशन की) रिपोर्ट पर

१. उपर्युक्त रिपोर्ट पृष्ठ ६१.

अवलम्बित होनी चाहिए, किंतु परिस्थितियो मे परिवर्तन हो जाने के कारण हमारा यह मत है कि कुछ महत्त्वपूर्ण दिशाओं मे उसके निष्कर्षों को आगे बढाना आवश्यक होगा।"[१]

८.

सन् १९०९ से १९१९ तक के विचाराधीन युग मे वैधानिक दृष्टि से विशेष महत्त्व की, एक घटना हुई,—भारत को, साम्राज्यीय सम्मेलन मे, साम्राज्यीय युद्ध, परिषद् मे, तथा शान्ति सम्मेलन के लिए ब्रिटिश साम्राज्यीय शिष्ट मडल मे, साम्राज्य के अन्य स्वशासक सदस्यो के साथ, (प्रकटत ) बराबरी का स्थान दिया गया।

सन् १८८७ मे, महारानी विक्टोरिया की जयन्ती मनाने के सम्बन्ध मे औपनिवेशिक सम्मेलन के नाम से साम्राज्यीय सम्मेलन ने अपनी सब से पहली सभा की थी। उसी औपनिवेशिक सम्मेलन को सन् १९०७ मे साम्राज्यीय सम्मेलन का नाम दे दिया गया और उसके नए सविधान के अनुसार इसका मतलब था—सम्राट् सरकार तथा औपनिवेशिक सरकारो की, परस्पर सम्बन्धित विषयो पर विचार करने वाली सभा।"[२]

पहला साम्राज्यीय सम्मेलन १९११ मे हुआ और उससे अगला सम्मेलन १९१५ मे होने वाला था, किंतु महायुद्ध आरम्भ हो जाने के कारण उसको अनिश्चित समय के लिए स्थगित कर दिया गया। लेकिन दिसम्बर १९१६ मे इग्लैंड मे इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि सन् १९१७ के आरम्भिक महीनो मे ही साम्राज्यीय सम्मेलन की मीटिग की जाए और युद्ध परिषद् के लिए साम्राज्य के प्रतिनिधियो को बुलाया जाए।

सितम्बर १९१५ मे भारतीय विधान परिषद् मे एक प्रस्ताव द्वारा यह सिफारिश की गई "कि सम्राट् सरकार से, साम्राज्यीय परिषद् मे भारत को नियमानुसार प्रतिनिधित्व देने के लिए निवेदन किया जाए।"[३] यद्यपि भारत एक स्वशासक देश नही था तथापि वाइसरॉय के मतानुसार "भारत के विस्तार, उसकी जनसख्या, सम्पत्ति, सैन्य सामर्थ्य और राजभक्ति के कारण उसकी प्रतिनिधित्व की माँग उचित थी।"[३] फलत. १९१७ मे साम्राज्यीय युद्ध परिषद् और साम्राज्यीय युद्ध सम्मेलन, दोनो की सभाओ मे भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए, भारत मन्त्री को आमत्रित किया गया। भारत मन्त्री की सहायता करने के लिए भारत सरकार ने

१. The Report on Indian Constitutionl Reforms, 1918. page 149.

२. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, vol. I. page 609

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६११

तीन व्यक्तियो को नियुक्त किया—हिज़ हाइनेस बीकानेर नरेश, माननीय सर जेम्स मेस्टन और सर सत्येद्र सिनहा ।

साम्राज्यीय युद्ध सम्मेलन की सभाएँ अप्रैल १९१५ मे हुई और उनमे अन्य प्रस्तावो के अतिरिक्त निम्नलिखित प्रस्ताव भी स्वीकार किए गए—(१) साम्राज्यीय सम्मेलन के सविधान मे उपयुक्त परिवर्तन किया जावे ताकि भविष्य के सब सम्मेलनो मे भारत भी भाग ले सके, और (२) युद्ध समाप्त होने के बाद, वैधानिक सम्बन्धो को फिर से निश्चित करने के लिए एक विशेष सम्मेलन किया जाए ताकि (अ) इस बात को मान्यता दी जा सके कि विदेश-नीति और विदेश सम्बन्ध निश्चित करने के विषय मे ब्रिटिश डोमीनियनो को और साथ ही भारत को समुचित अधिकार होना चाहिए, और (ब) समय-समय पर परामर्श करने के लिए .....और आवश्यकता होने पर मिल कर योजनानुसार कार्यवाही करने के लिए कारगर व्यवस्था की जा सके ।[1] एक अन्य प्रस्ताव मे समान पारस्परिक व्यवहार के सिद्धात को स्वीकार किया गया और स्वशासक ब्रिटिश डोमीनियनो मे भारतीयो की स्थिति के बारे मे भारत-सरकार द्वारा प्रस्तुत किए हुए ज्ञापन पर विचार करने के लिए सम्बन्धित सरकारो से सिफारिश की गई ।

साम्राज्यीय युद्ध सम्मेलन की सभाओ के अतिरिक्त, साम्राज्यीय युद्ध परिषद् की बैठके भी हुईं । सन् १९१७ की १८ मई को ब्रिटिश प्रधान मन्त्री ने हाउस ऑव कॉमन्स मे यह बताया कि साम्राज्यीय युद्ध परिषद् की मीटिग प्रतिवर्ष करने का निर्णय किया गया था लेकिन अविलम्ब्य साम्राज्यीय प्रश्न उपस्थित होने पर यह मीटिग जल्दी भी की जा सकती थी । उसी अवसर पर उन्होने निम्नलिखित व्यक्तियो को परिषद् का सदस्य बताया—सयुक्त राज्य का प्रधान मन्त्री और साम्राज्यीय विषयो का सचालन करनेवाले उसके सहयोगी, प्रत्येक ब्रिटिश डोमीनियम का प्रधान मन्त्री अथवा उसका विशेष रूप से अधिकृत प्रतिनिधि और भारत सरकार द्वारा नियुक्त किया हुआ, भारतीय जनता का प्रतिनिधि ।[2]

सन् १९१८ मे भारत सरकार ने (तत्कालीन उप-भारत मन्त्री) सर सत्येद्र सिनहा को साम्राज्यीय युद्ध परिषद् मे भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए नियुक्त किया । साम्राज्यीय युद्ध सम्मेलन मे भारत का प्रतिनिधित्व करने के लिए सर सत्येद्र के अतिरिक्त पटियाला नरेश को भी नियुक्त किया गया ।[3]

---

१. Keith : Speeches of Indian Policy, vol II. page 133

२. Mukherjee · Indian Constitutional Documents, vol. II. page 617.

३. साम्राज्यीय विधान परिषद् में एक प्रस्ताव द्वारा यह कहा गया था कि भारतीय प्रतिनिधियो की नियुक्ति, परिषद् के निर्वाचित सदस्यो की

साम्राज्यीय युद्ध सम्मेलन की दूसरी बैठक जुलाई १९१८ मे हुई और उसमे अन्य बातो के अतिरिक्त सन् १९१७ के समान पारस्परिक व्यवहार के सिद्धात को कार्यान्वित करना भी स्वीकार किया गया। एक प्रस्ताव द्वारा इस सिद्धात का प्रतिपादन किया गया कि प्रत्येक सरकार को "अपने देश की जन-रचना (Composition of Population) के सम्बन्ध मे पूर्ण नियत्रण का अधिकार होना चाहिए और उसे, अपने देश मे बसने के लिए विदेशो से आने वाले लोगो पर प्रतिबन्ध लगाने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए," लेकिन ब्रिटिश देशो के नागरिको पर, "भ्रमण, वाणिज्य अथवा अध्ययन के उद्देश्य से, परस्पर एक-दूसरे देश में आने-जाने पर अथवा अध्ययन के सम्बन्ध मे अस्थायी प्रवास पर, कोई रोक नही होनी चाहिए।"[1] साथ ही यह बात बिल्कुल स्पष्ट कर दी गई कि "इन लोगो को स्थायी रूप से बसने का अथवा मजदूरी के उद्देश्य से अस्थायी प्रवास का कोई अधिकार नही होगा।[2] प्रस्ताव ने डोमीनियनो मे पहले से स्थायी रूप से बसे हुए भारतीयो को अपनी पत्नियो और अवयस्क बच्चो को भारत से लाने की अनुमति दी लेकिन शर्त यह थी कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी एक पत्नी को और भारत सरकार द्वारा प्रमाणित उस पत्नी के ही बच्चो को डोमीनियन मे ला सकेगा।

साम्राज्यीय युद्ध सम्मेलन की बैठक के कुछ ही समय बाद युद्ध समाप्त हुआ और सधि की समस्या सामने आई। इस सम्बन्ध मे वर्साई मे शान्ति-सम्मेलन हुआ और उस मे ब्रिटिश साम्राज्य की ओर से प्रतिनिधि-मडल भेजा गया। विगतकाल मे ऐसे अवसरो पर केवल ब्रिटेन के ही प्रतिनिधि भेजे जाते थे लेकिन इस बार प्रत्येक डोमीनयन को और साथ ही भारत को पृथक् प्रतिनिधित्व दिया गया। प्रत्येक डोमीनियन और भारत के प्रतिनिधियो ने क्रमश. अपनी सरकारो की ओर से शान्ति-सधि पर पृथक् रूप से हस्ताक्षर किए। राष्ट्र सघ (League of Nations) की योजना, सधि का अविभाज्य अग थी। फलतः सधि पर हस्ताक्षर करनेवाले डोमीनियन और भारत भी उस सघ के स्वतन्त्र सदस्य बन गए।

इस प्रकार विदेशो से सबन्धित विषयो मे भारत को एक डोमीनियन का दर्जा दिया गया लेकिन भारतवासियो की दृष्टि मे भारत की इस पदोन्नति का कोई महत्व नही था। वस्तुत. अधिकाश प्रगतिशील राष्ट्रवादियो के अनुसार भारत के लिये

सिफारिशो के अनुसार होनी चाहिए, लेकिन भारत सरकार ने उसे स्वीकार नही किया।

१. Keith : Speeches on Indian Policy, vol. II, page 135
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १३६.

राष्ट्र सघ की सदस्यता कोई सौभाग्य की बात नही थी। वरन् वह सदस्यता उसके लिए एक बोझ के रूप मे थी। उन्हे राष्ट्र सघ के उद्देश्यो पर सदेह था—उनके अनुसार, शोषण करने वाले साम्राज्यवादी राष्ट्रो ने, सघ के रूप मे अपनी गुटबन्दी की थी, और, भारतीय प्रतिनिधित्व, भारत की अपेक्षा इग्लैड के लिए अधिक उपयोगी था क्योकि भारतीय प्रतिनिधित्व के लिए सरकारी अधिकारियो को नियुक्त किया जाता था और उन पर ब्रिटिश नियत्रण होता था। इस बात मे कोई सदेह नही है कि ये आक्षेप बहुत हद तक सच्चे थे क्योकि राष्ट्र सघ तथा साम्राज्यीय सस्थाओ की सदस्यता का वास्तविक लाभ उसी समय उठाया जा सकता था जब अन्य सदस्यो की भाँति भारत भी स्वाधीन हो। किंतु दूसरी ओर यह तर्क भी बहुत हद तक सही था कि आरम्भिक बातो से चाहे कोई तात्कालिक प्रत्यक्ष लाभ न दिखाई दे, तथापि वे बाते अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होती हैं।

## अठारहवाँ अध्याय

# क्रान्ति और दमन

१.

लॉर्ड मॉर्ले अपनी सुधार-योजना को मित्रता और सद्भावना के वातावरण मे कार्यान्वित करना चाहते थे। अत. उन्होने वाइसरॉय पर इस बात की आवश्यकता के सबध में ज़ोर दिया कि सुधारो के लिए वाछित वातावरण बनाने के उद्देश्य से कोई ऐसा महत्त्वपूर्ण काम किया जाय, जिससे सरकार का कृपा-भाव प्रदर्शित हो। इस सबध मे उन्होने बगाल के निर्वासित व्यक्तियो को मुक्त करने का सुझाव दिया। किन्तु वाइसरॉय के मतानुसार, एक ऐसे समय पर जब भारत के विचारशील व्यक्तियो का समर्थन प्राप्त करने का प्रयत्न किया जा रहा था, राजनैतिक क्षेत्र मे इन आग उगलने वालो को मुक्त करना अविवेकपूर्ण था।[1] भारत-सरकार के प्रबल विरोध ने भारत-मत्री को उस समय चुप कर दिया और किसी कृपा पूर्ण कृत्य के स्थानपर एक अराजकतापूर्ण हत्या के बाद सुधारो का उपक्रमण किया गया। सन् १९१० की २५ जनवरी को लॉर्ड मिटो ने नई निर्वाचित साम्राज्यीय विधान परिषद् का उद्घाटन किया लेकिन उससे एक ही दिन पहले पुलिस के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट, शमसुल आलम को गोली से मार दिया गया था।[2] यह अधिकारी अलीपुर षडयत्र अभियोग के सिलसले मे कलकत्ता-हाईकोर्ट मे उपस्थित हुआ

१. Buchan: Lord Minto, page, 392.

२. इसी पुस्तक का तेरहवाँ अध्याय देखिए।

था। अस्तु, नई साम्राज्यीय विधान परिषद् ने आरम्भ मे ही एक अत्यन्त कठोर प्रेस (समाचार-सपादन) कानून बनाया।

२.

पिछले चार वर्षों मे कितनी ही अराजकतापूर्ण हत्याओ का प्रयत्न किया गया था। जैसा कि वाइसरॉय ने लॉर्ड मॉर्ले को भी लिखा, इन हत्याओ के फलस्वरूप कलकत्ता मे रहने वाले यूरोपियनो मे घबराहट फैल गई थी। उस घबराहट को दूर करने के लिए, सरकार कठोर नीति अपनाने की आवश्यकता अनुभव कर रही थी। सेनापति ने मार्शल लॉ (फौजी कानून) लागू करने का सुझाव दिया। इस सबध मे लॉर्ड मॉर्ले ने लिखा कि उस (फौजी शासन) के विचार से ही "मेरी रग-रग काँप उठी।"[1] स्वय वाइसरॉय ने उस सुझाव को निषिद्ध कर दिया और अन्त मे यह निर्णय किया गया कि तुरत ही एक कठोर प्रेस-कानून बनाया जाय। ९ फर्वरी १९१० को यह कानून तैयार हुआ और उसी दिन लॉर्ड मिटो ने बगाल के निर्वासित व्यक्तियो को छोडने की आज्ञा भी दी।

प्रेस-कानूनो के पिछले इतिहास का विगत अध्यायो मे वर्णन किया जा चुका है। सन् १८८१ मे समाचारपत्रो को फिर स्वतत्रता दे दी गई थी जिसके फलस्वरूप उनकी वृद्धि को विशेष प्रोत्साहन मिला था। सन् १९०१-०२ तक समाचारपत्रो की सख्या बढ कर ७०८ हो गई थी और सन् १९०७-०८ मे उनकी सख्या ७५३ थी।[2] सन् १९०८ मे समाचारपत्र (अपराध-उत्तेजक) ऐक्ट[3] बनाया गया था, जिसका उद्देश्य समाचार-पत्रो के क्रान्तिकारी प्रचार को रोकना था। इस ऐक्ट के अन्तर्गत सरकारी कार्यवाही के कारण, 'युगान्तर', 'सध्या' और 'वन्देमातरम्' जैसे उग्र समाचार-पत्रो का प्रकाशन बद हो गया था। समाचार-पत्रों के विरुद्ध राजद्रोह का अभियोग चलाने के लिए भारतीय दड सहिता की धारा न० १२४ ए और धारा न० १५३ ए के अन्तर्गत, भारत-सरकार को विस्तृत अधिकार प्राप्त थे। उसी सहिता की धारा न० १०८ के अन्तर्गत, समाचार-पत्रो से जमानत मागी जा सकती थी और उग्र नीति का प्रचार करने वाले पत्रो का दमन करने के लिए सन् १९०८ के समाचार पत्र (अपराध-उत्तेजक) ऐक्ट का उपयोग किया जा सकता था। तथापि भारत सरकार के अनुसार, समाचार-पत्रो के राजद्रोहपूर्ण साहित्य का प्रचार रोकने के लिए उपर्युक्त अधिकार अपर्याप्त थे। अत पडित मालवीय और भूपेन्द्र नाथ वसु जैसे गैरसरकारी सदस्यो के विरोध के होते हुए भी, परिषद् की कार्य-

१ Morley: Recollections, Vol. II. page 328.

२ Moral and Material Progress Report, 1911-12, page 362.

३. इस ऐक्ट की १४ वे अध्याय मे चर्चा की जा चुकी है।

पद्धति के साधारण नियमो को निलम्बित करके, सरकार ने साम्राज्यीय विधान-परिषद् से जल्दी से एक कठोर प्रेस क़ानून बनवाया। यही कानून सन् १९१० के इडियन प्रेस ऐक्ट के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

सन् १९१० के इस ऐक्ट मे, सन् १८७८ के वर्नाक्युलर प्रेस ऐक्ट की सारी गर्हित धाराएँ वर्तमान थी। किन्तु दो बातो मे महत्त्वपूर्ण अन्तर था—नया ऐक्ट सब समाचार-पत्रो पर लागू था, चाहे वे पत्र भारतीय भाषाओ के हो अथवा अगरेज़ी के और चाहे वे ऑग्ल-भारतीयो[1] के हो अथवा भारतवासियो के ; और दूसरा अन्तर यह था कि नए ऐक्ट की एक धारा के अनुसार हाईकोर्ट मे अपील की जा सकती थी।

सन् १९१०के इस ऐक्ट के प्राधिकार के बल पर, मजिस्ट्रेट, नए छापेखानो[2] के मुद्रको और साथ ही नए समाचार-पत्रो के प्रकाशको[3] से (सन् १८६७ के प्रेस तथा पुस्तक निबधन ऐक्ट की धारा न० ४ के अन्तर्गत उनसे अपने समक्ष घोषणा कराने के बाद) कम-से-कम पाँच सौ और अधिक-से-अधिक दो हज़ार रुपये की ज़मानत माँग सकता था। नए ऐक्ट के लागू होने के पहले से जो प्रेस काम कर रहे थे, और जो समाचार-पत्र निकल रहे थे, उनके सबध मे भी ऐक्ट ने स्थानीय सरकारो को निश्चित प्राधिकार दिया। इसके अनुसार ये स्थानीय सरकारे उक्त छापेखानो के मुद्रको अथवा उक्त समाचार-पत्रो के प्रकाशको से (यदि वे ऐक्ट के विभाग न ४ (१) के अन्तर्गत आने वाले लेखो को छापते या प्रकाशित करते हो), कम-से-कम पाँच सौ और अधिक-से-अधिक पाँच हज़ार रुपये की ज़मानत माँग सकती थी। ऐक्ट के प्राधिकार के बल पर मजिस्ट्रेट, किसी प्रेस अथवा समाचार-पत्र की ज़मानत को (कारणो का अभिलेख करने के बाद), छोड़ सकता था अथवा इस सबध मे अपनी किसी पिछली आज्ञा को रद्द कर सकता था अथवा उसे बदल सकता था।

---

१. ऑग्ल-भारतीय पत्रो को सम्मिलित करने का व्यवहारत कोई अर्थ नही था। वे राजद्रोह का प्रचार नही कर सकते थे और जातीय भेदभाव के प्रचार के सिलसिले मे सरकार उनके विरुद्ध कोई कार्यवाही नही करती थी।—देखिए इसी पुस्तक का बारहवाँ अध्याय—और Paragraph 7 of the Report of the Press Laws Committee, 1921

२. Section 3 (i) of the Act, Ghose. Press and Press Laws in India, page 66.

३. Section 8 (i) of the Act. Ibid, page 69.

ऐक्ट ने अपने विभाग न. ४ (१) के छै: विस्तृत खडो[1] मे आपत्तिजनक बातो की परिभाषा बताई। इन बातो का मुद्रण अथवा प्रकाशन होने पर स्थानीय सरकार जमानत जब्त कर सकती थी। सन् १९०८ के विस्फोटक पदार्थ एक्ट[2] और उसी वर्ष के समाचार-पत्र (अपराध-उत्तेजक) ऐक्ट[3] के अपराधो को सन् १९१० के ऐक्ट मे फिर सम्मिलित किया गया। राजद्रोहपूर्ण प्रकाशन की परिभाषा इतनी विस्तृत कर दी गई कि उसमे देशी नरेशो, न्यायाधीशों, कार्यकारिणी-अफसरो और सार्वजनिक अधिकारियो के विरुद्ध लेख लिखने को भी गणना की जा सकती थी। सम्राट् की सेना मे नौकरी करने वालो मे अभक्ति फैलाने के अथवा क्रान्तिकारी कामो के लिए रुपया वसूल करने के उद्देश्य से लोगो को धमकाने के अथवा क्रान्तिकारी अपराध की खोज और गवाही में सहायता देने वालो को रोकने के सारे प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रयत्न, विभाग न. ४(१) की आपत्तिजनक बातो की परिभाषा मे सम्मिलित थे। वस्तुतः इस विभाग ने, समाचार-पत्रो के लिए सरकारी कामों की आलोचना करना असभव कर दिया था। किन्तु इससे भी ज्यादा बुरी बात यह थी कि कोई प्रकाशन, विभाग न. ४ (१) की दृष्टि से आपत्तिजनक है अथवा नही, यह निर्णय करने का अधिकार, साधारण न्यायालयो के स्थान पर स्थानीय सरकार को दिया गया था।

यदि विभाग न ४(१) के अनुसार स्थानीय सरकार ने किसी छापेखाने की अथवा किसी समाचार-पत्र की ज़मानत ज़ब्त कर ली है और उस छापेखाने का मुद्रक[4] अथवा उस पत्र का प्रकाशक,[5] सन् १८६७ के प्रेस तथा पुस्तक निबधन ऐक्ट के विभाग न ४ के अनुसार फिर घोषणा करता है तो प्रत्येक को (मजिस्ट्रेट के आदेशानुसार) कम-से-कम एक हज़ार रुपये की और अधिक-से-अधिक दस हज़ार रुपये की जमानत देनी थी। यदि स्थानीय सरकार के मतानुसार उक्त प्रेस अथवा उक्त पत्र, विभाग न ४(१) के अन्तर्गत फिर अपराध करता है, तो वह सरकार उसकी ज़मानत को, छापेखाने को और समाचार-पत्र की सारी प्रतियो को और अन्य आपत्तिजनक प्रकाशनो को जब्त कर सकती थी।[6]

१. Section 4 (i) of the Act, Ghose : The Press and Press Laws in India, pages 67-68

२. इसी पुस्तक का चौदहवाँ अध्याय देखिये।

३. इसी पुस्तक का चौदहवाँ अध्याय देखिये।

४. Section 5 of the Act, Ghose : The Press and Press Laws in India, page 68.

५. Section 10 of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ७०.

६. See sections 6 and 10 of the Act, Ghose : The Press and Press Laws in India pages 69—71.

इसी सबध मे एक्ट ने स्थानीय सरकारो को एक बात का अधिकार और दिया।[1] इस अधिकार के अनुसार स्थानीय सरकारे, कस्टम विभाग के किसी अफ़सर को अथवा किसी डाकखाने के प्रमुख कर्मचारी को यह आज्ञा दे सकती थी कि यदि उस अधिकारी को इस बात का सन्देह हो कि किसी पार्सल, बडल अथवा लिफाफे में कोई ऐसी चीज़ है जो विभाग नं. ४(१) के अन्तर्गत आपत्ति-जनक है तो वह उस पार्सल, बडल, अथवा लिफ़ाफे को रोक ले और उसे स्थानीय सरकार को सौप दे।

अन्त मे १९१० के इस ऐक्ट ने स्थानीय सरकार की आज्ञा रद्द कराने के लिए, हाईकोर्ट मे अपील[2] करने का अधिकार दिया। इस अपील का निर्णय तीन न्यायाधीशो की विशेष सभा द्वारा होना था।[3] यह अपील जब्ती की आज्ञा के दो महीने के अन्दर ही इस आधार पर की जा सकती थी कि जिस विषय पर आपत्ति की गई है, उसकी विभाग न ४(१) के अन्तर्गत गणना नही की जा सकती।

इस ऐक्ट को लागू करने के कारण, सन् १९०९ से १९१९ तक के विचाराधीन युग मे जो परिणाम हुए, उनका सक्षिप्त सकलित विवरण २ जुलाई १९१९ के उस समुद्री तार मे दिया गया है जो इडियन प्रेस एसोसियेशन के मत्री ने ब्रिटिश प्रधान मत्री और भारत मत्री के पास भेजा था ———"इस ऐक्ट के अन्तर्गत ३५० छापेखानो को, ३०० समाचार-पत्रो को दड दिया गया, ४०००० पौड से अधिक की जमानतें ली गईं, ५०० से अधिक प्रकाशन ज़ब्त किए गए। जमानत न दे सकने के कारण २०० प्रेस काम शुरू नही कर सके, १३० समाचार-पत्रो का प्रकाशन नही हो सका। (भारतवासियो के) 'अमृत बाज़ार पत्रिका', 'बॉम्बे क्रॉनिकल', 'हिन्दु', 'इडिपेन्डेन्ट', 'ट्रिब्यून' जैसे प्रमुख, प्रभावशाली अगरेज़ी के पत्रो पर और 'बसुमती', 'स्वदेश मित्रम्', 'विजय', 'हिन्द वासी', 'भारत-मित्र' जैसे भारतीय भाषाओ के प्रमुख पत्रो पर ऐक्ट की कठोर धाराएँ लागू की गईं। दूसरी ओर आग्ल-भारतीय पत्रो के उग्र, उत्तेजक लेखो के विरुद्ध कोई कार्यवाही नही की गई।"[4] भारत सरकार पर, ऐक्ट के परिणामो के सबध मे जाँच करने के लिए ज़ोर दिया गया लेकिन उसका कोई फल नही हुआ। अन्त मे यह विषय सन् १९२१ की नई विधान सभा के सामने आया और उसने जाँच करने के लिए एक कमेटी नियुक्त की।

१. ऐक्ट के विभाग न. १३ और १५ देखिये, The Press and Press Laws in India पृष्ठ ७१ और ७२.

२. ऐक्ट का विभाग न. १७—उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ७२.

३. ऐक्ट का विभाग नं. १८—उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ७२

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३९–४०.

३.

प्रेस ऐक्ट का पारण करनेके कुछ ही महीने बाद सरकारने एक विधेयक और प्रस्तुत किया। इस विधेयक का उद्देश्य सन् १९०७ के राजद्रोहपूर्ण मीटिंग वर्जन ऐक्ट[1] के जीवन-काल को ३१ मार्च १९११ तक बढाना था—ताकि नए गवर्नर-जनरल को अपना पद-ग्रहण करने के बाद, स्थिति को स्वय देखने, उस पर अपना मत बनाने और उस सबध में अपनी सिफारिशे करने के लिए पर्याप्त समय मिल जाए। सन् १९०७ का ऐक्ट पूर्वी बगाल और पजाब[2] की तत्कालीन परिस्थितियो का सामना करने के लिए बनाया गया था और वह असाधारण रूप से दमनकारी था। जैसा कि श्री गोखले ने विधान परिषद् मे कहा,[3] उस ऐक्ट को बडी कठोरता के साथ और अनुचित रूप मे लागू किया गया था। अगस्त १९१० तक स्थिति काफी सभल चुकी थी और जैसा कि वाइसरॉय और सरकारी सदस्यो ने स्वीकार भी किया था, वह स्थिति सकटपूर्ण अथवा असाधारण नही थी। अतः गैर सरकारी सदस्यो[4] ने उस ऐक्ट का जीवन-काल बढाने वाले विधेयक का विरोध किया क्योकि आवश्यकता होने पर वह ऐक्ट फिर भी बनाया जा सकता था। लेकिन सरकार अपने निश्चय पर जमी रही[5] और अगस्त १९१० मे उस विधेयक का पारण हो गया।

सन् १९०७ का यह ऐक्ट मार्च १९११ मे फिर भारतीय विधान परिषद् के सामन आया। इस बार सरकार ने ३१ मार्च के बाद उस ऐक्ट के लिए फिर जीवन-

१. The Press and Press Laws in India नामक पुस्तक का चौदहवाँ अध्याय देखिये।

२. सन् १९०७ की परिस्थितियो के वर्णन के लिए इसी पुस्तक का तेरहवा अध्याय देखिये।

३. तीन जिला सम्मेलनो को वर्जित करने का यह कारण दिया गया कि उनमे भारतीय एव प्रान्तीय विषयो पर विचार होगा। सभा करने की अनुमति देने से पहले प्रस्ताव माँगे जाते थे। दलित वर्गो को अपनी सामाजिक शिकायतें व्यक्त करने के लिये सभा करने की अनुमति नही दी गई।—देखिये—Gokhale's Speech—Legislative Council Proceedings, Vol. XLIX. Page 30.

४. श्री गोखले, मालवीय, मुधोलकर, सिनहा, मज़रूल हक, सूबा राव आदि सब गैरसरकारी सदस्य इस विधेयक के विरुद्ध थे।

५. "श्रीमान्, हम इस बात को भली भाँति जानते हैं कि जब सरकार किसी नीति को अपनाने का निश्चय कर लेती है तो इस परिषद् के गैरसरकारी सदस्यो का मत उसे बदल नही सकता।"—देखिये, Gokhale's Speech—Legislative Council Proceedings, Vol. XLIX. Page 29.

दान देने का विचार नही किया किन्तु उसके स्थान पर और उसी उद्देश्य से एक नया, कम कठोर, स्थायी कानून बनाने का निश्चय किया। फलत सन् १९११के राजद्रोह-पूर्ण मीटिग वर्जन ऐक्ट का मार्चमे पारण हुआ और उसे प्रविधान पुस्तक (Statute Book) मे स्थायी रूप से सम्मिलित कर लिया गया।[1]

सन् १९११ के ऐक्ट ने सन् १९०७ के ऐक्ट के कुछ स्पष्ट दोषो को दूर करने का प्रयत्न किया। सबसे पहली बात तो यह हुई कि नया ऐक्ट, स-परिष गवर्नर-जनरल की विनिर्दिष्ट अनुमति के बाद ही, किसी प्रदेश अथवा प्रान्त मे लागू किया जा सकता था। इसके अतिरिक्त, पुराने एक्ट की एक धारा के अनुसार बीस से अधिक व्यक्तियो की प्रत्येक सभा को सार्वजनिक सभा माना जाता था। नए एक्ट मे दूसरा परिवर्त्तन यह हुआ कि उक्त धारा को छोड दिया गया। इसी ऐक्ट मे तीसरा परिवर्त्तन यह हुआ कि वर्जित सभाओ की परिभाषा देने वाले खण्ड न ४ मे से "किसी राजनैतिक उद्देश्य के लिये" शब्दो को निकाल दिया गया। अब केवल वही सभाएँ वर्जित होनी थी जिनसे सार्वजनिक शान्ति भग होने का डर हो। ऐक्ट मे चौथा परिवर्त्तन यह था कि भविष्य मे सार्वजनिक सभा करने की सूचना, पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट के स्थान पर जिला मजिस्ट्रेट अथवा इस काम के लिए अधिकृत अन्य किसी मजिस्ट्रेट को देनी थी। इन परिवर्तनो को छोड कर, सन् १९०७ के ऐक्ट की धाराओ का सन् १९११ के ऐक्ट मे यथावत् विधायन कर दिया गया।[2]

इन सशोधनो के बावजूद अधिकाश गैरसरकारी सदस्यो ने नए कानून का विरोध किया और उसे अनावश्यक, स्वेच्छापूर्ण और दमनकारी बताया। उसने कार्यकारिणी को विस्तृत, स्थायी एव असाधारण अधिकार दिए जो देश के सार्वजनिक जीवन के लिए घातक थे।

४.

इन दमनकारी प्रविधानो के पारण से भारतीय क्रान्तिकारियो के कामो पर कोई विशेष प्रभाव नही पडा। राजनैतिक हत्याएँ और डकैतियाँ—विशेषकर पूर्वी बगाल और कलकत्ता मे—पहले ही की तरह होती रही। २४ जनवरी १९१० को कलकत्ता के डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट पुलिस की हत्या हुई—उसकी चर्चा की जा चुकी है। मार्च १९१० मे हावडा षड्यत्र केस आरम्भ हुआ। इसमे ५० व्यक्तियो पर राजनैतिक हत्याओ का और सम्राट् के विरुद्ध षड्यत्र रचने का अभियोग लगाया गया था।[3] जुलाई मे ढाका षड्यत्र केस मे ४४ व्यक्तियो पर फिर वही

१. बाद मे सन् १९२१ की रिप्रेसिव लॉज कमेटी की सिफारिश पर इस ऐक्ट को रद्द कर दिया गया।

२. इसी पुस्तक का चौदहवाँ अध्याय देखिये।

३. Indian Sedition Committee Report, 1918, page 44.

अभियोग लगाया गया। इनमें से पन्द्रह अभियुक्त, अपराधी सिद्ध हुए और उनको विभिन्न अवधियो—२ से ले कर ७ वर्षों तक—का कठोर कारावास दड दिया गया।[१] इन के अतिरिक्त सन् १९१० मे अन्य क्रान्तिकारी अपराधो के प्रयत्न किए गए।[२] सन् १९११ मे क्रान्तिकारियो ने १८ अपराध किए—इनमे कलकत्ता की एक हत्या और साथ ही पूर्वी बगाल की एक हत्या भी सम्मिलित थी।[३] २१ फर्वरी १९११को कलकत्ता मे सिरीश चद्र चक्रवर्ती को गोली से मार दिया गया और ११ दिसम्बर को राजकीय उद्घोषणा के दिन बारीसाल मे इस्पेक्टर मनमोहन घोष की हत्या की गई। "उसके बाद" सर रेजिनाल्ड क्रैडॉक के अनुसार "अस्थायी शान्ति रही लेकिन वह अस्थायी ही सिद्ध हुई।"[४] "मई १९१२ मे बेकरगज ज़िले मे कुछ नवयुवको ने डाका डाला। जुलाई मे उसी ढग की दो डकैतियाँ और हुईं—एक बेकरगज मे और एक ढाका मे। सितम्बर मे पुलिस-दीवान रतीलाल राय को ढाका मे गोली से मार दिया गया।"[४] "नवम्बर १९१२ मे गिरीन्द्र मोहन दास के बक्स मे क्रान्तिकारी लेख्य (दस्तावेज) और हथियार पकडे गए।"[५] १३ दिसबर १९१२ को, मिदनापुर बम केस का भेद देने वाले अब्दुर रहमान की हत्या करने का प्रयत्न किया गया।[६] किन्तु जिस अपराध की ओर भारत मे तथा विदेशो में सब से ज्यादा ध्यान आकर्षित हुआ—वह था,वाइसरॉय लॉर्ड हार्डिज की हत्या का प्रयत्न। २३ दिसबर १९१२ को नई राजधानी मे राजकीय प्रवेश के समय, चादनी चौक मे पजाब नेशनल बैंक के सामने, वाइसरॉय के सुसज्जित हाथी पर बम फेंका गया और उसके फलस्वरूप वाइसरॉय के एक सेवक की मृत्यु हुई, कुछ लोग घायल हुए और स्वय वाइसरॉय को भी चोट आई। बम, बगाल से लाया गया था और उस को फेंकने वाला, बसन्त कुमार घोष नाम का एक बगाली था जिसने (खुफिया पुलिस के अधिकारी के सामने अपने बयान[७] के अनुसार) अपने आप को एक मुस्लिम-स्त्री के रूप मे एक बुर्के में छिपा रखा था। इस कृत्य की सभी जगह निन्दा की गई और उसे गर्हित और नीचतापूर्ण बताया गया।

१ Indian Sedition Committee Report, 1918, पृष्ठ ४६.

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४६–४७

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४८, ४९ और ५०

४. Proceedings of the Indian Legislative Council, vol. LI, page 310.

५. Indian Sedition Committee Report 1918, page 53.

६ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ५५.

७. O'Dwyer : India as I knew it, page 169-170.—Also see pages 143-144 of the Sedition Committee Report

५

इस प्रकार भारत के क्रातिकारी अपराधो को रोकने मे न तो सुधार ही सफल हुए और न १९१० और १९११ के दमनकारी कानून, किन्तु दमनकारी कानूनो की सामर्थ्य के सबध मे सरकारी निष्ठा यथावत् बनी रही। मार्च १९१३ मे सरकार ने भारतीय विधान परिषद् मे एक विधेयक प्रस्तुत किया जिसका उद्देश्य भारतीय दड सहिता मे कुछ सशोधन करना था। यही विधेयक, बाद मे सन् १९१३ का फौजदारी कानून (सशोधन) ऐक्ट बन गया।

इस ऐक्ट ने षड्यत्र के अपराध को भारतीय दड सहिता मे पृथक् स्थान दिया। उस समय तक यह अपराध भारतीय दड सहिता मे सम्मिलित होने से किसी प्रकार छूट गया था; ओर गृह-सदस्य के अनुसार सन् १९१३ के विधेयक का उद्देश्य एक छूटी हुई बात की पूर्ति करना था। गृह-सदस्य ने यह भी कहा कि नया कानून, इगलैड के कानून के ढग पर ही बनाया गया था किन्तु गैरसरकारी सदस्य इस बात को जानते थे कि उसे भारत मे बडी कठोरता के साथ लागू किया जायगा और उसके दो कारण थे। मिस्टर एस एन बनर्जी ने पहला कारण यह बताया कि इगलैड मे अभियोगो का निर्णय जूरी द्वारा होता था और वहाँ पर न्याय का स्तर भारत की अपेक्षा कही ज्यादा ऊँचा था। और दूसरे कारण को मि जिन्ना ने इस प्रकार व्यक्त किया कि दोनो देशो की फौजदारी-पद्धति भिन्न थी और वह इगलैड मे, अभियुक्त के प्रति कही ज्यादा सहानुभूतिपूर्ण थी। मि जिन्ना ने यह भी कहा कि नए कानून राजसत्ता के विरुद्ध षड्यत्रो पर ही लागू होने चाहिएँ—व्यक्तिगत षड्यत्रो पर नही। प्रवर-समिति ने स्थिति का सरक्षण करने का प्रयत्न किया और फौजदारी पद्धति सहिता मे कुछ सशोधन भी किया।

सन् १९१३ के ऐक्ट की सब से ज्यादा महत्त्वपूर्ण बात, विभाग न १२० (अ) के अन्तर्गत, षड्यत्र की परिभाषा थी—अन्य बाते गौण थी। परिभाषा इस प्रकार थी —

"जब दो या अधिक व्यक्ति, एक होकर (१) किसी अवैध काम को अथवा (२) किसी वैध काम को अवैध साधनो द्वारा, करने अथवा कराने के लिए सहमत होते हैं, तो उनका समझौता एक अपराधपूर्ण षड्यत्र है। किन्तु अपराध करने अथवा कराने के समझौते के अतिरिक्त अन्य कोई समझौता अपराधपूर्ण षड्यत्र नही है, जब तक कि समझौते के अलावा ऐसा कोई काम नही किया जाता जिससे समझौता करने वाले एक या अधिक व्यक्तियो का उद्देश्य प्रभावित होता हो।"[१]

विभाग न. १२० (अ) बन जाने से भारत की क्रान्तिकारी समितियो की

१. Proceedings of the Indian Legislative Council, vol. LI, page 291.

बढ़वार पर कोई विशेष प्रभाव नही हुआ। बल्कि सच तो यह है, कि अगले तीन वर्षो मे देश मे क्रान्तिकारी आन्दोलन तेजी मे बढा और उस की शाखाएँ पजाब प्रान्त तक फैल गई।

६.

सन् १९१३-१६ के वर्षो मे क्रातिकारी आन्दोलन, बगाल और पजाब, दोनो ही प्रान्तो मे अपने शिखर पर पहुँच गया। बगाल मे पिस्तौल और बम की सहायता से राजनैतिक हत्या करने और राजनैतिक डकैतियाँ डालने का क्रम यथावत् बना रहा, और उनके अतिरिक्त एक व्यापक व्युत्थान का निष्फल प्रयत्न भी हुआ। इस व्युत्थान की योजना जर्मन अभिकर्ताओ की सहायता से तैयार की गई थी। इस जर्मन-बगाली षड्यत्र का अथवा अराजकतापूर्ण हत्याओ और डकैतियो का विस्तृत विवरण देना आवश्यक प्रतीत नही होता क्योकि सन् १९१८ की सिडीशन कमेटी रिपोर्ट के पृष्ठो मे वह सरलता से मिल सकता है। तथापि उनका सक्षेप मे वर्णन करना उचित और सगत होगा।

सन् १९१३ मे बगाल प्रान्त मे क्रातिकारियो ने १६ अराजकतापूर्ण प्रहार किए--इनमे दस डकैतियाँ थी जिन मे दो हत्याएँ और लगभग ६१००० रुपये की लूट सम्मिलित थी।[1] २७ मार्च को सिलहिट मे बम द्वारा मि गॉर्डन आई सी एस की हत्या करने का प्रयत्न किया गया, किंतु मि गॉर्डन के मकान तक पहुँचने से पहले ही बम फट गया और बम ले जाने वाले व्यक्ति की मृत्यु हो गई। २९ दिसम्बर को कलकत्ता के कॉलेज स्क्वायर मे हैड कास्टेबिल हरिपद देव को गोली से मार दिया गया। उसके दूसरे दिन मैमनसिह मे इस्पेक्टर बकिमचन्द्र चौधरी की बम द्वारा हत्या की गई। ९ दिसम्बर को मिदनापुर मे अब्दुररहमान की हत्या करने का फिर असफल प्रयत्न किया गया और ३० दिसम्बर को हुगली ज़िले के एक थाने मे बम फेका गया। सन् १९१४ मे २९ अराजकतापूर्ण कृत्य हुए—इनमे १६ डकैतियाँ थी जिनमे कुछ हत्याएँ भी सम्मिलित थी। रॉडा एड कम्पनी नामक कलकत्ता के बन्दूक आदि शस्त्रो के विक्रेताओ के यहाँ से, पिस्तौल और उनके कारतूसो के दस बक्सो की चोरी की गई। इन बक्सो मे ५० मौज़र पिस्तौले थी और उनके लिए ४६००० कारतूस थे। इसके अतिरिक्त चार हत्याओ के सफल प्रयत्न किए गए--एक चटगाँव मे, एक ढाका मे और दो कलकत्ता मे। इनमे से कलकत्ता की पहली हत्या, खुफिया विभाग के इस्पेक्टर नृपेन्द्र घोष की थी, जिनको तीन प्रमुख सडको के एक केन्द्र पर ट्राम से उतरने के समय मारा गया था। एक व्यक्ति ने हत्या करनेवाले का पीछा किया किंतु उसे भी मार

१. The Report of the Sedition Committee, 1918, page 59.

दिया गया। दूसरी हत्या २५ नवम्बर को हुई—डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट बसन्त चटर्जी के मकान मे दो बम फेके गए। डिप्टी सुपरिण्टेण्डेण्ट तो बच गया लेकिन एक हैड कास्टेबल मारा गया और तीन आदमी घायल हो गए।

सन् १९१५, इस युग का सब से ज्यादा कलुषित वर्ष था और उसमे कितनी ही डकैतियाँ और सनसनी पैदा करने वाली हत्याएँ हुई। बडी रकमे ले जानेवाले लोगो को, अमेरिका के ढग पर, पिस्तौल और मोटर कार की सहायता से आम सडको पर लूटा गया; और जर्मन-बगाली षड्यत्र का भी इसी वर्ष पता लगा। अकेले कलकत्ता शहर मे ही दस अराजकतापूर्ण आघात हुए, इनमे से दो मे, अमेरिकन ढग पर मोटर टैक्सी की सहायता ली गई। निरोद हालदार के अतिरिक्त, पुलिस-दरोगा सुरेशचन्द्र मुकर्जी, उप-दरोगा गिरीद्र बनर्जी तथा उपेन चटर्जी और एक कान्स्टेबिल की हत्या की गई। कलकत्ता के इसी क्रातिकारी दल ने जिसका नेतृत्व जतीन मुकर्जी और बिपिन गागुली के हाथो मे था, कलकत्ता के बाहर पॉच आघात और किए। पूर्वी बगाल मे १६ आघात हुए—इनमे से तीन आघातो मे सुयोजित हत्याएँ की गईं। पहली हत्या तो कामिला स्कूल के हैडमास्टर शरत् कुमार बसु की थी और दूसरी हत्या धीरेद्र विस्वास की थी जो मुखबिर हो गया था। तीसरी हत्या विशेष रूप से गर्हित थी। मैमनसिह की पुलिस के डिप्टी सुपरिटेडेट जतीन मोहन अपने बच्चे को गोद मे लिये हुए, अपने घर मे बैठे हुए थे, उन पर गोली चलाई गई और उसके फलस्वरूप दोनो की मृत्यु हो गई। उत्तरी बगाल मे, सबसे पहला क्रातिकारी अपराध भी १९१५ मे हुआ। रगपुर के एडिशनल पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट राय साहब नन्दकुमार बसु को, जो अपने घर पर ही थे, गोली से मारने का प्रयत्न किया गया, पर वे बच गए। उनके नौकर ने गोली मारने वालो का पीछा किया पर उसे बुरी तरह घायल कर दिया गया। हत्या के इस प्रयत्न के अतिरिक्त रगपुर जिले मे एक डाका डाला गया और एक डाका राजशाही जिले में भी डाला गया—इन दोनो डाको मे लगभग ७५००० रुपये की सम्पत्ति लूटी गई।

सन् १९१६ मे छ हत्याएँ की गई, जिनमे बसन्त चटर्जी की हत्या भी सम्मिलित थी, और कुछ डाके डाले गए जिनमे से कई डाके असफल भी रहे। इसी वर्ष बहुत से लोगो को जिन पर क्रातिकारी होने का सदेह था, सन् १८१८ के विनियम न ३ के अन्तर्गत अथवा सन् १९१५ के डिफेस ऑव इडिया ऐक्ट की धाराओ के अन्तर्गत नजरबन्द किया गया।[1] सन् १९१७ मे कुल ९ आघात

१ सन् १८१८ के विनियम न. ३ के अन्तर्गत ५६ व्यक्ति नजरबन्द किए गए थे, जिनमें से तीन को १९१६ मे छोड दिया गया था। सन् १९१५ के ऐक्ट के अन्तर्गत २३८ व्यक्ति नजरबन्द किए गए थे—देखिये Indian Year Book 1917, page 698.

हुए, जिनमे से दो मे, पुराने क्रातिकारी साथियो की हत्या करने का प्रयत्न किया गया —एक की अनैतिकता के अपराध पर और दूसरे की विश्वासघात के अपराध पर, पहली हत्या का प्रयत्न सफल हुआ किंतु दूसरी हत्या के प्रयत्न में सफलता नही मिली। इन हत्याओ के अतिरिक्त छ डकैतियो का प्रयत्न किया गया जिनमे से एक अत्यन्त साहसपूर्ण थी। कलकत्ते की आर्मीनियन स्ट्रीट में एक सराफ की दुकान पर रात के नौ बजे हमला किया गया जिसके फलस्वरूप दो आदमी मारे गए, दो घायल हुए, और बहुत से बहुमूल्य रत्नो और आभूषणो को लूट लिया गया। इस प्रयत्न मे एक हमला करनेवाला भी मारा गया।

बगाल के अराजकतापूर्ण अपराधो के इस वर्णन को पूरा करने के लिए सन् १९१५ के जर्मन-बगाली षड्यत्र की सक्षिप्त चर्चा करना आवश्यक है।

७.

विदेशो मे रहनेवाले भारतीय क्रातिकारियो ने अपनी योजनाओ को पूरा करने के लिए महायुद्ध से लाभ उठाने का और जर्मनी से सहायता लेने का प्रयत्न किया। भारत मे व्यापक व्युत्थान होने की दशा मे, यूरोप में अग्रेजो की शक्ति घटना स्वाभाविक था और जर्मन अधिकारियो ने इसी पृष्ठभूमि मे भारतीय क्रातिकारियो के लिए धन और शस्त्रो का प्रबन्ध करने के विचार को स्वीकार किया। इस दिशा मे जर्मन-भारतीय सहयोग के लिए बर्लिन की 'इडियन नेशनल पार्टी' स्थापित की गई और उसे 'जर्मन जनरल स्टाफ' के साथ अनुबधित कर दिया गया। इस पार्टी के सगठनकर्त्ता थे मि पिलाई जो ज्यूरिच की इटरनेशनल प्रो-इडिया कमेटी के अध्यक्ष थे। अमेरिका की गदर पार्टी के सस्थापक हर दयाल, बरकतुल्ला, तारकनाथदास, के० सी० चक्रवर्ती और हेरम्बलाल गुप्त आदि व्यक्ति इस नई पार्टी के सदस्य थे।[1] पार्टी ने बगाल और पजाब, दोनो ही प्रान्तो मे समकालिक व्युत्थान की योजना बनाई और उसके संचालन के निमित्त तीन केन्द्र बनाए। इनमे से एक केन्द्र बटाविया मे, बगाल के लिए था, दूसरा केन्द्र बैंकाक मे, अमेरिका से पजाब को फिर लौटने वाले सिक्खो के लिए था, और तीसरा केन्द्र काबुल मे, उत्तरी भारत के मुसलमानो के लिए था। अमेरिका से दो भारतीय नवयुवको को सगठन करने के लिए भेजा गया—सत्येद्र सेन को बगाल मे सगठन करना था और पिंगले को वही काम यू० पी० और पजाब मे करना था। नवम्बर १९१४ मे वे अमेरिका से कलकत्ता आए और अपने-अपने क्षेत्रो मे काम करने लगे। सन् १९१५ के आरम्भ में

१. Indian Sedition Committee Report, 1918, page 119.

यूरोप से जितेन्द्र नाथ लाहिरी को भेजा गया और उसके द्वारा, सहायता के लिए निश्चित जर्मन आश्वासन मिला ।

बगाल के क्रातिकारियो ने जितेद्र मुकर्जी और नरेद्र भट्टाचार्य के नेतृत्व में, बंगाल मे व्युत्थान के लिए जर्मन-योजना मे सहयोग देने का निश्चय किया । नरेद्र भट्टाचार्य को सी मार्टिन के बदले हुए नाम से बटाविया भेजा गया और उसका काम जर्मन अभिकर्त्ता थियोडोर हेल्फेरिख से मिलकर योजनाओ को सुनिश्चित करना था । 'मैवरिक' और 'हैनरी एस०' नाम के दो जहाज़ो से भारत के लिए शस्त्र और धन भेजने का निश्चय किया गया। बटाविया से आनेवाले इस सामान को छुडाने के लिए 'हैरी एड सस' नाम की जाली कम्पनी बनाई गई। यह अनुमान किया जाता था कि बगाल की सेना से निपटने के लिये क्रातिकारी सगठन की शक्ति पर्याप्त होगी और दूसरे प्रान्तो की सैन्य-सहायता को रोकने के लिए यह निश्चय किया गया कि बगाल को शेष भारत से जोड़नेवाले तीन प्रमुख रेल मार्गो के बडे-बडे पुलो को उडा दिया जाय। सुन्दरबन क्षेत्र मे राय मगल नामक स्थान पर, बटाविया से आनेवाले सामान को उतारने की और उसको एक निकटवर्ती स्थान मे जमा करने की व्यवस्था की गई। बाद मे उसी स्थान से, इन हथियारो का क्रांतिकारी सस्थाओ में वितरण होना था ।

'मैवरिक' जहाज़ सैन फ्रैन्सिस्को से रवाना हुआ और उसमे इरानियो के वेश मे पॉच भारतीय क्रातिकारी, जहाज के परिचारको के रूप मे मौजूद थे,किंतु जहाज़ ने अपना नौभार नही लिया था। सोकोरो द्वीप के निकट 'मैवरिक' की 'एनी लार्सेन नामक स्कूनर (छोटा जहाज़) से भेंट होनी थी। स्कूनर को न्यूयार्क से टौशर नामक जर्मन व्यक्ति द्वारा खरीदे हुए हथियार लाने थे और उक्त द्वीप के निकट 'मैवरिक' को सौपने थे । 'मैवरिक' ने इन हथियारो को अपने तले में एक तेल के खाली कुड मे छिपाने की व्यवस्था की थी। किंतु 'एनी लार्सेन' की 'मैवरिक' से नियत समय पर भेंट नही हो सकी और अन्त मे वह लौटकर वाशिगटन प्रदेश में एक स्थान पर पहुँचा, जहाँ सयुक्त राष्ट्र अमेरिका के अधिकारियो ने उसके नौभार को जून १९१५ मे पकड लिया। दूसरी ओर 'मैवरिक' जावा पहुँचा पर वह खाली था; बाद मे उसे अमरीका वापिस भेज दिया गया ।

"हैनरी एस०' को मनीला से रवाना होना था किंतु सीमा-शुल्क विभाग के अधिकारियो ने शस्त्र आदि के उसके नौभार को पकड लिया और उसे वही उतरवा लिया। यह सामान चटगॉव (पूर्वी बगाल) के लिए निर्दिष्ट था।

इन प्रयत्नो के असफल हो जाने पर, शघाई के जर्मन राजदूत ने हथियारो के

दो अन्य जहाज भेजने की व्यवस्था की। इनमे से एक का सामान हटिया मे उतरना था और दूसरे का सामान बालासोर मे उतरना था। किंतु वह योजना कार्यान्वित नही हो सकी क्योकि इस बीच मे भारत सरकार को सारे षड्यत्र का पता लग गया और उसने उस षड्यत्र को कुचलने के लिए समुचित प्रबन्ध कर लिया। बगाल के नेताओ को गिरफ्तार किया गया और पकडने के प्रयत्न मे दो क्रातिकारी मारे भी गए। इस षड्यत्र से सम्बन्धित जो लोग शघाई में थे उन्हे वहाँ की पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया और अमेरिकन अधिकारियो ने अमेरिका के भारतीय क्रातिकारियो और उनके जर्मन-सहायको पर सरकार की ओर से दो मुकदमे चलाए—एक शिकागो मे और दूसरा सैन फ्रैन्सिस्को मे।

८

उपद्रव का दूसरा केन्द्र पजाब मे था। सन् १९१३-१६ के बीच वहाँ का क्रातिकारी आन्दोलन, बगाल के आन्दोलन से भी ज्यादा शक्तिशाली हो गया।

सन् १९०७-०८ मे पजाब की स्थिति के सम्बन्ध मे एक पिछले अध्याय मे चर्चा की जा चुकी है, किंतु उस समय वहाँ का आन्दोलन किसी भी रूप मे क्राति-कारी नही था। तथापि ऐसा प्रतीत होता है कि पजाब के क्रातिकारी आन्दोलन की नीव सन् १९०८ मे रखी जा चुकी थी। सिडीशन कमेटी ने[1] और साथ ही सर माइकेल ओ' डायर[2] ने इस बात को सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि अराजकतापूर्ण आन्दोलन से लाला लाजपतराय का सम्बन्ध था और उन्ही के मकान से हरदयाल ने नवयुवको को अराजकता के पथ पर अग्रसर करने का काम आरम्भ किया था। किंतु लाला लाजपतराय ने लिखा है — "यह सारा बयान बिल्कुल झूठा है।"[3] वह अपने कथन को सचाई को सिद्ध करने के लिए तैयार थे। उन्होने कहा है कि हरदयाल शहर मे एक किराये के मकान मे रहते थे जो उनके मकान से लगभग एक मील दूर था। यह सच है कि वह मि० चटर्जी आदि अपने नवयुवक मित्रो के साथ कभी-कभी उनसे मिलने आते थे। दूसरी ओर ऐसा प्रतीत है कि मि० अजीतसिह, माडले से लौटने के बाद अराजकता पूर्ण आन्दोलन मे सम्मिलित हो गए थे।[4] सन् १९०९ मे वे ईरान भाग गए और वहाँ से पेरिस और जेनेवा होते हुए रिओ-डी-जेनीरो (दक्षिण अमेरिका) चले गए। सर माइकेल ओ' डायर के अनुसार पहले महायुद्ध के दिनो मे मि० अजीतसिह का अमेरिका की गदर पार्टी से

१. See pages 144 and 145 of the Report.
२. O'Dwyer: India as I Knew it, page 186.
३. Lajpat Rai: The Political Future of India, page 163.
४. इस विषय मे कोई निश्चित प्रमाण नही है।

सम्बन्ध था। अस्तु, दूसरे महायुद्ध के दिनो मे वे इटली मे थे। १५ अगस्त १९४७ के बाद उन्हे भारत लौटने की अनुमति दी गई। लेकिन १९४८ मे उनकी मृत्यु हो गई।

जहाँ तक पजाब के क्रातिकारी आन्दोलन का सम्बन्ध है, यह बात अब निर्विवाद है कि हरदयाल उस आन्दोलन के वास्तविक सस्थापक थे। हरदयाल दिल्ली के रहने वाले थे और उनका विद्यार्थी जीवन बडा उज्ज्वल था। सरकार से उन्हे विदेश-छात्रवृत्ति मिली और १९०५ मे वे पढने के लिए ऑक्सफोर्ड चले गए। सन् १९०७ मे छात्रवृत्ति छोड कर वे भारत चले आए। विदेशी राज्य का अन्त करने के उद्देश्य से उन्होने लाहौर मे रह कर, सामान्य बहिष्कार और निष्क्रिय प्रतिरोध के कार्यक्रम का प्रचार किया। अपने काम के लिए उन्होने लाहौर के दो नवयुवको को भर्ती किया—एक तो मि० जे० एन० चटर्जी थे, जो बाद मे बैरिस्टरी के अध्ययन के लिए इग्लैड को चले गए,और दूसरा नवयुवक था दीनानाथ, जो बाद मे मुखबिर हो गया। उन्होने इन नवयुवको के शिक्षण का भार दिल्ली के मास्टर अमीरचन्द को सौपा। मास्टर अमीरचन्द स्वय हरदयाल के शिक्षक रह चुके थे, लेकिन १९०८ मे हरदयाल ने उन्हे क्रातिकारी बना लिया था। तदुपरान्त हरदयाल, आन्दोलन का सगठन करने के उद्देश्य से विदेश चले गए। अमीर चन्द ने दीनानाथ का शिक्षण जारी रखा और साथ ही अवध बिहारी और बालमुकुन्द नामक दो नवयुवको को और भर्ती किया। शिक्षण कार्य मे, अमीरचन्द को, देहरादून के फॉरेस्ट रिसर्च इस्टीटचूट के रासबिहारी की सहायता प्राप्त थी। रासबिहारी ने अपन बगाली नौकर बसन्तकुमार दास को भी क्रातिकारी दल मे सम्मिलित कर लिया और धन और शस्त्रो की सहायता प्राप्त करने के लिए पजाब के क्रातिकारी समुदाय का बगाल क्रातिकारी सगठन के साथ सम्बन्ध स्थापित कर दिया। इस प्रकार मास्टर अमीरचन्द और रासबिहारी को पजाब के सर्वप्रथम क्रातिकारी दल का सहकारी सचालक कहा जा सकता है।

सन् १९१३ मे सरकार को इस क्रातिकारी दल का पता लगा और उसके सदस्यो पर षड्यत्र का मुकदमा चलाया गया। यह अभियोग, दिल्ली षड्यत्र केस के नाम से प्रसिद्ध है। "मुकदमे के सिलसिले मे जो गवाहियाँ सामने आई, उनसे इस बात का सदेह होता है कि (वाइसरॉय लॉर्ड हार्डिज पर बम फेंकने से सम्बन्धित) दिल्ली-काड के लिए यही लोग उत्तरदायी थे। इन लोगो ने अत्यन्त उग्र तथा उत्तेजक पर्चे भी बाँटे थे। ये पर्चे कलकत्ता से प्राप्त किए गए थे। यह बात भी सिद्ध हुई कि इन्ही लोगो की योजना के अनुसार बसन्तकुमार दास ने १७ मई १९१३ को कुछ यूरोपीयनो को मारने अथवा घायल करने के उद्देश्य से लाहौर के लारेंस गार्डन की एक सडक पर बम रखा था। उस बम से एक भारतीय चपरासी की,

जो अधेरे मे साइकल पर जा रहा था, मृत्यु हो गई थी ।"[१]

इन अपराधो के लिए अभियुक्तो को बडा कठोर दड दिया गया। अमीर चन्द, अवध बिहारी, बाल मुकुन्द और बसन्तकुमार दास को फाँसी की सजा दी गई और दो को सात साल का कठोर कारावास-दड दिया गया। जिन लोगो को फाँसी का दड दिया गया था "उनमे से दो ने स्वय कोई अपराध नही किया था किंतु वे षड्यत्र मे सम्मिलित थे।"[२] रास बिहारी भाग गए। सर माइकेल ओ' डायर ने लिखा, है "वह अब भी फरार है—मैंने हाल ही मे सुना है कि वह टोकियो मे है।"[३] दूसरे महायुद्ध के दिनो मे वे सुभाषचन्द्र बोस के सम्पर्क मे थे जिन्होने इडियन नेशनल आर्मी (आजाद हिद फौज) का सगठन किया था और बर्मा मे भारतीय प्रजातन्त्र की सामयिक सरकार बनाई थी।

९

अगले तीन वर्षों मे अमेरिका से देशान्तरगामी सिक्खो के बहुत बडी सख्या मे लौटने पर, पजाब का क्रान्तिकारी आन्दोलन और ज्यादा शक्तिशाली हो गया। अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए सिक्खों ने अमेरिका और सुदूर पूर्व के लिए देशान्तर गमन किया। और बहुत से लोग थे जो कनाडा मे बसने के लिए उत्सुक थे। लेकिन कनाडा के अधिकारीगण उनके मार्ग मे अनेक बाधाएँ डाल रहे थे। वे भविष्य मे, भारतवासियो को अपने देश मे बसने से रोकने के लिये तुले हुए थे। केवल इतना ही नही, वरन् वे पहले बसे हुए भारतीयो को भी भगाने के लिए हर तरह के उपायों को काम मे ला रहे थे। वहाँ बसे हुए सिक्खो को अपनी पत्नियो और बच्चो को भारत से लाने की आज्ञा नही थी। कनाडा मे बसने के लिए आने वाले हर एशिया निवासी को दो शर्तें पूरी करना आवश्यक था। एक शर्त तो यह थी कि प्रत्येक देशान्तराधिवासी के पास २०० डालर होने चाहिएँ और दूसरी शर्त यह थी कि अपने देश से कनाडा तक उसकी यात्रा अविच्छिन्न होनी चाहिए[४]। इसका अर्थ यह था कि भारतवासी कनाडा में बसने के लिए नही जा सकते थे क्योकि भारत से सीधे कनाडा जाने के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। सन १९१३ मे कनाडा मे तीन सिक्ख प्रतिनिधि आए और उन्होने ब्रिटिश कोलम्बिया मे रहने वाले भारतीयो की शिकायतो को दूर करने के लिए भारतीय जनमत जागृत किया[५] और भारत सरकार से यह अनुरोध किया कि वह इस सबध मे उपयुक्त कार्यवाही करे। उन्होने

१ Indian Sedition Committee Report 1918, page 144.
२. Lajpat Rai. Political Future of India, page 173.
३. O' Dwyer: India as I Knew it, page 185.
४. Report of the Indian Sedition Committee, page 146
५. सिडीशन कमेटी के अनुसार ये लोग गदर पार्टी के सदस्य थे।

पजाब सरकार के अध्यक्ष तथा वाइमराँय, दोनो से भेट की। पजाब के विभिन्न स्थानो मे उन्होने सार्वजनिक सभाएँ की। किन्तु कनाडा की सरकार ने अपने प्रतिबधों मे कोई परिवर्त्तन नही किया। सरदार गुरदीतसिह[1] नामक एक सिक्ख सज्जन ने सार्वजनिक भावनाओं से प्रेरित होकर, कनाडा के विनियमो से बचने के लिए 'कोमागाटा मारू' नामक जापानी जहाज को किराये पर लिया और उसके द्वारा यात्रियों को हागकाग, शंघाई आदि स्थानो से सीधे वैंक्यूवर पहुँचाने का निश्चय किया। यह जहाज ४ अप्रैल १९१४ को हागकाग से रवाना हुआ और २३ मई को वैंक्यूवर पहुँचा और उसमे ३५१ सिक्ख तथा २१ पजाबी मुसलमान थे। "स्थानीय अधिकारियों ने यात्रियों को जहाज से उतरने नही दिया क्योकि उनके अनुसार यात्रियो ने विनियमों का पालन नही किया था। निवेदन किया गया, विरोध किया गया और जब ये बाते चल ही रही थी,जहाज को, उसका शेष किराया (२२००० डालर) भी दिया गया। यह किराया वैंक्यूवर के भारतीयो ने दिया था जिसको बाद में दो प्रमुख उपद्रवियों ने अपने ज़िम्मे ले लिया।"[2] जहाज को कनाडा-तट को छोड कर चले जाने की आज्ञा दी गई लेकिन सिक्खो ने आज्ञा का उल्लघन किया। पुलिस को मार कर भगा दिया गया। तब आज्ञाओ का पालन कराने के लिए सरकारी जहाज मे सशस्त्र सैन्यदल भेजा गया। कनाडा की सरकार ने वापिसी यात्रा के लिए संभरण की व्यवस्था की और २३ जुलाई १९१४ को कोमागाटा मारू ने कनाडा से एशिया के लिए यात्रा आरभ की। "इस समय तक यात्रियो का क्रोध बहुत बढ गया था क्योंकि उन्होने इस यात्रा के लिए अपना सर्वस्व दाव पर लगा दिया था। · · प्रत्यक्ष क्रान्तिकारी प्रभावो से यह क्रोध और भी ज्यादा बढ गया। क्रान्तिकारी दल ने वैंक्यूवर मे जहाज पर चोरी से शस्त्र भिजवाने का प्रयत्न भी किया था।"[3]

कोमागाटा मारू के वापिस लौटन से पहले ही यूरोप मे युद्ध आरम्भ हो गया। भारतीय अधिकारियों ने यात्रियो पर, बीच मे किसी बन्दरगाह पर न उतरने की रोक लगा दी और उनसे सीधे कलकत्ते आने के लिए कहा। २९ सितम्बर को जहाज ने बजबज मे लगर डाला। इस समय तक 'भारत प्रवेश' अध्यादेश बन गया था। उसके अनुसार भारत सरकार, राज्य-सरक्षण की दृष्टि से आवश्यकता अनुभव करने पर, भारत मे प्रवेश करने वाले किसी भी व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर रोक लगा सकती थी। अध्यादेश के अन्तर्गत सरकार ने सारे यात्रियो को एक

१. सरदार गुरदीत सिह सिगापुर मे आकर बस गए थे और वे वहाँ के एक समृद्ध ठेकेदार थे।

२. Indian Sedition Committee Report, 1918, page 147.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १४८.

स्पेशल रेलगाडी से बैठकर, सीधे पजाब चले जाने की आज्ञा दी। यात्रियो को कोई किराया नही देना था। लेकिन "सिक्खो ने गाडी मे घुसने से इकार कर दिया और कलकत्ते मे एक जलूस के रूप मे घुसने का प्रयत्न किया। उनको बलात् लौटाया गया, फलत उपद्रव हुए और दोनो ओर के आदमी मारे गए। बहुत से सिक्खों के पास अमेरिकन रिवाल्वर थे। जहाज के सिर्फ ६० आदमी, जिनमे १७ मुसलमान भी सम्मिलित थे, स्पेशल रेलगाडी मे पजाब गये। उपद्रव मे १८ सिक्ख मारे गए, बहुतो को उस समय या बाद मे गिरफ्तार कर लिया गया, और २९ आदमी, जिनमे गुरदीत सिह भी सम्मिलित थे, गायब होगए। जो लोग गिरफ्तार हुए थे, उनमे से अधिकाँश को अगली जनवरी मे अपने घर जाने की आज्ञा दे दी गई, ३१ लोगों को जेल मे नजरबन्द कर दिया गया।"[१] इस प्रकार कनाडा के विनियमो से बचने के प्रयत्न का अन्त हुआ।

१०

कोमागाटा मारू की घटना के कारण, ब्रिटिश सरकार के प्रति सिक्खो की भावनाएँ बडी तीखी हो गई, सिक्खो के अनुसार उनकी सारी विपत्तियो के लिए ब्रिटिश सरकार जिम्मेदार थी। विदेशो मे रहने वाले सिक्खों[२] पर गदर-पार्टी के क्रान्तिकारी प्रचार का अब अधिक प्रभाव हो सकता था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, यह पार्टी जर्मन सरकार की सहायता से भारत मे क्रान्ति करने के लिए योजना बना रही थी।[३] पार्टी के क्रान्तिकारियो ने सिक्खो पर पजाब वापिस जाने के लिए जोर दिया और कहा कि वे उस सरकार को उखाड फेकने के लिए सहायता दे जिसने साम्राज्य के प्रति उनकी पिछली सेवाओ के बदले उनके साथ ऐसा बुरा व्यवहार किया था। "विदेशो म बसे हुए बहुत-से भारतीयो पर प्रभाव पडा और वे कनाडा, सयुक्त राष्ट्र, फिलिपाइन्स, हागकाग और चीन से भारत लौट आए।"[४]

सन् १९१४-१५ मे गदर पार्टी के प्रचार की तीव्रता बढ़ गई। हरदयाल ने ही रामचन्द्र, पेशावरी और बरकतुल्ला की सहायता से गदर पार्टी का सगठन किया था और उसका प्रधान केन्द्र कैलिफोर्निया मे था। पजाब मे क्रातिकारी आन्दोलन[५] का उपक्रमण करने के बाद हरदयाल १९११ के आरम्भ मे सयुक्त राष्ट्र अमेरिका पहुँचे थे और बर्कले (कैलिफोर्निया) मे बस गए थे। वहाँ पर बसे

---

१. Indian Sedituon Committee Report, 1918, पृष्ठ १९८।

२ कनाडा मे लगभग ४००० सिक्ख बसे हुए थे। इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र, फिलिपाइन, हागकाग और चीन मे भी बहुत-से सिक्ख बसे हुए थे।

३. इसी अध्याय मे इसका वर्णन किया जा चुका है।

४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १९९.

५. इसी अध्याय के आठवें विभाग को देखिये।

हुए सिक्खो मे एक प्रकार का क्रांतिकारी सगठन पहले से ही काम कर रहा था। हरदयाल ने उसे शक्तिशाली क्रातिकारी केन्द्र बनाने के लिए अपना काम तुरन्त आरम्भ कर दिया। उन्होने सारे सयुक्तराष्ट्र मे प्रचार करने के लिए एक परिक्रम का सगठन किया। सन् १९१३ मे उन्होने 'गदर' नामक एक पत्र 'युगान्तर आश्रम' से निकाला और उसे कई भारतीय भाषाओ मे छापा। यह पत्र अमेरिका और सुदूर पूर्व मे बसे हुए भारतीयो मे और भारत के विभिन्न भागो और विभिन्न वर्गो मे मुफ्त बाँटा जाता था। "'गदर' की भाषा, ब्रिटिश-विरोधी और अत्यन्त उग्र होती थी, उसमे मानवीय मनोभावो को हर सभव युक्ति से भडकाया जाता था, उसके प्रत्येक वाक्य मे हत्या और विद्रोह का प्रचार होता था, और सभी भारतवासियो से भारत जाने के लिए आग्रह किया जाता था और उनसे कहा जाता था कि वे भारत मे अंग्रेजो की हत्या करें, सरकार के विरुद्ध क्राति करे और हर सभव उपाय को काम मे लाकर ब्रिटिश राज्य का अन्त करें"।[1] हरदयाल ने इस समाचार-पत्र की सहायता से और सार्वजनिक तथा निजी सभाओ मे व्याख्यानो द्वारा पार्टी के काम को आगे बढाया। हरदयाल के लेख और व्याख्यान बडे प्रभावशाली होते थे। १६ मार्च १९१४ को अमेरिकन अधिकारियो ने उन्हे निर्वासित करने के उद्देश्य से गिरफ्तार किया। उन्हे जमानत पर छोडा गया लेकिन वे 'युगान्तर आश्रम' का काम रामचन्द्र को सौप कर बरकतुल्ला के साथ स्विट्ज़रलैंड भाग गए और वहाँ से जर्मनी चले गए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है[2], इन लोगो ने बर्लिन मे इडियन नैशनल पार्टी का संगठन किया और जर्मनी की सहायता से भारत मे प्रबल क्राति करने की योजना बनाई।

महायुद्ध के पहले तीन वर्षो मे पजाबके क्रान्तिकारी आन्दोलन का निर्देशन दो परस्पर असबद्ध केन्द्रो से हुआ, फलत आन्दोलन की दो पृथक् धाराएँ थी—एक मे तो मुख्यत विदेशों से लौटे हुए सिक्ख थे[3] और दूसरी धारा मे 'पैन-इस्लामिक' मुसलमान थे। सिक्खो का निर्देशन अमेरिका और सुदूर पूर्व से हो रहा था। इन लोगो की सहायता के लिए गदर पार्टी ने अमेरिका से पिंगले को भेज दिया था। इस धारा को रासबिहारी बोस का सहयोग भी प्राप्त था, जैसा कि पहले कहा जा चुका है रासबिहारी बोस को दिल्ली षड्यन्त्र केस मे फाँसी का दण्ड दिया गया था पर वे गिरफ्तार होने से पहले ही फरार हो गए थे। 'पैन-इस्लामिक' षड्यन्त्र का निर्देशन-केन्द्र काबुल मे था और इसके नेता थे बरकतुल्ला और महेन्द्र प्रताप। इस षड्यन्त्र

१. Indian Sedition Committee Report 1918, pages 145-146.

२ इसी अध्याय के सातवे विभाग को देखिये।

३. इनमे कुछ मुसलमान और कुछ हिन्दू भी थे।

के सम्बन्ध मे आगे चर्चा की जाएगी।

११.

महायुद्ध आरम्भ होने के कुछ ही समय बाद, कलकत्ता, मद्रास और कोलम्बो में, विदेशो मे बसे हुए सिक्खो से भरे हुए जहाज़ आने लगे। सरकार को जो सूचना मिली थी उसके अनुसार ये लोग गदर पार्टी के अनुयायी हो गए थे और वे पजाब में क्रान्ति करने के उद्देश्य से वापिस लौट रहे थे। २९ अगस्त १९१४ को 'विदेशवासी' अध्यादेश इन लोगो पर लागू नही हो सकता था। अत· ५ सितम्बर १९१४ को 'भारत प्रवेश' अध्यादेश बना कर जारी किया गया। इस अध्यादेश को सबमे पहले 'कोमागाटा मारू' जहाज़ के यात्रियो पर लागू किया गया।

२९ अक्तूबर को 'टोसा मारू' नामक दूसरा जापानी जहाज कलकत्ता आया, इसमे १७३ यात्री थे, जिनमे से अधिकाश, अमेरिका और सुदूरपूर्व से लौटने वाले सिक्ख थे। उसमे क्रान्तिकारी आन्दोलन के नेता भी थे, जिनमे से प्रत्येक को, प्रान्त के एक निश्चित क्षेत्र मे काम करना था। पुलिस की जानकारी में १६ मार्च १९१५ तक, विदेशो से लौटे हुए ३१२५ आदमी पंजाब पहुँचे। पजाब सरकार ने उनके मामलों की जाँच करने के लिए प्रभावशाली सिक्खों की स्थानीय कमेटियाँ विशेषरूप से नियुक्त की थी और जाँच के फलस्वरूप १८९ आदमियों को जेल मे रखा गया, ७०४ आदमियो पर अपने गाँव से बाहर न जाने के लिए रोक लगाई गई और २२११ आदमियो को कही भी आने-जाने की स्वतन्त्रता दी गई।[1] इन प्रतिबन्धों के कारण, विदेशो से लौटने वाले लोगो की योजनाएँ चौपट हो गईं किन्तु कुछ समय बाद, पिगले और रासबिहारी बोस की सहायता से नई योजनाएँ बना ली गई। इस बीच मे, आवश्यक निधि सग्रह करने के उद्देश्य से लूट और हत्या का क्रम आरम्भ कर दिया गया। २७ नवम्बर १९१४ को १५ आदमियों के एक दल ने मोगा तहसील के खजाने पर धावा बोला। एक थानेदार और एक ज़िलेदार ने उन्हे रोकने का प्रयत्न किया, पर वे दोनो मारे गए। गाँववालो ने और पुलिस के आदमियों ने डाकुओ का पीछा किया जिसके फलस्वरूप दल के दो आदमी मारे गए, सात पकडे गए, बाकी भाग गए। २८ तारीख को अमृतसर ज़िले के एक गाँव मे एक दल और इकट्ठा हुआ लेकिन पुलिस और घुडसवारो के आ जाने के कारण वे लोग भाग गए। ८ दिसम्बर १९१४ को एक पुलिस-अधिकारी पृथी राजपूत नामक एक सदिग्ध देशान्तरगामी को गिरफ़्तार करने गया किन्तु उस पर हमला किया गया और उसे अधमरा कर दिया गया। १७ तारीख को हिसार ज़िले के पीपली गाँव के एक ब्राह्मण से लगभग २२००० हजार रुपये लूट लिए गए।

१. The Indian Sedition Committee Report 1918, page 155.

पजाब सरकार ने इस गम्भीर स्थिति का सामना करने के लिए भारत सरकार से एक नया, कठोर अध्यादेश बनाने के लिए कहा। एक ओर सरकार अध्यादेश बनाने मे लगी हुई थी, दूसरी ओर विदेशों से लौटे हुए लोग अपनी योजना के अनुसार डकैतियो और हत्याओ के कार्यक्रम में लगे हुए थे। दिसम्बर १९१४ में और जनवरी तथा फर्वरी १९१५ मे पजाब के केन्द्रीय जिलो मे कितने ही डाके डाले गए और रेलों की पटरियाँ उखाडने तथा पुलों को उडाने[1] के प्रयत्न किए गये। इन कामों के अतरिक्त, पजाब के तीन महत्त्वपूर्ण सैनिक केन्द्रो मे २१ फर्वरी १९१५ को एक समकालिक व्युत्थान का षड्यन्त्र भी रचा गया।

यह षड्यन्त्र, लाहौर षड्यन्त्र के नाम से प्रसिद्ध है और इसकी योजना, पिगले और रासबिहारी बोस ने बडे यत्नपूर्वक बनाई थी। अमृतसर मे बम बनाने के लिए एक फैक्ट्री खोली गई थी ; लेकिन आन्दोलन का प्रधान केन्द्र लाहौर मे था और रासबिहारी बोस उसके मुख्य निर्देशक थे। उन्होने "उत्तर भारत की विभिन्न छावनियो से नियत दिवस पर सैनिक सहायता प्राप्त करने के लिए, इन छावनियो मे अपने दूत भेजे। उन्होंने विद्रोह के लिए, बहुत-से गाँववालों के दलों का सगठन भी किया। बम बनाए गए; हथियार इकट्ठे किए गए; झडे तैयार किए गए, युद्ध की घोषणा लिखी गई; पटरियाँ उखाडने और तारो को काटने के औज़ार इकट्ठे किए गए। इन लोगो ने लाहौर, फीरोजपुर और रावलपिण्डी मे समकालिक व्युत्थान की योजना बनाई थी, बाद मे यह प्रकट हुआ कि उनका कार्य-क्षेत्र और भी ज्यादा बड़ा था ।"[1] एक गुप्तचर से सरकार को इस योजित व्युत्थान का पता लगा और सरकार ने रासबिहारी बोस के प्रधान केन्द्र पर छापा मारा।"तेरह आदमी पकडे गए और चार मकानो की तलाशी ली गई। बारह बम पकडे गए जिनमे से पाँच बम बगाली नमूने पर बने हुए थे। .. रासबिहारी और पिगले भाग गए लेकिन एक महीने बाद मेरठ छावनी मे पिगले को पकडा गया और उसके पास कुछ बम भी पाए गए।"[2]

इस प्रकार व्युत्थान की योजना को आरम्भ मे ही कुचल दिया गया लेकिन राजनैतिक डकैतियों और हत्याओं का क्रम कुछ समय बाद तक चलता रहा। सरदार चन्दासिह और सरदार बहादुर अछर सिह जैसे प्रमुख सिक्ख सहयोगियो की हत्या की गई। पहले लाहौर षड्यन्त्र अभियोग के एक गवाह कपूर सिह की भी हत्या की गई। अगस्त १९१५ तक आन्दोलन ठडा पड गया और ३१ जनवरी १९१६ को पजाब सरकार ने लिखा —"विदेशों से लौटे हुए सिक्ख

१ विस्तृत वर्णन के लिए देखिये—Indian Sedition Committee Report 1918, pages 152-53.

२ उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ १५४.

अब व्यवस्थित होते जा रहे हैं और साधारणतया सिक्खो की भावनाएँ इस समय जितनी सन्तोषप्रद है उतनी पिछले कई वर्षो मे नही रही।"[१]

पजाब सरकार के अनुसार स्थिति मे परिवर्तन के दो कारण थे। १९१५ के 'भारत रक्षा ऐक्ट' के अन्तर्गत सरकार ने कठोरता से काम लिया था। और साथ ही प्रान्त के राजभक्त लोगो को अपने पक्ष मे ले लिया था।

१२

जैसा कि पहले कहा जा चुका है पजाब सरकार ने दिसम्बर १९१४ मे वाइसराय के विचारार्थ एक अध्यादेश का मसविदा प्रस्तुत किया था। उसका उद्देश्य विदेशो से लौटे हुए लोगो के राजनैतिक अपराधो के लिए, त्वरित अभियोग-निर्णय की व्यवस्था करना था। उसके द्वारा "सदिग्ध परिस्थितियो मे शस्त्रो का वहन" एक नया, पृथक् अपराध बनाया गया, और स्थानीय सरकार की अनुमति से "(अ) राजनैतिक अथवा अर्ध-राजनैतिक अपराधो के लिए न्याय-पद्धति के निराकरण की; (ब) ऐसे अपराधों मे अपील के निराकरण की, (स) सम्बन्धित व्यक्तियो से वर्तमान पद्धति की अपेक्षा एक शीघ्रतर पद्धति मे ज़मानत लेने की, (द) क्रान्तिकारियो को शरण देने वाले ग्रामवासियो और गाँव के अधिकारियो को तुरन्त दण्ड देने की" व्यवस्था की गई।[२]

भारत-सरकार ने इस सम्बन्ध मे तुरन्त ही एक अध्यादेश बनाने की आवश्यकता अनुभव नही की, लेकिन पजाब सरकार आग्रह करती रही और २१ फरवरी को लाहौर षड्यत्र का पता लगने के बाद यह आग्रह और ज्यादा बढ गया। भारत सरकार इगलैंड के डिफेस ऑव दी रिएल्म ऐक्ट के ढग पर डिफेस ऑव इडिया (भारत-रक्षा) ऐक्ट बनाने का विचार कर ही रही थी। अत पजाब और बगाल की विशेष परिस्थितियो का सामना करने के लिए, भारत-सरकार ने, पजाब सरकार के प्रस्तावित मसविदे की धाराओ को उस ऐक्ट मे सम्मिलित करने का निश्चय किया।

इस पृष्ठ भूमि मे यह स्पष्ट है कि १९१५ का भारत रक्षा एक्ट केवल युद्ध की ही परिस्थितियो का सामना करने के लिए नही बनाया गया था। उसका उद्देश्य राजनैतिक अपराधो का दमन करना भी था और उसके लिए देश के साधारण फौजदारी कानूनो का अतिक्रमण करने की व्यवस्था की गई। यही मत, परिषद् मे, इस विषय पर विवाद के सिलसिले मे माननीय प. मदन मोहन मालवीय ने प्रकट किया था। इस ऐक्ट को साम्राज्यीय विधान परिषद् की एक ही बैठक में (१८ मार्च

१. Indian Sedition Committee Report, 1918, page 157.

२. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ १५१.

१९१५ को) बनाया गया और उसके विभाग नं. ३ के अनुसार, "किसी भी व्यक्ति को, किसी भी अपराध पर प्राणदड, निर्वासन-दड अथवा सात वर्ष तक कारावास दड" दिया जा सकता था।[1] इस पर प मालवीय ने कहा, "इस विभाग के द्वारा साधारण अपराधो के अभियोग-निर्णय के लिए फौजदारी पद्धति संहिता की धाराओ का वस्तुत अन्त किया जा रहा है।"[2]

देश अथवा साम्राज्य के सैनिक और समुद्री हितो के सरक्षण से सम्बन्धित धाराओ का परिषद् मे कोई भी विरोध नही किया गया। साथ ही उग्र राजनैतिक अपराधो के दड और दमन से सम्बन्धित धाराओ का भी कोई विरोध नही किया गया। किन्तु बहुत से गैर-सरकारी सदस्यो ने, विशेष न्याय-सभाओ की रचना, उनके विधान, ऐक्ट के अन्तर्गत अभियोगो के निर्णय और प्राणदड देने के लिए उन न्याय सभाओं के अधिकारियो से सम्बन्धित धाराओ का प्रबल विरोध किया।

यह मत प्रकट किया गया कि जिन अपराधो का देश की रक्षा से सम्बन्ध हो, उनका अभियोग निर्णय (इगलैड के ढग पर) सैनिक न्यायालय द्वारा होना चाहिए और अन्य अपराधों का निर्णय साधारण न्यायालयो द्वारा होना चाहिए। किंतु विभाग न. ४ के अनुसार, ऐक्ट के अन्तर्गत सभी अभियोगो का निर्णय विशेष न्याय सभाओ द्वारा होना था। प्रत्येक न्याय सभा मे स्थानीय सरकार द्वारा नियुक्त, तीन कमिश्नर होने थे। बहुत से गैर-सरकारी सदस्यो के अनुसार कमिश्नरो के लिए जो अर्हता निश्चित की गई थी, वह असतोषप्रद थी। उनका मत यह था कि विशेष न्याय-सभाओ के सदस्य हाईकोर्ट के जज होने चाहिएँ, किंतु ऐक्ट के अनुसार सैशन्स (सत्र-न्यायालय का) जज अथवा अतिरिक्त सैशन्स जज भी कमिश्नर नियुक्त किया जा सकता था और न्याय-सभा के तीन कमिश्नरो मे से केवल दो के लिए ही विधिक ज्ञान अथवा न्यायिक अनुभव की आवश्यकता थी।[3] सम्राट् के खिलाफ युद्ध का षड्यत्र रचने के उद्देश्य से अथवा सम्राट् के शत्रुओ को सहायता देने के उद्देश्य से, ऐक्ट के अन्तर्गत बने हुए नियमो अथवा ऐक्ट की आज्ञाओ का किसी प्रकार भी उल्लघन करनेवाले अभियुक्त को, न्याय सभा के कमिश्नर प्राण दड दे सकते थे। पडित मालवीय ने कहा, "युद्ध के बन्दियो को नज़रबन्द किया जाता है, क्या विचाराधीन अभियुक्तो को नज़रबन्द रखने से अथवा

१. "Acts of 1915," page 8.

२. Indian Legislative Council Proceedings, Vol. LIII, page 490.

३. "Acts of 1910", page 8.

जीवन-भर के लिए निर्वासित करने से, सार्वजनिक सुरक्षा और न्याय की माँग पूरी नही हो सकती ? ..... प्राण दड मे, एक अपरिवर्तनीय अन्याय की जोखिम होती है। त्वरित एवं सक्षिप्त अभियोग-निर्णय की व्यवस्था मे यह जोखिम और ज्यादा बढ जाती है", विशेषकर ऐसे समय जब उच्चतर न्यायालय मे अपील करने की व्यवस्था न हो। ऐक्ट के विभाग न. ६ के अनुसार कमिश्नरो का निर्णय "अन्तिम और अपरिवर्तनीय" था।[1]

१३.

सन् १९१५ के भारत रक्षा एक्ट के अन्तर्गत, विशेष न्याय-सभाओ में, लाहौर षड्यत्र और अन्य राजनैतिक अपराधो मे सम्मिलित लोगो पर अभियोग चलाए गए। इन अभियोगो को ९ जत्थो मे बाँटा गया था किंतु यहाँ पर तीन 'लाहौर षड्यत्र' अभियोगो की सक्षिप्त[2] चर्चा करना ही पर्याप्त होगा।

पहले अभियोग के जत्थे मे ६१ अभियुक्त थे। इस जत्थे मे आन्दोलन के लगभग सारे नेता सम्मिलित थे और उनमे पिगले और भाई परमानन्द भी थे। भाई परमानन्द १९१३ मे भारत वापिस लौट आए थे और वे अमेरिका में हरदयाल के प्रमुख सहयोगी माने जाते थे। विशेष न्याय-सभा के निर्णय के अनुसार वे "षड्यत्रकारियो के नेता थे", अत उन्हे प्राण-दड दिया गया। वाइसरॉय ने इस दड को घटा कर, आजीवन निर्वासन-दड दिया, बाद मे इसको भी क्षमा कर दिया गया।

दूसरे अभियोग मे ७४ अभियुक्त थे। २१ फर्वरी की योजना के असफल हो जाने के वाद भी, विदेशो से लौटे हुए लोग अपना क्रातिकारी काम करते रहे। उन्होने विद्यार्थियो मे और भारतीय सैनिको मे क्रातिकारी प्रचार का प्रयत्न किया और इन बातो के अतिरिक्त वे लोग कई हत्याओ और डकैतियों के लिए भी उत्तरदायी थे।

तीसरे लाहौर-षड्यत्र अभियोग मे कुल १२ अभियुक्त थे पर वे लोग उस जर्मन योजना से सम्बन्धित थे जिसके अनुसार बर्मा की ओर से भारत पर आक्रमण किया जाना था। आक्रमणकारियो का केन्द्र बैंकाक मे था जहाँ कनाडा से लौटे हुए कुछ भारतीय क्रातिकारी एकत्र हो गए थे और जर्मन-अभिकर्ताओ के साथ मिलकर काम कर रहे थे।

इन षड्यत्र-अभियोगो मे अत्यन्त कठोर दड दिए गए। कुल १७५ व्यक्तियों पर अभियोग चलाया गया था "जिन मे से १३६ अभियुक्तों के अपराधों के लिये

१ "Acts of 1915", page 9.

२. विस्तृत वर्णन के लिए देखिये—Indian Sedition Committee Report 1918, pages 157–160.

मृत्युदड मिलना चाहिए था [illegible] केवल ३८ व्यक्तियो को प्राणदड दिया गया..... .....इसमे से भी १८ अभियुक्तो के दड को घटाकर निर्वासन दड कर दिया गया ..... ..... और इस प्रकार अन्त मे केवल २० आदमियो को फाँसी दी गई, ५८ को आजीवन निर्वासन दड दिया गया, ५८ को कुछ वर्षों के लिए निर्वासन अथवा कारावास का दड दिया गया।" [1]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है क्रातिकारियो ने भारतीय सैनिको मे राजसत्ता के प्रति अभक्ति फैलाने का प्रयत्न किया था और इस दिशा मे उन्हे कुछ सफलता भी मिली थी। सैनिक अधिकारियो ने खुले सैनिक न्यायालय मे अभियोगो का निर्णय करना अनीतियुक्त समझा क्योकि सर माइकेल के अनुसार "वे विद्रोहपूर्ण तैयारियो[2] के रहस्य को सर्वसाधारण मे प्रकट नही करना चाहते थे। अत उन्होने कलुषित सिक्ख सैन्य-उपदल को लडाई के मोर्चे पर भेज दिया। शस्त्रागार को किसी अन्य स्थान पर पहुँचाया गया पर जब सामान को गाडो से उतारा जा रहा था तो कुछ बम, जो कई महीनो से गुप्त रखे गए थे, फट गए। ऐसी स्थिति मे अभियोगो को सैनिक न्यायालय के सिपुर्द करना आवश्यक हो गया। फलत: उस उपदल के १८ सैनिको को प्राणदड दिया गया, इनमे से छै सैनिको का दड घटा दिया गया और बारह को फासी दे दी गई।" [3]

१४

युद्ध के दिनो मे पजाब मे क्राति करने के लिए 'पैन-इस्लामिस्ट' पार्टी ने भी प्रबल प्रयत्न किया। इस पार्टी का केन्द्र काबुल मे था और इसके निर्देशक थे महेद्रप्रताप और बरकतुल्ला। इन लोगो को बर्लिन की इडियन नेशनल पार्टी ने काबुल भेजा था।

सन् १९११-१३ मे बाल्कन युद्ध और तुर्किस्तान से इटली के युद्ध के समय, भारत म 'पैन-इस्लामिक' आन्दोलन ज़ोर पकड गया था। इस आन्दोलन के नेता थे मौलाना जाफर अली, मुहम्मद अली और शौकत अली। मौलाना जाफर अली लाहौर से निकलने वाले 'ज़मीदार' के सम्पादक थे और मौलाना मुहम्मद अली तथा शौक्त अली ये दोनो भाई क्रमश 'कामरेड' और 'हमदर्द' के सम्पादक थे। पिछले दोनो पत्र दिल्ली से प्रकाशित होते थे। तुर्किस्तान के प्रति ब्रिटिश नीति से, ये लोग अप्रसन्न थे और इन्होने तुर्किस्तान के अपने इस्लामी भाइयो के लिए भारतीय मुसलमानो की सहानुभूति जागृत की। वस्तुत 'पैन-इस्लामिक' आन्दोलन सभी देशो के मुसलमानो से सम्बन्धित था। अस्तु, १९१२ मे तुर्किस्तान के लिए

१. O'Dwyer: India as I Knew it, page 207.
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २०३
३. O'Dwyer: India as I Knew it, page 203.

चन्दा इकट्ठा किया गया और मौलाना जाफर अली उसकी एक किस्त देने के लिए स्वय ही कुस्तुन्तुनियाँ गए। सुल्तान ने इस भेट को कृतज्ञतापूर्वक स्वीकार किया और उसने १९१४ के आरम्भ मे लाहोर की बादशाही मस्जिद के लिए एक कालीन भेजा।

तुर्किस्तान से मौलाना जाफरअली के लौटने पर 'पैन-इस्लामिस्ट' समाचार-पत्र,ब्रिटिश नीति की, और भी ज्यादा तीखी आलोचना करने लगे। पजाब सरकार ने १९१३ मे 'जमीदार' की जमानत जब्त कर ली। दुबारा जमानत माँगी गई और दी गई लेकिन पत्र की नीति मे कोई अतर नही हुआ। इसका परिणाम यह हुआ कि कुछ ही समय बाद सरकार ने प्रेस और जमानत, दोनो को जब्त कर लिया। महायुद्ध आरम्भ होने पर मौलाना जाफर अली और दोनो अली-बन्धुओ को उनके गावो मे नजरबन्द कर दिया गया।

महायुद्ध मे तुर्किस्तान के शामिल होने पर बर्लिन के भारतीय क्रातिकारियो ने पूर्वीय देशो मे मुस्लिम व्युत्थान के लिए 'पैन-इस्लामिक' भावनाओ का उपयोग करने के उद्देश्य से महेद्रप्रताप और बरकतुल्ला को काबुल भेजने का निश्चय किया। महेन्द्रप्रताप, उत्तर प्रदेश के एक धनी जमीदार है और एक सिक्ख राजघराने में उनका विवाह हुआ था। महायुद्ध आरम्भ होने के कुछ ही समय बाद वे स्विट्जरलैंड चले गए और वहाँ हरदयाल के सम्पर्क मे आए। वहाँ से उन्हे बर्लिन ले जाया गया और एक प्रभावशाली भारतीय नरेश के रूप मे उनका परिचय दिया गया। बरकतुल्ला भूपाल के रहने वाले थे और १९०९ मे टोकियो यूनिवर्सिटी मे प्रोफेसर हो गए थे। जापान पहुँचने पर उन्होने 'इस्लामिक फ्रैटर्निटी' नामक एक पत्र निकालना आरम्भ किया। सन् १९११ मे वे मिश्र, तुर्किस्तान और रूस गये और कृष्णवर्मा के सम्पर्क मे आए। जापान लौटने पर उनका पत्र बन्द कर दिया गया और १९१४ मे उनको प्रोफेसर के पद से हटा दिया गया। तब वे सैन फ्रैंसिस्को पहुँच कर हरदयाल के सहयोगी और गदर पार्टी के नेता हो गए और बाद मे उनके साथ बर्लिन चले गए। वहाँ से एक तुर्क-जर्मन मडल के साथ उनको और महेद्रप्रताप को काबुल भेजा गया। इन लोगो के और मडल के काबुल जाने का उद्देश्य दोहरा था—अफगानिस्तान के शासक को फोडना और उत्तरी भारत मे क्राति कराना।

पजाब मे 'पैन-इस्लामिक' आन्दोलन जड पकड गया था। मुस्लिम तरुण वर्ग उत्तेजित थे। एक गुप्त सगठन क्रातिकारी काम के लिए, विद्यार्थी-सम्प्रदाय मे से, अपने सदस्य भर्ती करने का प्रयत्न कर रहा था। उसने लाहौर से १५ विद्यार्थी भर्ती किए, जो कालेजो मे पढते थे। इनके अतिरिक्त पेशावर और कोहाट से भी कुछ विद्यार्थी भर्ती किए गए और इन लोगो को बडे टेढे-मेढे रास्तो से भारत की

उत्तरी पश्चिमी सीमा के बाहर भेजा गया, जहाँ वहाबी समुदाय का ब्रिटिश-विरोधी प्रधान केन्द्र था। इस केन्द्र मे ये लोग काबुल गये,जहाँ आरम्भ मे तो उन्हे नजरबन्द रखा गया पर बाद मे उन्हे छोड दिया गया और कुछ शर्तो पर कहीं भी आने-जाने की स्वतन्त्रता देदी गई।"[१] इन लोगो का 'मिल्क लेटर' षड्यत्र से सम्बन्ध था। "इस षड्यत्र की योजना भारत मे बनाई गई थी। और उसका उद्देश्य भारत मे ब्रिटिश राज्य का अन्त करना था। योजना के अनुसार, उत्तरी पश्चिमी सीमा से भारत पर आक्रमण होना था और उसी समय पर देश मे मुस्लिम व्युत्थान होना था। इस योजना को कार्यान्वित करने के उद्देश्य से अगस्त १९१५ मे उबैदुल्ला नामक एक मौलवी अपने तीन साथियो—अब्दुल्ला, फतेह मुहम्मद और मुहम्मद अली—को लेकर अफगानिस्तान पहुँचा।"[२] उबैदुल्ला, देवबन्द के एक मजहबी मकतब का मौलवी था और उसने उस मकतब के बडे मौलवी मुहम्मद हसन को भी ब्रिटिश-विरोधी भावनाओ से भर दिया था। "१८ सितम्बर १९१५ को मुहम्मद हसन ने उबैदुल्ला का अनुकरण किया और वह, मुहम्मद मियाँ और कुछ अन्य मित्रो के साथ अरब चला गया।[3]

मुहम्मद हसन के दल ने अरब मे अपना काम शुरू किया और उसने हेजाज़ के तुर्की सैनिक गवर्नर गालिब पाशा से जिहाद की घोषणा भी प्राप्त कर ली। सन् १९१६ मे मुहम्मद मियाँ, 'गालिबनामा' (जिहाद की घोषणा) को लेकर भारत लौट आया। उसने इस घोषणा की प्रतियो का भारत और सीमा प्रान्त मे वितरण किया और बाद मे वह काबुल पहुँच कर उबैदुल्ला के दल मे सम्मिलित हो गया। 'ग़ालिबनामा' मे तुर्को और मुजाहदीन की उपलब्धियो का वर्णन किया गया था, उसके बाद एशिया, यूरोप और अफ्रीका के मुसलमानो की तैयारियो का हाल बताया गया था, और अन्त मे भारतीय मुसलमानो से यह अपील की गई थी — "मुसलमानो, जिस ईसाई सरकार ने तुम्हे गुलाम बना रक्खा है, उस पर आक्रमण करो।.... दृढ निश्चय से, प्राणपण से प्रयत्न करो और शत्रुओ का सहार करो ओर उनके प्रति अपनी घृणा और शत्रुता को जता दो।"[४] 'गालिब-नामा' ने भारतीय मुसलमानो से यह भी कहा कि वे मुहम्मद हसन का विश्वास करे और उसकी "धन और जन से हर प्रकार की सहायता करे।"[४]

इस काम के लिए काबुल मे केन्द्र बनाया गया। उबैदुल्ला और उसके मित्र वहाँ पहले ही पहुँच चुके थे और उन लोगो ने तुर्क-जर्मन मडल से, बर्लिन के

१. Indian Sedition Committee Report, 1918, page 175.
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १७६.
३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १७७
४. Indian Sedition Committee Report, 1918, page 178.

भारतीय क्रातिकारियों से और भारत के मुहाजरीन विद्यार्थियो से सम्पर्क स्थापित कर लिया था। सन् १९१६ मे रास्ते मे 'गालिबनामा' की प्रतियाँ बाटते हुए, मुहम्मद मियाँ भी काबुल पहुँच गया। इन सब लोगो ने मिलकर बडे यत्नपूर्वक अपनी योजना बनाई। एक 'सामयिक सरकार' की स्थापना की गई और महेन्द्रप्रताप को उसका अध्यक्ष तथा बरकतुल्ला को उसका प्रधान मन्त्री बनाया गया। इस 'सामयिक सरकार' ने रूसी तुर्किस्तान के गवर्नर के पास एक पत्र भेजा और साथ ही एक पत्र तत्कालीन ज़ार (रूस नरेश) के पास भी भेजा—यह पिछला पत्र एक सोने की तश्तरी पर लिखा गया था और उसमे रूस से यह कहा गया था कि "वह अग्रेजो के साथ अपनी मित्रता तोड कर, भारत मे ब्रिटिश सत्ता को उखाड फेकने के लिए सहायता दे।"[१] 'सामयिक सरकार' ने मौलाना मुहम्मद हसन के जरिये से तुर्किस्तान सरकार के साथ भी सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया। मौलाना मुहम्मद हसन को दो पत्र लिखे गए—एक पत्र उबैदुल्ला ने लिखा और दूसरा पत्र मुहम्मद मियाँ ने लिखा। ये पत्र पीले रेशमी कपडे[२] पर लिखे गए और उन्हे हैदराबाद (सिंध) के शेख अब्दुर्रहीम के पास भेजा गया, और एक पृथक् पत्र मे, उनसे यह कहा गया कि वे मक्का मे मौलाना मुहम्मद हसन के पास उन रेशमी पत्रो को या तो किसी विश्वासपात्र आदमी के जरिये से या खुद ही पहुँचा दे।

"मुहम्मद मिया के पत्र मे, जर्मन और तुर्क मडलो के आने की, जर्मन मडल के वापिस चले जाने की,[३] तुर्क मडल के ठहरने की, कार्यक्रम के अभाव की, भागे हुए विद्यार्थियो की, 'गालिबनामा' के प्रचार की, प्रस्तावित 'खुदा की फौज' की और 'सामयिक सरकार' की चर्चा की गई थी। प्रस्तावित फौज मे भारतवासियो की भर्ती की जानी थी; इसके अतिरिक्त इस्लामी शासको मे ऐक्य स्थापित करना था। मुहम्मद हसन को ये सब बाते तुर्किस्तान सरकार को बतानी थी। उबैदुल्ला के पत्र मे प्रस्तावित सेना का सूचीबद्ध विवरण दिया गया था। मदीना मे सेना का प्रधान केन्द्र होना था और स्वय मुहम्मद हसन को उसका मुख्य सेनापति बनना था। स्थानीय सेनापतियों के आधीन कुस्तुन्तुनिया, तेहरान और काबुल मे केन्द्र बनाने थे। काबुल मे उबैदुल्ला को सेनापति बनना था। सूची मे अन्य सैनिक पदों के लिए बहुत से लोगो के नाम दिए गए थे। लाहौर के विद्यार्थियो मे से

---

१ Indian Sedition Committee Report 1918, पृष्ठ १७९.

२ इसी कारण यह योजना, रेशमी पत्र (अर्थात् सिल्क लेटर) षड्यत्र के नाम से प्रसिद्ध है।

३ सन् १९१६ के आरम्भ में जर्मन मडल, काबुल से वापिस चला गया क्योंकि उसे वहाँ अधिक ठहरना निरर्थक प्रतीत हुआ।

एक को मेजर जनरल का पद मिलना था, एक को कर्नल का और छै. को लेफ्टिनेंट कर्नल का।"[1]

काबुल पहुँचनेवाले मुहाजरीन विद्यार्थियों में, पजाब के उप-गवर्नर के मित्र, एक खान के दो लडके भी थे। इन लडको के साथ एक नौकर भी काबुल गया था और उन्होने इस नौकर के द्वारा खान के पास संदेश भेजे—और खान ने उन लडकों के प्रत्यागमन के लिए सर माइकेल ओ' डायर से प्रबन्ध कराना चाहा पर उसे सफलता नही मिली। अस्तु, 'रेशमी पत्र' (सिल्क लेटर्स) इसी नौकर के द्वारा भारत भेजे गए थे और वे उसके कोट के अस्तर के अन्दर सिले हुए थे। खान से मिलने आने से पहले वह उस कोट को एक भारतीय रियासत मे छोड आया था। खान को दाल मे कुछ काला दिखाई दिया और उसने नौकर को डरा-धमका कर सारा भेद मालम कर लिया। अन्त मे कोट मँगाया गया और खान ने उन 'रेशमी पत्रो' को निकाल कर अपने विभाग के कमिश्नर को सौप दिया और उसने उन्हे उप-गवर्नर के पास भेज दिया।[2]

इस प्रकार 'सिल्क लेटर्स' षड्यंत्र का पता लगा और पजाब सरकार ने उस षड्यत्र को साकार न होने देने के लिए उपयुक्त प्रबन्ध कर लिया।

## उन्नीसवाँ अध्याय

# वैधानिक आन्दोलन

१.

दमन और सुधार की दोहरी सरकारी नीति के कारण भारत का राजनीतिक जीवन निरुद्ध हो गया था। बगाल मे, जहाँ आन्दोलन अत्यत उग्र था और जहाँ दमन भी अपने शिखर पर था, सार्वजनिक जीवन गुप्त धाराओ में ढकेल दिया गया था और उसके फलस्वरूप बहुत से क्रान्तिकारी अपराध हुए थे। अन्य प्रान्तों में, उचित प्रेरणा के अभाव मे, राष्ट्रीय सस्थाएँ मुरझा गई थी। तिलक, माण्डले मे एक लम्बी अवधि के लिए कैद थे और बाबू अरविन्द घोष स्वय ही राजनैतिक जीवन से अलग हो गए थे। इन दोनो बातो ने "उग्र दल" को सक्रिय नेतृत्व से वंचित कर दिया था। मुसलमान और नरम दल के लोग मॉर्ले मिटो सुधारो मे फँसे हुए थे और अपने वार्षिक अधिवेशनो मे, पुरानी शिकायतो को दूर करने के संबध में कुछ प्रस्तावों का पारण करने के अतिरिक्त, सार्वजनिक कामो से दूर थे।

---

१. Indian Sedition Committee Report, 1918. page 178.
२. O'Dwyer : India as I Knew it, page 178,

सबसे पहले मुस्लिम समुदाय मे पुनरुत्थान की चेष्टा प्रकट हुई। शिक्षित मुसलमानो के तरुण वर्ग ने यह अनुभव किया कि अन्य देशवासियो के हितो से, उनके हित मूलत भिन्न नही थे। इसके अतिरिक्त अन्य इस्लामीय देशो–विशेषकर तुर्किस्तान और ईरान––के राष्ट्रीय आन्दोलनों ने उनको प्रभावित किया और उनमे राष्ट्रीय भावनाएँ भरी। उसी समय दो ऐसी बाते और हुई जिनके कारण भारतीय मुसलमान, ब्रिटिश कर्मचारीतन्त्र से विमुख हुए और अपने देश के अन्य निवासियो के अधिक निकट आए—पहली बात थी, अगरेजों की, त्रिपोली और बाल्कन युद्ध के सिलसिले मे, तुर्किस्तान-विरोधी नीति, और दूसरी बात थी, तुर्किस्तान के प्रति यूरोपीय राष्ट्रो के व्यवहार के सबध मे, मुसलमानो के प्रति भारतीय राष्ट्रवादियो की सहानुभूति। अस्तु, मुस्लिम तरुण वर्ग, भारतीय राष्ट्रवादियो के साथ सधान के लिए प्रयत्न करने लगे और सन् १९१३ मे इस दिशा मे पहला कदम उठाया गया।

तरुण नेताओ के उद्योगानुसार, लीग के लिए नया सविधान बनाने के प्रश्न पर विचार करने के उद्देश्य से, दिसम्बर १९१२ मे कलकत्ते मे, अखिल भारतीय मुस्लिम लीग की परिषद् की मीटिग करने का आयोजन किया गया। इस मीटिग मे मुस्लिम समुदाय के सभी प्रगतिशील नेतागण आए और इनमे मि० मुहम्मद अली जिन्ना भी थे जो अब तक लीग से दूर रहे थे।[1] उस समय वे एक कट्टर काग्रेसी थे और उन्होने एक विशुद्ध रूप से साम्प्रदायिक सस्था (मुस्लिम लीग) का सदस्य होने मे इन्कार कर दिया था। इस मीटिग ने काग्रेस के राष्ट्रीय आदर्श को स्वीकार किया[2] और लीग के लिए एक नए सविधान का मसविदा तैयार किया जिसे २२ मार्च १९१३ को अखिल भारतीय मुस्लिम लीग के वार्षिक अधिवेशन मे बडे उत्साहपूर्वक अगीकार किया गया। यह अधिवेशन लखनऊ में हुआ था और सर इब्राहीम रहमतुल्ला उसके सभापति थे।

नए सविधान ने लीग के उद्देश्य को इस प्रकार व्यक्त किया––"(१) इस देश के निवासियो मे, ब्रिटिश राजसत्ता के प्रति राजभक्ति की भावनाओ का पोषण करना और उनको प्रोत्साहन देना, (२) भारतीय मुसलमानो के राजनैतिक एव अन्य अधिकारो तथा हितो की रक्षा करना और उनको आगे बढाना; (३) भारत के अन्य समुदायो और मुसलमानों मे ऐक्य को प्रोत्साहन देना और पारस्परिक मित्रता बढाना, (४) उपर्युक्त उद्देश्यो को किसी प्रकार की क्षति पहुँचाए विना,

१. इस मीटिग मे उपस्थित होने वाले अन्य प्रगतिशील नेताओ मे सर इब्राहीम रहमतुल्ला, मौलाना मुहम्मद अली, मजरूल हक, हसन इमाम, मुहम्मद शफी और वजीर हसन थे।

२. लीग के नए सविधान का पुराने नेताओ ने प्रबल विरोध किया था।

ब्रिटिश राजसत्ता के अन्तर्गत, वैधानिक उपायो द्वारा भारत के लिए उपयुक्त स्वशासन-व्यवस्था प्राप्त करना और इस उद्देश्य के लिए अन्य बातो के अतिरिक्त राष्ट्रीय ऐक्य को प्रोत्साहन देना, वर्तमान शासन व्यवस्था मे क्रमश सुधार करना और भारत के निवासियों मे सार्वजनिक भावना का पोषण करना तथा उक्त उद्देश्य के लिए परस्पर सहयोग को प्रोत्साहन देना।"[1]

मुस्लिम लीग के आदर्श तथा उसकी नीति मे इस परिवर्तन का, काग्रेस ने हृदय से स्वागत किया और उसने अपने कराची-अधिवेशन (दिसम्बर १९१३) मे उसको व्यक्त करने के लिए एक विशेष प्रस्ताव का पारण किया। इस अधिवेशन का सभापतित्व नवाब सैयद मुहम्मद बहादुर ने किया था।[2] अस्तु, उक्त प्रस्ताव मे यह आशा प्रकट की गई, "कि विभिन्न समुदायो के नेतागण, राष्ट्रीय हित की सारी समस्याओ के सबध मे एक सयुक्त कार्य-पद्धति अपनाने के लिए पूरा-पूरा प्रयत्न करेगे।"[3]

राष्ट्रीय एकता और सयुक्त कार्यक्रम की दिशा मे दूसरा कदम मि० जिन्ना और उनके साथियो ने उठाया—उन्होने अखिल भारतीय मुस्लिम लीग से अपना अधिवेशन, काग्रेस अधिवेशन के साथ एक ही जगह करने के लिए कहा। दिसम्बर १९१५ मे दोनो सस्थाओ के अधिवेशन, बम्बई मे एक ही समय पर किए गए और जब काग्रेस के नेतागण, लीग के इस अधिवेशन को देखने के लिए हॉल मे घुसे तो बडे उत्साह और उल्लास के साथ उनका स्वागत किया गया। अस्तु, युद्धोत्तर-काल के लिए दोनो सस्थाओ ने परस्पर मिलकर एक सुधार योजना बनाने का और उस योजना को कार्यान्वित कराने के निमित्त, सरकार पर जोर देने का निश्चय किया। दोनो सस्थाओ ने इस उद्देश्य के लिए कमेटियाँ नियुक्त की। इन्होने कलकत्ता मे और बाद मे (दिसम्बर १९१८ मे) लखनऊ मे अपनी बैठके की जहाँ कुछ ही समय बाद लीग और काँग्रेस के वार्षिक अधिवेशन होने वाले थे। सुधारो की एक सयुक्त योजना सूत्रित की गई और उसमे भारत के विभिन्न विधान-मंडलो मे मुसलमानो को विशेष प्रतिनिधित्व देने के निर्णय द्वारा हिन्दु-मुस्लिम प्रश्न को तै किया गया। यह प्रतिनिधित्व मुस्लिम अल्पसख्यक प्रान्तो मे उनकी जनसख्या के अनुपात से कही अधिक था। अस्तु, काग्रेस और लीग, दोनो ने अपने अधिवेशनो मे इस योजना का सोत्साह अनुमोदन किया और यह समझौता 'काग्रेस लीग योजना'

१ Indian Year Book, 1914, page 476.

२ राष्ट्रीय एकता की दिशा मे मुस्लिम समुदाय के तरुण नेताओ के साहसिक एव देशभक्ति पूर्ण कृत्य की सराहना के प्रतीक स्वरूप, उस वर्ष के लिए नवाब बहादुर को विशेष रूप से छाँटा गया था।

३. Besant: How India Wrought for Freedom, page 564

के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस प्रकार भारत की दो बडी जातियो ने और दो बडी राजनैतिक सस्थाओ ने 'एक कार्यक्रम' अपनाया, और इस रूप मे उनके द्वारा—विशेषकर उसी वर्ष नरम और उग्र पक्षो मे फिर से ऐक्य हो जाने पर——ब्रिटिश भारत की राजनीतिक दृष्टि से जगी हुई सारी जनता का प्रतिनिधित्व हुआ।

२.

सन् १९०७ मे सूरत-विच्छेद के बाद इडियन नेशनल काग्रेस एक विशद्ध रूप से नरम-दली संस्था हो गई थी और उसके फलस्वरूप देश मे उसकी प्रतिष्ठा घट गई थी। लेकिन उस सस्था ने अपनी आन्तरिक दृढता और सामर्थ्य के बल पर, सन् १९१४ के अन्त तक, फिर देश के राजनैतिक जीवन में अपनी विगतकालीन प्रतिष्ठा और प्रधानता प्राप्त कर ली थी। इसके कई कारण थे और इनमें सबसे बडा कारण यह था कि उग्र पक्ष ने किसी प्रतियोगी सस्था की स्थापना नही की थी और सरकार की दमन नीति के फलस्वरूप उग्र दल बिलकुल छिन्न-भिन्न हो गया था। इन परिस्थितियो मे, देश में जो कुछ भी राष्ट्रवादी राजनैतिक जीवन था, उसे काग्रेस का माध्यम मिला और काग्रेस के द्वारा ही उसकी अभिव्यक्ति हुई। विच्छेद के बाद काग्रेस के नए सविधान मे उसके उद्देश्य निश्चित कर दिए गए थे और कार्य पद्धति के निश्चित नियमो का पालन अनिवार्य कर दिया गया था। यह काग्रेस सन् १९०८ के बाद प्रतिवर्ष किसी बडे शहर मे अपना अधिवेशन करती थी और राष्ट्रीय परिवादो को दूर करने के लिए हलचल करती थी और स्वदेश तथा उपनिवेशो मे भारतीयो की स्थिति के सुधार के लिए माँग करती थी। इसके अधिवेशनो मे राष्ट्रीय सार्वजनिक जीवन के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति—जैसे फीरोजशाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले, सुरेन्द्र नाथ बनर्जी, डी० ई० वाचा, मदन मोहन मालवीय, लाजपतराय, सत्येन्द्र सिनहा, भूपेन्द्रनाथ बसु, अम्बिकाचरन मजूमदार, कृष्णस्वामी ऐयर, एन० सूबा राव, सकरन नैयर, मुहम्मद अली जिन्ना, ज़मरूल हक, ए० रसूल, हसन इमाम, सैयद महमूद, मोतीलाल नेहरू, श्रीनिवास शास्त्री, सी० वाई० चिन्तामणि, सच्चिदानन्द सिनहा, तेज बहादुर सपरू, बिशन नारायण दर, हरकिशनलाल गोकरन नाथ मिश्र—भाग लेते थे। इन लोगो के अतिरिक्त काग्रेस मे भाग लेने वालो मे, श्रीमती एनी बीसेन्ट का एक महत्त्वपूर्ण स्थान था। वे, 'थियॉसाफिकल सोसाइटी' की प्रेसीडेन्ट थी और भारत के धार्मिक, सामाजिक और शिक्षण क्षेत्रो की अग्रणी थी। उन्होने भारत को अपनी मातृभूमि माना था और १९१४ तक वे उसके धार्मिक, सामाजिक एव शिक्षण विषयक पुनरुत्थान के कामो मे व्यस्त थी। किन्तु महायुद्ध के प्रथम वर्ष मे उन्होने राजनैतिक जीवन मे प्रवेश करने का निश्चय किया और पहली बार (दिसम्बर १९१४ मे) काग्रेस के मद्रास अधिवेशन मे सम्मिलित हुईं—और जैसा कि प्रवेक्षित था, उन्होने

तुरन्त ही काग्रेस सगठन मे एक प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया। अगले चार वर्षों मे वे काग्रेस की परिषदो मे और ब्रिटिश भारत के राजनैतिक जीवन मे अग्रणी रही और सन् १९१७ के दिसम्बर अधिवेशन मे उन्हे काग्रेस का अध्यक्ष पद प्राप्त हुआ। भारतवासियो की राजनीतिक तन्द्रा को दूर करने का और सक्रिय काम के लिए उन्हे सगठित करने का श्रेय, श्रीमती एनी बीसेन्ट के अतिरिक्त केवल लोकमान्य तिलक को ही दिया जा सकता है। और यह श्रीमती बीसेन्ट के ही प्रयत्न और प्रभाव का परिणाम था कि सन् १९१६ मे काग्रेस के नरम और उग्र पक्षो का लखनऊ मे सम्मिलन हुआ और श्री तिलक और उनके समर्थको का काग्रेस मे पुन प्रवेश हुआ।

३

सन् १९०८ और १९१६ के बीच काग्रेस की कार्य-पद्धति वही रही जो सन् १९०५ से पहले थी—किसी प्रमुख नगर मे प्रतिवर्ष बडे दिनों की छुट्टियो मे काग्रेस-अधिवेशन होता था और उसमे सभी महत्त्वपूर्ण राजनैतिक एव आर्थिक प्रश्नों पर सामान्य प्रस्तावो का पारण किया जाता था। सन् १९१४ मे भारतीय परिवादो, विशेषकर दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयो की स्थिति के सबध मे ब्रिटिश जनमत जागृत करने के लिए एक शिष्ट मडल, इगलैंड भेजा गया। इस मडल के सदस्य थे—मि० भूपेन्द्रनाथ वसु, एम० ए० जिन्ना, एन० एम० समर्थ, एस० सिनहा, मजरूल हक, माननीय बी० एन० शर्मा और लाला लाजपत राय। गर्हित 'शर्तबद' कुली व्यवस्था को समाप्त करने की बात को छोडकर, काग्रेस की अन्य माँगो पर कोई ध्यान नही दिया गया और उसके अन्य परिवाद यथावत् बने रहे। इन आठ वर्षो में (जब काग्रेस पूर्णरूप से नरम दल वालो के आधीन थी) उसकी सबसे बडी उपलब्धि थी राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति और राजनैतिक सुधारो की सयुक्त योजना जो देश की दो बडी राजनैतिक सस्थाओ को मान्य थी। विषय के निष्पक्ष विवेचन के हित मे यह कटु सत्य कहना अनिवार्य है कि सन् १९१६ की सामुदायिक एकता प्राप्त करने के लिए, राष्ट्रीय एव लोकतत्रीय जीवन के एक मौलिक सिद्धान्त का हनन किया गया था। काग्रेस ने, मुसलमानो के लिए पृथक् निर्वाचन क्षेत्र बनाने के प्रस्ताव का बराबर विरोध किया था। यह सच है कि काग्रेस, मुसलमानो को और अन्य अल्पसख्यको को उचित और पर्याप्त प्रतिनिधित्व देने की आवश्यकता अनुभव करती थी किन्तु उसने पृथक् निर्वाचन क्षेत्रो को देश के राष्ट्रीय जीवन के लिए घातक बताया था; और उसने उनकी व्यवस्था की अराष्ट्रीय और अलोकतत्रीय कह कर निन्दा की थी। किन्तु सन् १९१६ मे काग्रेस ने राजनैतिक चर्य्या में ऐक्य प्राप्त करने के लिए[1] साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था को, 'गुरुता' के सिद्धान्त

१. बहुत से काग्रेसी, साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रो के दुष्परिणामो के प्रति पूरी तरह सजग थे; किन्तु उनकी दृष्टि मे स्वराज्य के लिए यह मूल्य देना अनि-

को और विधान-कार्य में साम्प्रदायिक निषेधाधिकार को स्वीकार किया। इन तीनो रियायतो के मौलिक सिद्धान्त गलत थे और वे बहुत-से काग्रेसियो की जीवन-भर की निष्ठा के विरुद्ध थे। ये रियायतें, 'काग्रेस लीग योजना' मे निश्चित रूप से सबसे ज्यादा आपत्तिजनक थी। किन्तु यह भाग्य का व्यग्य है कि सरकार ने एक ओर तो योजना के वैधानिक भाग को अस्वीकार कर दिया और दूसरी ओर उसी योजना के साम्प्रदायिक समझौते को १९१९ के सुधारो का अनिवार्य अग बना दिया।

सन् १९१६ के काग्रेसियो के पक्ष मे यह कहना आवश्यक है कि उनकी दृष्टि मे ये रियायते अस्थायी थी। उन लोगो के मस्तिष्क मे किसी प्रकार यह विश्वास जमा दिया गया था कि थोडे ही समय मे पृथक् निर्वाचन क्षेत्रो की व्यवस्था का अन्त हो जायगा और उनके स्थान पर वास्तविक राष्ट्रीय एव लोकतत्रीय प्रतिनिधित्व व्यवस्था का प्रादुर्भाव होगा।[1] अब यह बताने की आवश्यकता नही है कि उक्त प्रत्याशा अत्यन्त अस्वाभाविक थी और उसका निराशा मे परिणत होना अवश्यं-भावी था।

४.

विचाराधीन युग मे असन्तोष, क्रोध और अवमान की भावनाओं को सबसे ज्यादा उत्तेजित करने वाला विषय था—दक्षिण अफ्रीका मे भारतीयो के साथ किया जाने वाला दुर्व्यवहार। दक्षिण अफ्रीका की उस अवस्था की चर्चा की जा चुकी है[2] जिसने महात्मा गाधी को (काले कानून के नाम से प्रसिद्ध) एशियाटिक रजिस्ट्रेशन ऐक्ट के विरुद्ध सत्याग्रह करने को विवश किया था। यह ऐक्ट मार्च १९०७ मे ट्रासवाल पार्लियामेण्ट ने बनाया था। जब सत्याग्रह के फलस्वरूप महात्मा गाधी-सहित लगभग १५० आदमी जेल पहुँच गए तो सरकार ने सधि-चर्चा की। महात्मा गाधी और जनरल स्मट्स मे समझौता हुआ और इसके अनुसार भारतीयों को स्वेच्छापूर्वक अपना निबधन कराना था और सरकार को 'काला क़ानून' रद्द करना था।[3] किन्तु जब महात्मा गाधी ने अपने साथियो के विरोध के होते हुए और साथ ही अपने प्राणो को जोखिम मे डालकर,[4] अपनी ओर से संबधित समझौते के

वार्य था। उन्हे यह आशा थी कि स्वराज्य के बाद साम्प्रदायिकता का कालान्तर मे अपने-आप अन्त हो जायगा।

१. सन् १९१६ के काग्रेस-लीग समझौते के सबध में इस पुस्तक के पहले अगरेजी सस्करण की आलोचना को यथावत् रखा गया है।

२. इसी पुस्तक का बारहवाँ अध्याय देखिये।

३. जनरल स्मट्स ने महात्मा गाधी से कहा था "अधिकाश लोगो के स्वेच्छापूर्वक निबधन कराने पर मै एशियाटिक ऐक्ट को तुरंत रद्द कर दूंगा।" Satyagraha in South Africa, page 242.

४. Gandhi : Satyagraha in South Africa, page 306.

भाग को पूरा कर दिया, तो जनरल स्मट्स ने 'काले कानून' को रद्द करने से इकार कर दिया। इसी बीच ट्रासवाल पार्लियामेण्ट ने एक ऐक्ट और बना दिया था जिसके अनुसार प्रत्येक नए भारतीय को वहाँ बसने से रोक दिया गया था। ऐसी परिस्थितियों में, विवश होकर फिर सत्याग्रह आरभ करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही था। इस बार यह सत्याग्रह दोनो ऐक्टों के विरुद्ध होना था। सरकार को अन्तिमेत्थम दिया गया "कि यदि समझौते के अनुसार 'काला कानून' रद्द नही किया जाता और यदि इस विषय मे सरकार का निर्णय एक नियत दिनाक तक प्राप्त नही होना तो भारतीयो द्वारा प्राप्त किए हुए निबधन-पत्रो को जला दिया जायगा और वे लोग उसका फल भोगने को तैयार रहेगे।"[1] १६ अगस्त १९०८ को एकत्र किए हुए निबधन पत्रो को (जिनकी सख्या २००० से अधिक थी) जला दिया गया और सत्याग्रह फिर आरभ कर दिया गया। बहुत-से लोग जेल गये—बहुतों को भारत के लिए निर्वासित कर दिया गया। जेल मे हर प्रकार की कठोरता बरती गई—एक आदमी ठड लगने के कारण न्यूमोनिया से मर गया। एक जेल में सत्याग्रहियों को विवश होकर भूख-हडताल करनी पडी। मिस्टर गाधी और सेठ हाजी हबीब का जो शिष्ट मडल इगलैड गया था, वह भी खाली-हाथ लौट आया। जेल जानेवाले सत्याग्रहियो के कुटुम्बों के लिए मिस्टर गाधी ने मि कैलेनबारव की जमीन पर टालसटाय फार्म को आरभ किया। सघर्ष चलता रहा और जब तक एक-दो सत्याग्रही जेल जाते रहे।

दक्षिण अफ्रीका मे दुबारा सत्याग्रह आरभ होने पर भारत के लोगो में हलचल हुई। देश के विभिन्न भागों में सभाएँ की गईं। सघर्ष जारी रखने के लिए चन्दा इकट्ठा किया गया और दक्षिण अफ्रीका भेजा गया। फर्वरी १९१० में मि गोखले ने साम्राज्यीय विधान परिषद् मे एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया और उसके द्वारा नैटाल उपनिवेश के लिए 'शर्तबन्द' मजदूरों की भर्ती रोकने के लिए स-परिषद् गवर्नर-जनरल को अधिकार प्रदान करने की सिफारिश की। उस प्रस्ताव का उद्देश्य दक्षिण अफ्रीका के उपनिवेश मे भारतीयों की स्थिति सुधारने के लिए वहाँ की सरकार पर दबाव डालना था। सरकार ने प्रस्ताव स्वीकार किया और नैटाल के लिए 'शर्तबंद' मजदूरो की भर्ती पर रोक लगा दी, पर वाछित फल प्राप्त नही हुआ। मि० गोखले ने दक्षिण अफ्रीका जाने के लिए और वहाँ की वस्तुस्थिति का अध्ययन करने के लिए भारत-मत्री की सहायता मागी। अक्टूबर और नवम्बर १९१२ में मि० गाधी के साथ उन्होंने दक्षिण अफ्रीका के विभिन्न भागों का दौरा किया। उन्होंने वहाँ के मंत्रिमंडल से भी काफी लम्बी बातचीत की। जनरल बोथा से यह आश्वासन मिल जाने पर कि 'काला कानून' रद्द कर दिया जायगा और ३ पौड

१. Gandhi : Satyagraha in South Africa, page 306.

का टैक्स समाप्त कर दिया जायगा, मि० गोखले नवम्बर १९१२ में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौट आए।[1]

जनरल स्मट्स ने फिर वचन भग किए और ३ पौड के टैक्स को रद्द करने के लिए विधान प्रस्तुत करने से इकार कर दिया और यह कारण बताया कि नैटाल के सदस्य उक्त प्रस्ताव के विरुद्ध थे। विवश होकर सत्याग्रह के कार्यक्रम में इस टैक्स को रद्द करने की माग को भी शामिल किया गया।

इस समय तक सत्याग्रहियो का छोटा-सा दल लगभग निपट चुका था। किंतु शीघ्र ही एक नया परिवाद उठ खडा हुआ और उसके कारण महात्मा गाधी को सत्याग्रह को फिर एक सक्रिय रूप मे चलाने का अवसर मिला। और इस बार उन्होने स्त्रियो से भी सहयोग देने के लिए कहा। १४ मार्च १९१३ को दक्षिण अफ्रीका के सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश मि सर्ले ने एक निर्णय द्वारा ऐसे विवाहों को जिन का निबन्धन नही हुआ हो और जिन को ईसाई ढग पर न किया गया हो, अमान्य घोषित कर दिया। महात्मा गाधी ने दक्षिण अफ्रीका की यूनियन सरकार से प्रार्थना की कि इस सम्बन्ध मे भारतीयो के लिए एक विशेष विधान बना दिया जाए, लेकिन सरकार ने उस प्रार्थना को अस्वीकार कर दिया। तब महात्मा गाधी ने भारतीय पुरुषो और स्त्रियो से इस विषय पर सत्याग्रह करने के लिए कहा। स्त्रियो के सब से पहले जत्थे मे फोनिक्स आश्रम मे रहनेवाली १६ स्त्रियाँ थी जिन मे श्रीमती कस्तूरबा गाधी भी थी। इन सब को तीन महीने का कठोर कारावास-दड दिया गया। दूसरे जत्थे मे ११ स्त्रियाँ थी जो सन् १९०८-९ के सघर्ष के दिनों मे टाल्स्टॉय फार्म मे रही थी। इन स्त्रियों ने न्यूकैसिल की खानों मे काम करने वालो को भडकाने के लिए नैटाल की सीमा मे प्रवेश किया। श्रमिकों ने (जिन की सख्या लगभग ६००० थी) कर्तव्य की पुकार पर ध्यान दिया और हडताल कर दी। इन ११ स्त्रियों के गिरफ्तार हो जाने पर हडतालियों के नेतृत्व के लिए महात्मा गाधी स्वय न्यूकैसिल पहुँच गए।

खानो के मालिको ने हडतालियो के साथ कठोर व्यवहार किया। हडतालियों को उनके मकानो मे से निकाल दिया गया और उन लोगो को अपनी स्त्रियों और बच्चो के साथ खुले मैदान मे रहना पडा। टाल्स्टॉय फार्म की स्त्रियों के कारावास के कारण वे लोग और ज्यादा चिढ गए थे और खानो मे काम पर जाने के लिए तैयार नही थे। भारतीय परिवादो को दूर कराने के उद्देश्य से मि. गाधी ने उनके साथ ट्रासवाल की सीमा पर जाकर सत्याग्रह करने का निश्चय किया।

न्यूकैसिल से ट्रासवाल के लिए इस 'शान्ति पूर्ण' सेना की ऐतिहासिक यात्रा २८ अक्तूबर को आरम्भ हुई। इस सेना का उद्देश्य टाल्स्टॉय फार्म पर पहुँचना था

१. Gandhi . Satyagraha in South Africa, page 408.

लेकिन सीमा पर हडतालियो के गिरफ्तार कर लिए जाने का डर था। इस सेना मे २०३७ आदमी, १२७ स्त्रियाँ और ५७ बच्चे थे। मि गाधी को मार्ग मे तीन बार गिरफ्तार किया गया—दो बार जमानत पर छोड दिया गया, लेकिन तीसरी बार उन्हे डरबन ले जाया गया और उनपर अभियोग चलाया गया, जिस के फलस्वरूप उन्हे ९ महीने का कठोर कारावास दड दिया गया। १० नवम्बर को हडतालियों की भी गिरफ्तारी की गई और उन्हे तीन स्पेशल रेलगाडियो मे भरकर न्यूकैसिल भेज दिया गया। वहाँ उनपर अभियोग चलाया गया और उनको जेल भेज दिया गया। किंतु साधारण जेलो मे रखने के स्थान पर उन्हे खानो के बाडे मे काटेदार तारो के घेरे मे रखा गया और खानो के यूरोपियन नौकरो को उनका रक्षक बनाया गया। मि गाधी ने लिखा है —"ये मजदूर बहादुर आदमी थे और उन्होने खानो मे काम करने से साफ इन्कार कर दिया, जिस के फलस्वरूप उन्हे बुरी तरह पीटा गया। उद्धत रक्षको ने मजदूरो मे ठोकरे मारी, उन्हे गालियाँ दी और अन्य प्रकार के दुर्व्यवहार किए और उन गरीब मजदूरो ने इन कष्टो को शान्ति-पूर्वक सहन किया।[1] दक्षिण अफ्रीका के अन्य भागो मे काम करने वाले भारतीय मजदूरो ने, न्यूकैसिल के मजदूरो के प्रति सहानुभूति के कारण, अपने यहाँ भी हडताल की। कुछ स्थानो पर गोलियाँ चलाई गई और कुछ भारतीय मजदूर मारे भी गए। बहुत-सी स्त्रियो ने सत्याग्रह किया, उन्हे भी गिरफ्तार किया गया और दड दिया गया। उनके साथ बडी निष्ठुरता का व्यवहार किया गया और वलियझा मुदालियर नामक एक सोलह वर्ष की लडकी को जेल मे बुखार हुआ और बाद मे जेल से छोडे जाने पर वह शीघ्र ही मर गई। दक्षिण अफ्रीका का सारा भारतीय समुदाय, उद्धत यूरोपियनों के जातीयतापूर्ण सगठित अत्याचार का सामना करने के लिए, एक सयुक्त निकाय के रूप मे उठ खडा हुआ।

दक्षिण अफ्रीका की क्रूर एव अन्यायपूर्ण सरकार के विरुद्ध वहाँ के भारतीय समुदाय की वीरता की सारे भारत मे प्रशसा की गई। सारे देश मे विराट् सभाएँ की गई। और उनमे भारतीयो के प्रति दक्षिण अफ्रीका की सरकार के दुर्व्यवहार का विरोध किया गया। कष्ट मे पडे हुए अपने भाइयो के साथ भारतवासियो ने हार्दिक सहानुभूति प्रकट की। सत्याग्रहियो की सहायता के लिए चन्दे इकट्ठे किए और उसमे देशी नरेशो और गरीबो, सभी ने सहयोग दिया। सत्याग्रहियो के प्रति भारतवासियो की सहानुभूति मे लार्ड हार्डिज ने अपना और अपनी सरकार का योग दिया। भारत सरकार के लिए यह एक असाधारण बात थी। २४ नवम्बर १९१३ को लॉर्ड हार्डिज ने महाजन सभा, मद्रास मे एक व्याख्यान मे कहा —हाल ही मे, दक्षिण अफ्रीका

१. Gandhi : Satyagraha in South Africa, page 476.

मे आप के देश भाइयो ने वहाँ के कानूनो को, जिन्हे वह गर्हित और अन्यायपूर्ण समझते है, तोडने के लिए निष्क्रिय प्रतिरोध करने का संगठन किया है। वहाँ के कानूनो के प्रति उन लोगो के जो भाव है उनसे हम लोग भी असहमत नही हो सकते। वे लोग कानूनो को तोडने के परिणामो से भली-भाँति परिचित है और वे वीरतापूर्वक सारे दड सहने के लिए तैयार है। उनके इस संघर्ष में भारत की प्रबल हार्दिक सहानुभूति है। यद्यपि मै स्वयं भारतीय नही हूँ किंतु उनके प्रति आपके साथ ही मेरी सहानुभूति भी है।[1] लॉर्ड हार्डिज ने व्याख्यान के अन्त मे इस बात की माँग की कि इस सारे विषय की निष्पक्ष व्यक्तियो द्वारा जाँच की जाए और जाँच करनेवाली कमेटियो मे भारतीय हितो को भी पूर्ण प्रतिनिधित्व दिया जाए। इसी बीच मि गोखले ने, जिन्हे समुद्री तार द्वारा दक्षिण अफ्रीका के सघर्ष के दैनिक समाचार मिलते रहते थे, मि. एंड्रिडज और मि. पिअर्सन से नैटाल और ट्रासवाल मे भारतीयो की सहायता करने के लिए दक्षिण अफ्रीका जाने को कहा। भारत सरकार ने भारतीय परिवादो को दूर कराने के लिए सर बेजमिन राबर्टसन को भेजा। दक्षिण अफ्रीका की सरकार ने एक जाँच कमेटी नियुक्त की, लेकिन उसकी रचना असतोषप्रद होने के कारण, सत्याग्रहियो ने उसके सामने गवाही देना अस्वीकार कर दिया। सरकार और मि गाधी मे एक सामयिक समझौता हुआ, जो सन् १९१३ के गाधी-स्मट्स समझौते के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अधिकाश भाग को सन् १९१४ के इडियन्स रिलीफ एक्ट मे रूप दिया गया। एक्ट ने तीन पौड के गर्हित टैक्स को रद्द किया, भारतीय विवाहो को मान्यता प्रदान की (किंतु एक पत्नी और उसके ही बच्चो को वैध माना जा सकता था) और विभाजन निश्चित होने पर अधिवासी प्रमाणक (Domicile Certificate) के आधार पर यूनियन मे प्रवेश करने के अधिकार को स्वीकार किया।[2] मि गाधी और जनरल स्मट्स मे पत्र व्यवहार द्वारा अन्य बाते तै की गई। जनरल स्मट्स को मि. गाधी ने अपने अन्तिम पत्र मे लिखा, "इडियन रिलीफ विधेयक के कारण से और इस पत्र-व्यवहार से उस सत्याग्रह सघर्ष का अन्त हो गया है जिस का आरम्भ सितम्बर १९०६ मे हुआ था और जिस के कारण भारतीय समुदाय को आर्थिक क्षति के अतिरिक्त काफी शारीरिक कष्ट उठाने पडे है और सरकार को काफी चिन्ता और परेशानी का सामना करना पडा है।"[3]

जिस समय दक्षिण अफ्रीका मे सघर्ष हो रहा था, उसी समय एक शिष्ट-

१ Modern Review, December 1913, page 638.

२. Gandhi: Satyagraha in South Africa, page 505.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ५०६.

मंडल भारत का दौरा कर रहा था। यह मडल कनाडा से आया था और कनाडा के भारतवासियो की स्थिति और उनके कष्टो के सम्बन्ध में जनमत जागृत कर रहा था। इस मडल के सदस्य थे मि. नन्दसिह, नारायण सिह और बलवन्त सिह। कनाडा में भारतवासियों की दशा के सम्बन्ध में चर्चा की जा चुकी है और वहाँ के विनियमो से बचने के लिए सरदार गुरदीत सिह के प्रयत्न और कोमागाटा मारु की यात्रा का भी वर्णन किया जा चुका है।[1] अस्तु, सन् १९१७ के साम्राज्यीय युद्ध सम्मेलन मे भारतीय शिष्ट मडल ने स्वशासक उपनिवेशों में भारतीयों की स्थिति के प्रश्न को विचारार्थ प्रस्तुत किया। सर सत्येद्र ने इस विषय पर एक अत्यन्त योग्यतापूर्ण ढग से लिखा हुआ ज्ञापन सम्मेलन के सामने रखा। विस्तृत एव निस्सकोच रूप से विचार हुआ और उसके फलस्वरूप पारस्परिकता के सिद्धात का प्रतिपादन किया गया। अगले वर्ष सम्मेलन ने एक विस्तृत प्रस्ताव का पारण किया। और इस अधिकार को मान्यता दी कि प्रत्येक देश को अपनी जन-रचना विनियमित करने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए किंतु भ्रमण, वाणिज्य और अध्ययन के सिलसिले मे ब्रिटिश नागरिको पर एक-दूसरे देश में आने-जाने के सम्बन्ध मे कोई रोक नही होनी चाहिए। सन् १९१८ के प्रस्ताव ने अन्त मे यह निश्चय किया :—"अन्य ब्रिटिश देशो मे पहले से बसे हुए भारतीयो को (भारत से) अपनी स्त्रियो और बच्चो को लाने का अधिकार होना चाहिए किंतु (अ) उक्त प्रत्येक भारतवासी की एक पत्नी और उसके नाबालिग बच्चो को सम्बन्धित उपनिवेश मे प्रवेश करने का अधिकार होगा और (ब) प्रत्येक प्रवेश करने वाले को अपने विभाजन के लिए भारत-सरकार का प्रमाण प्रस्तुत करना होगा।"[2]

इस प्रकार १९१८ के प्रस्ताव ने स्वशासक उपनिवेशो में भारतीयों की समस्या का सामयिक हल किया। यह हल वस्तुत: एकागी और भारत के लिए अहितकर था। उपनिवेशों में ऐसे बहुत से प्रदेश थे जहाँ कोई आबादी ही नही थी अथवा बहुत छितरी हुई आबादी थी। भारतवासी पिछले कितने ही वर्षों से नये स्थानो मे बसने अथवा नौकरी करने के अधिकार के लिए प्रयत्न और बलिदान कर रहे थे। उक्त समझौते के अनुसार यह अधिकार उनसे हमेशा के लिए छीन लिया गया। बदले में भारत सरकार को अन्य उपनिवेशों के लोगों को भारत बसने से रोकने का अधिकार दिया गया—यह एक ऐसा अधिकार

१. इसी पुस्तक के १८ वे अध्याय का नवाँ विभाग देखिए।

२. Resolion of the Imperial War Conference of 1918, quoted by "Emigrant" in "Indian Emigration" age 35.

था जो बिल्कुल निरर्थक था। तथापि, सन् १९१८ के प्रस्ताव के पारण से, स्वशासक उपनिवेशो मे पहले से बसे हुए भारतीयो की स्थिति मे, निश्चित सुधार हुआ।

५

पहले महायुद्ध के दिनो मे, ब्रिटिश उपनिवेशो के लिए भारतवासियो के देशान्तरगमन का प्रश्न बडा महत्वपूर्ण हो गया ; और अन्त मे भारत सरकार को विवश होकर, गर्हित 'शर्तबद' श्रम व्यवस्था को समाप्त करना पडा। सन् १८३३मे दास-प्रथा तोडने के बाद यह व्यवस्था अस्तित्व मे आई थी। उपनिवेशो का रोपक समुदाय भारत मे अपने अभिकर्त्ताओं द्वारा, साधारणतया पाँच वर्ष के लिए नियत वेतन के आधार पर मजदूरो की भर्ती करता था। इस शर्तबद प्रथा मे पाँच वर्ष की अवधि समाप्त हो जाने के बाद मजदूर को भारत लौटाने की अथवा उपनिवेश मे स्वतत्र नागरिक की तरह बसने की अथवा फिर भर्ती कर लेने की कोई व्यवस्था नही थी।

आरभ से ही यह स्पष्ट था कि देशान्तरगमन की उक्त शर्तबद प्रथा अवाछनीय थी। मजदूरो की भर्ती करने मे जबरदस्ती और जालसाजी से काम लिया जाता था। बहुत-से अनभिज्ञ लोगो को धोखा दिया गया, बहुत-सी विवाहित स्त्रियो को लुभाया गया; वृद्ध माताओ और पिताओ के अकेले लडको को लालच दिया गया, स्टेशनो और तीर्थ स्थानो पर भीड मे बिछुडे हुए सबधियो का अपहरण किया गया ; और एक गाँव से दूसरे गाँव को जानेवाले लोगो को बहकाया गया। ये लोग भर्ती गोदामो मे ले जाए जाते थे और वहाँ पर इन लोगो से शर्तके पत्रो पर हर प्रकार के उपायो को काम मे लाकर हस्ताक्षर करा लिए जाते थे।[1] इन लोगो को न तो यात्रा की शर्तें ही ठीक-ठीक बताई जाती थी और न यह ठीक-ठीक बताया जाता था कि वे लोग किन शर्तो के अनुसार उपनिवेशों मे रहेगे अथवा काम करेगे। उपनिवेशों मे इस व्यवस्था के अन्तर्गत मजदूरो पर जुर्माने हो थे, उनको पीटा जाता था, कैद किया जाता था। भर्ती किए जानेवाले मजदूरसे इन बातों की कोई चर्चा नही की जाती थी। सारी व्यवस्था धोखे और जालसाजी पर टिकी हुई थी।[2] यह सच है कि भारत-सरकार ने स्थिति सभालने के लिए प्रयत्न किया था और भर्ती के सबध में कुछ प्रतिबध[3] लगाए थे किन्तु जैसा कि १० मार्च

१ इस सबध में विस्तृत वर्णन के लिए देखिए—Report of Messers Andrews and Pearson on Indentured Labour in Fizi.

२. श्री गोखले के अनुसार यह व्यवस्था वीभत्स थी और धूर्तता पर टिकी हुई थी—देखिए—Speeches of Gokhale, page 520

३. इस सबध मे जो कानून बनाए गए, उनके सक्षिप्त इतिहास के लिए

१९१६ को साम्राज्यीय विधान परिषद् मे प० मालवीय ने कहा, भर्ती करनेवाले धूर्त अभिकर्त्ता बडी रकमों के लालच से[1] उनको निष्फल कर देते थे। समुद्री यात्रा का प्रबन्ध अत्यन्त असन्तोषप्रद होता था। बहुत-से लोगों को थोडी-सी जगह मे भर दिया जाता था, खाने और सोने का उचित प्रबन्ध नही होता था। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता था कि बहुत-से लोग बीमार पड जाते थे और उनमे से बहुत-से लोग मर भी जाते थे। उपनिवेशो मे और भी ज्यादा खराब हालत होती थी। कितने ही मजदूर पागल हो गये और कुछ ने आत्महत्या भी की। सन् १९०८-१२ के वर्षों मे शर्तबन्द भारतीय मजदूरों की आत्महत्या का अनुपात, प्रति दस लाख ९२६ था[2] जो साधारण परिस्थितियो मे आत्महत्या के अनुपात की तुलना मे भयकर प्रतीत होगा। बहुत-से मजदूर भ्रष्ट और पतित जीवन व्यतीत करते थे।[3]

जब भारतवासियो को उपनिवेशों मे रहनेवाले अपने देशभाइयों की दशा का पता लगा तो उन्होंने उस गर्हित 'शर्तबद' मजदूर व्यवस्था का अन्त कराने के लिए हलचल की। काग्रेस के वार्षिक अधिवेशनो मे व्याख्यान दिए गए और प्रस्ताव स्वीकार किए गए। समाचार-पत्रो ने आन्दोलन किया और साम्राज्यीय विधायिका सभा के निर्वाचित सदस्यों ने इस परिवाद को दूर करने के लिए सरकार पर जोर दिया। सन् १९१०मे श्री गोखले ने साम्राज्यीय विधान परिषद् मे इस विषय पर जो प्रस्ताव प्रस्तुत किया था, उसकी चर्चा की जा चुकी है। ४ मार्च १९१२ को मि गोखले ने विधान परिषद् मे एक और विस्तृत प्रस्ताव प्रस्तुत किया और उसके द्वारा भारत मे 'शर्तबन्द' मजदूरो की भर्ती को पूर्ण रूप से वर्जित कर देने के लिए

देखिये—"Indian Emigrant" by an Emigrant, pages 15 to 25.

१. यू पी के पश्चिमी जिलो मे एक पुरुष-मजदूर भर्ती करने की फीस ४५ रुपए थी और एक स्त्री-मजदूर भर्ती करने की फीस ५५ रुपए थी। Proceedings of the Imperial Legislative Council, vol. LIV page 400.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४०४

३ श्री एण्ड्रिऊज़ और श्री पिअर्सन ने फिजी की हालतो का इस प्रकार वर्णन किया है—"हम फिजी की कुली बस्तियो के अपने पहले दृश्य को भूल नही सकते। स्त्रियों और पुरुषो—सभी के चेहरों से उनके भ्रष्ट जीवन का निश्चित परिचय मिलता था।... ऐसा प्रतीत होता था कि पतित जीवन की महामारी का प्रकोप हुआ है। वैवाहिक ग्रन्थि की पवित्रता का कोई स्थान नही था—सर्वत्र पाशविकता का राज्य था। स्त्रियाँ अपने पतियो को बदलती रहती थी और लडकियो का क्रय-विक्रय होता था।"—उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४०४.

सिफ़ारिश की। परिषद् के प्रत्येक उपस्थित भारतीय सदस्य ने प्रस्ताव का समर्थन किया किन्तु सरकारी बहुमत के कारण उसका पारण नही हो सका। भारत सरकार ने, सैण्डर्सन कमेटी (१९०९) की सिफारिशों के अनुसार अपनी नीति निश्चित की थी। यह कमेटी ब्रिटिश सरकार द्वारा नियुक्त की गई थी और उसको ब्रिटिश उपनिवेशों की हालतो की जाँच करने का काम सौपा गया था। कमेटी का यह मत था कि 'शर्तबद' व्यवस्था देशान्तरगामियो के लिए लाभप्रद थी और जो कुछ दोष वर्तमान थे, उन्हे दूर किया जा सकता था। तथापि भारतीय मत को सन्तुष्ट करने के लिए सरकार ने मि मैकनील और मि चिमनलाल को चार उपनिवेशों —जमैका, ट्रिनिडाड, ब्रिटिश गिनी और फिजी——की हालतों को देखने और उनपर रिपोर्ट देने के लिए भेजा। उस समय इन्ही चार उपनिवेशो के लिए शर्तबन्द देशान्तरगमन की अनुमति थी। रिपोर्ट में विभिन्न उपनिवेशो की कुली-बस्तियों की दशा गर्हित बताई गई किन्तु साथ ही यह कहा गया कि "अधिकाश देशान्तरगामियों ने घातक दरिद्रता और निराशा की स्थिति का सरल सुरक्षित जीवन और समृद्धि की आशा से विनियम किया था।"[1] मि मैकनील और चिमनलाल ने 'शर्तबन्द' प्रथा को जारी रखने की सिफारिश की। भारतवासी इस सिफारिश से सहमत नही हुए। उन्होंने मि. एण्ड्रिऊज़ और मि पिअर्सन की रिपोर्ट को, जो लगभग उसी समय प्रकाशित हुई थी, विशेष महत्त्व दिया। इस रिपोर्ट मे सबधित तथ्य और आकडे दिए गए थे। भारत-सरकार ने यह अनुभव किया कि भारतीय जनमत इस कुटिल व्यवस्था को भविष्य मे सहन नही करेगा और उस व्यवस्था के कल्पित आर्थिक लाभो का उन पर कोई प्रभाव नही होगा। अत सन् १९१५ मे भारत सरकार ने उस व्यवस्था को बिलकुल तोड देने के लिए भारत-मत्री से सिफारिश की। २० मार्च १९१६ को प०मदन मोहन मालवीय ने उस व्यवस्था का अन्त करने के लिए साम्राज्यीय विधान परिषद् मे प्रस्ताव प्रस्तुत किया। पडित मालवीय ने उस समस्या का सारा इतिहास बताया; उपनिवेशो मे मजदूरो की आर्थिक एव नैतिक दशा के सबध मे तथ्य प्रकट किए और आकडे दिए; इस कथन को सिद्ध करने की चुनौती दी कि उन मज़दूरों की औसत बचत भारतीय मज़दूरों से अधिक थी,[2] और अत मे सरकार से उस कुटिल, गर्हित, अपमानजनक और भ्रष्टकारी व्यवस्था का अन्त करने की अपील की।[3]

१. "Indian Emigration" page 28.

२. खाद्य पदार्थों के मूल्य और रहन-सहन के व्यय के विश्लेषण से यह स्पष्ट है कि फिजी में रहने वाले कुलियों की विशुद्ध आय पूर्वी बगाल के मजदूरो की आय से अधिक नही है।

३. Proceedings of the Imperial Legislative Council, vol. LIV, page 405.

लॉर्ड हार्डिज ने प्रस्ताव को स्वीकार किया और इस बात की घोषणा की कि भारतमंत्री ने उस व्यवस्था का अन्त करने की नीति को अगीकार कर लिया है किन्तु उपनिवेशों को नई परिस्थितियों से मेल बिठाने के लिए कुछ समय दिया जाना चाहिए; इस अवधि मे भारत मत्री, औपनिवेशिक विभाग और सबधित उपनिवेशों के साथ परामर्श करके, स्वतन्त्र रूप से देशान्तरगमन की योजना भी बना लेगे। बीच के समय मे, सन् १९१६ के भारत रक्षा ऐक्ट के अन्तर्गत 'शर्तबद' मजदूरों की भर्ती बन्दी कर दी गई और इस अस्थायी रोक के उठाए जाने से पहले ही उस व्यवस्था का स्थायी रूप से अन्त कर दिया गया जो लार्ड हार्डिज के शब्दानुसार शिक्षित भारतीयों की दृष्टि मे 'दासता का प्रतीक' थी।[1]

६.

'शर्तबद' देशान्तरगमन की समाप्ति से भारत माता के सुन्दर चेहरे का एक काला दाग दूर हुआ और लगभग उसी समय राष्ट्रीय सगठन काग्रेस मे नरम और उग्र पक्ष के पुनर्मिलन से एक घाव भर गया। तिलक के छोडे जाने के बाद शीघ्र ही महायुद्ध आरभ हो गया था और उन्होने उस अवसर पर राजभक्ति की घोषणा करके उस पुनर्मिलन के लिए मार्ग तैयार कर दिया था। लोकमान्य तिलक ने इस अभियोग को अस्वीकार किया कि किसी भी समय उनका उद्देश्य भारत से ब्रिटिश सत्ता को उखाडना था और अन्त मे उन्होने कहा कि "ऐसे सकट के समय प्रत्येक भारतीय का यह कर्त्तव्य है कि वह सम्राट्-सरकार को यथासामर्थ्य सहयोग और सहायता प्रदान करे।"[2] श्रीमती बीसेन्ट ने इस सुअवसर का लाभ उठाया और श्री गोखले और श्री तिलक मे समझौता करा दिया। काग्रेस-सविधान के अनुच्छेद न० २० मे सशोधन होने के बाद ही उग्र पक्ष के लोग काग्रेस मे प्रतिनिधि के रूप मे भाग ले सकते थे। किन्तु सर फीरोजशाह मेहता काग्रेस मे तिलक और उनके समर्थको के पुनरागमन के विरुद्ध थे क्योकि उन्हे इस बात का डर था कि उग्र पक्ष के लोग नरम पक्ष वालो को पृष्ठभूमि में डालकर, काग्रेस पर अपना आधिपत्य जमा लेगे। अत, उन्होंने काग्रेस के अगले अधिवेशन को बम्बई मे कराने का प्रबन्ध किया जहाँ "वे अपने व्यक्तित्व और असाधारण प्रभाव से" सब कुछ मनवा सकते थे।"[3] उन्होने अधिवेशन का अध्यक्ष पद सर सत्येन्द्र सिनहा को प्रदान किया। सर सिनहा का राजनैतिक काम न के बराबर था, किन्तु सर फिरोजशाह ने उनके निज-निर्णय के विरुद्ध,

१. Proceedings of the Imperial Legislative Council vol. LIV, page 412.

२. Athalye . Lokmanya Tilak, page 216.

३. Mody: Sir Pherozshah Mehta, vol II. page 658.

उनको पद-ग्रहण करने के लिए बाध्य किया और इस प्रकार अधिकाश सदस्यों के मनोनीत लाला लाजपतराय को अध्यक्ष पद के लिए छाँटे जाने से रोक दिया। ऐसी दशा मे यह विचार किया जाता था कि बम्बई अधिवेशन, अनुच्छेद न० २० मे सशोधन करना अस्वीकार कर देगा और उग्र पक्षवालों को अपना पृथक् सगठन बनाना होगा। किन्तु काग्रेस-अधिवेशन से कुछ ही सप्ताह पहले सर फीरोजशाह का देहान्त हो गया। श्री गोखले की कई महीने पहले मृत्यु हो चुकी थी। अस्तु, श्रीमती बीसेन्ट और उनके समर्थकों ने, काग्रेस मे उग्र पक्ष के पुनरागमन के लिए वाछित सशोधन, सरलता से स्वीकार करा लिया। दिसम्बर १९१६ के लखनऊ अधिवेशन मे उग्र पक्ष के लोगो ने पूरी तरह भाग लिया और उसमे तिलक को अत्यन्त उत्साहपूर्ण स्वागत और अपूर्व सम्मान प्राप्त हुआ।

७

सन् १९१७ मे राजनैतिक आन्दोलन अपने शिखर पर पहुँच गया। लोकमान्य तिलक और श्रीमती बीसेन्ट ने बडे यत्नपूर्वक पिछले तीन-चार वर्षो मे उसके लिए उपयुक्त वातावरण तैयार कर लिया था।

जैसा कि इस अध्याय के आरम्भ मे कहा जा चुका है, दमन और सुधार की दोहरी नीति ने देश के राजनैतिक जीवन को अत्यन्त शिथिल कर दिया था। धीरे-धीरे स्वाभाविक रूप से स्थिति मे सुधार हुआ लेकिन श्री गाधी के प्रेरक नेतृत्व के अन्तर्गत दक्षिण अफ्रीका की घटनाओ से उसको विशेष प्रोत्साहन मिला। दक्षिण अफ्रीका और अन्य उपनिवेशो मे भारतीयों की अपमानजनक स्थिति से लोगो को साम्राज्य मे अपनी वास्तविक स्थिति का पता लगा और उनको इस बात का दृढ विश्वास हो गया कि जब तक वे स्वय अपने देश के मालिक नहीं होगे तब तक विदेशों मे अच्छा व्यवहार प्राप्त करने की आशा नही की जा सकती—केवल स्व-शासन से ही उनकी प्रतिष्ठा बढ सकती थी।[1] सन १९०६ के कलकत्ता-अधिवेशन मे श्री दादाभाई नौरोजी ने अध्यक्ष पद से इस बात को स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त भी किया था; किन्तु उस समय स्वराज्य का आदर्श उग्र-पक्षी नेताओं के अनुसार भी बहुत दूर माना जाता था। यूरोपीय महायुद्ध छिडने पर सारी स्थिति बदल गई और सुदूर भविष्य का आदर्श निकट भविष्य मे व्यवहार्य दिखाई देने लगा।

---

१ यह बात श्रीमती बीसेण्ट ने इस आग्ल-भारतीय आलोचना के उत्तर मे कही थी कि भारतीय नेतागण युद्ध की परिस्थितियो का स्वराज्य प्राप्त करने के लिए उपयोग करना चाहते हैं। देखिए· Annie Besant: The Future of Indian Politics—pages 52 to 66.

महायुद्ध ने स्वशासन की माँग को जन्म नही दिया वरन उसकी पूर्वस्थित माँग को एक नई महत्ता, अविलम्बता और वास्तविकता प्रदान की। युद्ध ने भारतीयो को दासता के अपमान और उसकी बीभत्सता के प्रति फिर से सचेत किया और उन्हे स्वशासन और स्वतन्त्रता का सच्चा मूल्य बताया। यदि जर्मन सेनाओ ने इगलैड जीत लिया तो क्या दशा होगी? इसके उत्तर मे अगरेज राजनीतिज्ञ जो चित्र खोचते थे, वह इतना भयकर होता था, कि उस विपत्ति को रोकने के लिए कोई भी बलिदान बहुत बडा नही मालूम पडता था। इस सबध मे दूसरी बात यह थी कि अगरेज राजनीतिज्ञो ने अपने पक्ष के लिए सहयोग तथा समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से उस युद्ध को "ससार मे लोकतत्र की सुरक्षा करने के निमित्त" बताया। भविष्य मे प्रत्येक बडे अथवा छोटे राष्ट्र को आत्म-निर्णय का अधिकार मिलना था, और किसी भी राष्ट्र को, चाहे वह कितना ही छोटा अथवा दुर्बल क्यो न हो, ऐसी शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत, जिसका वह राष्ट्र अनुमोदन न करता हो, रहने के लिए विवश नही करना था। भारतीय नेताओ ने इन घोषणाओं को यथावत् स्वीकार किया और भारतीय स्वशासन के लिए उनका उपयोग किया। श्रीमती एनी बीसेण्ट ने मद्रास प्रेसीडेन्सी मे और श्री तिलक ने बम्बई प्रेसीडेन्सी मे होम-रूल (स्वराज्य) के लिए जोरो से प्रचार किया। श्रीमती बीसेण्ट और लोकमान्य तिलक, दोनो ही चतुर राजनीतिज्ञ थे—दोनों ही महायुद्ध मे हर प्रकार की सहायता करने के लिए उत्सुक थे, किन्तु दोनों ही का यह मत था कि महायुद्ध ने भारतीय स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिये एक दैवी अवसर प्रदान किया है और उसका लाभ उठाने से चूकना नही चाहिए। जब उनको अथवा उनके साथियो को युद्ध-सम्मेलनो मे बुलाया जाता था तो वे स्वशासन और समान प्रतिष्ठा का प्रश्न सामने ले आते थे और उसको युद्ध की सहायता के प्रश्न के साथ जोड देते थे।[1] लेकिन अन्य भारतीय नेताओ की निष्ठा दृढतर थी—उन्हे चुपचाप तुरत सेवा करने और धैर्यपूर्वक पुरस्कार की प्रतीक्षा करने की नीति मे विश्वास था। उनमे से कुछ को बाद मे यह अनुभव हुआ कि उनकी निष्ठा गलत थी, किन्तु दुर्भाग्य से उस समय तक बहुत देर हो चुकी थी।

श्रीमती बीसेण्ट सन् १९१४ के आरभ मे काग्रेस में सम्मिलित हुई थी और उन्होंने उसकी प्रतिष्ठा और सगठन की सहायता से औपनिवेशिक स्वराज्य अथवा

१. मि. तिलक और उनके साथियो का यह मत था कि युद्ध में सहयोग देने के लिए भारतीयो को सेना मे बराबरी का स्थान दिया जाना अनिवार्य था। उन्ह इस बात का निश्चय होना चाहिए था कि युद्ध के बाद वे एक स्वतत्र भारत मे लौटेगे।

डोमिनियन स्वराज्य प्राप्त करने की आशा की थी।[1] किन्तु शीघ्र ही वह इस निर्णय पर पहुँची कि नरम दली काग्रेस मे आगे बढने और सर्वसाधारण को शिक्षित तथा सगठित करने के साहस का अभाव है। अत उन्होंने 'न्यू इंडिया' नामक एक दैनिक पत्र को और 'कामनवील' नामक एक साप्ताहिक पत्र को निकाला और एक नई राजनैतिक सस्था की स्थापना की। इस नई सस्था को अविलम्ब स्वराज्य की माँग के लिए समर्थन प्राप्त करने के उद्देश्य से सर्वसाधारण मे सारे वर्ष काम करना था। किन्तु होम रूल लीग स्थापित करने से पहले, उन्होने काग्रेस को वही काम करने के लिये अवसर देना स्वीकार किया और नियत समय बीत जाने के बाद ही सितम्बर १९१६ मे होम रूल लीग का मद्रास मे उद्घाटन किया गया। अप्रैल १९१६ मे लोकमान्य तिलक ने पूना मे होम रूल लीग की स्थापना कर ली थी और वे दैनिक 'केसरी' और साप्ताहिक ' महरट्टा' की सहायता से महाराष्ट्र में प्रचार कर रहे थे। जेल से छूटने के समय से ही श्री तिलक राष्ट्रवादी (उग्र) पार्टी को फिर से सगठित और दृढ करने के लिए काम कर रहे थे और उनके प्रेरक एवं योग्यतापूर्ण नेतृत्व मे पार्टी का बल और प्रभाव तेज़ी से बढ रहा था। पूना और मद्रास दोनों ही स्थानों की होम रूल लीगो ने मिलकर देश मे होम रूल के लिये प्रबल प्रचार किया। दिसम्बर १९१६ में इंडियन नेशनल काग्रेस और अखिल भारतीय मुस्लिम लीग ने सुधारों की एक सयक्त योजना स्वीकार की और उन्होने देश में उसके प्रचार के लिए होम रूल सगठन के उपयोग करने का निश्चय किया। सन् १९१६ के लखनऊ (काग्रेस) अधिवेशन के बाद श्रीमती बीसेण्ट और श्री तिलक ने 'काग्रेस लीग योजना' के समर्थन और देश की राजनैतिक एव राष्ट्रीय जागृति के लिए और भी ज़्यादा ज़ोरों से प्रचार का काम किया।

बम्बई और मद्रास प्रेसिडेन्सियों मे होमरूल-आन्दोलन से उन प्रेसिडेन्सियों की सरकारो को घबराहट हुई और उन्होंने श्रीमती बीसेण्ट और श्री तिलक की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लगाकर उन नए आन्दोलनों का परोक्ष रूप से दमन करने का प्रयत्न किया। मई १९१६में, मि तिलक के विरुद्ध कार्यवाही की गई और होमरूल-सभाओं मे उनके कुछ व्याख्यानों पर आपत्ति की गई ; और उनसे एक वर्ष तक सद्व्यवहार के लिए २०००० रुपए की एक व्यक्तिगत बॉण्ड भरने की और इतनी ही रकम की दो ज़मानतें जमा कराने की आज्ञा दी गई। बाद मे, बम्बई हाईकोर्ट मे अपील के फलस्वरूप मजिस्ट्रेट की आज्ञा रद्द कर दी गई। लगभग इसी

१. श्रीमती बीसेण्ट ने सर फ़ीरोज़शाह और अन्य काग्रेसियो के समक्ष अपना सारा कार्यक्रम रखा था जिसमें धार्मिक, समाजिक एव शिक्षण विषयक कार्यक्रम भी सम्मिलित था, किन्तु उन लोगों ने धार्मिक एवं सामाजिक कार्यक्रम को अपनाने से इकार कर दिया था।

समय ( २६ मई १९१६ को ) 'न्यू इंडिया' से २००० रुपए की ज़मानत माँगी गई, जो २८ अगस्त को ज़ब्त कर ली गई। दुबारा १०००० रुपए की ज़मानत माँगी गई और वह तुरन्त ही दे भी दी गई। श्रीमती बीसेण्ट ने ज़ब्ती की आज्ञा के विरुद्ध मद्रास-हाईकोर्ट मे अपील की और बाद मे प्रिवी कौसिल मे भी अपील की, पर कोई सफलता नही मिली।

श्री तिलक और श्रीमती बीसेण्ट के राजनैतिक कामो पर सरकारी रोक का, बिलकुल उलटा प्रभाव हुआ। सन् १९१७ मे उन दोनो ने राष्ट्रीय प्रचार के काम मे अपने आप को पूरी तरह—तन मन से—लगा दिया और होमरूल का आन्दोलन बहुत ज्यादा ज़ोर पकड गया। सन् १९१७ के आरभ मे लोक सेवा आयोग की रिपोर्ट प्रकाशित हुई, जिसके फलस्वरूप लोगों मे असन्तोष की भावना और भी ज्यादा बढ गई और होमरूल की माँग और ज्यादा ज़ोरदार हो गई। सरकार ने सक्रिय निरुत्साहन और साधारण दमन की नीति अपनाने की आवश्यकता अनुभव की। एक आज्ञा द्वारा स्कूल और कॉलेजों के विद्यार्थियों को होमरूल-सभाओं मे सम्मिलित होने से रोका गया। प्रान्तीय गवर्नरों ने होमरूल के प्रचार को निरुत्साहित करने के लिए व्याख्यान दिए और आन्दोलन के नेताओ को चेतावनी दी। मद्रास-सरकार और भी आगे बढी और उसने श्रीमती बीसेण्ट और उनके दो सहयोगियो को नज़रबन्द करने की आज्ञा दी। राष्ट्रवादी नेताओ के अनुसार सरकार ने अ-ब्राह्मणो को, होम-रूल-विरोधी आन्दोलन आरम्भ करने में सहायता दी और प्रेसीडेन्सी मे साम्प्रदायिकता की ज्वाला को भडकाया। अस्तु, श्रीमती बीसेण्ट, श्री वादिया और श्री एरण्डेल की नज़रबन्दी से सारे देश मे विरोध और रोष का ज्वार उमड़ पडा और देश के विभिन्न स्थानो मे विरोध-सभाये की गईं। राष्ट्रवादी नेतागण जो अबतक होम रूल सगठन से अलग रहे थे, अब उसमे सम्मिलित हो गए और उसके दायित्वपूर्ण पदों पर काम करने लगे। जुलाई मे, अखिल भारतीय काग्रेस कमेटी ने अपनी मीटिग में होमरूल लीगो के काम की सराहना की और श्रीमती बीसेण्ट और उनके सहयोगियों की नज़रबन्दी के सम्बन्ध में सरकारी कार्यवाही की निन्दा की। उसने श्री तिलक की प्रेरणा से वाइसरॉय और भारत-मत्री के समक्ष दृढ एव गम्भीर प्रतिनिधित्व किया, भारत-सरकार की दमनकारी एवं प्रतिक्रियावादी नीति की निन्दा की और तुरन्त ही स्वराज्य की एक बहुत बड़ी किस्त प्रदान करने की माँग की। कमेटी ने कहा कि एक राजकीय उद्घोषणा द्वारा भारतीय राजनैतिक माँगों को स्वीकार किया जाए और नज़रबन्द नेताओं—श्रीमती बीसेण्ट और उनके सहयोगियों—को मुक्त किया जाए। कमेटी ने सरकार को इस बात की चेतावनी भी दी कि यदि उक्त कार्यवाही जल्दी न की गई तो देश में

१. इसी पुस्तक के सत्रहवें अध्याय का सातवाँ विभाग देखिए।

असन्तोष और अशान्ति की बढवार बराबर होती रहेगी। श्रीमती बीसेण्ट को १९१७ के काग्रेस अधिवेशन का अध्यक्ष पद दिया गया; और श्रीमती बीसेण्ट तथा उनके सहयोगियो के छुटकारे के लिए प्रयत्न जारी रखने का निर्णय किया गया।

जुलाई और अगस्त १९१७ मे भारतीय राजनैतिक आदोलन चोटी पर पहुँच गया। इन्ही दिनो (जुलाई १९१७ मे) मेसोपोटामियन कमीशन की रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी, उसने इग्लैण्ड तथा भारत, दोनो ही देशो मे खलबली मचा दी और उसके फलस्वरूप भारतीय राजनैतिक सुधारो को विशेष समर्थन और बल प्राप्त हुआ। लार्ड हार्डिज की सरकार और भारत मत्री मि० चैम्बरलेन ने जिस प्रकार मेसोपोटामिया के युद्ध का सचालन किया था, कमीशन ने उसकी तीव्र आलोचना की थी। लॉर्ड भवन मे अपने एक व्याख्यान द्वारा लॉर्ड हार्डिज ने दोष के अधिकाश भाग को ब्रिटिश युद्ध विभाग के सिर मढ दिया किन्तु मि० माण्टेगु ने, जो पहले उप-भारत मत्री रह चुके थे, हाउस ऑव कॉमन्स मे मेसोपोटामियन कमीशन रिपोर्ट पर अपने (१२ मार्च १९१७ के) प्रसिद्ध व्याख्यान मे तत्कालीन भारत सरकार की बडी तीव्र आलोचना की। उन्होने कहा कि "हमारे आधुनिक उद्देश्यो की दृष्टि से भारत सरकार अत्यन्त जड, अत्यन्त निश्चेष्ट और अत्यन्त असमर्थ है।"[१] उन्होने यह मत प्रकट किया कि वाइसरॉय को काम करने के लिए अधिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए, भारतीय विधायिका सभाओ को आशिक नियत्रण का अधिकार सौपा जाना चाहिए, इडिया ऑफिस के व्यय का बोझ भारतीय राजस्व पर नही होना चाहिए और भारत परिषद् के अधिकारो को घटाकर, भारत-मन्त्री को वास्तविक दायित्व सौपा जाना चाहिए। इसी सम्बन्ध मे उन्होने इडिया ऑफ़िस (भारत मत्री के पूरे कार्यालय) के ढाचे मे सुधार करने के लिए कहा और तत्कालीन इडिया ऑफिस की इन शब्दो मे निन्दा की.—"प्रविधानीय व्यवस्था के अनुसार इडिया ऑफिस की कार्य-पद्धति मे इतने घुमाव-फिराव है और इतने वाग्जाल की खानापूरी करनी पडती है कि साधारण नागरिक उसका स्वप्न मे भी अनुमान नही कर सकता।"[२] मि० माण्टेगु ने इस भारतीय माँग का समर्थन किया कि ब्रिटिश नीति तुरन्त घोषित की जानी चाहिए और भारत की ब्रिटिश सरकारी व्यवस्था मे बहुत बडा परिवर्तन किया जाना चाहिए। "अब कुशलता का तर्क भी प्रस्तुत नही किया जा सकता क्योकि मेसोपोटामिया की धाधलेबाज़ी ने यह सिद्ध कर दिया है कि भारत सरकार अकुशल है।"[३] उन्होने हाउस ऑव कॉमन्स मे कहा, "यदि आप भारतवासियो की राजभक्ति का उपयोग करना चाहते है तो उन्हे अपने भाग्य-

१. The Indian Annual Register, 1919, page IX.
२ Ibid. page XI
३. Indian Annual Register, page XII.

नियंत्रण के लिए अधिक अवसर दीजिए—असमर्थ परिषदो के रूप मे नही वरन् स्वय कार्यकारिणी के अधिकाधिक नियत्रण के रूप मे।"[१] अन्त मे उन्होने कहा.— "यदि आप आधुनिक अनुभव के आधार पर इस एक शताब्दी पुराने और प्रतिरोध-पूर्ण ढाचे मे परिवर्तन नही करेगे तो मुझे ऐसा दिखाई देता है कि आप भारतीय साम्राज्य के नियत्रण का अधिकार खो बैठेगे।"[२]

भारतीय राष्ट्रवादी पत्रो ने प्रचार के लिए मि० मॉण्टेगु के व्याख्यानो का लाभ उठाया। उसकी प्रशसा की गई और उसको विस्तृत रूप से उद्धृत किया गया। देश की सरकारी व्यवस्था मे तुरन्त परिवर्तन करने की आवश्यकता बताने के लिए उसका उपयोग किया गया। इस प्रकार होम-रूल और नजरबन्द नेताओ की मुक्ति के आन्दोलन को प्रबल प्रोत्साहन मिला।

इसी बीच यूरोप मे युद्ध-स्थिति अत्यन्त गम्भीर हो गई और इग्लैण्ड को भारत से अधिक सहायता प्राप्त करने की आवश्यकता हुई। भारतवासी सहायता के लिए तैयार थे किन्तु इस बात का निश्चित आश्वासन चाहते थे कि निकट भविष्य मे उन्हे स्वराज्य मिल जाएगा। मि० लॉयड जॉर्ज ने समय के प्रवाह को अनुभव किया और मि० चैम्बरलैन के स्थान पर (जिन्होने मेसोपोटामियन कमीशन रिपार्ट से सम्बन्धित आलोचनाओ के कारण त्यागपत्र दे दिया था), मि० मॉण्टेगु को भारत-मत्री नियुक्त किया। ब्रिटिश मत्रिमडल ने अन्य कामो में व्यस्त होते हुए भी, भारतीय नीति की नई घोषणा का मसविदा तैयार करने का काम हाथ मे लिया और साथ ही श्रीमती बीसेण्ट और उनके सहयोगियो को छोडने के सम्बन्ध मे भारत-सरकार से लिखा-पढी की। इसके अतिरिक्त सरकार ने सेना के 'कमीशड' पदो पर भारतीयो की नियुक्ति के सम्बन्ध मे रोक हटाई और ९ व्यक्तियो को, जिन्होने युद्ध मे विशिष्ट सेवा की थी, उक्त 'कमीशण्ड' पद प्रदान किए। २० अगस्त १९१७ को, मि० चार्ल्स रॉबर्ट्स के एक प्रश्न के उत्तर मे मि० मॉण्टेगु ने हाउस ऑव कॉमन्स मे यह ऐतिहासिक घोषणा की —"साम्राज्य सरकार की नीति जिससे भारत सरकार पूर्ण रूप से सहमत है, यह है कि शासन की प्रत्येक शाखा मे भारतीयो को अधिकाधिक साथ लिया जाए और स्वशासक सस्थाओ का क्रमश. विकास किया जाए ताकि ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत भारत मे क्रमश: उत्तरदायी सरकार की स्थापना हो सके।" .. मै यह और कहना चाहूँगा कि इस नीति की प्रगति क्रमश कई किस्तो मे ही हो सकती है। ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार, जिन पर भारत के विभिन्न लोगो की उन्नति और भलाई का उत्तरदायित्व है, प्रत्येक किस्त के समय और परिमाण का निर्णय करेगी जिसमे वे इस बात को

१. Ibid, page XIII.
२. Ibid, page, XIV.

ध्यान मे रखेगी कि जिन लोगो को सेवा के नए अवसर प्रदान किए जा रहे है, उनसे कितना सहयोग प्राप्त हुआ है और उन पर उत्तरदायित्व का कितना बोझ डाला जा सकता है।"[१]

उसी समय भारत-मत्री ने यह भी बताया कि सम्राट्-सरकार ने उनको परामर्श और जाँच के उद्देश्य से तुरन्त ही भारत भेजने का निश्चय किया है।

२० अगस्त १९१७ को घोषणा से भारतीय राष्ट्रवादियो के दल मे फिर एक बार फूट पडी। नरम पक्ष के राष्ट्रवादियो ने "उस घोषणा का 'भारत के मैगना कार्टा' के रूप मे स्वागत किया, उन्होने सरकार से उसके उद्देश्यो को साई के रूप मे, नजरबन्दो को छोडने को माँग की और भारत-मत्री के अभ्यागमन के लिए लोगो को जागृत करने के निमित्त अपनी सारी शक्ति केन्द्रित करने का निश्चय किया।"[२] दूसरी ओर उग्र पक्ष के मतानुसार उक्त घोषणा, भाषा और तत्व दोनो ही की दृष्टि से असन्तोषप्रद थी और उन्होने नजरबन्दो के छुटकारे के लिए और साथ ही भारतीय आकाक्षाओ और माँगो की श्रेयतर मान्यता के लिए आन्दोलन जारी रखने का निश्चय किया।

नजरबन्द नेताओ के छुटकारे का आन्दोलन कुछ[३] अशो मे सफल हुआ। ५ सितम्बर १९१७ को भारत सरकार ने नजरबन्दो के छुटकारे के निमित्त मद्रास-सरकार से इस शर्त पर सिफारिश करने के लिए अपनी तत्परता की घोषणा की कि "वे नेतागण युद्ध के अवशिष्ट समय मे राजनैतिक आन्दोलन के लिए उग्र एव अवैधानिक उपायो को काम मे नही लाएँगे।"[४]

दोनो होम-रूल सस्थाओ ने भारत मे राजनैतिक जागृति और प्रचार के अपने कामो को जारी रखा और साथ ही इग्लैण्ड मे भी प्रचार-कार्य करने का निश्चय किया। श्री तिलक और श्रीमती बीसेण्ट, दोनो ही इस अवसर पर इग्लैण्ड मे जनमत शिक्षित करने की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे और उन्होने पुराने काग्रेसियो पर इग्लैण्ड मे एक शिष्टमडल भेजने की वाछनीयता पर जोर दिया। सन् १९१६ के लखनऊ अधिवेशन मे काग्रेस ने एक शिष्टमडल भेजने का निश्चय किया था, किन्तु बाद मे सर विलियम वेडरबर्न की मत्रणा से उसका विचार छोड दिया गया। इस बीच इग्लैंड मे निवृत्त आग्ल-भारतीयो तथा अन्य प्रतिक्रियावादियो ने भारत-

१. Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, page 1.

२ India in the years 1917-18, page 37.

३. अली-बधुओ ने सरकार को आश्वासन देने से इन्कार कर दिया था, अत: उनको मुक्त नही किया गया।

४. India in the years 1917-18, page 41.

विरोधी प्रचार आरम्भ कर दिया। इन लोगो ने सुधार-नीति का विरोध करने के लिए इडो-ब्रिटिश-एसोसियेशन की स्थापना की और लॉर्ड सिडेनहैम को उसका अध्यक्ष बना दिया। अस्तु, श्री तिलक ने इग्लैंड के मजदूर दल के सम्पर्क स्थापित करने के लिए और वस्तुस्थिति देखने के लिए मि० बैप्टिस्टा को इग्लैण्ड भेजा। इसके अतिरिक्त एक होम रूल शिष्टमडल भेजने के लिए धन इकट्ठा करने के उद्देश्य से उन्होने महाराष्ट्र का व्यापक परिभ्रमण किया, इसी प्रकार श्रीमती बीसेण्ट ने भी प्रयत्न किया। दोनो होमरूल लीगो ने सन् १९१८ के वसत मे अपने शिष्ट-मडलो को इग्लैण्ड भेजने का निश्चय किया। और सरकार ने आवश्यक पारपत्र भी प्रदान कर दिए। पहला शिष्टमडल मार्च मे चला गया और दूसरा शिष्टमडल कोलम्बू से प्रस्थान करने वाला ही था कि ब्रिटिश युद्ध कैबिनेट के आदेशानुसार पार-पत्र रद्द कर दिए गए। इस प्रकार होम रूल लीगो को ब्रिटिश जनता के समक्ष अपने दृष्टि-कोण व्यक्त करने से रोक दिया गया और उनसे इडो-ब्रिटिश एसोसियेशन के कुटिल प्रचार का प्रत्युत्तर देने के अवसर को छीन लिया गया।

१० नवम्बर १९१७ को 'माण्टेगु मिशन' भारत आया और उसने परामर्श और जॉच का काम आरम्भ किया जिसके फलस्वरूप भारतमत्री और वाइसरॉय ने सुधारो को एक सयुक्त योजना प्रस्तुत की जो 'मिशन' के अन्य सदस्यो—लॉर्ड डॉनोमोर, सर विलियम ड्यूक, मि० (बाद मे सर) भूपेन्द्रनाथ बसु और मि० चार्ल्स रॉबर्ट्स—को भी मान्य थी। इसी योजना को बाद मे सन् १९१९ के गवर्न-मेण्ट ऑव इडिया एक्ट मे रूप दिया गया।

## बीसवाँ अध्याय

# मॉण्टफोर्ड सुधार

१.

मॉर्ले-मिण्टो सुधारो का उद्देश्य भारत मे सासद्-व्यवस्था स्थापित करना नही था। यह बात स्वय लॉर्ड मार्ले ने लॉर्ड भवन के अपने व्याख्यान मे स्पष्ट कर दी थी। दूसरी ओर सन् १९१९ के सुधारो के सयुक्त प्रवर्तको के अनुसार उन (मॉर्ले-मिण्टो) सुधारो का उद्देश्य एक ऐसा विधान बनाना था, जिसके चारो ओर पिछडे हुए विचारो के प्रतिगामी लोग एकत्रित हो सके और भविष्य मे किसी महत्वपूर्ण परिवर्तन का विरोध करे।[1] लॉर्ड मॉर्ले और लॉर्ड मिण्टो दोनो ही, शासन मे केवल ऐसे भारतीयो को साथ लेना चाहते थे जो भविष्य मे "शक्ति के सतुलन को बदलने का और भारतीय सस्थाओ के लोकतन्त्रीकरण का विरोध करेगे।"[1] किन्तु भारत के नरम

१. The Report of the Indian Constitutional Reforms, 1918, page 48.

पक्ष के राष्ट्रवादी बडी आशाएँ लगाएँ बैठे थे और उनका यह विश्वास था कि लॉर्ड मॉर्ले का प्रत्याख्यान, लॉर्ड भवन मे विरोध शान्त करने के लिए था और सुधारो से सरकारी ढाँचे मे परिवर्तन होगा और निर्वाचित सदस्यो को शासन मे उत्तरदायित्व-पूर्ण सहयोग का अवसर मिलेगा।[1] श्री गोखले ने यह आशा की थी कि "वित्तीय विषयो मे भारत सरकार के नियत्रण का स्थान परिषदो की आलोचना और विवेचना के नियत्रण को मिलेगा,"[१] "जातीय दृष्टिकोणो को पृष्ठभूमि मे रखा जाएगा और सर्वोच्च परिषदो मे प्रत्येक प्रश्न के भारतीय दृष्टिकोण को उचित महत्त्व प्राप्त होगा,"[२] "और प्रान्तो मे ऐसा कोई विधान नही बनाया जावेगा जिसके विपक्ष में गैर-सरकारी बहुमत हो, और निर्वाचित सदस्यो को प्रान्तीय विषयो पर प्रभाव डालने का उपयुक्त अवसर प्राप्त होगा।"[२] किन्तु ऐक्ट के लागू होने के बाद कुछ ही महीनो मे श्री गोखलेके विचार बदल गए। अगस्त१९१०मे उन्होने साम्राज्यीय विधान परिषद् मे कहा —"श्रीमान्! अब हम इस बात से भलीभाति परिचित है कि जब सरकार एक बार कोई निश्चय कर लेती है तो परिषद् के गैर-सरकारी सदस्य चाहे जो कहे किन्तु उसका सरकार पर कोई प्रभाव नही होता।"[3] प्रान्तीय परिषदो की दशा भी ज्यादा अच्छी नही थी क्योकि निर्वाचित सदस्यो का कही पर भी कारगर बहुमत नही था और इसके अतिरिक्त लगभग सभी विषयो मे अन्तिम सत्ता साम्राज्यीय सरकार के हाथो मे थी।

इस प्रकार मार्ले-मिण्टो सुधार भारत के अत्यन्त नरम पक्षी राजनीतिज्ञ को भी सन्तुष्ट न कर सके। इसके कई कारण थे। सबसे पहला कारण तो यह था कि साम्राज्यीय विधान परिषद्मे एक ठोस और दृढ सरकारी व्यूह था। इस व्यूहसे बचने, उसको तोडने अथवा बेधने का कोई उपाय नही था। सरकार और गैर-सरकारी भारतीयो के बीच यह व्यूह चीन की दीवार की भाँति स्थायी रूप से जमा हुआ था। परिषदो मे जो चर्चा होती थी वह वस्तुत निर्जीव होती थी और उसमे से वास्तविकता और उत्तरदायित्व की भावना को दूर कर दिया जाता था। सरकारी सदस्यो के मस्तिष्क मे अन्त करण और अनुशासन के बीच एक तीखा सघर्ष था, और गैर-सरकारी सदस्यो के मस्तिष्क मे विवशता और निराशा की भावना तीखी हो गई थी और उसने नरम पक्ष के लोगो को उग्र पक्ष वालो के साथ एक होने को विवश कर दिया था। सारे विषयो मे जातीय भेदभाव को प्रधानता दी

---

१ The Report of the Indian Constitutional Reforms, 1918, page 64.

२. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ ६५

३. Proceedings of the Imperial Legislative Council Vol. XLIX, page 29.

जाती थी। मि० कर्टिस के अनुसार, ऐसा प्रतीत होता था कि सारी व्यवस्था का उद्देश्य जातीय भावनाओ को कुपित करना और जातीय भेदभावो को बढाना था।[१]

यह बात केवल साम्राज्यीय विधान परिषद् मे ही नही थी, जहाँ सरकारी सदस्य का बहुमत था, वरन् यह बात प्रान्तीय परिषदो मे भी थी, जहाँ गैरसरकारी सदस्य बहुमत मे थे और बगाल मे भी, जहाँ निर्वाचित सदस्यो का बहुमत था। इसका एक कारण तो यह था कि गैर-सरकारी बहुमत केवल नाममात्र को था। जैसा कि मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट मे कहा गया है, "अनुपस्थित रहने वालो मे सरकारी सदस्यो की अपेक्षा गैरसरकारी सदस्य अधिक होते थे और इस प्रकार गैर-सरकारी बहुमत निरर्थक हो जाता था।[२] दूसरा कारण यह था कि नामनिर्देशित और यरोपियन सदस्य साधारणतया, सरकारी पक्ष की ओर रहना अपना कर्त्तव्य समझते थे। तीसरा कारण यह था कि सरकारी सदस्यो को केवल सयुक्त रूप से ही काम नही करना पडता था वरन् उन्हे केन्द्रीय सरकार के निर्णयो की रक्षा करनी होती थी, चाहे वे निर्णय प्रान्तीय सरकार के दृष्टिकोण के विरुद्ध ही क्यो न हो। भारत मत्री के अनुसार उस व्यवस्था का सिद्धान्त यह था कि, "भारत के लिए एक ही शासन-व्यवस्था है . अत स्थानीय (प्रान्तीय) सरकार का यह कर्तव्य है कि वह किसी भी प्रस्ताव पर विचार करने मे, भारत सरकार के निर्णय का यथाशक्ति समर्थन करे।"[३]

किन्तु इसका अर्थ यह नही था कि गैर-सरकारी सदस्यो का शासन अथवा विधान कार्य पर कोई प्रभाव नही था। बहुत-से विषयो मे विधेयको का अन्तिम मसविदा बनाने और प्रशासनीय निर्णय करने से पहले उनसे परामर्श किया जाता था। परिषदो मे प्रस्तुत हो जाने के बाद भी कितने ही प्रस्तावो मे गैर-सरकरी सदस्यो ने महत्त्वपूर्ण सशोधन कराया था। निम्नलिखित विधेयको के सम्बन्ध मे यही बात हुई थी—इडियन कोर्ट फीस (एमेण्डमेण्ट) बिल (१९१०), इडियन फैक्ट्रीज बिल (१९११), इडियन पेटेण्ट्स एण्ड डिजाइन्स बिल (१९११) क्रिमिनल ट्राइब्स बिल (१९११), लाइफ एश्योरेन्स कम्पनीज बिल (१९१२), और इडियन (बोगस डिग्रीज) मेडिकल बिल (१९१६)। किन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारतीय सदस्य केवल उन्ही विधेयको मे सशोधन कराने मे सफल हुए थे जो सरकार की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नही थे अथवा जो मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट के अनुसार "देश की शान्ति और सुरक्षा"[४] से सम्बन्धित नही थे। प्रशासनीय विषयो मे भी सरकार

१. Curtis: Dyarchy, page 372.
२. Report on Indian Constitutional Reforms 1918, page 62
३. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ ५८.
४. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ ६०.

पर गैरसरकारी मत का कुछ हद तक प्रभाव पडा था—जैसे कुछ उपनिवेशो के लिए 'शर्तबन्द' मजदूर व्यवस्था का अन्त, सयुक्त प्रान्त मे कार्यपालिका परिषद की स्थापना, पजाब मे हाई-कोर्ट की स्थापना, जेल-शासन की जाँच और उस पर रिपोर्ट करने के लिए एक कमेटी की नियुक्ति और लोकसेवा आयोग तथा औद्योगिक आयोग की नियुक्ति।[1] सही अनुदृष्टि के लिए यह कहना उचित होगा कि सन् १९१७ के अन्त तक साम्राज्यीय विधान परिषद् मे १६८ प्रस्ताव प्रस्तुत किए गए और उनमे से सरकार ने केवल २४ को स्वीकार किया, ६८ प्रस्ताव वापिस ले लिए गए और ७६ रद्द कर दिए गए।[1]

मॉर्ले-मिण्टो सुधारो की असफलता का दूसरा कारण यह था कि प्रान्तीय सरकारों पर भारत-सरकार का नियत्रण कम नही हुआ और साथ ही सार्वजनिक नौकरियो मे भारतीयो की भर्ती के सम्बन्ध मे अत्यन्त अनुदार नीति का अनुसरण किया गया। "स्थानीय सस्थाओ मे कोई उन्नति नही हुई, प्रान्तीय वित्त को स्वतन्त्रता नही मिली और सार्वजनिक नौकरियो मे भारतीयो की सख्या मे कोई विशेष वृद्धि नही हुई।"[2] भारत-सरकार अब भी ब्रिटिश पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायी थी और वह प्रान्तीय शासन और विधान मे अपना नियत्रण कम नही कर सकती थी।" वित्त और शासन से सम्बन्धित वह क्षेत्र, जिसमे परिषदे सरकारी कामो पर प्रभाव डाल सकती थी, अत्यन्त सकुचित था। बार-बार स्थानीय (प्रान्तीय) सरकार को यह कहना पडता था कि प्रस्तुत विषय उसके अधिकार से बाहर है। प्रान्तीय बन्दोबस्त के कारण वे सरकारे राजस्व के क्षेत्र मे कोई नया कदम नही उठा सकती थी; भारत-सरकार के नियत्रण के कारण उन्हे प्रशासनीय क्षेत्र मे काम करने की स्वतन्त्रता नही थी, अत वे भारत सरकार के समक्ष परिषद् का दृष्टिकोण ही प्रस्तुत कर सकती थी।"[3]

मॉर्ले-मिण्टो सुधारो की असफलता का तीसरा कारण यह था कि उनकी योजना के अन्तर्गत जो निर्वाचन व्यवस्था अपनाई गई थी वह बिलकुल अपर्याप्त थी, उसमे विभिन्न समुदायो के साथ भेदभाव किया गया था और उसका मौलिक सिद्धात गलत था। एक ओर तो मुसलमानो के लिए पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र बनाए गए थे और अन्य हितो को विशेष प्रतिनिधित्व दिया गया था किन्तु दूसरी ओर आम जनता को प्रत्यक्ष प्रतिनिधित्व नही दिया गया था। वस्तुत सर्वसाधारण के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था इतनी सकुचित और टेढी थी कि उससे न तो लोगो की राजनीतिक जागृति

१. Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, page 61.

२ उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ ६१

३. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ ६५

ही हो सकती थी और न उससे उन लोगो मे उत्तरदायित्व की भावना भरी जा सकती थी। यह कथन आगे दिये हुए तथ्यो से स्पष्ट हो जाएगा—साम्राज्यीय विधान परिषदो के लिए साधारण निर्वाचन क्षेत्रो मे मतदाताओ की औसत सख्या केवल २१ थी और एक क्षेत्र मे तो यह सख्या कुल ९ थी। "परिषद् के सारे निर्वाचित सदस्यो को प्राप्त होने वाले कुल वोटो की सख्या ४००० से अधिक नही थी। इस प्रकार प्रत्येक सदस्य को औसत से लगभग १५०वोट प्राप्त होते थे। सयुक्त प्रात की विधान परिषद् के सदस्यो को प्राप्त होने वाले कुल वोटो की सख्या लगभग ३००० थी और प्रत्येक निर्वाचित सदस्य को औसत से १४३ वोट प्राप्त होते थे।"[१] प्रान्तीय परिषदो के लिए साधारण जनता के प्रतिनिधियो का निर्वाचन स्थानीय मडलो के गैर-सरकारी सदस्य करते थे और साम्राज्यीय परिषद् के लिए प्रतिनिधियो का निर्वाचन, प्रान्तीय परिषदो के गैर-सरकारी सदस्य करते थे। इसका परिणाम यह था कि "आद्य मतदाता और विधान परिषद् के उसके प्रतिनिधि मे कोई सम्पर्क नही था और उस मतदाता की वोट का विधान परिषद् की कार्यवाही पर कोई प्रभाव नही था।"[२] सन् १९०९ के भारतीय परिषद् ऐक्ट की इस निर्वाचन-व्यवस्था को मि० कर्टिस ने एक 'रचना' बताया है।[३]

ऐसे मौलिक दोषो के होते हुए, राजनैतिक सुधारो के प्रश्न को अनिश्चित रूप से स्थगित करना सभव नही था, और महायुद्ध से सम्बन्धित कामो मे व्यस्त होने पर भी सरकार को विवश होकर इस ओर ध्यान देना पडा। बम्बई के तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड विलिंगडन ने श्री गोखले से एक सुधार-योजना तैयार करने के लिए कहा जिसे उन्होने मार्च १९१५ तक पूर्ण रूप से तैयार कर दिया। कुछ ही समय बाद उनकी मृत्यु हो गई। यह योजना जो 'गोखले के राजनैतिक मृत्युलेख'[४] के नाम से प्रसिद्ध है, मृतजात थी। श्री गोखले की दृष्टि 'प्रान्तीय स्वायत्तता' पर थी—जिसका अर्थ केवल यह था कि उच्च सत्ता के नियत्रण से स्वतन्त्रता हो। उसमे उत्तरदायित्व प्रदान करने की समस्या पर विचार नही किया गया था। यही दोष उस ज्ञापन[५] मे था जो साम्राज्यीय विधान परिषद् के उन्नीस भारतीय सदस्यो ने प्रस्तुत किया था और यही दोष उस योजना मे भी था जिसे १९१६ मे काग्रेस और

---

१ Curtis · Dyarchy, Page 368.

२ Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, Page 54.

३ Curtis · Dyarchy, Page 368.

४. इस योजना के लिए देखिए—Keith : Speeches and Documents on Indian Policy Vol. II Page III to 116

५. इस ज्ञापन के लिए देखिए—उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ११६ से १२४ तक।

मुस्लिम लीग ने सयुक्त रूप से, बडे यत्नपूर्वक बनाया था।[1] उत्तरदायी सरकार की क्रमश: स्थापना करने की दृष्टि से भारतीय समस्या का हल करने वाली सबसे पहली सुधार-योजना वह थी जिसे मि० लायोनेल कर्टिस के नेतृत्व मे 'इगलिश राउण्ड टेब्ल ग्रुप' ने तैयार किया था। इस योजना मे द्वैध शासन व्यवस्था का प्रतिपादन किया गया था।[2] इसी द्वैध प्रणाली के आधार पर मि० मॉण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने अपनी योजना बनाई और उसको भारतीय वैधानिक सुधारो पर (१९१८ की) अपनी रिपोर्ट मे प्रस्तुत किया।

मि० कर्टिस ने भारतीय जनता को सम्बोधित करते हुए कई पत्र प्रकाशित किए और उनमे यह बताया कि "स्व-शासन" ओर "उत्तरदायी शासन" मे एक महत्त्वपूर्ण अन्तर था। यह बात सच थी। भारत को स्वशासन तो अविलम्ब प्रदान किया जा सकता था। सरकारी ढाचे को चलाने के लिए शिक्षित भारतीयो की सख्या पर्याप्त थी। किन्तु अपढ ग्रामवासियो को उत्तरदायी सरकार के लिए शिक्षित करना मामूली काम नही था और उसे जल्दी नही किया जा सकता था—विशेषकर ऐसी स्थिति मे जब वे लोग भाषा, धर्म और दूरी से विभाजित थे। इस बात को लॉर्ड कर्जन जैसे चतुर व्यक्ति अच्छी तरह जानते थे और सन् १९१८ के सुधारो के कार्यान्वित होने के बाद यह बात प्रकट हो गई थी कि २० अगस्त १९१७ की प्रसिद्ध घोषणा का मसविदा तैयार कराने मे लॉर्ड कर्जन का बहुत बडा हाथ था। वस्तुत काग्रेस-लीग-योजना को अस्वीकार करने का वास्तविक कारण यह था कि उसमे भारतीय हाथो मे बहुत ज्यादा अधिकार सौपने की माग की गई थी।

'काग्रेस-लीग-योजना' के अनुसार केन्द्र और प्रान्तो, दोनो ही की परिषदे विस्तृत होनी थी, नामनिर्देशित सदस्यो की सख्या कुल के बीस प्रतिशत से अधिक नही होनी थी, पृथक् निर्वाचन क्षेत्रो के आधार पर परिषदो मे मुसलमानो को निश्चित अनुपात मे स्थान मिलने थे, प्रान्तीय विधान मडलो को विधायिका एव वित्तीय नियत्रण का पूर्णाधिकार मिलना था, उन्ही मडलो को प्रस्ताव द्वारा प्रान्तीय कार्यकारिणी सरकार का निर्देशन करने का अधिकार मिलना था; और रक्षा, विदेश एव राजनैतिक विभागो से सबधित विषयो के अतिरिक्त अन्य सब विषयो मे ऐसे ही अधिकार केन्द्रीय क्षेत्र मे दिए जाने थे। उस योजना मे प्रान्तीय एवं केन्द्रीय कार्यपालिका सरकारो का ढाचा बदल दिया गया; उनके अध्यक्ष ऐसे व्यक्ति होने थे जो सिविल सर्विस के सदस्य न हो, और कार्यकारिणी परिषद् के आधे सदस्य भारतीय होने थे जो विधान मडलो के निर्वाचित सदस्यो द्वारा

१. Keith: Speeches and Documents on Indian Policy, Vol. II, pages 124-132.

२. Curtis: Dyarchy.

चुने जाने थे। साधारणतया कार्यकारिणी परिषदो मे सिविल सर्विस के सदस्यो की नियुक्ति नही होनी थी। एसी दशा मे यह कोई आश्चर्य की बात नही है कि उक्त योजना का, जिसमे भारतीयो को इतने विस्तृत अधिकार सौपने की माग की गई थी, आग्ल-भारतीय कर्मचारीतत्र ने विरोध किया, उसकी तीव्र आलोचना की गई[1] और उसे १९१८ के सुधारो के सयुक्त प्रवर्तको ने अस्वीकार कर दिया।

३

भारत-मत्री और वाइसरॉय की सयुक्त रिपोर्ट उस सुधार योजना पर अवलम्बित थी जिसे इगलिश राउण्ड टेबल ग्रुप के सदस्य सर विलियम ड्यूक और उस ग्रुप के नेता मि कर्टिस ने तैयार किया था। सर विलियम ड्यूक उस समय भारत परिषद् के सदस्य थे, उससे पहले वह बगाल के उप-गवर्नर रह चुके थे और बाद मे वे माण्टेगु मिशन के सदस्य होकर भारत आए। सुधारो के सबध मे सर विलियम की तीन धारणाये थी .—(१) अब वह समय आ गया है कि भारतीयो को उत्तरदायी शासन की कला मे शिक्षित करना चाहिए और इसके लिये कुछ ऐसे विषयो को जिन मे कोई जोखिम न हो, लोक-नियत्रण के अन्तर्गत कर देना चाहिए, (२) कुछ ऐसे सरकारी विभाग है (जैसे पुलिस विभाग) जिनकी दृढता और जिन की क्षमता सरकार के लिये अपरिहार्य है, उनको वर्तमान स्थिति मे लोक-नियत्रण के अन्तर्गत नही सोपा जा सकता"[2]; और (३) प्रत्येक प्रान्त मे कुछ जन-जाति क्षेत्र है जिनमे सरकार का शासन यथावत् रहना चाहिए। इन धारणाओ को

१. ये आलोचनाएँ सक्षेप मे इस प्रकार थी (१) कार्यकारिणी सरकारो का विधान इसलिए असन्तोषप्रद था कि उसमे सिविल सर्विस वालो को दूर रखा गया था। इन्हो लोगो को सरकारी काम की सबसे ज्यादा जानकारी और उसका अनुभव था। अध्यक्ष को कार्यकारिणी बनाने मे अपने निर्णय से काम लेने से वचित कर दिया था। (२) कार्यकारिणी की स्थिति जोखिम से भरी हुई थी। कार्यकारिणी के सदस्य पाँच वर्ष को नियुक्त होने थे, उनपर विधायिका को कठोर नियत्रण दिया गया था। ऐसी दशा मे गतिविरोध स्वाभाविक था। (३) विशेषाधिकार का सरक्षण निरर्थक था। (४) योजना मे राजनीतिक शिक्षा की व्यवस्था नही थी। (५) योजना अव्यवहार्य थी। The Report on Indian Constitutional Reforms 1918, page 104—113.

२. Curtis : Dyarchy, page 18. The Duke Memorandum was first published in India in 1920 in Dyarchy by Lionel Curtis.

मान लेने पर द्वैध प्रणाली के अतिरिक्त और कोई व्यवस्था हो ही नहीं सकती थी जिसके अनुसार प्रांत का शासन दो भागो मे बाँटा जाना था—एक तो वह भाग जो जनता के प्रति उत्तरदायी होना था और दूसरा वह भाग जो भारत मत्री के प्रति उत्तरदायी होना था। सर विलियम के ज्ञापन ने बगाल सरकार को दो भागो मे बाँट था—(१) स-परिषद् गवर्नर के आधीन सरक्षित विभाग और (२) हस्तातरित विभाग जिनका सचालन गवर्नर की अध्यक्षता मे कुछ सदस्यो के 'मत्रिमडल' के हाथो मे होना था। तुरन्त हस्तान्तरित किए जानेवाले विभाग ये थे—— शिक्षा, स्थानीय स्वशासन एव समार्जन। शीघ्र ही इन मे ये पाँच विभाग और जोडे जाने थे——निबधन, सहयोग आकलन, कृषि, वन और सार्वजनिक निर्माण। हस्तान्तरित विभागो का खर्च चलाने के लिए कोई पृथक् अथवा विशेष व्यवस्था नही थी किन्तु यह सुझाव दिया गया था कि आबकारी की आय का उपयोग किया जाए और नए टैक्स लगाए जाएँ।

यह ज्ञापन सन् १९१६ के आरभ मे ही तैयार हो गया था। उसके कुछ समय पहले लॉर्ड चेम्सफोर्ड भारत के वाइसरॉय होकर आ गए थे। मई १९१६ मे उस ज्ञापन की एक प्रति वाइसरॉय के पास भेजी गई और अक्टूबर १९१६ मे इगलिश राउण्ड टेबल ग्रुप के नेता मि कर्टिस, उस योजना के मौलिक विचारो का प्रतिपादन करने के लिए भारत आए। कुछ सशोधन करने के बाद वह योजना एक 'सयुक्त सबोधन' के रूप मे भारत मत्री और वाइसरॉय के समक्ष (नवम्बर १९१७ मे) प्रस्तुत की गई। इस सयुक्त सबोधन मे ६४ यूरोपियनो के और ९० भारतीयो के हस्ताक्षर थे। नवम्बर १९१७ मे प्रकाशित होने पर, यूरोपीय और भारतीय दोनो ही प्रकार के समाचार-पत्रो ने उसकी तीव्र आलोचना की।

४

मि माटेगु अपने मिशन के सदस्यो के साथ १० नवम्बर १९१७ को बम्बई मे आए। प्रकटत उनका उद्देश्य, भारत की राजनैतिक दशा की जाँच करना था, भारतीय जनता और उच्च सरकारी अधिकारियो के मत से परिचित होना था, और वाइसरॉयके सहयोगसे अपने प्रस्ताव प्रस्तुत करना था। किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि भारत-मत्री के भारत आने का उद्देश्य कुछ दूसरा ही था। भारत आने से पहले ही उन्हे 'काग्रेस-लीग-योजना' और 'ड्यूक-ज्ञापन' दोनो का पता था और उन्होने अपनी योजना, कम से कम उसकी रूपरेखा, निश्चित कर ली थी। भारत आने के उनके दो उद्देश्य थे। एक तो यह कि वे इस ढग से काम करना चाहते थे कि "मानो सुधारो की सारी योजना भारत सरकार द्वारा ही बनाई गई है।"[1] इस दृष्टि से वे अधिकाश रूप मे असफल रहे। उन्हे वाइसरॉय की कार्यकारिणी-परिषद् से,

१. Montagu An Indian Diary, page 1.

प्रान्तीय सरकारो के अध्यक्षो से, विशेषकर पजाब के सर माइकेल ओ' डायर और मद्रास के लॉर्ड पेण्टलैन्ड से, और यूरोपीय अधिकारियो से सहयोग प्राप्त करने मे बडी कठिनाई हुई। विरोधी वर्ग के लिए उन्हे बहुत-सी रियायते करनी पडी। सिविल सर्विस के लोगो को उन्हे यह आश्वासन देना पडा कि उनके वेतन मे काफी वृद्धि की जाएगी, गवर्नरो को उच्च पदो पर पहुँचाने के लिए उन्हे अधिक अवसर प्रदान किये जाएँगे और उन्हे सरक्षण मिलेगा जिसमे उनके नए अधिपति—मन्त्रिगण—हस्तक्षेप नही कर सकेंगे। भारत-सरकार को प्रसन्न करने के लिए प्रान्तीय स्वायत्तता पर प्रतिबध लगाये गए और प्रान्तीय जनता को प्रदान किए जानेवाले उत्तरदायित्व को घटा दिया गया। इस प्रकार योजना का जो अन्तिम रूप सामने आया उसमे मौलिक योजना की इस भव्यता का अभाव था जिसे बनाए रखने के लिए मि माटेगु बडे उत्सुक थे। भारत आने पर ब्रिटिश प्रधान मन्त्री को अपने पहले पत्र मे उन्होने लिखा था——"मेरे भारत आने का अर्थ यह है कि हम लोग कोई बहुत बडी बात करने जा रहे है। मै इगलैड लौट कर कोई खोखलापन नही दिखा सकता, वह बात युगान्तरकारी होनी चाहिए अन्यथा वह निरर्थक है, वह भारत के भावी इतिहास की केन्द्रशिला होनी चाहिए।"[1] "मै इगलैड के अपने साथियो को यह स्पष्ट कर देना चाहूँगा कि यदि हमारे परामर्श के फलस्वरूप कोई ऐसी योजना बनी है जो अत्यन्त सकुचित और कृपण है तो यह छलघातक होगा——क्योकि वे लोग फिर कभी हमारा विश्वास नही करेंगे——उस देश के लोग, जिसका इतिहास हमारा गौरव है।"[2]

किंतु रिपोर्ट पूरी होने पर जब लॉयड जॉर्ज को सूचना दी गई तो उस समय भारत मत्री की भाषा बिलकुल भिन्न थी। "मै इतना अवश्य कह सकता हूँ कि वह उपेक्ष्य नही है .उसमे एक सिद्धान्त है प्रस्तावो मे सुधार के लिए बहुत गुजाइश है किन्तु रिपोर्ट की उपेक्षा नही की जा सकती। तथापि इस योजना को यदि शीघ्र ही कार्यान्वित नही किया जाता तो वह समयानुरूप नही रहेगी।"[3] ब्रिटिश सरकार को आवश्यक विधान बनाने मे डेढ वर्ष लगा और उसके बाद सुधारो को कार्यान्वित करने मे एक वर्ष और लगा। फरवरी १९२१ मे कनाट के ड्यूक ने नियमानुरूप साम्राज्यीय विधान सभा का उद्घाटन किया, और उस समय तक देश मे असहयोग आन्दोलन पूरा जोर पकड गया था। मॉर्ले-मिटो सुधारो की भाँति, मॉण्ट फोर्ड सुधार भी कार्यान्वित होने के समय तक पुराने पड गए थे।

---

१. Montagu An Indian Diary, page 8.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १० और ११.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३६२.

मि. मॉण्टेगु को अपने दूसरे और तात्कालिक उद्देश्य मे अधिक सफलता मिली। सन् १९१७ के बीच के महीनो मे भारतीय स्थिति अत्यत गभीर हो गई थी। उसी समय यूरोप मे युद्ध की स्थिति भी अत्यन्त सकटापन्न थी। ब्रिटिश सरकार के मतानुसार यह अत्यन्त आवश्यक था कि भारत की स्थिति सुधरे और वहाँ से युद्ध के लिए अधिक सहायता प्राप्त हो। २० अगस्त १९१७ की घोषणा और मि. मॉण्टेगु के आगमन का परिणाम यह हुआ कि लोगो का ध्यान आन्दोलन की ओर से हटा और उन्होने भारत मत्री और उनके साथियो पर जोर डालने का प्रयत्न किया। १८ फर्वरी १९१८ को मि मॉण्टेगु ने लिखा —"युद्ध के अत्यन्त सकटपूर्ण समय मे मैंने भारत को छै महीने तक शान्त रखा है, मैंने राजनीतिज्ञो को अपने मिशन के अतिरिक्त और किसी विषय पर ध्यान ही नही देने दिया।"[1] उन्होने एक और बडी बात की थी। उन्होने अपने पक्ष मे भारतीय नेताओ के एक दल का सगठन कर लिया था, इन नेताओ को उनके उद्देश्य की सचाई मे विश्वास था और वे उनको पूर्ण सहयोग देने को तैयार थे। मि मॉण्टेगु के विचार से यह बात आवश्यक थी "कि हमारा समर्थन करने के लिए एक दल हो अन्यथा मै मन्त्रि-मण्डल को इस बात का विश्वास कैसे दिला सकूँगा कि भारत मे हमारी योजना को कार्यान्वित करने के लिए कोई समुदाय तैयार है।"[3] १२ दिसम्बर १९१७ की अपनी योजना मे उन्होने निम्नलिखित बात को एक पृथक् स्थान दिया —"भारतीयो की एक नई सस्था बनाई जाए जिसे सरकार की ओर से हर प्रकार की सहायता दी जाए, यह सस्था हमारे प्रस्तावो के पक्ष मे प्रचार करे और हमारी सहायता करने के लिए इगलैण्ड को शिष्ट मडल भेजे।"[4] उन्होने इस विषय पर मि. (बाद मे सर) भूपेन्द्रनाथ बसु और सर (बाद मे लॉर्ड) सत्येन्द्र सिनहा से बात की — "हम लोगो ने एक मध्यम दल बनाने के बारे मे वार्तालाप किया, वे लोग बडे उत्साही प्रतीत हुए, और समाचार-पत्र निकालने के बारे मे कहा। मेरे विचार से वे सचमुच कुछ करना चाहते है।"[5] और उन्होने काम किया। कुछ ही महीनो मे 'मॉडरेट पार्टी' अस्तित्व मे आई, उसका पृथक् सगठन बना, और उसने अपने प्रान्तीय एव अखिल भारतीय सम्मेलन पृथक् रूप से किए।

५

भारतीय वैधानिक सुधारो से सबधित रिपोर्ट ८ जुलाई १९१८ को

१. Montagu : An Indian Diary, page 288.
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १३४.
३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १०२–१०४.
४. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १०४.
५. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २१७.

प्रकाशित हुई । किन्तु काम पूरा करने के लिये तीन कमेटियाँ नियुक्त की गईं—लॉर्ड सॉडथबॉरो की अध्यक्षता मे मताधिकार कमेटी; मि. रिचर्ड फीथम की अध्यक्षता मे कार्याधिकार कमेटी; और लॉर्ड क्रिडवे की अध्यक्षता मे गृह-प्रशासन कमेटी । इन कमेटियो को रिपोर्ट जून १९१९ मे प्रकाशित हुई । इन रिपोर्टों के आधार पर सन् १९१९ का गवर्नमेन्ट ऑव इडिया विधेयक का मसविदा बनाया गया । ५ जून १९१९ को मि मॉण्टेगु ने विधेयक के दूसरे वाचन के लिए कहा । दूसरे वाचन के बाद दोनो भवनो ने विधेयक को एक सयुक्त-प्रवर-समिति को विचारार्थ सौपने का निर्णय किया । लॉर्ड सेल्बोर्न इस प्रवर-समिति के अध्यक्ष थे और उनके अतिरिक्त उस समिति में सात हाउस ऑव कॉमन्स के सदस्य थे और सात लॉर्ड भवन के सदस्य थे । इस सयुक्त-प्रवर-समिति ने बहुत-से—सरकारी और गैर-सरकारी, अगरेज़ और भारतीय —साक्षियो का परीक्षण किया । उसने एक बडी योग्यतापूर्ण रिपोर्ट तैयार की जिसे हाउस ऑव कॉमन्स ने स्वीकार किया और विधेयक मे तदनुसार परिवर्तन किया गया । ५ दिसम्बर को हाउस ऑव कॉमन्स ने उसका पारण किया, १८ दिसम्बर को हाउस ऑव लॉर्डस ने उसका पारण किया और २३ दिसम्बर १९१९ को उसे राजकीय स्वीकृति प्राप्त हुई । किन्तु उसको कार्यान्वित करने के लिए, अनुपूरक नियम बनने थे । भारत सरकार और प्रान्तीय सरकारो के बीच वित्तीय समीकरण के सबध मे सरकार को परामर्श देने के लिये एक कमेटी नियुक्त करने की भी आवश्यकता थी । वित्तीय सबध कमेटी ने, जिसके अध्यक्ष लॉर्ड मेस्टन थे, अपनी रिपोर्ट ३१ मार्च १९२० को प्रस्तुत की । भारत सरकार ने २० जुलाई १९२० को ऐक्ट के अन्तर्गत बने हुए नियमो को प्रकाशित किया । नए विधान-मडलो के लिए नवम्बर मे निर्वाचन हुए और १ जनवरी १९२१ को भारत मे सुधारो को कार्यान्वित किया गया ।

६

सन् १९१९ के सुधारो ने ब्रिटिश भारतीय इतिहास में तीन नई और महत्व-पूर्ण बाते की———उत्तरदायी शासन का आरम्भ किया, देशी नरेशो को भारतीय शासन मे —विशेषकर देशी राज्यो से सबधित विषयो मे—साथ लिया, और द्वैध शासन व्यवस्था का प्रवर्तन किया ।

२० अगस्त १९१७ को जिस नीति की घोषणा की गई थी उसे व्यवहार मे लाने के लिए मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट ने चार बडे-बडे सिद्धान्त निश्चित किए थे । इनमें से पहला सिद्धान्त यह था.—

स्थानीय सस्थाओ पर, जहाँ तक सभव हो, पूर्ण-रूप से लोक-नियत्रण होना

चाहिए और उन्हे बाहरी नियत्रण से ज्यादा से ज्यादा स्वतन्त्रता होनी चाहिए।"[1]

इस विषय पर भारत सरकार ने मई १९१८ के प्रस्ताव[2] मे अपनी नीति पहले ही निश्चित कर दी थी किन्तु प्रत्येक प्रान्त को विभिन्न आवश्यकताओ के अनुसार उस नीति को कार्यान्वित करने का काम नई प्रान्तीय सरकारो के लिए छोड दिया गया था।

मॉण्ट फोर्ड रिपोर्ट के दूसरे सूत्र मे दो सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया था —प्रान्तीय सरकारो के प्रति सत्ता का निक्षेपण और प्रान्तो मे आशिक उत्तर-दायित्व का आरम्भ। दूसरे सिद्धान्त को व्यवहार मे लाने के लिए प्रान्तीय सरकारो का दो भागो मे विभाजन होना था—एक भारत मत्री के प्रति उत्तर-दायी और दूसरा प्रान्तीय मतदाताओ के प्रति। इस प्रकार मॉण्ट फोर्ड रिपोर्ट ने २० अगस्त १९१७ की घोषणा को नीति को रूप देने का प्रस्ताव किया। ऐक्ट की प्रस्तावना ने इस नीति को स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त किया और भारत के उन्नत राष्ट्रवादियो की 'आत्म निर्णय' की माँग को अस्वीकार किया और साथ ही पूर्ण सासद-सत्ता और उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को मान्यता दी। उसमें यह भी कहा गया —"भारत-वासियो की उन्नति और भलाई का दायित्व पार्लिया-मेन्ट पर है और केवल वह पार्लियामेन्ट ही इस बात का निर्णय कर सकती है कि (उत्तरदायित्व की) प्रत्येक किस्त कब दी जाएगी और कितनी बडी होगी।"

७

इस प्रकार मॉण्टफोर्ड सुधारो के केन्द्रीय प्रस्ताव ने प्रान्तीय स्वायत्तता के लिए दो महत्वपूर्ण बाते आरभ की—उच्च सत्ता के नियत्रण से स्वतत्रता और जनता के प्रति शक्ति का हस्तान्तरण।

प्रशासन के विषयो और आय की मदों को दो—केन्द्रीय और प्रान्तीय—वर्गों मे बाटा गया। अत्यन्त महत्वपूर्ण केन्द्रीय विषय ये थे :—रक्षा (इसमे सेना, नौसेना और हवाई सेना की गणना थी); विदेश-सम्बन्ध; देशी राज्यो से सम्बन्ध; रेलें (कुछ अपवादो को छोडकर); सैन्य महत्व के सचार साधन, डाक और तार, मुद्रा और टकण, सार्वजनिक ऋण; साम्राज्यीय राजस्व की मदें; दीवानी और फौजदारी कानून और पद्धति; धार्मिक (चर्च आदि से सम्बन्धित) व्यवस्था, अखिल भार-तीय नौकरियाँ, वैज्ञानिक एव औद्योगिक अनुसन्धान की केन्द्रीय सस्थाएँ; और ऐसे सब विषय जो स्पष्ट रूप से प्रान्तीय विषय घोषित न किए गए हो। महत्वपूर्ण प्रान्तीय विषय ये थे —स्थानीय स्वशासन; शिक्षा (कुछ अपवादो को छोडकर);

१. The Report on the Indian Constitutional Reforms 1918 page 123.

२. इसी पुस्तक का १७ वाँ अध्याय देखिए।

चिकित्सा विभाग; समार्जन और सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक निर्माण जैसे सडक, भवन, छोटी रेलवे लाइने, कृषि; उद्योग-धधो का विकास, आबकारी, पशु चिकित्सा विभाग, मनिक्षेत्र और सहयोग समितियाँ, दुर्भिक्ष सहायता, माल-गुजारी प्रशासन, सिचाई, वन, न्याय, पुलिस, जेल, फैक्ट्री निरीक्षण और श्रम-समस्या, प्रान्तीय ऋण, और ऐसे काम जिन्हे अभिकर्त्ता के रूप मे करना हो।

कार्याधिकार का यह विभाजन इतना निश्चित और कठोर नही था जैसा कि सघ-व्यवस्था मे होता है। यदि कभी इस बात पर सन्देह होता कि कोई विषय केन्द्रीय है अथवा प्रान्तीय, तो उस प्रश्न का निर्णय स-परिषद् गवर्नर-जनरल द्वारा होना था और यह निर्णय अन्तिम था। दूसरी बात यह थी कि भारत सरकार किसी भी विषय को (जो सूची के अनुसार केन्द्रीय हो) स्थानीय महत्त्व का बताकर, उसे प्रान्तीय विषय घोषित कर सकती थी। अन्त मे कुछ प्रान्तीय विषयो पर विधान बनाने के लिए स-परिषद् गवर्नर-जनरल की पूर्व-अनुमति लेना आवश्यक था।

इसी प्रकार राजस्व की मदो को दो वर्गों मे बाँटा गया था और विभाजित शीर्षको की व्यवस्था का अन्त कर दिया गया था, किन्तु केन्द्रीय सरकार के घाटे को पूरा करने के लिए प्रान्तीय अशदान की व्यवस्था की गई थी। भारत सरकार को अपना सारा व्यय चलाने के लिए नई मदो से राजस्व आय को जल्दी से जल्दी बढाना था और उपर्युक्त अशदान व्यवस्था केवल उसी समय तक के लिए थी।

राजस्व की मदो का बटवारा मेस्टन कमेटी की सिफारिशो के अनुसार किया गया था। राजस्व की निम्नलिखित मदे प्रान्तो को सौपी गई थी—मालगुजारी आबकारी, सिचाई, वन, स्टाम्प और निबन्धन। स आन्तरीय राजस्व मदो मे सोमा-शुल्क, आयकर, रेले, डाक और तार, नमक और अफीम की गणना थी। अन्य मदें भी इसी तरह केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारो के बीच विभाजित थी। बम्बई और बगाल को आपत्ति को कुछ हद तक दूर करने के लिए, आय-कर की अतिरिक्त उगाही मे से उन्हे २५ प्रतिशत का भाग दिया गया था, बशर्ते कि वह अतिरिक्त उगाही, आय के निर्धारण मे वृद्धि के कारण हो।

मेस्टन कमेटी ने यह अनुमान किया था कि राजस्व की मदो के नए बटवारे के कारण केन्द्रीय बजट मे सन् १९२१-२२ मे ९८३ ०६लाख रुपए का घाटा होगा। दूसरी ओर कमेटी ने यह अनुमान किया था कि प्रान्तो को कुल आय में १८५० लाख की विशुद्ध वृद्धि होगी। अत कमेटी ने केन्द्रीय घाटे को पूरा करने के लिए प्रान्तो का आरम्भिक अशदान निश्चित करने का आधार उनकी 'नई व्यय-सामर्थ्य' को बनाया। यह बात स्वीकार की गई कि यह आधार वस्तुत. साम्यामूलक नही था और आदर्श आधार 'देने की सामर्थ्य' पर होना चाहिए था। अत. इस बात का प्रस्ताव किया गया कि सात वर्षों के अन्दर वास्तविक अशदान आदर्श आधार के

अनुसार हो जाना चाहिए। इस बीच भारत सरकार को अपनी वित्तीय व्यवस्था इस प्रकार करनी थी कि वह प्रान्तीय अशदान की आवश्यकता से जल्दी से जल्दी मुक्त हो जाए। भारत सरकार द्वारा निश्चित आरम्भिक और मानक अशदान इस प्रकार थे :—

| प्रान्त | बढी हुई व्यय-सामर्थ्य (लाख रुपयो मे) | सन् १९२१-२२ का आरम्भिक अश दान (लाख रुपयो मे) | आरभिक अशदान का अनुपात (प्रतिशत) | भारत सरकार द्वारा निश्चित मानक प्रतिशत |
|---|---|---|---|---|
| मद्रास | ५,७६ | ३,४८ | ३५½ | १७/९० |
| बम्बई | ९३ | ५६ | ५½ | १३/९० |
| बगाल | १,०४ | ६३ | ६½ | १९/९० |
| सयुक्त प्रान्त | ३,९७ | २,४० | २४½ | १८/९० |
| पजाब | २,८९ | १,७५ | १८ | ९/९० |
| बर्मा | २,४६ | ६४ | ६½ | ६½/९० |
| बिहार तथा उडीसा | ५१ | × | × | × |
| मध्य प्रान्त | ५२ | २२ | २ | ५/९० |
| आसाम | ४२ | १५ | १½ | २½/९० |
| कुल जोड | १८,५० | ९,८३ | १०० | ९० |

भारत के ८ बडे प्रान्तो मे (जिनका उपर्युक्त तालिका मे नाम दिया गया है) एक-सी शासन-व्यवस्था व्यवहार मे लाई गई। इस समय बर्मा को छोड दिया गया था किन्तु १९२२ मे बर्मा मे और १९३१ मे उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रान्त में उसी व्यवस्था को कार्यान्वित किया गया। ये सब 'गवर्नरो के प्रान्त' कहलाते थे।

मॉण्टफोर्ड सुधारो के फलस्वरूप, प्रत्येक गवर्नर के प्रान्त मे व्यवहार मे आने वाली व्यवस्था, द्वैध-प्रणाली के नाम से प्रसिद्ध है। प्रान्तीय विषयो को दो वर्गों में विभाजित किया गया था—'सरक्षित' और 'हस्तान्तरित'। हस्तान्तरित विषयों मे स्थानीय स्वशासन, शिक्षा, चिकित्सा, समार्जन, सार्वजनिक स्वास्थ्य, सार्वजनिक निर्माण, कृषि, उद्योग-धधो का विकास, आबकारी, पशु-चिकित्सा, मीन क्षेत्र और सहयोग समितियो की गणना थी। सरक्षित विषयो की सूची मे निम्नलिखित विभाग थे—वित; मालगुज़ारी, दुर्भिक्ष सहायता; न्याय, पुलिस, जेल, सुधारालय, जन-जाति, समाचार-पत्रो, छापेखानो और पुस्तको का नियत्रण; सिंचाई और जल-मार्ग, फैक्ट्रियों का निरीक्षण, खाने, बिजली, गैस, बॉइलर, मोटर गाडी, श्रम-हित और औद्योगिक झगडे; अपवर्जित क्षेत्र और सार्वजनिक सेवाए; और

अभिकर्त्ता के कार्य। सरक्षित विषयो के उचित प्रबध के लिए प्रान्तीय सरकारे (१९१९ के ऐक्ट के अनुसार) भारत मत्री और ब्रिटिश पार्लियामेन्ट के द्वारा इगलैंड को जनता के प्रति उत्तरदायी थी। हस्तान्तरित विषयो मे सुशासन का उत्तरदायित्व, प्रान्तीय विधान-परिषदो द्वारा, प्रान्तीय मतदाताओ पर था। ऐसी परिस्थितियो मे प्रान्तीय सरकारो को उच्चतर सत्ता के नियत्रण से मुक्त करना सभव नही था। अत केवल हस्तान्तरित विषयो के क्षेत्र मे ही भारत मत्री और भारत सरकार के नियत्रण मे कुछ वास्तविक कमी हुई।

सयुक्त-प्रवर-समिति ने यह मत प्रकट किया था कि सरक्षित विषयो के प्रशासन के सबध मे, प्रविधानीय रूप से नियत्रण कम करना न तो वाछनीय था और न उसकी कोई आवश्यकता ही थी। किन्तु उसने यह सुझाव दिया था कि व्यवहार द्वारा एक ऐसी परपरा डाली जावे कि "जब प्रान्तीय सरकार और विधान-मडल किसी विषय पर सहमत हो तो साधारणतया उनके दृष्टिकोण को मान्यता दी जावे और ऐसे अवसरो पर भारत मत्री और भारत सरकार हस्तक्षेप न करे जब तक कि किसी केन्द्रीय विषय की सुरक्षा के लिए हस्तक्षेप करना आवश्यक न हो।[1] हस्तान्तरित विषयो के सबध मे सयुक्त-प्रवर-समिति ने इस बात की सिफारिश की थी कि भविष्य मे भारत मत्री और भारत सरकार का नियत्रण कम-से-कम होना चाहिए।[1] इस उद्देश्य से प्रविधानीय नियम बनाए गए जिनके अनुसार केवल निम्नलिखित बातो के लिए सपरिषद गवर्नर-जनरल मे अधीक्षण, निर्देशन और नियत्रण के अधिकार निहित किए गए —

(१) केन्द्रीय विषयो के प्रशासन के रक्षण के लिए,

(२) सबधित प्रान्तो मे मतभेद होने पर उनके प्रश्नो का निपटारा करने के लिए, और

(३) ऐक्ट की निम्नलिखित धाराओ अर्थात् एस २९ए, एस ३९ (१ए), भाग ७ ए के सबध मे अथवा उनके उद्देश्य से अथवा उनके अन्तर्गत भारत मत्री द्वारा अथवा उसकी अनुमति से बनाए हुए नियमो के अनुसार सपरिषद गवर्नर-जनरल के निहित अथवा प्रदत्त अधिकारो और कर्त्तव्यो का उचित रूप से पालन करने के लिए।"[2]

उपर्युक्त तीन विषयो के अतिरिक्त निम्नलिखित दो विषयो मे भी भारत-

---

१. Mukherjee : Indian Constitutional Documents, Part II, page 524.

२. Sapru: The Indian Constitution, pages 21-22 ऐक्ट के इन निर्दिष्ट विभागो का ठेको, नियुक्तियो और हाई कमिश्नर द्वारा उगाहे हुए प्रान्तीय ऋणो आदि से सम्बन्ध था।

मत्री को अधीक्षण, नियत्रण और निर्देशन का अधिकार था'—

(४) "साम्राज्यीय हितो के सरक्षण के लिए"; और

(५) "भारत और साम्राज्य के अन्य भागो के बीच मे कोई प्रश्न उपस्थित होने पर उसके सम्बन्ध मे भारत सरकार की स्थिति निश्चित करने के लिये।"[१]

इस प्रकार निक्षेपण सम्बन्धी नियमो ने भारत सरकार और भारत-मंत्री के नियत्रण को हस्तान्तरित विषयो के कुछ निर्दिष्ट मामलो तक सीमित किया। किन्तु व्यवहार मे सिविल सर्विस और वित्त विभाग के द्वारा भारत मत्री का नियत्रण और प्रभाव, हस्तान्तरित विषयो के सारे क्षेत्र पर था। अखिल भारतीय नौकरियो के सदस्य जो हस्तान्तरित विभागो का वस्तुत सचालन करते थे, मत्रियो के नियत्रण के आधीन नही थे। गवर्नर तक उनकी निजी पहुँच थी और उनके हित भारत-मंत्री द्वारा सरक्षित थे। वित्त विभाग सरक्षित विषय था और उसका हस्तान्तरित क्षेत्र पर व्यवहार मे बहुत बडा नियत्रण था। इस प्रकार भारत-मंत्री और भारत-सरकार परोक्ष रूप से सारे हस्तान्तरित क्षेत्र पर बहुत बडा प्रभाव डाल सकते थे।

अस्तु, जहाँ तक प्रान्तीय सरकारो पर नियत्रण मे कमी करने का प्रश्न है, वहाँ यह बताना आवश्यक है कि निक्षेपण नियमो ने वित्तीय और विधानीय निक्षेपण की भी व्यवस्था की थी। वित्तीय क्षेत्र मे प्रान्तो को, कुछ बातो मे भारत सरकार को सूचना देने के अभ्यधीन, अपना बजट बनाने का अधिकार दिया गया था। जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्रान्तो को राजस्व की पृथक् मदे प्रदान कर दी गई थी, उन्हे नए टैक्स लगाने का अधिकार भी दिया गया था—अनुसूची नं० १ में लिखित टैक्सो के सम्बन्ध में भारत सरकार से पूर्व-अनुमति लेने की आवश्यकता नही थी। अन्य नए टैक्सो के लिए भारत सरकार की अनुमति लेना अब भी आवश्यक माना गया। प्रान्तीय सरकारो को अपने प्रान्तीय राजस्व की प्रतिभूति पर सार्वजनिक उपयोगिता के स्थायी कामो के लिए—जैसे सिचाई-योजना, दुर्भिक्ष-सहायता आदि के लिए—सार्वजनिक ऋण उगाहने का अधिकार भी दिया गया। किन्तु प्रत्येक ऋण—उसके निश्चित परिमाण, उसकी व्याज दर और उसके भुगतान करने की व्यवस्था—के सम्बन्ध मे भारत सरकार की स्वीकृति लेना आवश्यक था। सरक्षित विभागो के व्यय पर नियत्रण कम करने के लिए कोई नियम नही बनाए गए थे किन्तु हस्तान्तरित विभागो के व्यय के सम्बन्ध मे भारत मंत्री और भारत-सरकार के नियत्रण को कम करने के लिए प्रविधानीय नियम बनाए गए थे और उनके स्थान पर इस नियत्रण का अधिकार प्रान्तीय विधान-मंडलो को सौप दिया

१ Horne : The Political System of British India, page 92.

गया था। निक्षेपण नियमो मे सार्वजनिक नौकरियो के वेतन, भत्ते और निवृत्ति वेतन के सम्बन्ध मे और साथ ही इगलैंड से (सरकारी) सामान क्रय करने के अधिकार के सम्बन्ध मे सरक्षण की व्यवस्था कर दी गई थी।

विधानीय निक्षेपण के क्षेत्र मे १९१९ के ऐक्ट ने प्रान्तीय विधायिका सभाओ को प्रान्त के सुशासन और शान्ति-व्यवस्था के लिए विधि बनाने का अधिकार दिया। भारतीय विधान-कार्य के विषयो के अतिरिक्त अन्य प्रान्तीय विषयो पर विधि बनाने के लिए गवर्नर-जनरल की पूर्व-स्वीकृति की आवश्यकता नही थी। किन्तु और बहुत से विषयो मे (जैसे केन्द्रीय विषयो पर विधि बनाने के सम्बन्ध मे अनुसूची न० १ मे निर्दिष्ट टैक्सो के अतिरिक्त अन्य नए टैक्सो के लिए विधि बनाने के सम्बन्ध मे, ऐसे टैक्सो को रद्द करने अथवा सशोधित करने के सम्बन्ध में, जिन्हे सन् १९१९ से पहले प्रान्तीय विधान-मडल के अतिरिक्त अन्य किसी सत्ता ने बनाया हो, और ऐसे टैक्सो को रद्द करने अथवा सशोधित करने के सम्बन्ध मे, जिन्हे सन् १९१९ के बाद भारत सरकार ने बनाया हो), गवर्नर-जनरल की पूर्व-स्वीकृति लेना आवश्यक था।

गवर्नरो को प्रान्तीय विधान मडलो द्वारा स्वीकृत, कुछ निर्दिष्ट प्रकार के विधेयको को गवर्नर-जनरल के विचारार्थ सुरक्षित रखना आवश्यक था; और १९१९ के ऐक्ट ने गवर्नर-जनरल को प्रान्तीय विधान-मडल द्वारा स्वीकृत किसी विधयक को निषिद्ध करने का अधिकार भी दिया।

इस प्रकार १९१९ के ऐक्ट और उसके अन्तर्गत बने हुए निक्षेपण नियमो ने प्रान्तीय सरकारो को पूर्ण रूप से स्वायत्त नही बनाया। दूसरी ओर प्रान्तीय सरकारो को अब भी सपरिषद् गवर्नर-जनरल की आज्ञाओ का पूरी तरह पालन करना आवश्यक था और उन्हे अपनी कार्यवाहियो और अन्य महत्वपूर्ण विषयो के सम्बन्ध मे भारत सरकार को बराबर पूरी तरह परिचित रखना था। तथापि प्रान्तीय स्वायत्तता की दिशा मे एक महत्त्वपूर्ण कदम उठाया गया था। किन्तु मॉण्टफोर्ड सुधारो ने इससे भी ज्यादा महत्वपूर्ण एक कदम और उठाया था—वह था आठ (बाद मे दस) प्रान्तो मे आशिक उत्तरदायित्व की व्यवस्था का आरम्भ। प्रत्येक गवर्नर के प्रान्त की सरकार को दो भागो मे बाँटा गया था—संरक्षित विभाग जो स-परिषद गवर्नर के आधीन थे, और हस्तान्तरित विभाग जो गवर्नर की अध्यक्षता मे मत्रियो के आधीन थे—एक विभाग का ब्रिटिश मतदाताओ के प्रति उत्तरदायित्व था और दूसरे विभाग का प्रान्तीय मतदाताओ के प्रति।

जैसा कि सयुक्त प्रवर समिति ने कहा था गवर्नर नई प्रातीय शासन-व्यवस्था की कीली था। सम्राट् द्वारा उसकी नियुक्ति पाँच वर्ष के लिए होती थी। तीन प्रेसिडेन्सियों के लिए साधारणतया इग्लैंड के सार्वजनिक जीवन के लोग गवर्नर

नियुक्त किए जाते थे और अन्य पाँच प्रान्तो के लिए साधारणतया ज्येष्ठ लोक-सेवक छाँटे जाते थे जिनके सम्बन्ध मे प्रविधान के अनुसार गवर्नर-जनरल से परामर्श करना आवश्यक था। कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यो की नियुक्ति भी सम्राट् द्वारा की जाती थी। उनका कार्यकाल पाँच वर्ष के लिए निश्चित था और उनका वेतन भी ऐक्ट द्वारा निश्चित था। गवर्नमेट आँव इडिया एक्ट ने कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यों की अधिकतम सख्या चार निश्चित की थी किन्तु सयुक्त प्रवर समिति का यह मत था कि अधिकाश प्रान्तो मे दो से अधिक सदस्यो की नियुक्ति करने की आवश्यकता नही होगी। प्रविधान के अनुसार परिषद् के लिए कम-से-कम बारह वर्ष के अनुभवी एक लोक-सेवक की नियुक्ति करने का नियम था। कार्यकारिणी परिषद् मे किसी भारतीय सदस्य की नियुक्ति के लिए कोई प्रविधानीय व्यवस्था नही की गई थी, किन्तु यह बात उपलक्षित थी कि उक्त दो सदस्यो में से कम-से-कम एक सदस्य गैर-सरकारी भारतीय होगा। सयुक्त प्रवर समिति की सिफारिश के अनुसार कार्यकारिणी के लिये दो यूरोपियनो की नियुक्ति होने की दिशा मे दो गैर-सरकारी भारतीयो की भी नियुक्ति होनी थी।

गैर-सरकारी व्यक्तियो मे से गवर्नर द्वारा मत्रियो की नियुक्ति होनी थी, जिनके लिए यह आवश्यक था कि वे प्रान्तीय विधान-मडल के निर्वाचित सदस्य हो अथवा नियुक्ति के बाद छ महीने के अन्दर ही निर्वाचित सदस्य हो जावे। सयुक्त प्रवर समिति के अनुसार ऐसे ही व्यक्ति मत्री नियक्त किए जाने थे जिन्हे विधान-परिषद् का विश्वास प्राप्त हो सकता था और जो उसका नेतृत्व कर सकते थे। मत्रियो की प्रतिष्ठा वही होनी थी जो कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यो की थी और उन्हे वही वेतन मिलना था जो कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यो को मिलता था—किन्तु विधान-परिषद् आवश्यक समझने पर वोट द्वारा उस वेतन को घटा सकती थी। ऐक्ट के अनुसार "इस प्रकार नियुक्त किए हुए मत्री का कार्य-काल गवर्नर के प्रसाद पर्यन्त था।[1] प्रविधान मे मत्रियो की अधिकतम सख्या निश्चित नही की गई थी, किन्तु सयुक्त प्रवर समिति का यह मत था कि "किसी भी प्रान्त मे दो से कम मत्रियो की आवश्यकता नही होगी और कुछ प्रान्तो मे अधिक मत्रियो की आवश्यकता होगी।"[2] गवर्नर के स्वविवेक पर कार्यकारिणी परिषद् के सदस्यो ओर मत्रियों की सहायता के निमित्त परिषद् कार्यवाह नियुक्त करने के लिए ऐक्ट मे व्यवस्था की गई थी। परिषद् कार्यवाहो की नियुक्ति विधान-परिषद् के गैर-सरकारी सदस्यो मे से की जानी थी

१. Mukherjee : The Indian Constitution Part I. page 228.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ५१२.

और उनको विधान-परिषद् द्वारा निश्चित वेतन मिलना था।

सरक्षित विषयो का शासन, गवर्नर द्वारा बनाए हुए नियमों के अनुसार स-परिषद् गवर्नर द्वारा होना था। कार्यकारिणी परिषद् मे मतभेद होने पर विषयों का निर्णय बहुमत के अनुसार होना था। परिषद् मे समान मत होने पर अध्यक्ष को दूसरा अथवा निर्णायक वोट देने का अधिकार था। किन्तु यदि गवर्नर के मतानुसार, "उसके प्रान्त अथवा उसके किसी भाग की शान्ति, सुरक्षा अथवा हितो पर मौलिक प्रभाव पडता हो" तो वह अपनी परिषद् के बहुमत के निर्णय का प्रविधान के आधार पर उल्लघन कर सकता था।[1]

गवर्नमेट आव इडिया ऐक्ट,१९१९,के अनुसार हस्तातरित विषयो का शासन गवर्नर को अपने मत्रियो के परामर्श से करना था किंतु उसको मत्रियों की सलाह को अस्वीकार करने और अपने निर्णयानुसार काम करने का अधिकार था। दूसरी ओर मत्रिगण त्याग-पत्र दे सकते थे। "अन्तिम स्थिति मे गवर्नर अपनी विधान-परिषद् का विलोपन कर सकता था और नए निर्वाचन के बाद नए मत्री छाँट सकता था, किन्तु सयुक्त प्रवर समिति ने यह आशा प्रकट की थी कि इस मार्ग के अपनान पर गवर्नर एक ऐसी स्थिति मे पहुँच जाएगा कि विलोपन के विषय पर वह नए मत्रियों के विचारो को स्वीकार कर सकेगा।"[2] किन्तु आयात की दशा मे, जिसके लिए गवर्नर-जनरल के पास सत्यापन करने का नियम था, गवर्नर को इस बात का अधिकार था कि वह मत्रियो के रिक्त स्थानो की पूर्ति न करे और हस्तान्तरित विषयो के शासन को अस्थायी रूप से अपने हाथो मे ले ले। यह अधिकार, इस सम्बन्ध मे बनाए हुए एक नियम के कारण और भी सबल हो गया था, जिसके अनुसार भारत मत्री की पूर्व-अनुमति से गवर्नर-जनरल किसी हस्तान्तरित विषय का निश्चित समय के लिए निलम्बन कर सकता था।

यह एक विचित्र बात है कि मॉण्टफोर्ड सुधारो मे मत्रियो की सयुक्त सभा के लिए कोई व्यवस्था नही की गई थी। गवर्नरो को जो अनुदेश दिये गये थे उनके अनुसार गवर्नर के लिए यह आवश्यक नही था कि वह मत्रियो के सयुक्तरूप से परामर्श करे अथवा मत्रियो की एक मडल के रूप मे सभा करे। ऐक्ट के अनुसार गवर्नर द्वारा विभिन्न मत्रियो की नियुक्ति पृथक् रूप से होनी थी और वे विधान-मडल मे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होने थे। यह बात पूर्ण रूप से गवर्नर के स्वविवेक पर छोड दी गई थी कि वह अपने मत्रियो की नियुक्ति एक ही राजनैतिक पार्टी मे से करे अथवा विभिन्न राजनैतिक दलो मे से करे अथवा वह ऐसे व्यक्तियो को मत्री नियुक्त

१. Mukherjee The Indian Constitution Part I, page 226.

२. उपर्युक्त पुस्तक, भाग २ पृष्ठ ५१२.

करे जो किसी राजनैतिक दल के सदस्य न हो और साथ ही वह उनसे व्यक्तिगत रूप से परामर्श करे अथवा सयुक्त रूप से। विवश होकर किसी एक मत्री के त्याग-पत्र देने की दशा मे मत्रिगण व्यवहार द्वारा सयुक्त रूप से त्याग-पत्र देने की परंपरा डाल सकते थे। यह सच है कि सयुक्त प्रवर समिति ने इस बात की आशा की थी कि मत्रिगण एक साथ मिल कर काम करेगे और उन्होने इस बात की सिफारिश भी की थी किन्तु इस सम्बन्ध मे कोई वास्तविक व्यवस्था नही की गई थी। अनुदेशों के लेख मे यह अवश्य कहा गया था कि गवर्नर को चाहिए कि वह अपने मत्रियो के लिए निर्देशक के रूप मे काम करे, विधान-परिषद् से उनके सम्बन्ध के सिलसिले मे उनको परामर्श दे और जहाँ तक सभव हो उन्हे साधारणतया अपना समर्थन प्रदान करे और साथ ही जब तक उसे यह निश्चय न हो जावे कि मत्रियो ने परिषद् का विश्वास खो दिया है तब तक उन्हे उनके पदो पर बना रहने दे।

इस प्रकार प्रत्येक प्रान्त की सरकार को दो पृथक्, सुनिश्चित भागो मे बाँटा गया था। कोई विषय सरक्षित है अथवा हस्तान्तरित, इसका निपटारा गवर्नर द्वारा होना था और उसका निर्णय अन्तिम था। किन्तु वित्त-विभाग का दोनो से समान सम्बन्ध था और उस पर बहुत हद तक दोनो भागो का कुशल सचालन निर्भर था।

निक्षेपण नियमो की व्यवस्था के अनुसार सरक्षित और हस्तान्तरित विषयो मे राजस्व का वितरण सरकार के दोनो भागो के पारस्परिक समझौते के आधार पर होना था। सयुक्त प्रवर समिति ने यह विश्वास प्रकट किया था कि साधारणतया ऐसा समझौता करने मे जो दोनो पक्षो को मान्य हो, कोई कठिनाई नही होगी—"उचित लेन-देन और समझदारी के आधार पर इस समस्या का सरलता से हल किया जा सकता है।" तथापि मतभेद की दशा मे गवर्नर को "सरक्षित और हस्तान्तरित विषयो के लिए राजस्व और अवशेष का बँटवारा करने का अधिकार दिया गया था।" गवर्नर द्वारा बँटवारे की आज्ञा की अवधि मे, किसी नए टैक्स के कारण राजस्व मे वृद्धि होने पर, उसकी आय टैक्स लगानेवाले भाग को ऋण उगाहने अथवा अतिरिक्त टैक्स लगाने के प्रस्तावो पर सयुक्त रूप से विचार करने का नियम था, किन्तु उन पर प्रत्येक भागको पृथक् रूप से निर्णय करना था।

यह थी मॉण्टफोर्ड सुधारो की द्वैध शासन व्यवस्था। सयुक्त प्रवर समिति ने उसको कार्यान्वित करने के ढग पर भी प्रकाश डाला था। समिति ने यह मत प्रकट किया था कि "सारे महत्त्वपूर्ण विषयो पर गवर्नर की अध्यक्षता मे कार्य-कारिणी परिषद् के सदस्यो और मत्रियो मे सयुक्त रूप से विचार करने की परिपाटी विकसित की जाए। ऐसे विषयो पर अत्यधिक परामर्श और मत्रणा के लिए स्थान

नहीं हो सकता ;"[1] किन्तु एक बार विचार-विनिमय हो जाने के बाद उन पर पृथक् रूप से निर्णय होना चाहिए—ताकि प्रत्येक सरकारी काम और कार्यवाही का उत्तरदायित्व निश्चित और स्पष्ट हो।

इस प्रयोग की सफलता गवर्नर के केन्द्रीय व्यक्तित्व पर निर्भर थी। अनुदेशो के लेख के अनुसार वह "भारत मे सुशासन का मानक बनाए रखने के लिए और भारत को स्वशासन के लिए उपयुक्त बनाने के उद्देश्य से विभिन्न परिवर्तनो को प्रोत्साहन देने के लिए पार्लियामेट के प्रति उत्तरदायी था।"[2] सयुक्त प्रवर समिति के अनुसार उसे "अपसारी नीतियो और विभिन्न आदर्शों मे सतुलन करना था और मतभेद तथा विरोध को रोकना था।"[3] उसे नए अनुभवहीन मत्रियो के लिए "निर्देशक, मित्र और प्रेरक" के रूप मे काम करना था। उसे उन्हे मत्रणा और चेतावनी देनी थी, प्रोत्साहन देना था, किन्तु उसे उन्हे स्वय ही निर्णय करने के अवसर देना था ताकि वे ठोकर खाकर अनुभव से शिक्षा ले सके। अनुदेशो के लेख के अनुसार उस पर निम्नलिखित बातो का दायित्व था, "प्रान्त मे सुरक्षा और शान्ति बनाए रखना" और धार्मिक तथा जातीय झगडो को रोकना; मुसलमानो और अन्य अल्पसख्यको के हितो की रक्षा करना, दलित, पिछडी हुई और मौल जन-जातियो की उन्नति को प्रोत्साहन देना, "यूरोपियनो और आग्ल-भारतीयो के उचित वैध हितो का सरक्षण करना", लोक सेवाओ के सदस्यो के अधिकारो और विशेषाधिकारो का सरक्षण करना, वाणिज्य और उद्योग से सम्बन्धित विषयो मे अनुचित भेदभाव को रोकना, व्यापारिक एकाधिपत्य अथवा विशेषाधिकार के अनुदान से, सर्वसाधारण के हितो को क्षति न पहुँचने देना। इन दायित्वो के सम्बन्ध मे कर्तव्य पालन करने के लिए गवर्नरो को विस्तृत अधिकार प्रदान किए गए थे। वे अपनी परिषदो की उपेक्षा कर सकते थे, अपने मत्रियो को पदच्युत कर सकते थे, द्वैधशासन व्यवस्था का अस्थायी रूप से निलम्बन कर सकते थे, विधान को निषिद्ध कर सकते थे, सरक्षित विभागो से सम्बन्धित नीति और व्यय का, विधान-मडल की अस्वीकृति होते हुए भी, निबन्धन कर सकते थे।

८

प्रान्तो में उत्तरदायी शासन-व्यवस्था आरम्भ करने के सम्बन्ध मे निर्णय

---

१. Mukherjee : The Indian Constitution, Part II, page 513.

२. उपर्युक्त पुस्तक, भाग १ पृष्ठ २१६.

३. उपर्युक्त पुस्तक, भाग १, पृष्ठ ४१३-१४।

कर लेने पर विधान-मडलो मे सुधार करने का प्रश्न बडा महत्वपूर्ण हो गया। मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट ने प्रान्तो मे दूसरे (विधायिका) भवन स्थापित करने के प्रस्ताव का विरोध किया, किन्तु इस बात का प्रस्ताव किया कि "प्रत्येक प्रान्त मे एक विस्तृत विधान-परिषद् होनी चाहिए, विभिन्न प्रान्तो की परिषदो का आकार और उनकी रचना भिन्न होनी चाहिए, उनमे निर्वाचित सदस्यो का बहुत बडा बहुमत होना चाहिए और उनमे आवश्यक साम्प्रदायिक और विशेष प्रतिनिधित्व होना चाहिए।[1]

ऐक्ट के अन्तर्गत बनाए हुए नियमो के अनुसार गवर्नरो के प्रान्तो की विधान-परिषदो के सदस्यो की सख्या इस प्रकार निश्चित की गई थी:—बगाल १३९; बम्बई १११, मद्रास १२७, यू पी. १२३; पजाब ९३; बिहार तथा उडीसा १०३; मध्यप्रान्त ७०, आसाम ५३। मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट ने इस बात की सिफारिश की थी कि सरकारी सदस्यो की सख्या कुल के २० प्रतिशत से अधिक नही होनी चाहिए और निर्वाचित सदस्यो की सख्या ७० प्रतिशत से कम नही होनी चाहिए। कुछ वर्गो और हितो को प्रतिनिधित्व देने के लिए गैर सरकारी व्यक्तियों का नाम-निर्देशन होना था। इन सिफ़ारिशो को सयुक्त प्रवर समिति और पार्लियामेन्ट ने स्वीकार किया और उनको गवर्नमेन्ट ऑव इडिया ऐक्ट के अन्तर्गत बनाए हुए नियमो मे रूप दिया गया।

मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट ने यथासभव विस्तृत मताधिकार पर अवलम्बित प्रत्यक्ष निर्वाचन-व्यवस्था अपनाने की सिफारिश की थी। किन्तु कुछ समुदायो और विशेष हितो के लिए साम्प्रदायिक और विशेष निर्वाचन क्षेत्र बनाने के लिए कहा गया था। मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट के प्रवर्तको को इस बात का विश्वास था कि पृथक् साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रो की व्यवस्था उत्तरदायी सरकार के विकास के लिए, लोगो मे नागरिक भावना की वृद्धि के लिए और पिछड़ी हुई जातियो की प्रगति के लिये घातक थी। उस व्यवस्था के फलस्वरूप पिछड़े हुए समुदायों के स्व-आयास और प्रगति के लिये कोई प्रोत्साहन नही मिल सकता था और उसमे विभिन्न समुदायो के तत्कालीन पारस्परिक सम्बन्धो के स्थिर हो जाने का डर था। तथापि मि० मांण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने मुसलमानो के लिये वही व्यवस्था बनाये रखना आवश्यक समझा और मॉर्ले-मिण्टो सुधारो के समय दी हुई प्रतिज्ञा को उसका कारण बताया। किन्तु उन्होने लिखा, "जिन प्रान्तो मे मुसलमान-मतदाताओं का बहुमत है वहाँ साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था करने के लिए हमें कोई कारण

---

१ The Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, page 146.

दिखाई नही देता।"[1] अन्य समुदायों ने—जैसे पजाब मे सिक्खो ने, मद्रास में अ-ब्राह्मणो ने, भारतीय ईसाइयो ने, आग्ल-भारतीयो ने, यूरोपियनो ने और बम्बई मे लिगायतो ने[2]—माण्टेगु मिशन से, स्वाभाविक रूप मे इस बात पर जोर दिया कि मुसलमानो की भाँति उनके लिए भी साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था अपनाई जाए। मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट के लेखक साम्प्रदायिक व्यव था को साधारणतया विस्तृत करने के विरोधी थे और उन्होने एक अपवाद (सिक्खो) को छोड कर इन समुदायो की माँगो को अस्वीकार कर दिया। उनका यह मत था कि "पजाब के सिक्खो का पृथक् और महत्वपूर्ण समुदाय है, भारतीय सेना को उस समुदाय से साहसी एव महत्वपूर्ण अश प्राप्त होता है, किन्तु वे सभी जगह अल्पसख्यक है और अनुभव से यह प्रकट हुआ ह कि उन्हे लगभग कोई प्रतिनिधित्व प्राप्त नही होता। अतः हम सिक्खो के लिए भी और केवल उन्ही के लिए उस व्यवस्था को अपनाना चाहते है जिसे मुसलमानो के सम्बन्ध मे अपनाया गया है।"[2] किन्तु जब मुसलमानो और सिक्खो के लिए एक बार उस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया तो उसे अन्य समुदायो के लिए अस्वीकार करना असभव था और मताधिकार कमेटी ने निम्नलिखित समुदायो के लिए साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्र की व्यवस्था अपनाने की सिफारिश की—मद्रास मे भारतीय ईसाइयो के लिए बम्बई, मद्रास, बगाल, यू पी, बिहार तथा उडीसा मे यूरोपियनो के लिए, और मद्रास तथा बगाल मे आग्ल-भारतीयो के लिए। कमेटी ने मद्रास के अ-ब्राह्मणो के और बम्बई के मराठों के सम्बन्ध मे भी सहानुभूतिपूर्वक विचार किया और इस बात की सिफारिश की कि जिन निर्वाचन-क्षेत्रो मे एक से अधिक सदस्य चुने जाने हो उनमे उनके लिए स्थान सुरक्षित रखे जाएँ।

इस प्रकार १९१९के ऐक्ट के अतर्गत बने हुए नियमो के अनुसार मुसलमानों सिक्खो, भारतीय ईसाइयो, यूरोपियनो और आग्ल-भारतीयो को पृथक् प्रतिनिधित्व प्राप्त हुआ और अ-ब्राह्मणो और मराठों के लिए स्थान सुरक्षित किए गए। नियमों ने जमीदारो, वाणिज्य और उद्योग, रोपक और खनिज हितो के लिये और साथ ही विश्वविद्यालयोके लिए विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो द्वारा विशेष प्रतिनिधित्व की व्यवस्था भी की। दलित वर्गो, श्रम आदि के लिए नाम निर्देशन द्वारा प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की गई। किन्तु स्त्रियो के प्रतिनिधित्व के लिए कोई व्यवस्था नही की गई, क्योकि विदेशियो के लिए इस कोमल विषय पर निर्णय करना उपयुक्त नही समझा गया : उसका निर्णय नई, सुधरी हुई परिषदो के लिए छोड दिया गया।

---

१. The Report on Indian Constitutional Reforms 1918, page 149.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १५०

नए सविधान मे निर्वाचन के सम्बन्ध मे एक भेद और किया गया था। यह भेद था शहरी और ग्राम्य निर्वाचन-क्षेत्रो मे। इस विषय पर मताधिकार कमेटी की विवेचना से भारत सरकार असहमत थी। उसने अपने पाँचवे राजपत्र मे लिखा: "यह विषय महत्वपूर्ण है और उसमे समझदारी से काम लेने की आवश्यकता है। धर्म और जाति के बाद, भारतीय लोगो को विभाजित करनेवाली सबसे बडी रेखा शहरो और गाँवो के बीच मे है। इस रेखा मे विभाजन होता है, प्रगति और पिछडेपन में; अग्रेज़ी शिक्षा और देशी शिक्षा मे, स्वशासन के अनुभव और उस अनुभव के अभाव मे, समाचार पत्रो, पुस्तकालयो, वृत्तियो, समितियो आदि की व्यवस्था और उसके अभाव मे।"[1] वस्तुत इस तर्क के अनुसार भारत सरकार को शहरी क्षेत्रो के प्रतिनिधित्व मे काफी वृद्धि करनी चाहिए थी क्योकि उनके मत से परिषदो मे सदस्य भेजने के लिए शहरी वर्ग ही सबसे ज्यादा उपयुक्त थे। किन्तु भारत सरकार ज्यादा पिछडी हुई और वश्य परिषदे चाहती थी और उसमे मताधिकार कमेटी द्वारा शहरी क्षेत्रो को दिए हुए स्थानो मे काफी कमी करने की सिफारिश की।

सयुक्त प्रवर समिति ने भी ग्राम्य क्षेत्रो के लिए प्रतिनिधित्व बढाने के प्रस्ताव का समर्थन किया।

२० जुलाई १९२० के नियमो ने विभिन्न जातियो, हितो आदि के लिए वस्तुत कितने स्थान प्रदान किए, इस सम्बन्ध मे चर्चा करने से पहले दो तथ्यो की ओर ध्यान दिलाना उपयुक्त होगा (१) सरकार ने विभिन्न प्रान्तो मे मुसलमानो को स्थान प्रदान करने के लिए दिसम्बर १९१६ के लखनऊ-समझौते को स्वीकार किया, और (२) गवर्नर को अधिकार दिया गया, जिसके अनुसार वह प्रत्येक विधेयक के सम्बन्ध मे परिषद् की सहायता करने के उद्देश्य से उस समय के लिए दो (आसाम के लिए एक) विशेषज्ञो को साधारण सदस्य के रूप मे नाम-निर्देशित कर सकता था। विभिन्न प्रान्तो की विधान-परिषदो की रचना के सम्बन्ध मे उपयुक्त आकडो को दो तालिकाओ मे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है —

१. Mukherjee : The Indian Constitution, Part II page 464.

१. इस तालिका मे विभिन्न प्रान्तीय परिषदों की रचना को प्रकट किया गया है:

| विधान-परिषद् का नाम | नाम-निर्देशित सदस्य | | | निर्वाचित सदस्य | | | | | | | | | | | निर्वाचित सदस्यो की कुल सख्या | सदस्यो की कुल संख्या |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | | | | साधारण निर्वाचन क्षेत्रो से | साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रो से | | | | | विशेष निर्वाचन क्षेत्रो से | | | | | | |
| | सरकारी | गैर-सरकारी | कुल | | मुसलमान | सिख | भारतीय ईसाई | यूरोपियन | आग्ल-भारतीय | कुल | जमींदार | विश्वविद्यालय | वाणिज्य आदि | कुल | | |
| १. मद्रास | २३ | ६ | २९ | ६५ | १३ | .. | ५ | १ | १ | २० | ६ | १ | ६ | १३ | ९८ | १२७ |
| २. बम्बई | २० | ५ | २५ | ४६ | २७ | .. | . | २ | .. | २९ | ३ | १ | ७ | ११ | ८६ | १११ |
| ३. बगाल | २० | ६ | २६ | ४६ | ३९ | .. | | ५ | २ | ४६ | ५ | १ | १५ | २१ | ११३ | १३९ |
| ४. यू० पी० | १८ | ५ | २३ | ६० | २९ | . | | १ | .. | ३० | ६ | १ | ३ | १० | १०० | १२३ |
| ५. पजाब | १६ | ६ | २२ | २० | ३२ | १२ | .. | .. | .. | ४४ | ४ | १ | २ | ७ | ७१ | ९३ |
| ६. बिहार तथा उडीसा | २० | ७ | २७ | ४८ | १८ | .. | .. | १ | | १९ | ५ | १ | ३ | ९ | ७६ | १०३ |
| ७. मध्यप्रान्त | १० | ६ | १६ | ४० | ७ | .. | .. | .. | . | ७ | ३ | १ | ३ | ८ | ५४ | ७० |
| ८. आसाम | ९ | ५ | १४ | २१ | १२ | .. | .. | .. | .. | १२ | .. | .. | ६ | ६ | ३९ | ५३ |

इस प्रकार प्रान्तो की विधान-परिषदे काफी बडी कर दी गई थी और उन्हें विभिन्न समुदायो और हितो की दृष्टि से अधिक प्रतिनिधिपूर्ण बना दिया गया था। निर्वाचित सदस्यो का अनुपात बहुत बढा दिया गया था, हर प्रान्त मे उनका बहुत बडा बहुमत था। सारी परिषदो की कुल सख्या मे उनका ७७ ८ प्रतिशत[1] भाग था। किन्तु नई परिषदे लोकतन्त्रीय अथवा वस्तुत लोक प्रतिनिधिपूर्ण नही कही जा सकती थी। मताधिकार प्रत्यक्ष अवश्य कर दिया गया था, किन्तु था बहुत सकीर्ण। सन् १९२० मे जिन लोगो को मताधिकार प्राप्त हुआ था उनकी कुल सख्या केवल ५३ लाख थी। देश की कुल जनसख्या २४ करोड १७ लाख थी। इस प्रकार कुल[2] जनता के २ प्रतिशत से कुछ अधिक भाग को अथवा २० वर्ष से अधिक आयु के पुरुषो के केवल ८ ८ प्रतिशत को मताधिकार दिया गया था। मतदाताओ का यह

१. Mukherjee : The Indian Constitution, Part 1, page 310.

२. India in 1922-23, chart facing page 53.

अनुपात विभिन्न प्रान्तो के लिए विभिन्न था—सबसे ज्यादा यू० पी० में ११.८ और सबसे कम बिहार तथा उडीसा मे ३.९।[1]

२. इस तालिका मे शहरी और ग्राम्य निर्वाचन-क्षेत्रो के विभाजन को प्रकट किया गया है —

| विधान परिषद् का नाम | शहरी निर्वाचन क्षेत्रो से | | | | ग्राम्य निर्वाचन क्षेत्रो से | | | | कुल (शहरी और ग्राम्य सदस्यो की) संख्या |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | मुस्लिम | सिक्ख | गैर-मुस्लिम | कुल | मुस्लिम | सिक्ख | गैर मुस्लिम | कुल | |
| १ मद्रास | २ | .. | ९ | ११ | ११ | .. | ५६ | ६७ | ७८ |
| २. बम्बई | ५ | .. | ११ | १६ | २२ | .. | ३५ | ५७ | ७३ |
| ३ बगाल | ६ | .. | ११ | १७ | ३३ | .. | ३५ | ६८ | ८५ |
| ४. यू० पी० | ४ | .. | ८ | १२ | २५ | .. | ५२ | ७७ | ८९ |
| ५ पजाब | ५ | १ | ७ | १३ | २७ | ११ | १३ | ५१ | ६४ |
| ६ बिहार तथा उडीसा | ३ | .. | ६ | ९ | १५ | .. | ४२ | ५७ | ६६ |
| ७ मध्यप्रान्त | १ | .. | ९ | १० | ६ | .. | ३१ | ३७ | ४७ |
| ८ आसाम | .. | .. | .. | १ | १२ | .. | २० | ३२ | ३३ |

मतदाताओ की अर्हताये विभिन्न प्रान्तो के लिए, शहरी, ग्राम्य और जमीदार निर्वाचन-क्षेत्रो के लिए भिन्न थी। किन्तु अनर्हताये सभी जगह एक ही थी अर्थात् कोई भी व्यक्ति जो (१) ब्रिटिश प्रजाजन न हो अथवा (२) स्त्री हो, अथवा (३) अधिकारी न्यायालय के निर्णयानुसार विकृत-मस्तिष्क हो; अथवा (४) २१ वर्ष से कम आयु का हो, तो वह अपना नाम निर्वाचक-नामावली मे लिखने का अधिकारी नही था। छ महीने से अधिक अवधि के लिए कारावास से दडनीय अपराधो के सबध मे अथवा कदाचार के कारण अभिशसित व्यक्तियो को पाँच वर्ष तक मताधिकार से वचित कर दिया गया था। प्रान्तीय सरकार को प्राधिकार दिया गया था जिसके अनुसार वह अन्तिम अनर्हता को और देशी राज्यो के शासको और उनकी प्रजा के सम्बन्ध मे अनर्हता को दूर कर सकती थी। प्रान्तीय विधान-मडल विशेष प्रस्ताव द्वारा स्त्रियो को मताधिकार प्रदान कर सकते थे।

यदि किसी व्यक्ति के विरुद्ध कोई अनर्हता न हो और उसे किसी निर्वाचन क्षेत्र के लिए निर्दिष्ट सारी अर्हताये प्राप्त हो तो वह उस क्षेत्र की निर्वाचक नामावली

१. Report of the Reforms Enquiry (Muddiman) Committee 1924, page 129.

मे अपना नाम निबन्धित कराने का अधिकारी था। साधारण निर्वाचन-क्षेत्रो की अर्हताएँ ये थी –(१) निर्वाचन-क्षेत्र मे पिछले बारह महीनो से निवास और चुगी को कम से कम ३ रुपये[1] प्रतिवर्ष के टैक्स का भुगतान, अथवा (२) ऐसे मकान का निवास अथवा स्वामित्व, जिसका वार्षिक किराया ३६ रुपये[2] अथवा उससे अधिक हो; अथवा (३) कम से कम २००० रुपये प्रतिवर्ष की आय पर आय-कर निर्धारण, अथवा ग्राम्यक्षेत्रो मे ऐसी कृषि व भूमि का स्वामित्व जिसका वार्षिक निर्धारित मूल्य कम से कम १० रुपये हो। विभिन्न प्रातो मे यह पिछली रकम १०रुपये से लेकर ५० रुपये तक थी।[3] सभी प्रान्तो मे मताधिकार के लिए सैन्य-सेवा को अर्हता दी गई थी और पजाब तथा मध्य प्रान्त मे गॉव के मुखिया अथवा 'लम्बरदार' को भी मताधिकार दिया गया था। ज़मीदारो के निर्वाचन-क्षेत्र की मुख्य अर्हता यह थी कि वह व्यक्ति इतनी ज़मीन का मालिक हो जिसकी निर्धारित मालगुज़ारी ५०० रुपये हो। विभिन्न प्रान्तो के लिए यह रकम भी भिन्न थी और वह पजाब मे ५०० रुपये से लेकर यू० पी० मे ५००० रुपये तक थी। विश्वविद्यालयो के निर्वाचन क्षेत्र मे ७ वर्ष से अधिक अवधि के सभी स्नातको को मताधिकार दिया गया था। अन्य व्यक्ति निर्वाचन-क्षेत्र के लिए उन विशेष हितो की सस्थाओ को—जैसे वाणिज्य मडल (चैम्बर्स ऑव कॉमर्स), मिलमालिको की सस्थाओ, रोपक सस्थाओ आदि को—मताधिकार दिया गया था।

प्रान्तीय विधान-मडलो के अभ्यर्थियो के लिए विशेष अर्हताये निश्चित नही की गई थी। उनके लिए केवल दो बाते आवश्यक थी। एक तो यह कि उनको, जिस निर्वाचन-क्षेत्र से वे खडे हो रहे हो, उसके मतदाता[4] की सारी अर्हताये प्राप्त होनी चाहिएँ और उनकी आयु पच्चीस वर्ष से कम नही होनी चाहिए। मतदाताओ के सम्बन्ध मे उपर्युक्त अनर्हताओ के अतिरिक्त, अभ्यर्थियो के लिए कुछ अनर्हताये और थी—जैसे दिवाला, वकालत से निलम्बन आदि।

निर्वाचन और उनकी निर्दोषिता के सबध में बहुत से नियम बनाए गए थे। कदाचार को रोकने के लिए कठोर नियम निश्चित किए गए थे। निर्वाचन सम्बन्धी झगडो का निपटारा करने के लिए, गवर्नरो द्वारा कमिश्नरो की नियुक्ति करने की

१. बड़े शहरो—जैसे कलकत्ता, मद्रास और बम्बई—के लिए यह रकम इससे बहुत ज़्यादा थी।

२. बगाल, बिहार, तथा उडीसा मे मुसलमानो के लिए काफी कम रकम निश्चित की गई थी।

३. यू० पी० मे यह रकम २५ रुपये थी।

४. निवास सम्बन्धी अर्हताएँ बम्बई, पजाब और मध्यप्रान्त के अभ्यर्थियो के ही लिए थी।

व्यवस्था की गई थी। इस सम्बन्ध में गवर्नरो की आज्ञाएँ कमिश्नरो की रिपोर्ट के अनुसार होनी थी और वे आज्ञाएँ अन्तिम थी।

इस प्रकार नई विधान-परिषदें निर्वाचित संस्थाएँ थी, किन्तु निर्वाचन व्यवस्था विशुद्ध रूप से प्रादेशिक नही थी। सरकारी गुट का अनुपात अवश्य कम था किंतु वह महत्त्वशून्य नही था। नाम-निर्देशित सदस्यो और विशेष तथा साम्प्रदायिक निर्वाचन-क्षेत्रो के सदस्यो की सहायता से वह गुट काफी प्रभाव डाल सकता था।

गवर्नर के प्रान्त की विधान-परिषद् ३ वर्ष के लिए बनाई जाती थी। किंतु आवश्यकता होने पर उसका विलोपन तीन वर्ष की अवधि से पहले भी किया जा सकता था। विशेष परिस्थितियो मे गवर्नर विधान-परिषद् का जीवन अधिक से अधिक एक वर्ष तक के लिए बढा भी सकता था। परिषद् के आह्वान, सत्रावसान और विलोपन का और साथ ही उसकी सभा के स्थान और समय के निश्चित करने का अधिकार गवर्नर को दिया गया था। गवर्नर, विधान-परिषद् का सदस्य नही हो सकता था किंतु वह उसको सम्बोधन करने का अधिकारी था। परिषद् के अध्यक्ष की पहले चार वर्ष के लिए नियुक्ति और उपाध्यक्ष के निर्वाचन की पुष्टि, गवर्नर[1] को करनी थी।

विधान-परिषद् को प्रान्तीय सुशासन और शान्ति के लिए विधि बनाने का साधारण अधिकार दिया गया था, किंतु इस अधिकार को कई प्रकार से परिमित कर दिया गया था। जैसा कि पहले[2] कहा जा चुका है सब से पहली बात तो यह थी कि निक्षेपण नियमो के अनुसार बहुत से विषयो मे गवर्नर-जनरल की पूर्व-स्वीकृति लेना आवश्यक था। दूसरी बात यह थी कि कि गवर्नर, विधान-परिषद् द्वारा अस्वीकृत प्रस्तावो को सरक्षित विषयो के शासन सम्बन्धी अपने दायित्व के नाम पर निबन्धित कर सकता था। तीसरी बात यह थी कि गवर्नर किसी भी विधेयक अथवा उसके किसी भाग के सम्बन्ध में चाहे वह परिषद् मे किसी भी स्थिति मे क्यो न हो, विचार करने पर रोक लगा सकता था—यह कारण बता कर कि उससे प्रान्त अथवा उसके किसी भाग की सुरक्षा अथवा शान्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पडता है। और अन्तिम बात यह थी कि विधान-परिषद् द्वारा स्वीकृत विधेयको को निषिद्ध करने का अधिकार गवर्नर और गवर्नर-जनरल दोनो मे ही निहित था—साथ ही किसी भी विधेयक को परिषद् के समक्ष दुबारा विचार करने के लिए लौटाया जा सकता था। इसके अतिरिक्त सम्राट् को प्रातीय विधान-मडल के किसी भी ऐक्ट को अस्वीकार करने का अधिकार था।

१. माण्टफोर्ड ने इस बात की सिफ़ारिश की थी कि स्वयं गवर्नर ही विधान-परिषद् का अध्यक्ष हो और उपाध्यक्ष भी यथासभव सरकारी व्यक्ति ही हो।

२. इसी अध्याय के सातवे विभाग को देखिए।

प्रान्तीय विधान-मडलो की विधायिका शक्ति पर ये बहुत बडे प्रतिबन्ध थे; किंतु उनमे से कुछ द्वैध शासन-व्यवस्था की विचारधारा मे आनुषगिक थे।

सरक्षित विभागो के लिए स-परिषद गवर्नर द्वारा आवश्यक विधान बनाने के सम्बन्ध मे माटफोर्ड रिपोर्ट ने कई पद्धतियो का परीक्षण किया और अन्त में उस काम के लिए बडी कमेटियाँ बनाने की सिफारिश की जिनमे सरकारी बहुमत हो। किंतु सयुक्त प्रवर समिति ने उस योजना को अस्वीकार किया क्योकि उसके अनुसार उस व्यवस्था से सरकारी गुट के दोष स्थायी होने का, सपरिषद् गवर्नर के दायित्व के ढक जाने का और सकट के समय में विधान तुरन्त न बन सकने का डर था। अत कमेटी ने यह प्रस्ताव किया कि गवर्नर को इस बात का स्पष्ट और प्रत्यक्ष दायित्व दिया जाय कि यदि विधान-परिषद् आवश्यक विधान का पारण न करे तो वह स्वय ही अपने उत्तरदायित्व पर सम्बधित विधान बना दे। "गवर्नर के निजी दायित्व पर बने हुए ऐक्ट, गवर्नर-जनरल द्वारा सम्राट् की 'कृपा' के लिए सुरक्षित रखे जाने चाहिएँ।" इस को गवर्नमेंट ऑव इडिया ऐक्ट १९१९, के तेरहवे खड मे रूप दिया गया।[1]

सरक्षित विषयो से सम्बन्धित व्यय और आपातकालीन व्यय के लिये भी ऐक्ट मे इसी प्रकार की व्यवस्था की गई। गवर्नमेंट ऑव इडिया ऐक्ट, १९१९, के अनुसार विधान-परिषद् मे, प्रतिवर्ष वित्तीय विवरण प्रस्तुत किया जाना था और अनुदान सम्बन्धी माँगो के रूप मे राजस्व के विनियोग के लिए प्रस्ताव रखे जाने थे। "परिषद् किसी माग को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है, अथवा प्रस्तावित परिमाण को घटा सकती है.. . ,[2] किंतु (१) गवर्नर द्वारा इस बात का निबन्धन हो जाने पर कि उस विषय पर उसके उत्तरदायित्व को पूरा करने के लिए उक्त व्यय आवश्यक है, प्रान्तीय सरकार को सरक्षित विषयो के सम्बन्ध मे उस माँग के प्रत्यानयन करने का अधिकार होगा, (२) आपातकाल मे प्रान्तीय शान्ति और सुरक्षा के लिए गवर्नर को जितना परिमाण वह ठीक समझे उतने के व्यय के लिए सम्बन्धित विभागो को अधिकृत करने का अधिकार होगा[3]; और (३) राजस्व के विनियोग सम्बन्धी सारे प्रस्ताव गवर्नर की सिफ़ारिश पर ही पेश किए जायँगे।

ऐक्ट के खड न. २ (३) से विधान-परिषदो के वित्तीय अधिकार और भी ज्यादा परिमित हो गए थे। इसके अनुसार व्यय के निम्नलिखित शीर्षकों से सम्बन्धित प्रस्ताव परिषदो मे प्रस्तुत नही किए जाने थे:—

१. India in 1919, pages 242 and 243.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २४०.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २४१.

(१) सपरिषद् गवर्नर-जनरल को प्रान्तीय सरकार द्वारा दिए जाने वाले अनुदान, और

(२) ऋणों की ब्याज और निक्षेप-निधि; और

(३) ऐसा व्यय जिसका परिमाण किसी विधि के द्वारा अथवा उसके अन्तर्गत निश्चित है, और

(४) सम्राट् द्वारा उसके अनुमोदन से अथवा सपरिषद् भारत-मन्त्री द्वारा नियुक्त किए हुए व्यक्तियों के वेतन और निवृत्ति, वेतन, और

(५) प्रान्त के हाईकोर्ट के न्यायाधीशो के वेतन और साथ ही प्रान्तीय महाधिवक्ता का वेतन ।

विधान-परिषदो के सदस्यो को परिषद् के स्थायी नियमो के अभ्यधीन ये अधिकार प्राप्त थे—वे प्रश्न पूछ सकते थे, प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे, स्थगन प्रस्ताव और मन्त्रियो के प्रति अविश्वास के प्रस्ताव रख सकते थे और विधेयक प्रस्तुत कर सकते थे । परिषद् के नियमो मे उचित कार्यपद्धति और प्रान्तीय सुरक्षा तथा शान्ति के हित मे कुछ प्रतिबन्ध लगाए गए थे ।

भारत सरकार ने प्रातीय विधान-परिषदो की कार्य-पद्धति के सम्बन्धमे नियम बनाए थे। इन नियमो की अनुपूर्ति आरम्भ मे सपरिषद गवर्नर की स्थायी आज्ञाओ से हुई किंतु इनमे परिषदे बाद मे परिवर्तन अथवा सशोधन कर सकती थी। इन नियमो के अनुसार स्थायी समितियो की नियुक्ति की व्यवस्था की गई ताकि सदस्यगण सरकार की वास्तविक समस्याओ के सम्पर्क मे आ सके । उनका काम केवल परामर्श देने का था और उनका उद्देश्य मुख्यत शिक्षणात्मक था । इनमे वित्त समिति सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण थी जो नये व्ययके सारे प्रस्तावो पर परामर्श देती थी। उसके बिलकुल पृथक् सार्वजनिक लेखा समिति थी जिसकी प्रत्येक प्रान्त में नियुक्ति होनी थी। नियमो मे उसकी रचना और उसके कार्यों को निश्चित कर दिया गया था।. अध्यक्ष सहित उसके कुल सदस्यों की सख्या १२ थी, अध्यक्ष स्वय वित सदस्य होना था। इस समिति के दो तिहाई सदस्य, विधान-परिषद् के गैरसरकारी सदस्यो द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व व्यवस्था के अनसार चुने हुए होते थे। समिति को विनियोग के खातो की परीक्षा करनी होती थी, इस बात को देखना होता था कि वोट किये हुए धन का उपयोग विधान-मंडल की इच्छानुसार ही किया गया था और उसे अपनी जॉच की रिपोर्ट परिषद् को देनी होती थी। इस प्रकार विधान मडल यह जान सकता था कि उसके निर्णयो का उचित रूप से पालन किया गया अथवा नही ।

गवर्नमेंट ऑव इडिया ऐक्ट, १९१९, ने प्रान्तीय क्षेत्र में उपर्युक्त परिवर्तन किए । उनके द्वारा उत्तरदायी शासन की दिशा मे पहला कदम उठाया गया।

स्वयं ऐक्ट के अन्दर ही इस बात की व्यवस्था की गई थी कि दस वर्ष बाद एक प्रविधानीय कमीशन नियुक्त किया जाय और उसके सदस्यो को सम्राट्[1] तथा पार्लियामेट के दोनो भवनो के अनुमोदन से छाँटा जाय। इस कमीशन को ब्रिटिश भारत की व्यवहृत शासन व्यवस्था, शिक्षा की वृद्धि और प्रतिनिधि सस्थाओ के विकास और अन्य सम्बन्धित विषयो की जाँच करनी थी और निम्नलिखित बातो पर रिपोर्ट देनी थी—उत्तरदायी शासन के सिद्धात को मान्यता देना वाछनीय है अथवा नही, यदि वाछनीय है तो किस हद तक मान्यता दी जाय, तत्कालीन उत्तरदायी शासन को कितना विस्तृत, सशोधित अथवा परिमित किया जाय, और दूसरे विधायिका भवनो की स्थापना करना वाछनीय है अथवा नही। इन बातो के अतिरिक्त ब्रिटिश भारत और प्रान्तो से सम्बन्धित अन्य बातो को सम्राट् द्वारा कमीशन को उसके विचारार्थ सौपा जा सकता था।[2]

९

यद्यपि मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट ने यह स्पष्ट कर दिया था कि केन्द्रीय शासन का स्वरूप बदलने का अथवा केन्द्र मे उत्तरदायी व्यवस्था आरम्भ करने का कोई उद्देश्य नही था, तथापि केन्द्रीय व्यवस्था को भारत मे अथवा इग्लैड मे यथावत् छोडना सभव नही था। अत. मॉण्टफोर्ड सुधारो ने भारत ओर इग्लैड दोनो ही स्थानो मे सरकारी ढाँचे मे कुछ परिवर्तन किए और भारतीय लोक सेवाओ तथा देशी राज्यो के साथ सम्बन्ध की समस्या पर भी प्रकाश डाला।

२० अगस्त १९१७ की घोषणा मे यह कहा गया था कि ब्रिटिश सरकार की नीति, "शासन के प्रत्येक विभाग मे अधिकाधिक भारतीयो को साथ लेने की है।" किन्तु मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट ने इस सम्बन्ध मे एक चेतावनी दी। "किसी सेवा मे अचानक ही नये अश की ऐसी भर्ती नही होनी चाहिए कि उसका सारा स्वरूप ही एकदम बदल जाय" और प्रतिवर्ष भर्ती किये जाने वाले भारतीयो की सख्या ऐसी होनी चाहिए कि उनको "उस सेवा के पुराने सदस्य उचित रूप से शिक्षित

---

१ ऐक्ट मे अथवा सयुक्त प्रवर समिति की रिपोर्ट मे ऐसी कोई धारा नही है जिससे भारत मन्त्री पर कोई ऐसी रोक हो कि कमीशन के लिए पार्लियामेट के सदस्यो के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियो के नामो की सिफारिश न की जाय।

२. Clause 41 of the Act. India in 1919, page 513. इस बात मे सन्देह है कि देशी राज्यो से सबधित प्रश्नो को उस कमीशन को सौपना वैध था। १९१९ के ऐक्ट के अनुसार केवल ब्रिटिश भारत से सम्बन्धित विषय ही उसे सौपे जा सकते थे।

कर सके और उस सेवा की भावना से प्रेरित कर सके।"[१] अत. यह प्रस्ताव किया गया कि जिन सेवाओ के लिए इगलैंड मे भर्ती होती थी, उन सेवाओ के लिए भारत मे भर्ती करने के निमित्त एक नियत अनुपात निश्चित कर दिया जाय। उदाहरण के लिए इडियन सिविल सर्विस के "३३ प्रतिशत पदो के लिए भारत मे भर्ती की जाय।"[२] विभिन्न लोकसेवाओ मे भारतीयकरण की गति क्रमशः बढ़ाई जानी थी।

सन् १९१९ के गवर्नमेण्ट ऑव इडिया ऐक्ट ने स-परिषद् भारत मत्री को प्राधिकार दिया कि वह इडियन सिविल सर्विस[३] मे "भारत के अधिवासी लोगों की" नियुक्ति के लिये नियम बनावे और साथ ही "भारत की सिविल नौकरियो के वर्गीकरण के लिए, उनकी भर्ती की प्रक्रिया के लिए, उनके वेतन, भत्ते, व्यवहार और अनुशासन के विनियमन के लिए" नियम बनावे।[४] ऐक्ट के प्राधिकार के बल पर भारत मत्री नियम आदि बनाने के अधिकार को स-परिषद् गर्वनर-जनरल को अथवा प्रान्तीय सरकार आदि को सौप सकता था। १९१९ के ऐक्ट ने स-परिषद् भारत-मत्री द्वारा एक लोक-सेवा-आयोग की नियुक्ति की व्यवस्था की। इस आयोग मे अध्यक्ष-सहित पाँच से अधिक सदस्य नही होने थे, प्रत्येक सदस्य का कार्यकाल पाँच वर्ष का था, किन्तु उसकी दुबारा नियुक्ति भी हो सकती थी। "यह लोक-सेवा-आयोग, भारत मे लोक-सेवाओ की भर्ती और नियत्रण के सबध मे वह सारे कार्य करेगा जो स-परिषद् भारत-मत्री द्वारा नियमो के अनुसार उसे सौपे जायँगे।"[५]

स-परिषद् भारत-मत्री द्वारा निर्मित नियमो के अनुसार भारत मे समकालिक प्रतियोगितापूर्ण परीक्षाओ की व्यवस्था कुछ हद तक अपनाई गई, साथ ही विभिन्न समुदायो और प्रान्तो को लोक-सेवाओ मे प्रतिनिधित्व देने के लिए नाम-निर्देशन की व्यवस्था की गई। किन्तु सिविल सेवाओ से सबधित सारे प्रश्न को जिसमे यूरोपीय सदस्यो के वेतन बढाने का प्रश्न भी सम्मिलित था, सन् १९२२ मे एक राजकीय कमीशन को सौपा गया। इस कमीशन के अध्यक्ष लॉर्ड ली थे।

मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट के सयुक्त लेखको ने लोक-सेवाओ के यूरोपीय सदस्यों के

१. The Report on Indian Constitutional Reforms 1919 page 200.
२. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ २०१.
३. Section 37 (1) of the Act India in 1919, page 252.
४. Section 36 (2) of the Act, उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २५१.
५. Section 38 (2) of the Act, उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २५२.

सबध मे बडी चिन्ता प्रकट की थी और केवल उनके वेतन तथा भत्ते मे वृद्धि के लिए और वैधानिक स्थिति मे परिवर्तन हो जाने के कारण उनकी क्षतिपूर्त्ति के लिए ही सिफारिश नही की थी वरन् नए सविधान मे उनको प्रबल सरक्षण देने की व्यवस्था भी की थी। इसी उद्देश्य से १९१९ के ऐक्ट मे तीन महत्त्वपूर्ण धाराओ को स्थान दिया गया। पहली धारा मे उनको जो सरक्षण दिया गया था उसके अनुसार मत्रिगण उनको पदच्युत नही कर सकते थे। दूसरी ओर मत्रियो के लिए उन्हे महत्त्वपूर्ण पदो पर बनाये रखने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही था। दूसरी धारा के अनुसार इन सदस्यो को मत्रियो का अतिक्रमण करके गवर्नर से शिकायत करने का अधिकार दिया गया। तीसरी धारा के अनुसार उनके वेतन, भत्ते आदि का पूर्ण सरक्षण किया गया। यदि इन सरक्षणो के बावजूद, सिविल सेवाओ के कुछ सदस्य "ऐसा अनुभव करे कि वह द्वैध प्रणाली के अन्तर्गत उपयुक्त रूप से काम नही कर सकते" तो सयुक्त-प्रवर-समिति ने यह सुझाव दिया कि सम्राट् सरकार, यदि उसके लिए यह शक्य हो, तो उन सदस्यो को अन्यत्र समान पद प्रदान करे अथवा उनको आनुपातिक पेंशन पर निवृत्त[1] कर दिया जाय।

१०.

मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट का तीसरा सूत्र यह था:—

"भारत सरकार, पार्लियामेण्ट के प्रति पूर्ण रूप से उत्तरदायी है, और इस उत्तरदायित्व के अतिरिक्त, प्रान्तो मे आरभ होने वाली नई व्यवस्था के अनुभव-काल मे, उस (भारत सरकार) का मौलिक विषयो मे अधिकार निर्विवाद है। इस अवधि मे भारतीय विधान-परिषद्, विस्तृत और अधिक प्रतिनिधिपूर्ण की जानी चाहिए और सरकार को प्रभावित करने के उसके अवसर बढाए जाने चाहिए।"[2]

इस नीति को गवर्नमेण्ट ऑव इडिया ऐक्ट, १९१९ के भाग २ मे और इस सबध मे भारत सरकार द्वारा बनाए हुए नियमो मे रूप दिया गया। दो भवनो के एक नए विधान-मडल की स्थापना की गई और वाइसरॉय की कार्यकारिणी-परिषद् की रचना मे थोडा-सा सशोधन किया गया। कार्यकारिणी परिषद् की सदस्यता के सबध मे अधिकतम सीमा के प्रतिबन्ध को दूर कर दिया गया;[3]

१. Mukherjee: The Indian Constitution; part II, page 526.
२. The Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, page 124.
३. Clause 28 (1) of the Act, India in 1919, page 248.

भारतीय उच्च न्यायालयो के १० वर्ष से अधिक की स्थिति के वकील उसके सदस्य नियुक्त किए जा सकते थे[१], और भारतीय विधान-परिषद् के सदस्यो मे से परिषद्-कार्यवाह नियुक्त करने की व्यवस्था की गई।[२] कार्यकारिणी परिषद् के तीन सदस्यो के लिए पूर्ववत् सेवा की अर्हता आवश्यक थी—अर्थात् वे लोग भारत मे कम-से-कम दस वर्ष तक सम्राट् के सेवक रहे हो। कार्यकारिणी परिषद् मे भारतीयो को नियुक्ति करने के सबध मे कोई प्रविधानीय व्यवस्था नही की गई थी, किन्तु सयुक्त प्रवर समिति की सिफारिशो पर तीन भारतीयो को परिषद् का सदस्य नियुक्त किया गया।

नए केन्द्रीय विधान-मडल मे दो भवन होने थे—राज्य-परिषद् और भारतीय विधान सभा। राज्य-परिषद् स्थापित करने के लिए मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट ने मुख्यत इस उद्देश्य से सिफारिश की थी कि यदि किसी "अनिवार्य" विधान को अधिक लोकाधिमत प्रथम भवन स्वीकार न करे तो भारत सरकार उसका राज्य-परिषद् से पारण करवा सके। अत उसने इस बात का प्रस्ताव किया कि राज्य-परिषद् मे कुल ५० सदस्य हो जिनमे से आधे, सरकारी व्यक्ति हो, ४ नाम-निर्देशित गैर सरकारी व्यक्ति हो और शेष २१ निर्वाचित व्यक्ति हो—जिनमे से १५ सदस्य, प्रान्तीय परिषदो के गैर-सरकारी सदस्यो द्वारा निर्वाचित हो और ६ सदस्य जमोदारो, मुसलमानो और वाणिज्य-मडलो द्वारा प्रत्यक्ष व्यवस्था के अनुसार निर्वाचित हो। रिपोर्ट के लेखको ने कहा "राज्य-परिषद्, सारे महत्त्वपूर्ण प्रश्नो पर भारत को सर्वोच्च विधायिका सत्ता होगी और उसे सारे भारतीय विधानो को दोहराने का अधिकार प्राप्त होगा। अत हम उसकी ओर देश के सर्वोत्तम उपलब्ध व्यक्तियो को आकर्षित करना चाहते है। हमारी यह इच्छा है कि वह विकसित हो और उसमे वे सब विशेषताएँ हो जो दोहराने वाले भवनो के लिए आवश्यक और उपयुक्त समझी जाती है।"[३] सयुक्त प्रवर समिति ने इस बात को आवश्यक अथवा वाछनीय नही समझा कि "राज्य-परिषद् को सरकारी विधान के लिए उपकरण बनाया जाय।" समिति ने इस बात की सिफारिश की कि "आरभ से ही उसकी वास्तविक द्वितीय भवन के रूप मे रचना की जावे।"[४] मताधिकार कमेटी ने इस बात का सुझाव दिया था कि राज्य-परिषद् के गैर-सरकारी सदस्यो का वही मतदाता निर्वाचन करे जो विधान सभा के लिए निर्वाचन करते है, किन्तु

१ Clause 28 (2) of the Act. India in 1919, page 249.

२ Clause 28 (1) of the Act. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २४९

३ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १७९

४ Mukherjee: The Indian Constitution, Part II, page 520.

सयुक्त प्रवर समिति ने इस सुझाव को स्वीकार नही किया और उसने भारत सरकार को यह प्राधिकार देने की सिफारिश की कि वह राज्य-परिषद् के सदस्यो के निर्वाचन के लिए पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र बनावे।

भारत सरकार द्वारा निर्मित नियमो के अनुसार राज्य-परिषद् मे ६० सदस्य होने थे जिनमे से एक सदस्य को गवर्नर-जनरल द्वारा अध्यक्ष पद पर नियुक्ति की जानी थी। शेष ५९ सदस्यो मे से, २५ नाम-निर्देशित होने थे—१९ सरकारी और ६ गैर-सरकारी, ३४ निर्वाचित होने थे—२० साधारण निर्वाचन-क्षेत्र से, ३ यूरोपीय वाणिज्य-मडल से और ११ साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्र मे (१० मुस्लिम क्षेत्र मे और १ सिक्ख क्षेत्र मे)। राज्य-परिषद् को पुनरीक्षक भवन के रूप मे काम करना था ओर उसे विधान के सबध मे प्रथम भवन के बराबर अधिकार प्राप्त थे।

प्रथम भवन का नाम था भारतीय विधान-सभा और इसमे—सभा के अध्यक्ष के अतिरिक्त—१४३ सदस्य होने थे। अध्यक्ष की नियुक्ति गवर्नर-जनरल द्वारा पहले चार वर्षो के लिए की जानी थी। अन्य सदस्यो मे से, ४० नाम-निर्देशित होने थे—२५ सरकारी और १५ गैर-सरकारी, और १०३ निर्वाचित होने थे—५१ साधारण निर्वाचन क्षेत्रो से, ३२ साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रो से (मुसलमानो द्वारा ३० ओर सिक्खो द्वारा २), ओर २० विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो से (जमीदारो द्वारा ७, यूरोपियनो द्वारा ९ और भारतीय वाणिज्य-वर्ग द्वारा ४)। मताधिकार कमेटी ने भारतीय विधान-सभा के लिए परोक्ष निर्वाचन-व्यवस्था की सिफारिश की थी, क्योकि उसके मतानुसार प्रत्यक्ष निर्वाचन-व्यवस्था वाछनीय होने हुए भी अव्यवहार्य थी—प्रान्तीय मताधिकार के आधार पर बने हुए निर्वाचन क्षेत्र बहुत बडे और बोझल होगे, सकीर्ण मताधिकार "अयुक्त" और "राजनैतिक दृष्टि से अवाछनीय" होगा।[1] सयुक्त प्रवर समिति ने इस मत को स्वीकार नही किया और इस बात को सिफारिश की कि भारत सरकार से इस सबध मे नये प्रस्ताव प्रस्तुत करने को कहा जाय।

इस प्रकार केन्द्रीय विधान-मडल के लिए निर्वाचन-व्यवस्था, मताधिकार और विभिन्न प्रकार के निर्वाचन क्षेत्रो की स्थापना के प्रश्न, भारत सरकार के निर्णय के लिए छोड दिये गए थे। भारत सरकार ने केन्द्रीय विधान-मडल के दोनो भवनो के लिए प्रत्यक्ष निर्वाचन-व्यवस्था के पक्ष मे निर्णय किया। राज्य-परिषद् के निमित्त उन लोगो को मताधिकार दिया गया जिनकी आय-कर से निर्धारित वार्षिक आय १००००रुपये से कम न हो। (विभिन्न स्थानो अथवा समुदायो मे यह

१ Mukherjee The Indian Constitution, Part II page 215

रकम १०००० रुपये से लेकर २०००० रुपये तक थी) अथवा जो ७५० रु० वार्षिक मालगुजारी देते हैं (विभिन्न स्थानो अथवा समुदायो मे यह रकम ७५० रुपये से लेकर ५००० रुपये तक थी)।[1] इनके अतिरिक्त उन लोगो को जिन्हे सार्वजनिक कार्य का पूर्व-अनुभव हो अथवा उन लोगो को जो मान्य विद्वान् हो—जैसे उन लोगो को जो किसी विधान-मडल के सदस्य हो अथवा रह चुके हो, अथवा उन लोगो को जो नगरपालिका मडल अथवा जिला मडल अथवा सहयोग-केन्द्रीय-बैंक के अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष हो अथवा रह चुके हो, अथवा उन लोगो को जो किसी विश्वविद्यालय की सीनेट के सदस्य हो अथवा रह चुके हो, अथवा उन लोगो को जिन्हे प्राच्य-विद्वत्ता की सबसे बडी उपाधि मिली हो—राज्य-परिषद् के साधारण निर्वाचन-क्षेत्र की निर्वाचक नामावलि मे अपना नाम निबधित कराने का अधिकार था।

भारतीय विधान-सभा के लिए मतदाताओ की अर्हताये इस प्रकार थी.—(१) कम से कम १५ (कही-कही पर २०) रुपये प्रतिवर्ष नगरपालिका-करो का शोधन, अथवा (२) ऐसे मकानो मे निवास अथवा उनका स्वामित्व जिनका वार्षिक किराया १८० रुपये हो, अथवा (३) कम से कम २००० रुपये (विभिन्न स्थानो अथवा समुदायो के लिए यह रकम ५००० रुपये तक थी) की वार्षिक आय का आय-कर द्वारा निर्धारण, अथवा (४) विभिन्न प्रान्तो मे ५० रुपये से १५० रु० तक कम-से-कम मालगुजारी का निर्धारण।

राज्य-परिषद् और भारतीय विधान-सभा, दोनो ही के निर्वाचको और अभ्यर्थियो के लिए वही अनर्हताये थी जो प्रान्तीय परिषदो के निर्वाचको और अभ्यर्थियो के लिए क्रमश निश्चित की गई थी। केन्द्रीय विधान-मडल के दोनो भवनो के अभ्यर्थियो के लिए कोई विशेष अर्हताये नही थी। उनके लिए केवल दो बाते आवश्यक थी कि उनकी आयु २५ वर्ष से अधिक हो और वे जिस निर्वाचन-क्षेत्र से खडे हो रहे हो उसके मतदाता की उन्हे अर्हताये प्राप्त हो।

इस प्रकार केन्द्रीय विधान-मडल के दोनो भवनो मे निर्वाचित सदस्यो का बहुमत था—किन्तु राज्य-परिषद् मे यह निर्वाचित बहुमत बहुत साधारण था। यह भवन मुख्यत. धनी वर्गो का प्रतिनिधित्व करता था—राज्य-परिषद् के लिए मतदाताओ की कुल सख्या १७३६४ थी।[2] भारतीय विधान-सभा अपेक्षाकृत

१. बगाल और बिहार तथा उडीसा मे मुसलमानो के लिए काफी कम रकमें निश्चित की गई थी। सब से कम रकम पजाब के लिए निश्चित की गई थी और सबसे ज्यादा रकम यू० पी० के लिए निश्चित की गई थी।

२. The figures are taken from Appendix II of India in 1920, page 248.

विस्तृत मताधिकार पर निर्मित हुई थी; किन्तु उसके भी मतदाताओ की कुल सख्या १० लाख से अधिक नही थी—सन् १९२० मे वास्तविक सख्या ९०९८७४ थी—जब कि देश की जनसख्या लगभग २५ करोड ४० लाख थी।

प्रत्येक भवन एक निश्चित अवधि के लिए निर्मित किया गया था किन्तु गवर्नर-जनरल को अवधि से पहिले उसका विलोपन[1] करने का अथवा अवधि के बाद भी उसको जीवित रखने का[2] अधिकार दिया गया था। साधारणतया सभा की जीवनावधि तीन वर्ष की थी और राज्य-परिषद् की पाँच वर्ष की। प्रत्येक भवन को अपना कार्य-सचालन, व्यवहार-नियमो के अनुसार करना था। इन नियमो की अनुपूर्त्ति भवनो को अपनी स्थायी आज्ञाओ से करनी थी। दोनो भवनो के अधिवेशन का समय और स्थान गवर्नर-जनरल द्वारा निश्चित होना था, जिसे उन भवनो के आह्वान, सत्रावसान और विलोपन का अधिकार था। उसे दोनो भवनो के सदस्यो को सम्बोधित करने का भी अधिकार था।

केन्द्रीय विधान-मडल के विधान-कार्य का क्षेत्र बहुत विस्तृत था किन्तु उसके अधिकारो पर बहुत बडे प्रतिबन्ध भी लगे हुए थे। भारतीय विधान-मडल, सारे ब्रिटिश भारत के लिए, भारत के अन्य भागो मे सम्राट् की प्रजा और सेवको के लिए, सम्राट् की भारतीय प्रजा के लिए चाहे वह कही भी क्यो न हो, और सम्राट् की स्थल, जल और वायु सेना मे काम करने वाले सभी लोगो के लिये, विधि बना सकता था। वह ऐसी विधियो को जो ब्रिटिश भारत मे लागू हो अथवा जो पिछले वाक्य मे उल्लिखित लोगो पर लागू हो, उस समय के लिए रद्द अथवा सशोधित कर सकता था। किन्तु भारत के किसी हाईकोर्ट को तोडने के सबध मे अथवा यूरोपीय ब्रिटिश प्रजा अथवा उनके बच्चो को प्राणदड देने के लिए, छोटे न्यायालयो को अधिकार देने के सबध मे, विधान बनाने के लिए स-परिषद् भारत मत्री की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक था। भारतीय विधान-मडल को, पार्लियामेण्ट द्वारा बनाए हुए किसी प्रविधान को रद्द अथवा सशोधित करने का अथवा ऐसा कोई काम करने का जिससे पार्लियामेण्ट की सत्ता पर अथवा उसकी अलिखित

१. कार्यकारिणी, विधान मडल से स्वतत्र थी, अस्तु, किन परिस्थितियो मे अवधि से पहले विलोपन करना आवश्यक समझा जाता, यह कहना कठिन है।

२ जिस तरह प्रान्तीय परिषदो के लिए एक वर्ष का समय निश्चित किया गया था उस प्रकार से केन्द्रीय विधान मडल के लिए कोई समय निश्चित नही किया गया।

३ See Section 65 of the Government of India Act 1915, as amended by the Act of 1919. Mukherjee: Indian Constitution, part I, page 273.

विधियो पर अथवा सयुक्त राज्य के विधान पर प्रतिकूल प्रभाव पडता हो, कोई अधिकार नही था।

ये प्रतिबध ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की प्रभुता यथावत् बनाये रखने के लिए लगाए गए थे। इनके अतिरिक्त गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद् की श्रेष्ठता और सत्ता बनाये रखने के लिए केन्द्रीय विधान मडल पर और बहुत से महत्त्वपूर्ण प्रतिबध लगाए गए थे। सबसे पहला प्रतिबध यह था कि निम्नलिखित बातो पर प्रभाव डालने वाले प्रस्तावो को प्रस्तुत करने के लिए गवर्नर-जनरल की पूर्व स्वीकृति लेना आवश्यक था –

"(१) सार्वजनिक ऋण, अथवा भारतीय सार्वजनिक राजस्व अथवा भारतीय राजस्व पर किसी परिव्यय का भार, अथवा

(२) भारत की ब्रिटिश प्रजा के किसी वर्ग के धर्म, उसकी रीति अथवा परपरा, अथवा

(३) सम्राट् की जल, स्थल और वायु सेना के किसी भाग का अनुशासन, अथवा

(४) सरकार का विदेशी नरेशो अथवा रियासतो से सबध, अथवा ऐसा कोई प्रस्ताव–

"(अ) जिससे ऐसे प्रान्तीय विषयो अथवा ऐसे किसी प्रान्तीय विषय के किसी भाग का विनियमन होता हो, जो इस ऐक्ट के अन्तर्गत बने हुए नियमो के अनुसार भारतीय विधान-मडल के विधान क्षेत्र के अभ्यधीन न हो, अथवा

(ब) जिससे प्रान्तीय विधान-मडल का कोई ऐक्ट रद्द या सशोधित होना हो, अथवा

(स) जिससे गवर्नर-जनरल द्वारा बनाया हुआ कोई ऐक्ट अथवा अध्यादेश रद्द अथवा सशोधित होना हो।"[१]

दूसरा प्रतिबन्ध यह था कि यदि गवर्नर-जनरल के मत से किसी विधेयक अथवा उसके किसी भाग से "ब्रिटिश भारत अथवा उसके किसी भाग की शान्ति अथवा सुरक्षा पर प्रतिकूल प्रभाव पडता हो"[२] तो वह उस विधेयक या उसके सबधित भाग पर, चाहे वह किसी भी भवन मे और किसी भी स्थिति मे क्यो न हो, चर्चा करने के सबध मे रोक लगा सकता था।

---

१ Section 67 clause (2) of the Consolidated Act. See Mukherjee: The Indian Constitution, part I, pages, 281 and 282

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २८२

केन्द्रीय विधान-मडल की सत्ता पर तीसरा प्रतिबन्ध यह था कि यदि गवर्नर-जनरल के मत से "ब्रिटिश भारत अथवा उसके किसी भाग की शान्ति, सुरक्षा अथवा उसके हितो के लिए"[१] किसी विधि का बनाना अनिवार्य है और यदि दोनो भवनो ने उसे बनाने से इकार कर दिया है तो उसे प्राधिकार था कि वह उस विधि का विधान कर दे अर्थात् प्रचलित शब्दावली मे उसका निबन्धन करदे। ऐसे प्रत्येक ऐक्ट के लिए सम्राट् की स्वीकृति लेने का नियम था किंतु "इससे पहले यह आवश्यक था कि उसकी प्रतियाँ पार्लियामेंट के प्रत्येक भवन के समक्ष अधिवेशन के कम-से-कम आठ दिनो तक रखी जावे।"[२] यह व्यवस्था, सयुक्त प्रवर समिति की सिफारिश से, मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट की उस मौलिक योजना के स्थान पर अपनाई गई थी, जिसके अनुसार मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट के प्रस्तावित द्वितीय भवन को अनिवार्य विधान बनाना था। समिति की दृष्टि मे यह उचित नही था कि गवर्नर-जनरल अपने दायित्व को छिपावे और मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट द्वारा प्रस्तावित राज्य-परिषद् के सरकारी गुट से इसका काम निकाले। इस सम्बन्ध मे पहले भी ध्यान आकर्षित किया जा चुका है।

केन्द्रीय विधान-मडल के अधिकारो पर चौथा प्रतिबन्ध यह था कि गवर्नर-जनरल को आपातकाल मे "ब्रिटिश भारत अथवा उसके किसी भाग की शान्ति ओर उसके सुशासन के लिए अध्यादेश"[३] बनाने का अधिकार था। गवर्नर-जनरल द्वारा बनाए हुए अध्यादेश की उतनी ही विधिक मान्यता होनी थी जितनी कि भारतीय विधान-मडल द्वारा बनाये हुए किसी ऐक्ट की। कोई भी अध्यादेश छै महीने से अधिक के लिए जारी नही किया जा सकता था।[४]

पाँचवाँ प्रतिबन्ध यह था कि गवर्नर-जनरल को, केन्द्रीय विधान-मडल के दोनो भवनो द्वारा पारित किसी भी प्रस्ताव को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने से पहले, फिर विचार करने के लिए मडल के पास वापिस भेज देने का अधिकार था।

अन्तिम बात यह थी कि भारतीय विधान-मडल की किसी भी विधि के विधायन के लिये गवर्नर-जनरल की स्वीकृति अनिवार्य थी। उसे अधिकार था कि उस विधेयक को अपनी स्वीकृति दे अथवा उसे सम्राट् की कृपा के लिए सुरक्षित कर दे। सम्राट् को भारतीय विधान-मडल अथवा गवर्नर-जनरल द्वारा बनाये हुए किसी भी ऐक्ट को अस्वीकार कर देने का अधिकार था। सयुक्त प्रवर समिति ने

---

१. Section 37 B of the Consolidated Act · Mukherjee. Indian Constitution, Part I, page 293

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २९४

३ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २९८,२९९

४ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २९९

इस बात को स्पष्ट कर दिया था कि गवर्नर-जनरल का निषेधाधिकार वास्तविक था और उसे व्यवहार मे लाने का उद्देश्य था।

गवर्नर-जनरल की अनुमति के लिए किसी विधेयक को उसके पास भेजने से पहले यह आवश्यक था कि विधान-मडल के दोनो भवनो ने उसको अपनी स्वीकृति दे दी हो। "यदि किसी विधेयक को एक भवन ने स्वीकार कर लिया है किंतु उस भवन के स्वीकार कर लेने के छै महीने के अन्दर ही उस विधेयक को उसी रूप मे अथवा सशोधनो के बाद (जो पहले भवन को मान्य हो) दूसरे भवन से स्वीकृति नही मिलती तो गवर्नर-जनरल स्वविवेक से उस विषय के निर्णय को दोनो भवनो के सयुक्त अधिवेशन को सौप सकता था।"[1] इस प्रकार दोनो भवनो के गतिरोध को दूर करने के लिए सयुक्त अधिवेशन की व्यवस्था की गई थी।

दोनो भवनो के सदस्यो को निश्चित नियमो के अनुसार प्रश्न पूछने का, अनुपूरक प्रश्न पूछने का, प्रस्ताव प्रस्तुत करने का, स्थगन-प्रस्ताव प्रस्तुत करने का, और विधान के प्रक्षेप प्रस्तुत करने का अधिकार दिया गया था। सदस्यो को भवनो में भाषण की स्वतन्त्रता का अधिकार भी दिया गया था।

गवर्नमेंट ऑव इडिया ऐक्ट, १९१९ के अनुसार, गवर्नर-जनरल और उसकी परिषद् का वित्तीय विवरण, भारतीय विधान-मडल के दोनो भवनो मे प्रस्तुत किया जाना था। सरकार को—केवल गवर्नर-जनरल की ही सिफारिश पर—अनुदानो की माँगो के रूप मे राजस्व-विनियोग के प्रस्ताव प्रस्तुत करने थे। व्यय के निम्न-लिखित शीर्षको को छोड कर, शेष सब प्रस्तावो पर भारतीय विधान सभा को अपना मत प्रकट करने का अधिकार था।

(१) ऋणो की व्याज और निक्षेप निधि सम्बन्धी परिव्यय, और

(२) ऐसा व्यय जिसका परिमाण किसी विधि द्वारा निश्चित हो, और

(३) सम्राट् द्वारा अथवा उसके अनुमोदन से अथवा सपरिषद् भारत मन्त्री द्वारा नियुक्त किये हुए लोगो के वेतन और निवृत्ति-वेतन और,

(४) मुख्य कमिश्नरो और न्यायिक कमिश्नरो के वेतन, और

(५) ऐसा व्यय जिस को सपरिषद् गवर्नर-जनरल की आज्ञानुसार निम्न-लिखित वर्गो मे गणना हो—

(अ) धर्म (चर्च) सम्बन्धी,

(ब) राजनैतिक;

(स) सुरक्षा सम्बन्धी।"[1]

---

१. Section 25 of the Act of 1919, "India in 1919" page 249.

दोनो मे से किसी भवन मे "विना गवर्नर-जनरल के निर्देश के" उपर्युक्त मदो पर तो चर्चा भी नही की जा सकती थी।

व्यय की अन्य मदो पर विधान सभा अपना मत प्रकट करती थी—वह किसी माँग को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती थी अथवा कुल माँग को घटाकर किसी माँग के परिमाण को घटा सकती थी किंतु गवर्नर-जनरल को, "यह घोषित करने पर कि विधान सभा द्वारा अस्वीकृत माँग उसके उत्तरदायित्व के पालन के लिए आवश्यक है," उस माँग के परिमाण को यथावत् रखने का अधिकार था। आयातकाल मे ब्रिटिश भारत अथवा उसके किसी भाग की सुरक्षा के लिए, गवर्नर-जनरल को जितना परिमाण वह ठीक समझे उतने के व्यय के लिए, सम्बन्धित विभागो को प्राधिकृत करने का अधिकार था।"[1]

इस प्रकार भारतीय विधान-मडल केवल एक प्रभुता-रहित विधायक-निकाय ही नही था वरन् वह कार्यकारिणी के समक्ष अशक्त भी था। प्रशासनीय, विधानीय एव वित्तीय, सभी क्षेत्रो मे, स-परिषद् गवर्नर-जनरल का पूरा अधिकार था। कार्यकारिणी, विधान-मडल से स्वतन्त्र ही नही थी वरन् इसको लगभग सभी विषयो मे उसका उल्लघन करने का अधिकार था। तथापि कुछ सदस्यो को स्थायी समितियो के द्वारा, कार्यकारिणी-विभागो के सचालन और प्रशासनीय समस्याओ के निकट-सम्पर्क मे आने का अवसर मिल जाता था। सभा की स्थायी समितियो मे, वित्त समिति और सार्वजनिक लेखा समिति अधिक महत्त्वपूर्ण थी। सभा के सदस्यो को भारत सरकार की वास्तविकता प्रकट करने का भी अवसर था—यह जताने का कि सरकार, देश के लोगो की इच्छाओ और उनके हितो के विरुद्ध काम कर रही थी। भारतीय विधान सभा और चाहे जो कुछ करने मे समर्थ या असमर्थ हो किंतु उसे भारत सरकार का असली स्वरूप प्रकट करने का अधिकार अवश्य था।

१२

१९१९ के ऐक्ट ने भारत की 'गृह सरकार' मे भी कुछ परिवर्तन किये। सब से पहली बात तो यह हुई कि प्रान्तो को आशिक उत्तरदायित्व देने के कारण, सपरिषद् भारत मत्री को नियत्रण कम करने का अधिकार दिया गया। सरक्षित विभागो के सबध मे अथवा भारत सरकार के सबध मे प्रविधानीय रूप से नियत्रण कम करना सभव नही था क्योकि इनके लिए पार्लियामेण्ट के प्रति उत्तरदायित्व था। किन्तु सयुक्त प्रवर समिति ने ऐसी परम्परा डालने का सुझाव दिया था कि असाधारण परिस्थितियो के अतिरिक्त, ऐसे विशुद्ध रूप से भारतीय विषयो मे जिनके सबध मे सरकार और भारतीय विधान मडल सहमत हो, भारत-मत्री हस्तक्षेप न करे। यह बात आर्थिक विषयो के सबध मे विशेष रूप से आवश्यक

१ Section 25 of the Act of 1919, 'India in 1919' page 249

अनुभव की गई क्योकि सयुक्त प्रवर समिति इस बात का सन्देह दूर करने के लिए अत्यन्त उत्सुक थी "कि भारत की आर्थिक नीति ब्रिटेन के व्यापार के हित मे व्हाइट हाल से निर्देशित होती है। यही कारण है कि इस दृष्टि से व्यवहृत नीति 'आर्थिक स्वायत्तता परपरा' के नाम से पुकारी जाती थी।"

१९१९ के ऐक्ट ने 'गृह सरकार' के सबध मे दूसरा परिवर्तन भारत-परिषद् के सविधान मे किया। भारतीय जनमत ने भारत-परिषद् को तोडने की माग की थी और क्रिउवे कमेटी का मत बराबर बँटा हुआ था। किन्तु सयुक्त प्रवर समिति ने भारत-परिषद् को बनाये रखने की सिफारिश की जिसे १९१९ के ऐक्ट ने स्वीकार किया और उसमे कुछ साधारण सशोधनो के अतिरिक्त भारत परिषद को पूर्ववत् बनाये रखा। परिषद् की सदस्यता की अधिकतम सीमा को १४ से घटाकर १२ कर दिया गया और न्यूनतम सीमा को १० से घटा कर ८ कर दिया गया। भविष्य मे नौ सदस्यो के स्थान पर परिषद् के आधे सदस्यो के लिए ही सेवा की अर्हता आवश्यक थी। नये सदस्यो का कार्य-काल सात वर्ष से घटा कर पाँच वर्ष कर दिया गया। सदस्यो के लिए १२०० पौड का वार्षिक वेतन निश्चित कर दिया गया, किन्तु भारतीय सदस्यो को इस वेतन के अतिरिक्त ६०० पौड का वार्षिक भत्ता देने की व्यवस्था भी की गई। परिषद् की मीटिग कम-से-कम प्रति सप्ताह के स्थान पर प्रतिमास होती थी। गण-पूर्त्ति के सबध मे प्रविधानीय व्यवस्था नही की गई, उसकी सख्या स्वय भारत मत्री को निश्चित करनी थी। कार्य सचालन के लिए नियम बनाने का अधिकार स-परिषद भारत मत्री को दिया गया। इस सबध मे इस बात की ओर ध्यान उचित होगा कि सयुक्त प्रवर समिति ने भारत-परिषद् की उपयोगिता बढाने के लिए 'विभाग व्यवस्था' अपनाने की सिफारिश की थी।

तीसरी बात यह थी कि मॉण्टफोर्ड सुधारो ने स-परिषद् भारत-मत्री के अभिकरण कार्यो को प्रशासनीय एव राजनैतिक कार्यो से पृथक् करने की व्यवस्था की थी। क्रिउवे कमेटी का यह सुझाव था कि स-परिषद् भारत मत्री के अधिकरण-कार्य भारत के हाई कमिश्नर को, (जिसकी इसी उद्देश्य से लन्दन मे नियुक्ति की जावे) सौप दिये जाने चाहिएँ। ऐक्ट ने सम्राट् को अधिकार दिया "कि वे सयुक्त राज्य मे भारत के हाईकमिश्नर की नियुक्ति के लिए, उसके वेतन, निवृत्ति वेतन, अधिकार कर्त्तव्य और उसकी सेवा की शर्तो के लिए परिषद् आदेश द्वारा व्यवस्था करे और उसको वे सब अधिकरण-कार्य सौप देने की व्यवस्था करे जो पहले सपरिषद् भारत मत्री द्वारा किये जाते थे साथ ही वे शर्तें

१ Mukherjee The Indian Constitution, Part II, page 523.

निश्चित कर दे जिनके अनुसार उसे स-परिषद् गवर्नर-जनरल अथवा प्रान्तीय सरकार की ओर से काम करना होगा।"[1]

सन् १९२० मे भारत के हाई कमिश्नर[2] की नियुक्ति की गई और उसको पण्य विभाग, भारतीय विद्यार्थी विभाग और भारतीय व्यापारिक कमिश्नर के कार्यों के निरीक्षण और नियत्रण का अधिकार दिया गया। क्रमश इडिया ऑफिस के सारे अधिकरण-कार्यो को लन्दन के भारतीय हाई कमिश्नर को सौपने का उद्देश्य था।

सयुक्त प्रवर समिति ने इस बात की सिफारिश की थी कि इडिया आफिस के सारे राजनैतिक और नियत्रण सम्बन्धी कार्यों के व्यय का भार (इसमे भारत-मत्री का वेतन भी सम्मिलित था), ब्रिटिश राजस्व पर होना चाहिए और केवल अधिकरण-कार्यो के व्यय का भार भारतीय राजस्व पर होना चाहिए। अत १९१९ के ऐक्ट ने व्यवस्था की कि "भारत मत्री का वेतन, उसके उपमत्रियो का वेतन और उसके विभाग का अन्य व्यय भारतीय राजस्व मे न दिया जाकर, पार्लियामेण्ट मे दिया जावे और यह व्यय इसी प्रकार दिया जाएगा।"[3] इस धारा के अनुसार इडिया ऑफिस के नियत्रण सबधी और राजनैतिक कामो के व्यय का भार, साथ ही भारत मत्री और उसके उपमत्रियो के वेतन का भार ब्रिटिश राजस्व पर डाल दिया गया।

१३

इस प्रकार १९१९ के सुधार केवल प्रान्तीय क्षेत्र तक ही सीमित नही थे : उन्होने केन्द्रीय सरकार और गृह सरकार पर भी प्रभाव डाला। केवल इतना ही नही वरन् उन्होने भारतीय नरेशो को भी अपनी परिधि मे लिया। नरेन्द्र मडल (चैम्बर ऑव प्रिसेज) और उसकी स्थायी समिति की स्थापना द्वारा ब्रिटिश भारत और देशी राज्यो के पारस्परिक सहयोग-व्यवस्था को सुधारने का प्रयत्न किया गया। ब्रिटिश भारत की सरकारो और देशी राज्यो के आपसी झगड़ो को और देशी नरेशो के सबध मे कदाचार के आक्षेपो को जाच कमीशन के सिपुर्द करने की व्यवस्था भी की गई।

मि मॉण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड का यह मत था कि ब्रिटिश भारत के वैधानिक परिवर्तनो से देशी राज्यो पर भी प्रभाव पड़ेगा और इसी कारण उन्होने

१. Section 35 of the Act, India in 1919, page 251.

२. सर विलियम मेयर को सबसे पहला हाई कमिश्नर नियुक्त किया गया। सर मेयर कुछ ही समय पहले भारत सरकार के वित्त-सदस्य के पद से निवृत्त हुए थे।

३. Section 30 of the Act, India in 1919, page 249.

देशी राज्यो से सबध के प्रश्न का परीक्षण किया।[1] उन्होने देशी नरेशो को इस बात का आश्वासन देने की आवश्यकता अनुभव की कि ब्रिटिश भारत मे चाहे जो परिवर्तन हो किन्तु सधियो, सनदो और व्यवहार के अनुसार उन्हे जो अधिकार, प्रतिष्ठा और विशेषाधिकार प्राप्त है उनमे किसी प्रकार की कमी नही होगी।[2] वस्तुत ऐसे किसी आश्वासन की आवश्यकता नही थी क्योकि मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट ने जिन परिवर्तनो की सिफारिश की थी उनसे देशी राज्यो के साथ सबध के प्रश्न पर कोई प्रभाव नही पडता था। किन्तु कुछ देशी नरेश इस अवसर से लाभ उठाकर अपनी स्थिति सुधारने के लिए और अपने परिवादो और अपनी असमर्थताओ को दूर करने के लिए उत्सुक थे।

मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट मे कहा गया था—"देशी राज्यो के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति समय-समय पर बदलती रही है। आरभ मे देशी राज्यो को अपनी परिधि से बाहर हस्तक्षेप करने का अधिकार नही था, उसके बाद लॉर्ड हेस्टिंग्स की नीति के अनुसार देशी राज्य अधस्थ और विश्लिष्ट हो गए। इस नीति का स्थान उस वर्तमान नीति ने लिया जिसके अनुसार देशी राज्यो का सर्वोच्च सत्ता से सहयोग और ऐक्य का सबध है।"[3] किन्तु इस सबध मे इस बात की ओर ध्यान दिलाना आवश्यक है कि देशी राज्यो और ब्रिटिश सरकार मे जो सहयोग था, वह बराबरी की हैसियत से नही था। लॉर्ड कैनिग के समय से लॉर्ड रीडिग के समय तक भारत की ब्रिटिश सरकार ने देशी नरेशो की अवस्थता और अपनी श्रेष्ठता पर बराबर जोर दिया—यहाँ तक कहा गया कि उसकी प्रभुता को शब्दो द्वारा पूर्ण रूप से व्यक्त नही किया जा सकता; उस पर कोई प्रतिबन्ध नही था; और ब्रिटिश सत्ता को, सधियो, सनदो आदि से स्वतन्त्र रूप से, देशी राज्यो के सभी विषयो मे हस्तक्षेप करने का पूर्ण अधिकार था। अस्तु, मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट मे उनकी स्थिति इस प्रकार व्यक्त की गई :—"देशी राज्यो को बाहरी आक्रमण से सुरक्षा प्राप्त है; सर्वोच्च सत्ता उनकी ओर से देशी और विदेशी राज्यो के प्रति काम करती है और जब उनके प्रदेशो की आन्तरिक शान्ति पर कोई बड़ा सकट होता है तो हस्तक्षेप करती है। दूसरी ओर विदेशी सरकारो के साथ उनके वही सबध है जो सर्वोच्च सत्ता के है; सुरक्षा मे उनका समान दायित्व है; और उन पर अपने प्रदेशो की समृद्धि और उनके

१. The Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, page 193.

२. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ १९४।

३. The Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, page 190.

सुशासन का दायित्व है।"[1]

पिछले सत्तर वर्षों मे देशी राज्यो और ब्रिटिश भारत के सम्पर्क-बिन्दु काफ़ी बढ गए थे और बहुत से कामो के लिए भारत के ये दोनो भाग लगभग एक इकाई बन गए थे। मॉण्टफोर्ड-रिपार्ट के अनुसार —"भारत के दोनो भागो के परस्पर घुलमिल जाने की दिशा मे एक प्रक्रिया काम करती हुई दिखाई देती है। अकाल के अवसरो पर हमने देशी राज्यो की सहायता की है ; हमने उन्हे ब्रिटिश भारत के अनुभवी अधिकारियो की सेवाएँ निम्नलिखित कार्यों में प्रदान की है—उनकी मालगुजारी अथवा वित्तीय व्यवस्था को दोहराने अथवा उसका निरीक्षण करने के लिए अथवा उनके प्रदेशो मे कृषि और सिचाई की दशा सुधारने के लिए। बहुत से देशी राज्यो ने दीवानी और फौजदारी पद्धति के सबध में हमारी सहिताओ को अपनाया है। कुछ देशी राज्यो ने हमारी शिक्षण-व्यवस्था का अनुकरण किया है और उसे आगे भी बढाया है। पुलिस और न्याय के क्षेत्रो मे सहयोग बढा है। हमारी रेलवे और तार-व्यवस्थाएँ बहुत से देशी राज्यो मे भी काम करती है। भारतीय सीमा शुल्क का सभी देशी राज्यो से सम्बन्ध है जिनमे वे राज्य भी सम्मिलित है जिनके अपने निजी बन्दरगाह है।"[2] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत के दोनो भाग बहुत से विषयो मे एक दूसरे के बहुत निकट आ गये थे। किन्तु देशी राज्यो की राजनैतिक जागृति, ब्रिटिश भारत की अपेक्षा कही कम थी। विभिन्न देशी राज्यो मे भी यह जागृति एक-सी नही थी। अत. यह कहा गया, "देशी राज्य विकास की विभिन्न सीढियो पर है। कही सामन्तवाद है; कही कुछ अधिक उन्नति हो गई है; और कुछ राज्यो मे प्रतिनिधि सस्थाओ का प्रारम्भ हो गया है। इन सभी राज्यो की, जिनमे सबसे ज्यादा उन्नत राज्य भी सम्मिलित है, यह एक विशेषता है कि उनमे से प्रत्येक मे उसके नरेश का व्यक्तिगत राज्य है और उसका विधान, न्याय और शासन पर नियत्रण है।[2]

अस्तु देशी राज्यो की स्थिति क्रमशः सुधरती रही। विद्रोह के बाद के वर्षों मे अगरेजो को देशी नरेशो पर अविश्वास था और उन्हे इस बात का डर था कि अवसर मिलने पर वे सब अगरेजो के विरुद्ध एक हो जाएँगे। अतः उस समय ब्रिटिश नीति देशी राज्यो को विश्लिष्ट रखने की थी और देशी नरेशो के परस्पर मिलने के अवसर यथासभव सीमित कर दिये गये थे। किन्तु

१. लॉर्ड कैनिंग, लॉर्ड लिटन,, लार्ड कर्ज़न, लॉर्ड हार्डिज और लॉर्ड रीडिंग ने देशी राज्यो की अधस्थ स्थिति के सबध मे विशेष रूप से ज़ोर दिया था।

२. The Report on the Indian Constitutional Reforms 1918, page 191.

ब्रिटिश भारत के शिक्षित वर्गों मे राष्ट्रीय चेतना बढने पर, देशी नरेशो के प्रति ब्रिटिश सरकार की नीति मे परिवर्तन हुआ, और उन का समर्थन प्राप्त करने की ओर देश के शासन मे उनको साथ लेने की नीति का क्रमश विकास हुआ। ब्रिटिश भारत के शिक्षित वर्गो की माँगो के विरुद्ध देशी नरेशो की दृढ दीवार का उपयोग करने की सभावनाओ की ओर सब से पहले लॉर्ड लिटन का ध्यान आकर्षित हुआ था। इसी कारण उन्होने बडे देशी नरेशो की एक भारतीय प्रिवी कौसिल बनाने की सिफारिश की थी। जैसा कि अन्यत्र[१] कहा जा चुका है। उस प्रस्ताव का केवल इतना ही फल हुआ कि देशी नरेशो के नाम के साथ "सम्राज्ञी की परिषद् के सदस्य" की खोखली उपाधि जोड दी गई। लॉर्ड कर्ज़न ने फिर उसी विचार को उठाया और "देशी नरेशो की परिषद्" की स्थापना करने का प्रस्ताव किया। किन्तु ब्रिटिश सरकार और देशी राज्यो मे, राष्ट्रीय शक्तियो से सकट का सामना करने के उद्देश्य से परस्पर सहयोग के विचार को सक्रिय रूप देने का काम लॉर्ड मिटो ने किया। जैसा कि नरेन्द्र-मडल के विशेष सगठन-विभाग ने 'दि ब्रिटिश क्राउन एण्ड दि इडियन स्टेट्स' मे कहा है --"ब्रिटिश भारत मे राष्ट्रीय आन्दोलन की वृद्धि से लॉर्ड मिटो घबरा गए थे और उन्हे राष्ट्रीय आन्दोलन के विरुद्ध देशी नरेशो के सगठन मे एक दृढ दीवार दिखाई दी।" उन्होने बताया कि "इस सारी व्यवस्था की केन्द्रीय बात यह है कि साम्राज्यीय सरकार और देशी राज्यो के हित एक है, अत उनके प्रदेशो के आन्तरिक मामलो मे न्यूनतम हस्तक्षेप होना चाहिये।" अस्तु, "सारे भारत--प्रान्तो और साथ ही राज्यो--की भलाई से सबधित विषयो पर देशी नरेशो से परामर्श करने की परपरा आरभ की गई।"[२] लॉर्ड मिटो ने आरभ मे साम्राज्यीय मत्रणा-परिषद् स्थापित करने का प्रस्ताव किया और बाद मे देशी शासको की साम्राज्यीय परिषद् बनाने का सुझाव दिया किन्तु दोनो मे से किसी भी प्रस्ताव को रूप नही दिया गया। लार्ड हार्डिज ने उस नीति को एक कदम और आगे बढाया और देशी राज्यो मे उच्चतर शिक्षा के सबध मे विचार करने के लिए एक सम्मेलन का आयोजन किया। देशी राज्यो के हितो मे सबधित प्रश्नो पर परामर्श करने की परपरा को भी लॉर्ड हार्डिज ने जारी रखा और नरेशो को परस्पर परामर्श करने के लिए प्रोत्साहन दिया। सन् १९१४ तक कुछ प्रमुख देशी नरेश भारत की भावी नीति मे देशी राज्यो की

१. See Introduction of Singh . Indian States and British India : Their Future Relations; particularly pages 56-57.

२. Quoted in Singh . Indian States and British India : Their Future Relations, page 56.

स्थिति सुरक्षित रखने के बारे मे विचार करने लगे थे। लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने अपने दो पूर्वाधिकारियों की नीति को जारी रखा और केवल देशी राज्यो से सबधित और साथ ही देशी राज्यो तथा ब्रिटिश भारत से सयुक्त रूप से सबधित विषयो पर विचार करने के लिए देशी नरेशो के वार्षिक सम्मेलन किए। किन्तु देशी नरेश वस्तुस्थिति से सन्तुष्ट नही थे और जब मि माटेगु तथा लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने सुधारो के सिलसिले मे जाँच करने के लिए देश का दौरा किया तो देशी नरेशो ने एक शिष्ट मडल द्वारा अपने परिवादो का प्रतिनिधित्व किया और अपने प्रस्ताव प्रस्तुत किए। उन्होने तीन मुख्य दिशाओ मे परिवर्तन करने के लिये कहा। डा रशब्रुक विलियम्स के शब्दानुसार, "वे यह अनुभव करते थे कि अखिल भारतीय नीति निश्चित करने मे उनका कोई स्थान नही था। उन का दूसरा परिवाद यह था कि देशी राज्यो और ब्रिटिश भारतीय अधिकारियो के झगडो का निपटारा करने के लिये कोई निष्पक्ष व्यवस्था नही थी क्योकि अधिकाश मामलो मे भारत सरकार स्वय फँसी हुई होती थी और वही निर्णय करती थी। अन्त मे उनका यह विश्वास था कि राजनैतिक विभाग प्राय सधियो की उपेक्षा करता था और साधारणतया उसका व्यवहार स्वेच्छापूर्ण होता था।"[१]

"इन दोषो को दूर करने के लिए देशी नरेशो ने एक ऐसी सभा बनाने की योजना रखी जिसमे वे परस्पर मिल सके और अपने सर्वमान्य हितो पर विचार कर सके," और जिस के द्वारा वे अखिल भारतीय विषयो पर ब्रिटिश भारतीय अधिकारियो के साथ मिल कर परामर्श कर सके। इसके अतिरिक्त उन्होने एक योजना का प्रस्ताव किया जिसके अनुसार विवादास्पद विषय निर्णय के लिए एक निष्पक्ष न्यायालय को सौपे जाने थे। अन्त मे उन्होने इस बात की इच्छा प्रकट की कि राजनैतिक कार्यवाह का उनकी एक समिति के साथ सम्पर्क हो ताकि विभाग की साधारण नीति, देशी नरेशो की इच्छाओ और भावनाओ को ध्यान मे रखते हुए निश्चित की जा सके।"[२]

माण्टफोर्ड-रिपोर्ट ने देशी नरेशो के मुख्य प्रस्तावो को स्वीकार किया। रिपोर्टमे कहा गया.—"हम परामर्श के उद्देश्य से एक स्थायी निकाय स्थापित करना चाहते है। कुछ ऐसे प्रश्न है जिनका देशी राज्यो पर साधारणतया प्रभाव पडता है,

---

१. Quoted from the British Crown and the Indian States in Singh : Indian States and British India. Their Future Relations, page 58.

२ Singh · Indian States and British India : Their Future Relations, page 59.

साथ ही ऐसे प्रश्न भी है जिनका पूरे साम्राज्य से अथवा ब्रिटिश भारत और देशी राज्यो से समान सबध है, हमारा यह विचार है कि उन प्रश्नो पर प्रस्तावित निकाय का मत अत्यन्त मूल्यवान् होगा। वाइसरॉय उन प्रश्नो को उस परिषद् के विचारार्थ भेजेगा और हम को उसका सुचिन्तित मत जानने का अवसर मिलेगा। हमारे विचार से वाइसरॉय द्वारा अनुमोदित कार्यावली पर विचार करने के लिए उस परिषद् की सभाये नियमित रूप से —साधारणतया वर्ष मे एक बार—होनी चाहिये।"[1] इस प्रकार मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट ने देशी नरेशो की एक स्थायी परिषद् स्थापित करने का प्रस्ताव किया। "हमारा दूसरा प्रस्ताव यह है कि देशी नरेशो की उक्त परिषद् प्रति वर्ष एक छोटी स्थायी समिति नियुक्त करे जिसमे वाइसरॉय और राजनैतिक विभाग द्वारा 'परपरा और व्यवहार के विषयो' पर अभिदेश किया जा सके।"[2] रिपोर्ट मे कहा गया कि इस समिति मे परिषद् की इच्छानुसार दीवानो अथवा मत्रियो की नियुक्ति की जा सकती है। अन्त मे रिपोर्ट मे यह सिफारिश की गई कि जिन विवादो मे निष्पक्ष जॉच वाछनीय हो, वाइसरॉय एक कमीशन नियुक्त करे जिस मे एक हाईकोर्ट का न्यायाधीश और उसके अतिरिक्त प्रत्येक पक्ष का नामनिर्देशित प्रतिनिधि हो। यदि उस कमीशन की रिपोर्ट वाइसरॉय को मान्य न हो तो उसे भारत-मत्री के निर्णय के लिए अभिदिष्ट किया जावे।[3]

सन् १९१९ की जनवरी के अन्त मे देशी नरेशो के एक सम्मेलन मे इन प्रस्तावो पर विचार किया गया, किन्तु यह सम्मेलन प्रतिनिधित्व के सबध मे किसी अन्तिम निर्णय पर नही पहुँच सका। उस सम्मेलन ने नरेशो की परिषद् की योजना का अनुमोदन किया और यह सुझाव दिया कि उसे नरेन्द्र मडल के नाम से पुकारा जावे। इसं सम्मेलन की सिफारिशे भारत मत्री के समक्ष रखी गई, और वाइसरॉय ने भारत मत्री के परामर्श से नरेन्द्र मडल स्थापित करने की योजना का मसविदा तैयार किया जिसे नवम्बर १९१९ मे देशी नरेशो के दूसरे सम्मेलन के समक्ष रखा गया। सम्मेलन ने इस योजना का अनुमोदन किया और कार्यपद्धति, पच न्यायालय और जॉच कमीशन के नियमो का मसविदा बनाने मे वाइसरॉय की सहायता करने को एक कमेटी नियुक्त की। ८ फरवरी १९२१ को ड्यूक ऑव कॅनॉट ने नरेन्द्र-मडल का नियमानुसार उद्घाटन किया।

---

१ The Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, page 195.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १९५-१९६.

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ २९६.

१४

ब्रिटिश भारत और देशी राज्यो मे सहयोग के लिए इस नई व्यवस्था के सबध मे सन् १९१९ के गवर्नमेन्ट ऑव इडिया ऐक्ट मे कोई धारा नही थी। नरेन्द्र-मडल की स्थापना का निर्णय एक राजकीय उद्घोषणा द्वारा व्यक्त किया गया था।

नवम्बर १९१९ मे देशी नरेशो के सम्मेलन मे लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने 'शासक नरेशो' और 'शासक सामन्तो' मे विभेद किया था। शासक नरेश, देशी राज्यो के वे शासक थे जिनको राजप्रतिष्ठा के आधार पर तोपो की सलामी मिलती थी, जिनको अपने प्रदेशो के आन्तरिक शासन का लगभग पूर्ण अधिकार था और जिनको स्वय ही नरेन्द्र-मडल का सदस्य होने का अधिकार था। अन्य सब केवल शासक सामन्त थे। अन्त मे नरेन्द्र-मडल की रचना के अनुसार केवल १०८ देशी नरेशो को व्यक्तिगत सदस्यता का अधिकार दिया गया। अन्य देशी राज्यो को दो समूहो मे बाँटा गया.—वे राज्य जिनको नरेन्द्र-मडल मे प्रतिनिधित्व दिया गया—ऐसे १२७ राज्य थे और उनको १२ प्रतिनिधि सदस्य चुनने का अधिकार दिया गया था; और वे राज्य जिनको कोई प्रतिनिधित्व नही दिया गया था और इन की सख्या ३२७ थी। इस प्रकार नरेन्द्र-मडल मे १२० सदस्य थे——१०८ शासक नरेश जो अपने अधिकार के बल पर उसके सदस्य थे, और १२ प्रतिनिधि जो शासक सामन्तों द्वारा चुने गए थे। लार्ड चेम्सफोर्ड ने नरेन्द्र-मडल के बारे मे कुछ बाते स्पष्ट कर दी थी ;—"पहली बात तो यह थी कि मडल मे उपस्थित होना और वोट देना, सदस्यो की स्वेच्छा पर निर्भर होगा", "दूसरी बात यह थी कि मडल मे परामर्श किया जावेगा किन्तु उसकी कोई कार्यकारिणी सत्ता नही होगी", और "तीसरी बात यह थी कि मडल की स्थापना से भारत सरकार और किसी देशी राज्य के सीधे सबध पर कोई प्रभाव नही पडेगा क्योकि प्रत्येक देशी राज्य का, चाहे उसे मंडल मे प्रतिनिधित्व हो अथवा न हो, भारत सरकार से सीधे सबंध बनाये रखने का अधिकार यथापूर्व रहेगा।" अन्त मे लॉर्ड चेम्सफोर्ड ने कहा—"इस सबध मे यह पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि मडल मे किसी राज्य-विशेष के आन्तरिक मामलो की अथवा किसी व्यक्तिगत शासक के कार्यो की चर्चा नही की जावेगी।"[1]

इस नरेन्द्र-मडल की, वाइसरॉय की अध्यक्षता मे, उसके द्वारा अनुमोदित कार्यावली पर विचार करने के लिए साधारणतया वर्ष मे एक बार सभा होनी थी। मडल को अपने लिये एक चासलर का निर्वाचन करना होता था जिसे वाइसरॉय की अनुपस्थिति मे अध्यक्ष का पद ग्रहण करना होता था। वह स्थायी समिति का

१. देशी नरेशो के सम्मेलन मे लार्ड चेम्सफ़ोर्ड के व्याख्यान से अनूदित—देखिये The Indian Annual Register, 1920, page 88.

भी अध्यक्ष होता था, जिसमे, उसके अतिरिक्त चार या पाँच सदस्य और होते थे। स्थायी समिति के सदस्यो का इस शर्त के अभ्यधीन प्रति वर्ष निर्वाचन होता था कि उसमे—राजपूताना, मध्य भारत, बम्बई और पजाब—प्रत्येक क्षेत्र के देशी नरेशो को प्रतिनिधित्व प्राप्त होगा।

मडल के कार्यो और उसके अधिकारो पर प्रतिबधो को राजकीय उद्घोषणा मे इस प्रकार व्यक्त किया गया —

"साधारणतया देशी राज्यो के प्रदेशो से सबन्धित विषयो पर और साथ ही उन विषयो पर, जिनका ब्रिटिश भारत अथवा मेरे शेष साम्राज्य के साथ उन प्रदेशो पर भी सयुक्त रूप मे प्रभाव पडता है, मेरा वाइसरॉय निस्सकोच परामर्श करेगा। उसका किसी व्यक्तिगत देशी राज्य अथवा किसी व्यक्तिगत नरेश के मेरी सरकार के साथ सबध से लगाव नही होगा, और उसका देशी राज्यो की वर्तमान व्यवस्था और उनकी कार्य-स्वतन्त्रता पर किसी प्रकार से प्रतिकूल प्रभाव नही पड़ेगा।"[१]

स्थायी समिति की "भारत सरकार के केन्द्र मे प्रति वर्ष दो या तीन बार मीटिग होती है और उसका एक अत्यन्त महत्वपूर्ण काम यह है कि वह ऐसे विषयो पर, जिनका देशी राज्यो और ब्रिटिश भारत, दोनो के शासन के साथ सबध है; सरकार के विभिन्न विभागो के साथ विचार-विनिमय करती है।"[२]

१५

मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट ने देशी राज्यो के सबध मे दो विषयो पर और निर्देश किया था ; उनका सक्षिप्त विवरण देना आवश्यक है। रिपोर्ट के लेखको ने कहा :— "हमारे दो अवशिष्ट प्रस्तावो का ब्रिटिश भारत की सविधानीय योजना से प्रत्यक्ष सबध है। हम इस बात की सिफारिश करते है कि साधारण सिद्धान्त के रूप मे, भारत सरकार के साथ सारे महत्वपूर्ण देशी राज्यो के सीधे राजनैतिक सबध होने चाहिएँ।"[३] इस बात की केवल कुशलता और कार्य-सचालन मे शीघ्रता की ही दृष्टि मे नही वरन् साधारण नीति के आधार पर भी— अखिल भारतीय

१. Singh : Indian States and British India : Their Future Relations, page 61—के एक उद्धरण का अनुवाद।

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६३।

३. The Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, page 197 इस सिफारिश के फलस्वरूप वस्तुतः जो परिवर्तन हुए उनके लिये देखिये—Singh : Indian States and British India; Their Future Relations, page 53 and 54.

महत्व के विषयो को प्रान्तीय विषयो से अलग करने के लिए—उसकी आवश्यकता थी। अन्य देशी राज्यो के सबध मे रिपोर्ट के लेखको ने कोई निश्चित सिफारिशे नही की। उन्होने लिखा —"भारत सरकार इन राज्यो से सीधे सबध स्थापित कर सकती है अथवा इस समय उनको प्रान्तीय सरकारो के साथ सबध बनाये रखने को छोड सकती है ; किन्तु दूसरी स्थिति मे हमारे विचार से प्रान्तीय अध्यक्ष को देशी राज्यो के साथ अपने सबध मे केन्द्रीय सरकार के अभिकर्ता के रूप मे काम करना चाहिये और देशी राज्यो के साथ ये प्रान्तीय सबध इस अर्थ मे प्रान्तीय विषय नही माने जाने चाहिएँ कि कभी भी वे विधान-परिषद् के नियन्त्रण के अन्तर्गत आ सकते है।"[१]

मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट का दूसरा और अन्तिम प्रस्ताव देशी नरेशो और ब्रिटिश भारतीय अधिकारियो द्वारा देशी राज्यो और ब्रिटिश भारत दोनो से सबधित विषयो पर, सयुक्त रूप से परामर्श करने की व्यवस्था के सबध मे था। राज्य-परिषद् मे कुछ नरेशो को उस समय सम्मिलित करने का प्रस्ताव, अव्यवहार्य था। अत रिपोर्ट के लेखको ने इस बात की सिफारिश की कि वाइसरॉय "ऐसे अवसरो पर राज्य-परिषद् और नरेश-परिषद् अथवा उनके प्रतिनिधियो के बीच सयुक्त परामर्श का प्रबध करे।"[१]

## इक्कीसवाँ अध्याय

# विच्छिन्नता की वृद्धि

१

मॉण्टफोर्ड-योजना भारतवासियो के लिये वस्तुत झगडे की जड सिद्ध हुई। बडे यत्न और बलिदान के बाद क्रमश· जो ऐक्य स्थापित किया गया था, वह विना किसी विशेष प्रकट प्रयास के, लगभग तुरन्त ही नष्ट कर दिया गया। दस वर्ष अलग रहने के बाद राष्ट्रवादियो के नरम और उग्र पक्ष, जो पुन एक हो गए थे, उनको मॉण्टफोर्ड-योजना ने एक बार फिर विभाजित कर दिया। कई सामुदायिक और साम्प्रदायिक सस्थाएँ अस्तित्व मे आई अथवा दृढ की गई। उनका उद्देश्य प्रस्तावित सुधारो मे अपने वर्ग अथवा समुदाय के लिए विशेषाधिकार प्राप्त करना था। दिसम्बर १९१६ मे लखनऊ मे जो हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य हुआ था उस पर अक्टूबर १९१६ मे आरा (बिहार) के साम्प्रदायिक दगो के कारण इतना तनाव पडा कि वह टुकडे-टुकडे होने से बाल-बाल बचा।

१. Report on Indian Constitutional Reforms, 1918, page 198.

दगो का तात्कालिक कारण यह था कि २९ सितम्बर १९१७ को इब्राहीमपुर (जिला शाहाबाद ) के मुसलमानो ने अपने समझौते को तोड कर गाय का बलिदान किया था। निकटवर्ती ग्राम्य क्षेत्रो के हिन्दू, गाय का बलिदान सदा के लिए बन्द कर देने का दृढ निश्चय किये हुए थे क्योकि उनके लिये गाय बडी श्रद्धा की चीज थी। "३० सितम्बर की सुबह को हिन्दुओ के बहुत बडे दल ने—अनुमानत· २५००० आदमियो ने—इब्राहीमपुर और निकट के कुछ गाँवो पर आक्रमण किया। उसे तितर-बितर करने के लिए पुलिस को काफी लडाई लडनी पडी। उस अवसर पर काफी लूट-मार भी हुई और एक थाने पर आक्रमण किया गया। तुरन्त ही उस जिले को सैन्य-पुलिस भेजी गई और ३६ घटे तक प्रकटत. शान्ति रही। किन्तु २ अक्टूबर को जिले के अधिकाश भाग मे फिर एक-साथ दगे आरभ हो गए और ६ दिन तक न्याय और व्यवस्था का अभाव रहा।"[१] ९ अक्टूबर को झगडे गया जिले मे भी फैल गए। बहुत-से उपद्रवियो को गिरफ्तार किया गया। "भारत-सुरक्षा ऐक्ट के अन्तर्गत बनाये हुए विशेष न्यायालयो मे उन पर अभियोग चलाया गया और लगभग एक हजार आदमियो के दोष सिद्ध हुए और उनको विभिन्न अवधियो के लिए कारावास-दड दिया गया।"[२]

आरा के इन उपद्रवो की सारे भारतीय समाचार-पत्रो ने तीव्र निन्दा की किंतु डा. रशब्रुक विलियम्स ने लिखा है कि कुछ हिन्दू समाचार-पत्रो ने "सरकार के सिर दोष मढने का प्रयत्न किया और अनभिज्ञ देहाती जनता की धर्मांधता की चर्चा नही की।"[३]

इस प्रकार २० अगस्त १९१७ की घोषणा के बाद, हिन्दू-मुस्लिम-सौहार्द के होते हुए भी, भारत मे एक बहुत बडा साप्रदायिक दगा हुआ। और यह एक विचित्र बात है कि मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट के प्रकाशन के बाद भी देश मे भीषण दगे हुए। १८ सितम्बर १९१८ को यू पी के सहारनपुर जिले मे, कटारपुर नामक गाँव मे एक साम्प्रदायिक दगा हुआ। गाय का बलिदान रोकने के प्रयत्न मे हिन्दुओ द्वारा लगभग २० मुसलमान मारे गए। बहुत-से हिन्दू गिरफ्तार किये गए और उन पर अभियोग चलाया गया। "१७५ अपराधी सिद्ध हुए , ८ को प्राणदण्ड दिया गया, १३५ को आजीवन देश-निर्वासन दण्ड दिया गया और २ को सात वर्ष का कठोर कारावास।"[४]

---

१. India in 1917-18, page 39.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४०।

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४०–४१।

४. Lovett: A History of the Indian Nationalist Movement, page 180.

इन दगो के कारण हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य की प्रबल परीक्षा हुई, और यदि कुछ बाहरी कारण न होते, जिनके फलस्वरूप, मुसलमान ब्रिटिश सरकार[1] के विरुद्ध हो गए थे, तो वह ऐक्य समाप्त हो गया होता। अस्तु, महात्मा गाधी और अन्य राष्ट्रवादी नेताओ की 'खिलाफत' और तुर्किस्तान के सबध मे मुस्लिम माँगो के प्रति सहानुभूति के कारण साम्प्रदायिक ऐक्य दृढतर हुआ। राजनैतिक दृष्टि से जगे हुए बहुत-से हिन्दुओ ने, 'खिलाफत' के प्रश्न और शान्ति-सम्मेलन मे मुस्लिम-विरोधियो के प्रति सधि-शर्तो के सबध मे, मुसलमानो का पूर्ण समर्थन किया।

२.

हिन्दुओ के इस भाव ने हिन्दू-मुस्लिम-सौहार्द बनाये रखा। तथापि मॉण्ट-फोर्ड-रिपोर्ट के प्रकाशन से साम्प्रदायिक भावनाओ और भेदो को बढावा मिला। १९१६–१७ मे अ-ब्राह्मण आन्दोलन मद्रास मे आरभ हो गया था। डा नैयर के योग्यतापूर्ण एव आक्रामक नेतृत्व मे उसने बडी शीघ्रता से प्रगति की थी, उन लोगो की यह धारणा थी कि उनके आन्दोलन के प्रति सरकार की सहानुभूति थी। वस्तुत राष्ट्रवादियो को इस बात का पूरा विश्वास था कि सरकारी प्रेरणा से ही सारे आन्दोलन का सगठन किया गया था और उसका उद्देश्य होमरूल आन्दोलन का विरोध करना था।

मद्रास प्रेसीडेन्सी मे बहुत समय से ब्राह्मणो की स्थिति बडी प्रभावपूर्ण और प्रतिष्ठित थी और मुख्यत. उन्ही के हाथो मे शक्ति केन्द्रित थी —किन्तु सम्पत्ति मुख्यत अ-ब्राह्मणो के हाथो मे थी। अपनी शक्ति, विद्या और श्रेष्ठता के अभिमान मे ब्राह्मणो ने शताब्दियो से इतर जातियो के साथ तिरस्कारपूर्ण व्यवहार किया था। यद्यपि कुछ प्रगतिशील ब्राह्मण समाज-सुधार के काम मे लगे हुए थे और इतर

१ ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध तीखी भावनाओ की कलकत्ता के साम्प्रदायिक दगो मे अभिव्यक्ति हुई। ये दगे ९ और १० सितम्बर १९१८ को हुए। सरकार ने मुस्लिम-सम्मेलन करने पर रोक लगा दी थी। उस सरकारी आज्ञा को रद्द कराने के लिए एक मुस्लिम-जलूस गवर्नमेण्ट हाऊस की तरफ जा रहा था। उसे रोकने के लिए पुलिस ने प्रयत्न किया और उसके फलस्वरूप उपद्रव आरभ हो गया। जलूस को तितर-बितर करने के लिए पुलिस को गोली चलानी पडी। अगले दिन स्थिति और ज्यादा बिगड गई। मिल-मजदूरो ने उपद्रवियो का साथ दिया और एक फोरमैन को बुरी तरह पीटा। लगभग दो हज़ार मुसलमानो ने कलकत्ता शहर मे बलात् प्रवेश करने का प्रयत्न किया। इन लोगो को तितर-बितर करने के लिए फिर गोली चलानी पड़ी।

जातियो को ऊपर उठाने के लिए पूरा प्रयत्न कर रहे थे तथापि ब्राह्मणो और अ-ब्राह्मणो के सबध बहुत असतोषप्रद थे—एक ओर श्रेष्ठता का अभिमान था और दूसरी ओर आत्म-दैन्य था। लॉर्ड पैण्टलैण्ड की सरकार ने श्रीमती बीसेण्ट के भारतीय होमरूल के सगठित प्रचार का सामना करने के लिए, उस स्थिति का चतुरतापूर्वक उपयोग किया। १९१७-१८ मे अ-ब्राह्मणो ने होमरूल की माँग के विरुद्ध प्रचार किया और जिसे वह 'ब्राह्मणराज्य' कहते थे उसे अस्तित्व मे न आने देने के लिए, ब्रिटिश राज्य को बनाये रखने की माँग की। अ-ब्राह्मणो के पक्ष को व्यक्त करने के लिए और भारतीय हाथो मे सत्ता के हस्तान्तरण का विरोध करने के लिए, डा नैयर इग्लैण्ड गए।

मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट ने, पृथक् निर्वाचन-क्षेत्र द्वारा अथवा सयुक्त निर्वाचन-क्षेत्र मे सुरक्षित स्थानो द्वारा अ-ब्राह्मणो को विशेष प्रतिनिधित्व देने की माँग को अस्वीकार किया क्योकि अ-ब्राह्मण वर्ग प्रेसीडेन्सी मे बहुसख्यक थे। इसका अ-ब्राह्मणो ने, जो 'जस्टिस पार्टी' के रूप मे सगठित थे, प्रबल विरोध किया। उन्होने काफी हलचल मचाई, जिसका परिणाम यह हुआ कि कुछ बहु-सदस्य निर्वाचन-क्षेत्रो मे सुरक्षित स्थान रखने की उनकी माँग को सयुक्त प्रवर समिति ने स्वीकार कर लिया।

३

मद्रास के अ-ब्राह्मणो की अपेक्षा पजाब के सिक्खो का पक्ष कही-अधिक प्रबल था। वस्तुत सिक्खो का ही एक ऐसा समुदाय था जिसके लिए मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट के लेखको ने पृथक् निर्वाचन-क्षेत्रो की वही व्यवस्था अपनाने की आवश्यकता अनुभव की जो मुसलमानो के सबध मे अपनाई गई थी।

सन् १९१९ तक सिक्खो का कोई पृथक् राजनैतिक सगठन नही था। उस समय तक उन्होने अपना ध्यान धार्मिक और सामाजिक सुधारो पर केन्द्रित किया था और इनके अतिरिक्त शिक्षा के क्षेत्र मे उन्नति करने के लिए प्रयत्न किया था। १८८८ मे 'खालसा दीवान' नामक एक सुधार-सस्था लाहौर मे स्थापित की गई थी—और उसकी सारे प्रान्त मे 'सिह सभा' नामक धार्मिक शाखाएँ थी। खालसा दीवान का उद्देश्य, सिक्ख सम्प्रदाय मे अध-विश्वास और हिन्दू कर्मकाण्ड को दूर करना था और उनके स्थान पर सिक्ख रीतियो को प्रोत्साहन देना था। खालसा दीवान के प्रयत्नो का एक महत्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि १८९२ मे अमृतसर मे खालसा-कॉलेज स्थापित किया गया। किन्तु बीसवी शताब्दी के आरभ होने तक खालसा दीवान का सगठन मृतप्राय हो गया। दूसरी ओर, लगभग उसी समय अमृतसर मे 'चीफ खालसा दीवान' नामक एक दूसरा केन्द्रीय सगठन अस्तित्व मे

आया। यह दीवान अब भी वर्तमान है और महत्वपूर्ण शिक्षणात्मक कार्य कर रहा है। सन् १९०८ के बाद उसकी शिक्षण समिति ने प्रति वर्ष सिक्ख शिक्षणात्मक सम्मेलन का सगठन किया है और उसने प्रान्त मे बहुत-सी शिक्षण सस्थाओ को बराबर आर्थिक अवलम्ब दिया है।

सिक्खो की धार्मिक, सामाजिक एव शिक्षा सबधी उन्नति को प्रोत्साहन देने के अतिरिक्त, इस दीवान ने सिक्ख समुदाय के राजनैतिक हितो पर भी ध्यान दिया है। दीवान की राजनैतिक नीति को कोई प्रबल समर्थन नही मिला है क्योकि सिक्ख तरुण वर्ग की दृष्टि मे वह नीति अत्यन्त नरम अथवा पिछडी हुई और सरकार के पक्ष मे है। रिकाबगज (नई दिल्ली) के गुरुद्वारे की दीवार पर झगडे के सबध मे दीवान बहुत अप्रिय हो गया—क्योकि सरकार के प्रति उसका भाव कठोर नही था। तथापि यह दीवान सिक्खो के राजनैतिक हितो का सरक्षण करता रहा और समय-समय पर आवश्यकतानुसार सरकार के समक्ष प्रतिनिधित्व करता रहा। मॉण्टेगु मिशन को उसने एक लिखित ज्ञापन दिया और एक शिष्ट-मडल का सगठन किया, जिसने भारतमत्री और वाइसरॉय से भेट की।

सिक्ख ज्ञापन ने प्रान्त के राजनैतिक और आर्थिक[1] जीवन मे सिक्खो की महत्वपूर्ण स्थिति पर जोर दिया और महायुद्ध तथा व्युत्थान के समय मे उनके महान् बलिदानो की ओर ध्यान आकर्षित किया। महायुद्ध के समय मे पजाब से कुल जितने सैनिक भर्ती किये गए थे, उनमे से एक तिहाई सिक्ख थे और साधारण समय मे कुल भारतीय सेना मे २० प्रतिशत सिक्ख सैनिक होते थे। इसके अतिरिक्त वे पजाब के शासक रह चुके थे, और प्रान्त के कुलीन और प्रतिष्ठित जमीदार वर्ग में आधे से अधिक लोग सिक्ख थे। शिक्षा के क्षेत्र मे भी प्रान्त के बहुसख्यक समुदाय की अपेक्षा उन्होने अधिक प्रगति की थी। इन तथ्यो के आधार पर ज्ञापन मे यह माँग की गई कि पजाब-परिषद् मे उन्हे एक तिहाई प्रतिनिधित्व दिया जावे और सेवाओ मे उन्हे उचित भाग दिया जावे।

मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट ने अनुपात के प्रश्न को नही छेडा किन्तु मुसलमानो के आधार पर सिक्खो की पृथक् प्रतिनिधित्व की माँग को स्वीकार कर लिया। पजाब सरकार ने सिक्खो को अधिक स्थान देने की माँग का समर्थन किया —"प्रान्त मे उनकी प्रभावशाली स्थिति कुछ हद तक ऐतिहासिक और राजनैतिक कारणो पर, कुछ हद तक उनकी सैन्य प्रतिष्ठा पर और कुछ हद तक केन्द्रीय जिलो तथा नहर-उपनिवेशो मे उनके आर्थिक महत्व पर अवलम्बित है। उस स्थिति के कारण

१ पजाब मे सिक्खो की जनसख्या कुल ११ प्रतिशत थी, किन्तु वे ४० प्रतिशत मालगुजारी और नहर की आबपाशी देते थे।

यह उचित ही है कि उनकी सख्या की ओर ध्यान देकर उन्हे काफी प्रतिनिधित्व दिया जाना चाहिये।"[१] किन्तु पजाब-परिषद् ने उनके विषय पर विचार करना अस्वीकार किया और एक प्रस्ताव द्वारा केवल हिन्दुओ और मुसलमानो के लिए 'काग्रेस लीग योजना' के स्थान-विभाजन का अनुमोदन किया ; क्योकि उस राष्ट्रीय समझौते मे सिक्खो को कोई स्थान नही था। मताधिकार कमेटी ने सिक्खो को पजाब-परिषद् मे ५४ मे से कुल ८ स्थान प्रदान किए जिसके कारण उनमे प्रबल असन्तोष हुआ और उन्होने अपने हितो की रक्षा करने के लिए एक पृथक् राजनैतिक सस्था सगठित करने की आवश्यकता अनुभव की। लायलपुर जिले के सिक्ख आगे बढे और उन्होने अन्य जिलो के तरुण वर्ग के सहयोग से 'सिक्ख लीग' की स्थापना की। इस लीग का पहला अधिवेशन अमृतसर मे काग्रेस-सप्ताह मे किया गया और उसके अध्यक्ष सरदार गज्जनसिह थे जो पजाब विधान-परिषद् के सदस्य थे। सिक्खो को जो प्रतिनिधित्व दिया गया था, लीग ने उसे अपर्याप्त बताया और पजाब-परिषद् मे एक तिहाई निर्वाचित तथा नामनिर्देशित स्थानो के लिए माँग की।

सिक्ख लीग और चीफ खालसा दीवान, सिक्खो का प्रतिनिधित्व बढाने के लिए हलचल करते रहे और उन्होने भारत मत्री तथा ब्रिटिश मत्रिमडल के सामने अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिए एक शिष्टमडल इग्लैण्ड भेजा, किन्तु उसका कोई विशेष फल नही हुआ। अन्त मे जो योजना स्वीकार की गई उसमे कुल ९३ निर्वाचित तथा नामनिर्देशित स्थानो मे से सिक्खो को १२ स्थान दिये गए। निर्वाचित सदस्यो की कुल सख्या ७१ थी जिसमे से ३२ मुस्लिम निर्वाचन-क्षेत्रो से, २० साधारण निर्वाचन-क्षेत्रो मे, ७ विशेष निर्वाचन-क्षेत्रो मे और १२ सिक्ख निर्वाचन-क्षेत्रो से चुने जाने थे।

४

सुधारो के प्रश्न ने साम्प्रदायिक भावना को केवल अ-ब्राह्मणो और सिक्खो मे ही नही बढाया वरन् यूरोपियनो, आग्ल-भारतीयो और भारतीय ईसाइयो मे भी बढाया। "काफी समय से गैर-सरकारी अग्रेज-समुदाय भारतीय राजनीति मे कोई खास दिलचस्पी नही लेता था। लगभग तीस वर्ष पहले इल्बर्ट बिल आन्दोलन के सबध मे जो यूरोपियन डिफेस एसोसियेशन स्थापित की गई थी, उसका प्रभाव बहुत घट गया था और उसकी सख्या बहुत कम हो गई थी।"[२] किन्तु सुधारो की नई नीति के कारण यूरोपीय समुदाय अपना सगठन दृढ करने की आवश्यकता अनुभव करने लगा।

१. The Gurudwara Reform Movement and the Sikh Awakening, page 75.

२. India in 1917-18, page 43.

सन् १९१३ मे यूरोपियन डिफेस एसोसियेशन का नाम केवल 'यूरोपियन एसोसियेशन' हो गया था और १९१७ मे उसे एक नए आधार पर सगठित करने का प्रयत्न किया गया। "सारे भारत मे उसकी शाखाएँ बनाई गई और कलकत्ता मे एक नया केन्द्रीय सगठन स्थापित किया गया। अग्रेजो के अधिकाश पत्रो का समर्थन पाकर, कुछ ही समय मे उसकी सदस्यता ७०० अथवा ८०० से बढकर लगभग ८००० हो गई।"[1] जब मि मॉण्टेगु भारत मे आए तो यूरोपियन एसोसियेशन ने भारत मत्री और वाइसरॉय के सामने अपने दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व किया। भारत पर सुधार लादने के परिणामो के सबध मे उन्होने अपनी चिन्ता प्रकट की और राजनैतिक प्रगति के सिलसिले मे त्वरा की नीति का तीव्र विरोध किया। उसने गैरसरकारी यूरोपीय समुदाय के हितो की रक्षा के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व की माँग की। मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट ने पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के लिये यूरोपियनो की माँग को अस्वीकार किया किन्तु यूरोपीय हितो के सरक्षण के लिए सरकार को विशेष अधिकार देने की और साथ ही यूरोपीय वाणिज्य, उद्योग, खनिज तथा रोपक हितो को पूर्ण प्रतिनिधित्व देने की व्यवस्था की। यूरोपियन एसोसियेशन इससे सन्तुष्ट नही हुई और उसने यूरोपीय व्यापारिक हितो को दिए हुए विशेष प्रतिनिधित्व के अतिरिक्त, पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के लिये मताधिकार कमेटी के सामने अपना पक्ष प्रस्तुत किया। आग्ल-भारतीयो और भारतीय ईसाइयो की माँगो को भी मॉण्टफोर्ड रिपोर्ट ने अस्वीकार कर दिया था ; उन्होने भी मताधिकार कमेटी के सामने अपना पक्ष प्रस्तुत किया। इन तीनो समुदायो की पृथक् प्रतिनिधित्व की माँगो को मताधिकार कमेटी और सयुक्त प्रवर समिति, दोनो ने स्वीकार किया और १९१९ के सुधारो मे उनको (जिन प्रान्तो मे उनकी काफी सख्या थी) पृथक् साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व दिया गया।

५

यद्यपि सुधारो की नीति का भारत की यूरोपियन एसोसियेशन ने प्रबल विरोध किया है, किंतु वह इग्लैंड की इडो-ब्रिटिश एसोसियेशन के दृढ विरोध की तुलना मे बहुत कम था। इस एसोसियेशन की २० अगस्त १९१७ की घोषणा के कुछ समय बाद ही लन्दन मे स्थापना की गई थी और उस का उद्देश्य सरकार की नई नीति का विरोध करना और ब्रिटेन मे भारत-विरोधी जनमत जागृत करना था। किंतु प्रकटत उसका उद्देश्य "भारतीय जनता के ऐक्य और उसकी उन्नति" को प्रोत्साहन देना था। इस दिखावटी उद्देश्य की आलोचना करते हुए हिज़ हाईनेस महाराजा बीकानेर ने कहा—"इस एसोसियेशन की व्यवस्था, उसके तर्क और

१. India in 1917-18, page 43.

विभिन्न कार्यो ने उसके प्रदर्शित उद्देश्य पर एक जाल डाल रखा है और हम केवल इतना ही कह सकते है कि ऐसे मित्रो से हमारी रक्षा हो।"[१]

इडो-ब्रिटिश एसोसियेशन का सगठन कुछ निवृत्त आग्ल-भारतीय अधिकारियो ने किया था, लॉर्ड सिडनहैम उनके नेता थे। माटेगु मिशन के भारत पहुँचने के कुछ ही दिन पहले, ३० अक्तूबर १९१७ को उसका उद्घाटन हुआ। उसने आरम्भ मे ही, भारतीय वाणिज्य से सम्बन्धित ब्रिटिश व्यापारियो के पास एक गुप्त पत्र भेजा और उनसे एसोसियेशन की निधि के लिए उदारतापूर्वक अशदान देने के लिए कहा और उन्हे यह बताया कि उनका दान, "भारत मे ब्रिटिश हितो के बीमे की भाँति होगा।" इस पत्र में अग्रेजो के स्वार्थो और हितो को उकसाया गया। लन्दन मे एक भारतीय पत्रकार की चतुराई से इस पत्र का प्रकाशन हो जाने पर एसोसियेशन का वास्तविक रूप प्रकट हो गया।

इंडो-ब्रिटिश एसोसियेशन ने ब्रिटेन मे बडे जोरो से भारत-विरोधी प्रचार किया और उसने इस बात का प्रयत्न किया कि भारत मे यूरोपियन एसोसियेशन उसका अनुकरण करे। "आरम्भ से ही उसने समाचार-पत्र और पुस्तिकाओ द्वारा निरन्तर प्रचार किया है। उनका उद्देश्य भारत की स्थिति के बारे मे साधारण आदमियो के मस्तिष्क मे भय उत्पन्न करना है। उनमे भारत के शिक्षित वर्गों का हर ढग से अवमान किया जाता है····कभी (अग्रेज) मजदूर के व्यक्तिगत और वर्ग हित को उभाडा जाता है और कभी भारतीय व्यापार मे लगी हुई कम्पनियो के स्वार्थो को उकसाया जाता है।"[२] उसने, भारतीयो के विरोध मे और साथ ही भारत मे राजनैतिक सुधारों की नीति के विरोध मे, जनमत जागृत करने के लिए, प्रत्येक अवसर से लाभ उठाने का प्रयत्न किया। उसने इडियन सिडीशन कमेटी की जॉच का लाभ उठाने के लिए "भारत मे खतरा—राजद्रोह और हत्या" नामक एक पुस्तिका प्रकाशित की। सभवत इडो-ब्रिटिश एसोसियेशन द्वारा प्रकाशित पुस्तिकाओ मे यह सब से ज्यादा निन्दापूर्ण और अपभाषात्मक थी, किंतु इस ढग की वह कोई अकेली पुस्तिका नही थी। सच यह है कि भारत के इन स्व-घोषित मित्रो और शुभचिन्तको ने शिक्षित भारतीयो और इग्लैड मे उनके समर्थको को गाली देने मे सभी सीमाओ का उल्लघन कर दिया था।

---

१. सेवाय होटल (लन्दन) के १२ मार्च १९१९ के व्याख्यान से उद्धृत—देखिये—Indian Annual Register, 1919, page 83.

२. The Indian Annual Register 1919, page 83-84.

इडो-ब्रिटिश एसोसियेशन ने माटफोर्ड-योजना का जब से उसका पहली बार विचार सूझा और जबतक वह कार्यान्वित की गई और उसके बाद भी, अत्यन्त प्रबल विरोध किया। इस एसोसियेशन के सदस्य भारत मे स्वशासक सस्थाओ की वृद्धि के विचार से अपना मेल नही बिठा सके।

६

अगरेजो का एक वर्ग और था जो सुधारो की नीति का लगभग उतना ही कट्टर विरोधी था जितना कि इडो-ब्रिटिश एसोसियेशन का अगरेज़ समुदाय—और यह वर्ग था इडियन सिविल सर्विस के सदस्यो का। इग्लैंड मे बसे हुए सिविल सर्विस के निवृत्त सदस्यो की भाँति, ये लोग वैसा ही सार्वजनिक प्रचार करने के लिए स्वतन्त्र नही थे, किंतु अपनी स्थिति के अनुसार उन्होने यथासभव विरोध करने के लिए सगठन किया। मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट के लेखको ने उनका विरोध दूर करने के लिए और उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए पूरा प्रयत्न किया था; और उन्होने लिखा भी था.—"यह कहना अपवादपूर्ण है कि इडियन सिविल सर्विस ने एक निकाय के रूप मे पिछले अगस्त मे प्रकट की हुई नीति का प्रतिरोध किया है अथवा वह भविष्य मे प्रतिरोध करेगा। उन्होने उसका स्वागत किया है क्योकि इस बात को उनसे ज्यादा अच्छी तरह और कोई नही जानता कि नीति घोषित करने की कितनी भारी आवश्यकता थी और वे उस नीति को दृढ निश्चय के साथ ठीक उसी तरह कार्यान्वित करेगे जैसे कि उन्होने सदैव अपने लिए निर्धारित अन्य नीतियो को कार्यान्वित किया है।"[१]

यह सच है कि अन्त मे भारतीय सिविल सर्विस के अधिकाश सदस्यो ने १९१९ के सुधारो को कार्यान्वित करने का निश्चय किया, किन्तु मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट के प्रकाशन के कुछ ही समय बाद उन्होने प्रस्तावो का विरोध करने के लिए और इस वक्तव्य का खण्डन करनेके लिए कि उन्होने सुधारो का स्वागत किया है, अपना सगठन किया। मद्रास की इडियन सिविल सर्विस एसोसियेशन ने भारत मत्री के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए एक ज्ञापन का मसविदा तैयार किया और उसमे कहा गया—"अब हम ब्रिटिश भारत के प्रशासन से सबधित योजना और प्रस्तावो की आलोचना नही करना चाहते; किन्तु इस विषय पर हम यह कहना उचित और वाछनीय समझते है कि अगरेजी समाचार-पत्रो मे जो यह सकेत किया गया है कि सिविल सर्विस का सारा समुदाय प्रस्तावित योजना का केवल अनुमोदन ही नही करता वरन् स्वागत भी करता है, वह गलत है।"[२]

१. The Report on Indian Constitutional Reforms 1918, pages 206-207

२. The Indian Annual Register, 1920, page 213.

१९१८ मे देश मे कई आई० सी० एस० सस्थाओ का सगठन किया गया। एक की बिहार मे स्थापना की गई, दूसरी की मद्रास मे और तीसरी बगाल मे स्थापित होनी थी किन्तु उसके विचार को रूप नही मिला। बिहार एसोसियेशन ने अपने सदस्यो के पास एक गुप्त पत्र भेजा था जो किसी तरह से पटना के 'मर्चलाइट' के हाथो मे पड गया और उसमे २० दिसम्बर १९१८ को प्रकाशित किया गया। ऐसा ही एक गुप्त पत्र मद्रास आई० सी० एस० एसोसियेशन के कार्यवाह ने सिविल सर्विस के ब्रिटिश सदस्यो के पास भेजा था। उसकी एक प्रति मद्रास के 'न्यू इडिया' ने किसी तरह प्राप्त कर ली और वह पत्र उसमे ११ जनवरी १९१९ को प्रकाशित किया गया।

मद्रास के पत्र मे भारत मत्री के समक्ष प्रस्तुत किए जाने वाले एक ज्ञापन का मसविदा था। सिविल सर्विस के एक सदस्य ने, जिसके पास वह हस्ताक्षर के लिए भेजा गया था, उस पत्र के बारे मे यह कहा—"इसमे मादकता की एक उग्र मात्रा दी गई है। सारा पत्र राजनैतिक वक्रोक्ति से परिपूर्ण है, उसकी विद्रोहपूर्ण भाषा मे प्रतीप है।"[1]

मद्रास के पत्र से भारतीय राजनैतिक क्षेत्रो मे बडी हलचल हुई और इडियन सिविल सर्विस के सदस्यो के मनोभाव और कार्यो की निन्दा करने के लिए देश के विभिन्न भागो मे सार्वजनिक सभाएँ की गई।

सिविल सर्विस द्वारा मॉण्टफोर्ड-प्रस्तावो का विरोध, अविवेकपूर्ण और असयमित था, किन्तु साथ ही वह स्वाभाविक भी था। पिछली कई पीढियो से देश के शासन मे सिविल सर्विस के सदस्यो की स्थिति अत्यन्त शक्तिशाली और विशेषाधिकारपूर्ण थी। अचानक ही उन सदस्यो को भविष्य मे अपनी अध्यस्थ स्थिति का चित्र दिखाई दिया। वे आपे से बाहर हो गए और अपनी निराशा मे उन्हे जो कुछ सूझ पडा, वही करने लगे। मद्रास और बिहार के पत्रो से उनकी चिता और घबराहट व्यक्त होती है। उनसे यह भी प्रकट होता है कि सिविल सर्विस के सदस्य मुख्यत स्वार्थी भावनाओ से प्रवृत्त थे। अस्तु, भारत सरकार को बड़ी घबराहट हुई और वाइसरॉय ने सिविल सर्विस को प्रसन्न करने के लिए उनके गुण गाने आरम्भ कर दिए और उनके आर्थिक तथा राजनैतिक हितो के पूर्ण सरक्षण के लिए दृढ आश्वासन दिया।[2] किन्तु लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड के व्याख्यान से भारतीय जनमत के नेताओ मे फिर रोष छा गया। उस व्याख्यान का अर्थ था प्रतिक्रियावादी शक्तियो की विजय। उसने एक ओर ऊँची नौकरियो के विद्रोही सदस्यो को

---

१. The Indian Annual Register, 1920, Page 221.

२ ६ फर्वरी १९१९ को भारतीय विधान-परिषद् मे लॉर्ड चेम्सफोर्ड का व्याख्यान

धमकी दी थी और दूसरी ओर रालेट कमेटी द्वारा प्रस्तावित दमनकारी विधान बनाने के लिए सरकारी निश्चय को प्रकट किया था। वस्तुत वाइसरॉय के व्याख्यान के बाद तुरत ही गृह-सदस्य ने भारतीय विधान-परिषद् मे उन विधेयको को जो 'काले कानून' के नाम से प्रसिद्ध हुए, प्रस्तुत किया। सरकार की इस दोहरी असन्तोषप्रद नीति ने सार्वजनिक भावनाओ को अत्यन्त तीखा कर दिया और उसके फलस्वरूप देश मे एक ऐसी जबर्दस्त हलचल हुई जैसी पहले कभी नही हुई थी।

७.

इस प्रकार २० अगस्त १९१७ की घोषणा और मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट के प्रकाशन से भारत के राजनीतिक मतभेद फिर आरभ हुए। १९१७-१८ मे विभिन्न सामुदायिक सस्थाओ ने ही अपना फिर से सगठन नही किया वरन् काग्रेस मे दुबारा फट पडी और (१९०७ के विपरीत) इस बार अलग होने वालो ने अपना पृथक् राजनैतिक सगठन बनाया और उस अखिल भारतीय सस्था के अन्तर्गत प्रान्तीय शाखाएँ बनाई और इस प्रकार दोनो पक्षो मे फिर से ऐक्य होना लगभग असभव होगया।

जैसा कि पिछले अध्याय मे कहा जा चुका है मि मॉण्टेगु के भारत आने का एक उद्देश्य यह भी था कि वे भारत मे एक मॉडरेट पार्टी स्थापित करना चाहते थे जो उनकी सुधार-योजना को अपना समर्थन दे और बाद मे उसे कार्यान्वित भी करे। भारत से वापिस जाने से पहले बगाल के कुछ नेताओ के साथ इस सबध मे उनका समझौता हो गया था। और मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट के प्रकाशन से कुछ समय पहले बगाल मे 'नेशनल लिबरल लीग' की स्थापना हो गई थी। भारतीय वैधानिक सुधारो की रिपोर्ट प्रकाशित होने के दो दिन बाद श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने कलकत्ता मे इडियन एसोसियेशन की सभा की और उसमे मॉण्टफोर्ड-प्रस्तावो का अनुमोदन किया गया। अगस्त १९१८ मे नेशनल लिबरल लीग ने राजा प्यारे मोहन बनर्जी की अध्यक्षता मे बगाल के मध्यम पक्ष का पहला सम्मेलन किया। राजा साहब बहुत पिछडे हुए विचारो के आदमी थे और उन्होने मॉण्टफोर्ड-योजना का केवल हार्दिक समर्थन ही नही किया वरन् भारत मे उत्तरदायी शासन आरभ करने की कठिनाइयो की ओर विशेष रूप से ध्यान आकर्षित किया। "भारत मे अस्सी जातियाँ है, उनकी इतनी ही विभिन्न भाषाएँ है और वे विभिन्न प्रकार के सैकडो धर्मों का अनुसरण करती है। उनमे कोई ऐक्य और सुदृढता नही है।"[१] उन्होंने व्याख्यान के अन्त मे कहा —अधिकारियो के राज्य के स्थान पर लोकप्रिय

१. The Indian Annual Register, 1919, part IV, page 150.

राज्य स्थापित करने के सक्रमण काल मे जो सकट उपस्थित होते है, उनसे सभी समझदार आदमी स्वाभाविक रूप से डरते है। जिस योजना को रिपोर्ट मे रूप दिया गया है उससे स्वशासन की दिशा मे काफी प्रगति होगी और हम उसका स्वागत करते है।"[1] सम्मेलन ने एक लम्बे प्रस्ताव द्वारा मि. मॉण्टेगु और लॉर्ड चेम्सफोर्ड को कृतज्ञतापूर्वक धन्यवाद दिया और इस बात को स्वीकार किया कि मॉण्टफोर्ड-प्रस्तावो से उत्तरदायी शासन की दिशा मे काफी प्रगति होगी। योजना के साधारण सिद्धान्तो का प्रस्ताव मे स्वागत किया गया और साथ ही यह कहा गया "कि सार्वजनिक निकायो के सुझावो को ध्यान मे रखते हुए उसमे उपयुक्त सशोधन कर लिया जाय।"[2]

मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट के प्रकाशन के कुछ ही समय बाद बम्बई के नौ मध्यम-दली नेताओ ने एक ज्ञापन निकाला और उसमे सुधार-योजना के सबध मे अपने विचार प्रकट किए। वस्तुत सारे देश के मध्यमदली नेताओ के विचार एक-से थे—उन्हे रिपोर्ट के लेखको की सचाई, सहानुभूति और उनके सदुद्देश्यो पर पूरा विश्वास था, उनके अनुसार प्रस्ताव प्रगतिशील और तात्विक थे। किन्तु उन्होने भारत सरकार के सबध मे योजना मे सुधार करने के लिए कुछ सुझाव भी दिए।

काग्रेस के वाम-पक्षी नेता दो वर्गो मे बँटे हुए थे। उग्र वर्ग मे होमरूल आन्दोलन के प्रगतिशील समर्थक थे। उनके अनुसार प्रस्तावित योजना, "भारतीय जनता के प्रति अविश्वास पर अवलम्बित थी और सिद्धान्त तथा रूपरेखा मे इतनी गलत थी कि उसमे सशोधन करना अथवा उसको सुधारना असभव था।"[2] दूसरी ओर उस केन्द्रीय वर्ग के अनुसार जो क्रमश काग्रेस मच पर अधिकाधिक प्रमुख स्थान पाता गया, प्रस्तावित योजना असन्तोषप्रद और अमान्य थी किन्तु काफी बडे सशोधन के बाद वह स्वीकार की जा सकती थी।

किन्तु काग्रेस के केन्द्रीय वर्ग और मॉडरेटो की स्थिति मे बहुत बडा अन्तर था—एक की दृष्टि मे मॉण्टफोर्ड-प्रस्ताव असन्तोषप्रद और निराशाजनक थे और दूसरे की दृष्टि मे वे प्रगतिशील और तात्विक थे। तथापि (और यह बात विचित्र प्रतीत होगी कि) यह अन्तर शाब्दिक था, वास्तविक नही; दोनो मे केवल दृष्टिकोण का अन्तर था, तत्व का नही। दोनो वर्गो ने सशोधन के लिए जो सुझाव दिए[3]

१. The Indian Annual Register, IV, page 151.

२ Home Rules' Manifesto, July 8, 1918, उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ११९

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ५५ से ६५ तक

उनमे बहुत बडा एक-सा-पन था। दोनो वर्ग केन्द्रीय शासन मे उत्तरदायित्व का अंश चाहते थे। दोनो ही, प्रान्तो मे उत्तरदायी शासन का क्षेत्र विस्तृत करना चाहते थे और प्रान्तीय अध्यक्षो के अधिकार कम करना चाहते थे। दोनो ने, भारत-परिषद् तोडने की ओर भारत सरकार पर नियत्रण कम करने की माँग की। ऐसी परिस्थितियो मे मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यदि मॉडरेटो ने काग्रेस के विशेष अधिवेशन से अलग रहने का निर्णय न किया होता, तो माँण्टफोर्ड सुधारो के प्रश्न पर काग्रेस मे फूट न पडी होती। किन्तु मॉडरेट नेताओ ने अलग होने का और सुधारो को कार्यान्वित करने के लिए अपना स्वतत्र दल बनाने का पहले से निश्चय कर लिया था।

मॉडरेटो के अलग होने की इस नीति के क्या कारण थे? मेरे मत मे उसके लिए तीन बाते मुख्यत उत्तरदायी थी।

पहला महत्वपूर्ण कारण, मॉडरेटो का यह विश्वास था कि काग्रेस मे होम रूल के समर्थको की प्रधानता थी जिन्होने अपने आप को माँण्टफोर्ड सुधारो का कट्टर विरोधी प्रकट कर दिया था। उन्हे इस बात का डर था कि काग्रेस माँण्टफोर्ड सुधारो को बिना अधिक विचार किए ही ठुकरा देगी और इस प्रकार उनकी स्थिति बडी भद्दी हो जायगी। अत उन्होने काग्रेस के (अगस्त १९१८ के) विशेष अधिवेशन मे सम्मिलित न होने का निश्चय किया।

यह सच है कि श्री तिलक, श्रीमती बीसेण्ट और अन्य काग्रेस-नेताओ ने आरभ मे जो विचार प्रकट किए थे, वे असधेय थे।[1] किन्तु काग्रेस के विशेष अधिवेशन के समय तक उनके विचारो मे परिवर्तन हो गया था और श्री तिलक, श्रीमती बीसेण्ट और पण्डित मदन मोहन मालवीय जैसे विवेकपूर्ण नेतागण, मॉडरेटो को काग्रेस की परिधि मे रखने के महत्व को अनुभव करने लगे थे। इसी कारण से काग्रेस की विषय-समिति ने सुधारो के सबध मे एक सधेय प्रस्ताव अपनाया।

---

१ "श्री तिलक ने माँण्टफोर्ड-रिपोर्ट को सूर्यहीन प्रभात बताया। श्रीमती बीसेंट के अनुसार इगलैण्ड और भारत दोनो ही के लिए अशोभनीय थे। माननीय श्री पटेल के अनुसार रिपोर्ट ने कुछ हद तक प्रतिगामी प्रस्ताव किए थे। श्री केलकर के अनुसार प्रस्ताव क्रूर रूप से निराशाजनक थे। प्रो जितेन्द्रलाल बनर्जी के अनुसार सुधार, अनुदार, अधकचरे, अपर्याप्त और इसी कारण निराशाजनक और निष्फल थे। डा सुब्रह्मण्य ऐयर ने अपने देशवासियो को यह सलाह दी कि उन्हे जो अफीम दी जा रही थी वे उसका स्पर्श भी न करे।" Athalye The Life of Lokmanya Tilak, page 251-52 से अनूदित

काग्रेस के खुले अधिवेशन मे श्री तिलक ने कहा – "हमने विषय समिति में कई पक्षों में मेल कराने का प्रयत्न किया है। हमसे कहा गया था कि काग्रेस सारी योजना को ठुकरा देगी। मे नही समझ सका कि उस कथन का क्या अर्थ है। सबके सौभाग्य से हम एक तर्कपूर्ण प्रस्ताव प्रस्तुत कर रहे है जिसमे एक पक्ष का विवेक है, दूसरे पक्ष का सयम है और (आप चाहे तो यह कह सकते है कि उसमे) तीसरे पक्ष का आवेश है।" "मॉण्टेगु-रिपोर्ट एक सुन्दर, अत्यन्त चतुरतापूर्ण और कूटनीतियुक्त लेख्य है। हमने आठ आने भर स्वशासन माँगा था, रिपोर्ट ने हमको एक आना भर उत्तरदायी शासन दिया है और हम को यह समझाया है कि वह आठ आने भर स्वशासन से ज्यादा अच्छा है। अब हम सरकार से स्पष्ट कहना चाहते है कि हम आपको एक आना भर उत्तरदायी शासन के लिए धन्यवाद देते है किंतु उस योजना मे हम रूप देना चाहते है, उन सारी बातो को नही जिन्हे 'काग्रेस लीग योजना' मे रूप दिया गया है—पटरियाँ भिन्न हो सकती है किंतु यात्रियो का परिवहन करने वाली गाडियो को एक पटरी से दूसरी पटरी पर अन्तरित किया जा सकता है। यही करके हमने सारे सबधित पक्षो को सतुष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार एक अत्यन्त कठिन काम पूरा हो गया है।"[१]

वस्तुत काग्रेस के विशेष अधिवेशन पर मॉण्टफोर्ड-सुधारो से सबधित प्रस्ताव इतना सधेय था कि उसके कारण कुछ मॉडरेट नेताओ ने यह अनुभव किया कि काग्रेस-अधिवेशन मे सम्मिलित न होकर उन्होने एक भूल की—और उनमे से कुछ लोग दिल्ली मे दिसम्बर १९१८ के वार्षिक काग्रेस अधिवेशन मे सम्मिलित भी हुए।

किंतु अधिकाश 'मॉडरेट' एक पृथक् मॉडरेट अथवा लिबरल पार्टी बनाने के अपने निश्चय पर जमे रहे और उन्होने नवम्बर १९१८ मे सुधारो पर अपने विचार प्रकट करने के लिए बम्बई मे मॉडरेट सम्मेलन का एक विशेष अधिवेशन किया।

काग्रेस से मॉडरेटो के अलग होने का दूसरा कारण मनोवैज्ञानिक था। सुरेद्रनाथ बनर्जी और दिनशॉ वाचा जैसे व्यक्ति जो देशसेवा मे वृद्ध हो गए थे और जिनको इतने त्वरित राजनैतिक विकास की आशा नही थी, उत्तरदायी शासन आरभ करने की चर्चा के आगे झुक गए। उन्होने वस्तुत बहुत समय से प्रतीक्षा की थी और अब वे अधिक प्रतीक्षा नही कर सकते थे—उनकी ओर मित्रता का जो हाथ बढाया गया था उसे उन्होने लपककर पकड़ लिया। कुछ 'मॉडरेट' आयु और कटु अनुभव के कारण पिछड गए थे, और वे तीव्र प्रगति से भयभीत थे। अपने

१. Athalye · The Life of Lokmanya Tilak, pages 253-255·

देशवासियो की त्रुटियो और दुर्बलताओ से वे भली-भाँति परिचित थे और धीरे-धीरे ही आगे बढना चाहते थे ।

तीसरा कारण सभवत अधिक महत्वपूर्ण था। मॉडरेट नेतागण मि मॉण्टेगु की सचाई से प्रभावित हुए थे और उन्हे उनके सदुद्देश्य पर पूरा विश्वास था। उनके मतानुसार शासको के दृष्टिकोण मे वास्तविक परिवर्तन हुआ था जिसके कारण भारतीय नेताओ के मनोभावो मे परिवर्तन होना आवश्यक था। उन्हे यह देख कर दु ख होता था कि काग्रेसी नेतागण इस परिवर्तन की ओर ध्यान नही दे रहे थे "जो सरकार की नीति और भावना मे हुआ था" और बदली हुई परिस्थितियो मे भी विरोध की नीति पर जमे हुए थे।[1] यही बात बम्बई मे पहले अखिल-भारतीय मॉडरेट सम्मेलन मे सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने सभापति के पद से अपने भाषण मे व्यक्त की। मॉडरेट नेताओ को इस बात का डर था कि यदि उन्होने मि मॉण्टेगु के पक्ष को अपने समर्थन से दृढ नही किया तो प्रतिक्रियावादी और उग्र शक्तियाँ उनके वश मे नही आयेंगी और इस प्रकार उन्हे जो सुअवसर प्राप्त हुआ था वह हाथ से निकल जाएगा। इसी कारण, जैसा कि पहले कहा भी जा चुका है, उनमे से कुछ नेताओ ने मि माण्टेगु के कहने पर एक पृथक् मॉडरेट पार्टी बनाने का निश्चय कर लिया था। कुछ मॉडरेट नेतागण हृदय से यह विश्वास करते थे कि राष्ट्रीय नीति को नया रूप देने की आवश्यकता थी। आलोचना और विरोध का समय बीत गया था और सहयोग तथा रचनात्मक काम करने का समय आ गया था। उनके मतानुसार उत्तरदायी शासन-व्यवस्था को चलाने के लिए, एक नए वैधानिक दल की अविलम्ब स्थापना करने की आवश्यकता थी।

उपर्युक्त कारणो से 'मॉडरेट' १९१८ मे काग्रेस से अलग हो गए। इनमे एक कारण और जुड गया—और वह था दिल्ली-अधिवेशन मे साथ ही सारे देश मे उग्रपक्ष का नया रूप।

मॉडरेटो को अपने साथ रखने की वाछनीयता के कारण विशेष अधिवेशन मे उग्र पक्ष ने अपने आपको रोक रखा था किन्तु जब एक बार मॉडरेटो ने निश्चित रूप से नाता तोड दिया और अपना पृथक् अखिल भारतीय सम्मेलन किया तो उग्र पक्ष के लोगो को नियत्रण मे रखना असभव हो गया। दिल्ली-अधिवेशन मे—अध्यक्ष प० मदनमोहन मालवीय के प्रयत्न करने पर भी—मिस्टर श्रीनिवास शास्त्री जैसे मॉडरेट नेताओ को अपनी पूरी बात कहने का अवसर नही दिया गया; उपस्थित लोग उनकी बातो को शाति और ध्यान के साथ सुनने को तैयार नही थे। काग्रेस ने एक अधिक उग्र प्रस्ताव अपनाया और प्रान्तों मे पूर्ण स्वशासन की माँग की। बहुत-से वक्ताओ ने मॉडरेट नीति की तीव्र आलोचना की। उनका

१ Indian Annual Register, 1919, Part V, page 47.

सबसे ज्यादा रोष श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी पर था जिन्होंने दिसम्बर १९१७ तक 'काग्रेस लीग योजना' का समर्थन किया था और जो एक नियत अवधि के अन्दर स्वशासन के लिए माँग करते रहे थे ।

देश मे मॉडरेटो की स्थिति और भी ज़्यादा खराब थी, देश के लोगो ने उनकी निन्दा की और उनको विश्वासघाती तथा पद-लोलुप बताया । अगले कुछ वर्षो मे, आम जनता मे, वे बहुत अप्रिय हो गए—सार्वजनिक सभाओ मे उनके व्याख्यानो मे विघ्न डाला जाता और बीच मे बडा शोर मचाया जाता । इस प्रकार काग्रेस और मॉडरेटो के बीच की खाई, पक्की और स्थायी हो गई । और जब प मोती लाल नेहरू ने पजाब की दु खद घटनाओ की पृष्ठभूमि मे—जिनके सम्बन्ध मे 'मॉडरेटो' और काग्रेसियो मे लगभग कोई मतभेद नही था—उन्हे अमृतसर-अधिवेशन के लिए आमत्रित किया तो उन्होने उसमे सम्मिलित होने से इकार कर दिया ।

१९१९ के आरम्भ मे होम रूल के समर्थको मे भी फूट पड गई । उस समय तक श्रीमती बीसेंट बहुत हद तक 'मॉडरेट' हो गई थी । महात्मा गाधी ने रालेट विधेयको के कानून बनाए जाने की दशा मे सत्याग्रह करने का प्रस्ताव किया था । श्रीमती बीसेंट उस प्रस्ताव के विरोध मे थी। और उसी बात पर विच्छेद हुआ । उन्हे इडियन होमरूल लीग के अध्यक्ष पद से हटा दिया गया किंतु उनके व्यक्तिगत समर्थको ने उन्हे राष्ट्रीय होमरूल लीग का अध्यक्ष चुन दिया ।

८

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले इस बात का सक्षिप्त रूप से उल्लेख करना उचित होगा कि मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट के सम्बन्ध मे भारतीय विधान-परिषद् के गैरसरकारी सदस्यो की क्या स्थिति थी । सर्वोच्च विधान-मडल मे 'मॉडरेट' बहुमत मे थे—काग्रेस के वामपक्ष के केवल दो सदस्य (मि पटेल और मि खापड) थे और काग्रेस के केन्द्रीय वर्ग के केवल तीन सदस्य (मि जिन्ना, प मालवीय और मि मजरूल हक) थे—शेष २२ निर्वाचित और पॉच नाम-निर्देशित गैर-सरकारी सदस्य मध्यम पक्ष और पिछडे हुए विचारो के व्यक्ति थे । ऐसी दशा मे मॉडरेटो के नेता द्वारा प्रस्तुत किए हुए प्रस्ताव का फल पहले से निश्चित था ।

६ सितम्बर १९१८ को श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने भारतीय विधान-परिषद् मे निम्नलिखित प्रस्ताव प्रस्तुत किया.—

"(१) यह परिषद्, महामहिम वाइसराय और भारत मन्त्री को सुधारो से सम्बन्धित प्रस्तावो के लिए धन्यवाद देती है और उन्हे भारत मे उत्तरदायी शासन की प्राप्ति की दिशा मे निश्चित प्रगति और वास्तविक प्रयत्न के रूप मे स्वीकार करती है ।

(२) यह परिषद्, सपरिषद् गवर्नर-जनरल से इस बात की सिफारिश करती है कि इस परिषद् के सारे गैर-सरकारी सदस्यो की एक कमेटी नियुक्त की जाय जो सुधारो की रिपोर्ट पर विचार करे और उसके सम्बन्ध मे भारत सरकार मे अपनी सिफारिशे करे ।"[१]

प्रस्ताव के पहले भाग का मि पटेल और मि खापर्डे ने विरोध किया और उसकी प मालवीय और मि जिन्ना ने तीव्र आलोचना की । दूसरे भाग का सारे भारतीय सदस्यो ने समर्थन किया । वाणिज्य-मडल के दो यूरोपीय प्रतिनिधियो ने उसका विरोध किया । किंतु जैसा कि प्रत्याशित था, प्रस्ताव के दोनो भागो का गैर-सरकारी बहुमत से पारण हुआ और मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट पर विचार करने के लिए परिषद् के गैर-सरकारी सदस्यो की एक कमेटी बनी, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी उसके अध्यक्ष हुए और श्रीनिवास शास्त्री उसके कार्यवाहक हुए । कुछ समय बाद कमेटी ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की । सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी लिखते है—"मै उसके विस्तार मे नही जाऊँगा । यद्यपि योजना मे निश्चित प्रगति थी किंतु वह हमारी आशाओ की दृष्टि से कम थी । एक विषय के सम्बन्ध मे यह बात विशेष रूप से स्पष्ट थी, केन्द्रीय सरकार मे उत्तरदायित्व प्रदान करने की कोई व्यवस्था नही की गई थी और इसी बात पर हमने अपनी रिपोर्ट मे और सयुक्त-प्रवर-समिति के सामने अपनी गवाही और अपने प्रतिनिधित्व मे खास तौर पर ज़ोर दिया ।"[२] जैसा कि मि रशब्रुक विलियम्स ने कहा है, "कमेटी के काम का वास्तविक महत्त्व इस तथ्य मे निहित था कि भारतीय विधान-मडल के निर्वाचित सदस्यो के 'मॉडरेट' पक्ष ने माण्टेगु-चेम्सफोर्ड योजना को भारत के भावी वैधानिक विकास का आधार मान लिया था ।"[३]

## बाईसवाँ अध्याय

# अमृतसर का हत्याकाण्ड

१

सन् १९१९, ब्रिटिश-भारतीय इतिहास के अत्यन्त महत्वपूर्ण वर्षो मे से एक है । सन् १८५७ के बाद, १९१९ मे पहली बार, भारत मे ब्रिटिश सत्ता को राष्ट्रीय परिमाण पर फिर चुनौती दी गई और ब्रिटिश अधिकारियो ने देश मे ब्रिटिश

१. Bannerjee. A Nation in the Making, page 310.
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ३१४ ।
३. India in 1917-18, page 60.

प्रतिष्ठा फिर से जमाने के लिए अत्यन्त भीषण उपायो से काम लिया। लोगो के हृदय मे आतक जमाने के लिए एक ब्रिटिश जनरल ने सहस्रो एकत्र शान्तिपूर्ण नागरिको पर उस समय तक गोली चलाने के लिए अपने सैनिको को आज्ञा दी जब तक कि उनकी गोलियाँ ही समाप्त न हो जायँ। ये लोग एक घेरे मे फँसे हुए थे और उससे बाहर निकलने का केवल एक ही सकरा मार्ग था जिधर से कि गोलियाँ चलाई जा रही थी। इस भीषण हत्याकाण्ड के फलस्वरूप सिक्खो के धार्मिक केन्द्र (अमृतसर) के जलियाँवाला बाग मे कई सौ आदमी मार गए और कई सौ आदमी घायल हुए। प्रान्त के पाँच जिलो मे फौजी कानून घोषित कर दिया गया। लोगो को आतकित करने के लिए दो बार हवाई जहाजो को काम मे लाया गया, और ब्रिटिश अधिकारियो ने फ़ौजी कानून को पूर्ण बर्बरता के साथ लागू किया। तथापि, उसी वर्ष प्रान्तो मे उत्तरदायी शासन आरभ करने के उद्देश्य से गवर्नमेण्ट ऑव इडिया ऐक्ट, १९१९, का पारण हुआ।

किन्तु सन् १९१९ मे ही स्थायी महत्व की दो घटनाएँ और हुई—(१) महात्मा गाधी ने देश के सार्वजनिक जीवन मे प्रवेश किया और वे तुरन्त ही अखिल भारतीय नेता हो गए, और (२) अन्यायो और परिवादो को दूर करने के लिए लोगो को सार्वजनिक सत्याग्रह का पाठ पढाया गया।

२

इस प्रकार सन् १९१९ मे भारत मे, विशेषकर पजाब मे, जबर्दस्त राजनैतिक उथल-पुथल हुई। इस दु खद परिस्थिति के लिए कई बाते उत्तरदायी थी किन्तु उन सबको तीन मुख्य—आर्थिक, प्राकृतिक और राजनैतिक शीर्षको म बाँटा जा सकता है।

यूरोपीय महायुद्ध को जीतने के लिए भारत ने जन, धन और सामग्री के रूप मे जो महान् सहायता की थी उसे पर्याप्त रूप से स्वीकार किया गया है किन्तु इस बात की बहुत कम लोगो को जानकारी है कि युद्ध के कारण भारतीय जनता को भयकर कष्ट उठाने पडे थे।

जब महायुद्ध आरम्भ हुआ तो उस समय भारत की वित्तीय स्थिति बहुत अच्छी थी और पहले डेढ वर्षो मे सरकार को कर बढाने की आवश्यकता ही नही अनुभव हुई, किन्तु १९१६ मे २६ लाख पौड के घाटे को पूरा करने के लिए सीमा शुल्क बढाने पडे। यह वृद्धि सूती माल पर नही की गई और विदेशो से आने वाले तथा भारत मे बने हुए कपडे पर ३½ प्रतिशत का शुल्क यथावत् रखा गया। युद्ध के दिनो मे पुराने विवाद से बचने के उद्देश्य से भारत-मत्री की आज्ञा पर ही सूती माल को छूट दी गई। किन्तु अगले वर्ष और ज्यादा टैक्स बढाने की आवश्यकता

हुई—क्योकि विदेशो मे भारतीय सेनाओ के व्यय के अतिरिक्त, भारत सरकार ने ब्रिटिश राज्यकोष को १० करोड पौड की सहायता देने की आवश्यकता अनुभव की। यह परिमाण मुख्यत ऋण के रूप मे उगाहा गया, किन्तु "पारिणायिक आवर्तक व्यय चलाने के लिए अतिरिक्त कर लगाने की आवश्यकता हुई। साधारण आय-कर की अनुपूर्ति अति-कर द्वारा की गई। रेलो पर माल का किराया बढाया गया, जूट और जूट के माल पर निर्यात-कर दूना कर दिया गया।"[1] किन्तु इतने पर भी राजस्व को बढाने की आवश्यकता थी और भारत सरकार ने फिर इस बात का प्रस्ताव किया कि सूती माल पर सीमाशुल्क ३½ प्रतिशत से बढाकर ७ प्रतिशत कर दिया जाय और उत्पादन-कर को यथावत् रखा जाय। इस बार भारत-मत्री के लिए इकार करना असभव हो गया क्योकि हाऊस ऑव कॉमन्स मे जैसा कि स्वय उन्होने अपने बचाव मे कहा कि ब्रिटेन के लिए यह एक अशोभनीय और अकृतज्ञता-पूर्ण बात थी कि वह १० करोड पौड का दान स्वीकार करे और दूसरी ओर भारत को अपना राजस्व बढाने के लिए अनुमति न दे।

इस प्रकार १० करोड पौड के दान से लोगो पर बहुत भारी आर्थिक दबाव पडा और टैक्स बहुत ज्यादा बढ गए किन्तु साथ ही भारत के प्रति कई दशाब्दियो से जो अन्याय हो रहा था, उसका अन्त हो गया। अस्तु कर-भार बढता गया और मार्च १९१९ तक वह इतना अधिक हो गया कि लोग सार्वजनिक रूप से उसके विरुद्ध आवाज उठाने लगे और उस बोझ को हलका करने की माँग करने लगे।

किन्तु कर-वृद्धि से भी अधिक महत्व की बात यह थी कि देश मे चीजो के दाम बहुत बढ गए थे—दामो की यह वृद्धि यूरोपीय देशो की अपेक्षा कही अधिक थी। "नाज के दामो मे औसत से ९३ प्रतिशत वृद्धि हुई थी विदेशो से आने वाले कपडे मे १९० प्रतिशत की वृद्धि हुई थी और भारत मे बने हुए कपडे के दामो मे यह वृद्धि ६० प्रतिशत से कुछ अधिक थी।"[2] नमक, मिट्टी का तेल, कपडा आदि साधारण उपयोग की चीजे, नौभार मे कमी के कारण, बाजार मे कठिनाई से मिलती थी। उपलब्ध सामान पर बडे व्यापारियो के सट्टे और नियन्त्रण के कारण स्थिति और भी ज्यादा बिगड गई थी। इसके अतिरिक्त देश मे कागजी द्रव्य बहुत ज्यादा बढ गया था। युद्ध के कारण भारत सरकार को अपनी बहुत-सी आवश्यकताओ को पूरा करने के लिए ही कागजी द्रव्य की व्यवस्था नही करनी थी वरन् उसे ग्रेट ब्रिटेन और मित्र राष्ट्रो की ओर से जो क्रय होता था उसका भी खर्च सभालना था। इसका फल यह हुआ कि भारत प्रचलन सबधी अत्यन्त जटिल

१ Shah . History of Indian Tariffs, page 329

२ India in 1919, page 63

स्थिति मे फँस गया और उसकी युद्ध-विजय के सिलसिले मे भारत के बलिदानो मे गणना की जा सकती है ।"[१]

आर्थिक जीवन की अव्यवस्था और दैनिक उपयोग की चीजो की कमी और उनके बढे हुए दामो के कारण भारत मे, शहर और गाँव दोनो स्थानो मे, असाधारण कष्ट हुए और उसके कारण देश मे अशान्ति बढी । औद्योगिक केन्द्रो मे मजदूरो की हडताल एक साधारण बात हो गई और देश के विभिन्न भागो मे कष्टापन्न लोगो ने बाजारो को लूटा ।

कृषक-अशान्ति के दो प्रदर्शन—एक चम्पारन (बिहार) और दूसरा खेडा (गुजरात)—विशेष रूप से उल्लेखनीय है ।

चम्पारन की कृषक-समस्या काफी पुरानी थी किन्तु १९१७ मे वह बहुत तीक्ष्ण हो गई । बाजार मे रासायनिक ढग से बने हुए सस्ते रग मिलने के कारण नील की खेती लाभप्रद नही रही थी किन्तु यूरोपियन रोपको ने द्रव्योपार्जन का एक नया ढग निकाला था । उन्होने बगाल काश्तकारी ऐक्ट की एक धारा का लाभ उठाकर काश्तकारो के लगान ४५ से लेकर ७५ प्रतिशत तक बढा दिए और उन्हे नील की खेती करने से छूट दे दी । "यह वृद्धि, जो शरहबेशी के नाम से परिचित है, उन गाँवो मे की गई जिनमे गाँववालो का जमीन मे स्थायी पट्टा था " और उसकी कुल रकम लगभग ३ लाख रुपये प्रति वर्ष थी । जहाँ रोपको के अस्थायी पट्टे थे वहाँ उन्होने एकमुश्त रकम लेने पर जोर दिया । बाबू राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है — "बिलकुल ठीक आकडे तो नही मिल सके, किन्तु इतनी बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि केवल इसी मद के अन्तर्गत जो रकम वसूल की गई थी वह १६ और २० लाख रुपये के बीच मे थी ।"[२]

लगान मे वृद्धि और एकमुश्त रकम की माँग के कारण चम्पारन के किसानो को जिनसे अन्य अवैध रकमे बलात् ली जाती थी, बडी भारी कठिनाई हुई । रोपकगण विभिन्न प्रकार के अबवाब लेते थे,[३] किसानो से बहुत कम मजदूरी पर बेगार कराते

---

१ Rajendra Prasad The Agrarian Problem in Champaran, Hindustan Review, July 1918, page 52.

२ उपर्युक्त मासिक पत्र, पृष्ठ ५३

३ निम्नलिखित अबवाब बलात् लिये जाते थे — पानी खर्चा (सिचाई का टैक्स), घोडा खरीदने का खर्चा (घोडाही), हाथी खरीदने का खर्च (हथियाही), मोटर खरीदन का खर्च (मोटरही अथवा हवाही), तेल अथवा ईख के कोल्हू रखने का टैक्स (कोल्हूआवन), बाट रखने का खर्च (बाट चपीर),

थे और उनकी गाडियो और उनके जानवरो से काम लेते थे। १९१६ तक किसानो के कष्ट असह्य हो गए। बिहार विधान-परिषद् मे उनकी ओर ध्यान आकर्षित किया गया किन्तु उसका कोई फल नही हुआ। काग्रेसी नेताओ से हस्तक्षेप करने की अपील की गई। अन्त मे मि गाधी से चम्पारन जाकर वस्तुस्थिति का अध्ययन करने के लिए कहा गया।

मि गाधी अप्रैल १९१७ मे चम्पारन पहुँचे और किसानो की शिकायतो की विस्तृत रूप से जाँच आरम्भ की। उन्हे उस जिले को छोड देने के लिये सरकारी सूचना दी गई जिसकी उन्होने उपेक्षा की, किंतु बाद मे प्रान्तीय सरकार की आज्ञा से वह सूचना वापिस ले ली गई।[1] मि गाधी की छानबीन के फलस्वरूप[2] सरकार ने एक जाँच कमेटी नियुक्त करने का निश्चय किया जिसमे मि गाधी भी एक सदस्य थे और सर फ्रैंक स्लाई उसके अध्यक्ष थे। कमेटी ने अपना काम ठीक ढग से किया और सभी सदस्यो द्वारा अनुमोदित एक रिपोर्ट प्रस्तुत की। उसी के आधार पर १९१८ का चम्पारन कृषक-ऐक्ट बनाया गया। तिनकठिया प्रथा का अन्त किया गया, शरहबेशी २० से लेकर २५ प्रतिशत तक कम की गई और जो एकमुश्त रकमे ली गई थी उनका २५ प्रतिशत भाग किसानो को वापिस दिलाया गया और साथ ही अबवाब लेना वर्जित कर दिया गया। कार्यकारिणी अधिकारियो को अपराधी जमीदारो के विरुद्ध कार्यवाही करने का प्राधिकार दिया गया।

चम्पारन जाँच कमेटी का काम अभी पूरा भी नही हुआ था कि महात्मा गाधी को अपने प्रान्त मे जाना पडा। १९१७ मे अतिवृष्टि के कारण जिला खेडा (गुजरात) मे फसलो को बहुत बडी क्षति पहुँची थी। इस क्षति के परिमाण के सबध मे सरकारी और गैरसरकारी आँगणन मे काफी अन्तर था, और मालगुजारी मे छूट उस परिमाण के आधार पर ही होनी थी। पटीदारो के आगणन से फसल चौथाई हुई थी और मालगुजारी मे २३ लाख रुपये की छूट की आवश्यकता थी। दूसरी ओर जिले के कलक्टर ने केवल १७५००० रुपये की छूट दी थी। सरकार के समक्ष कई बार प्रतिनिधित्व किया गया कि पटीदारो के साथ न्याय किया जाय

---

उत्तराधिकार के समय पर सामन्तवादी नजराना (बपाही-पिताही), विधवा विवाह (सगौरा), और दशहरा, चैतनवमी आदि पर नजराने।

१ इसका पूरा वृतान्त महात्मा गाधी की आत्म कथा मे दिया गया है --My Experiments with Truth. Vol II pages 355 to 407.

२. मि गाधी ने लगभग १३०० किसानो के बयान एकत्र किए। Hindustan Review, July 1918, page 51

किंतु उसका कोई फल नही हुआ। महात्मा गाधी लिखते है —"जब सारी प्रार्थनाओ और निवेदनो का कोई प्रभाव नही हुआ, तो मैंने सहयोगियो से परामर्श करने के बाद पटीदारो को सत्याग्रह की शरण लेने की सलाह दी।"[१] इस प्रकार मि गाधी ने भारत मे पहली बार सत्याग्रह आरम्भ किया।

खेडा के किसानो से यह प्रतिज्ञा करने को कहा गया कि वे सरकार को मालगुजारी नही देगे क्योकि फसले चौथाई से भी कम हुई थी। किंतु यदि सरकार "सारे जिले मे दूसरी निर्धारित किश्त की उगाही छोडने को तैयार हो जाए तो वे लोग, जिनके लिए यह सभव हो, अपनी पूरी अथवा शेष मालगुजारी दे देगे।"[२]

२८ मार्च १९१८ को सत्याग्रह आरम्भ किया गया। सर शकरन नैयर ने लिखा है —"सरकारी मालगुजारी का भुगतान नही किया गया। घरेलू बर्तनो, दुधारू गायो और अन्य सम्पत्ति को आसजित किया गया, सरकार ने जमीन को जब्त करने की आज्ञा जारी की और सरकारी अधिकारियो ने मालगुजारी वसूल करने के लिए सभी सभव उपायो से काम लिया। १२ अथवा १३ अप्रैल को स्वय कमिश्नर ने किसानो की एक सभा की और उनको सरकारी आज्ञाओ का पालन करने के लिए समझाया, उल्लघन करने वालो को भयकर परिणामो की धमकी दी और उनसे कहा कि वे अपने सलाहकारो, होम रूल वालो की बातो पर ध्यान न दे जिन्हे मालगुजारी न देने के फल स्वय नही भोगने पडेगे। किंतु किसान अपने निश्चय पर जमे रहे।[३] यहाँ तक कि गाँव के मुखिया ने भी सरकार की आज्ञाओ पर ध्यान नही दिया।" २५ अप्रैल को सरकार ने मालगुजारी की उगाही का निलम्बन कर दिया और इस बात की आज्ञा दी कि केवल वही लोग जिनके लिए सभव हो, इस समय मालगुजारी दे और अन्य सब लोग अगले वर्ष उसका भुगतान कर दे। किंतु विचित्र बात यह है कि उक्त आज्ञा ३ जून तक प्रचारित नही की गई। उस समय तक सम्पत्ति की कुर्की और अन्य सरकारी कार्यवाहियो का क्रम जारी रहा।"[४] मि गाधी को स्वय किसी ढग से सरकारी निर्णय का पहले ही पता लग गया; और अधिकारियो के असतोषप्रद ढर्रे के होते हुए भी सत्याग्रह-आन्दोलन समाप्त कर दिया।

---

१ Gandhi My Experiments with Truth. Vol II page 430.

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४३१।

३. The Indian Annual Register, 1919, Part IV, page 83

४. The Indian Annual Register, 1919,part IV, page 84.

यद्यपि महात्मा गाधी, आन्दोलन के फल और किसानो के भाव से सतुष्ट नही थे तथापि उनके मत से खेडा-आन्दोलन देश के लिए परोक्ष रूप से बहुत लाभदायी था और उसने गुजरात के किसानो पर अपनी एक अमिट छाप छोडी थी। "खेडा-सत्याग्रह से गुजरात के किसानो की जागृति और उनकी सच्ची राजनैतिक शिक्षा आरम्भ हुई। गुजरात के सार्वजनिक जीवन मे नई शक्ति ओर नए साहस का सचार हुआ। पटीदार किसान को अपनी शक्ति का बोध हुआ। सार्वजनिक मस्तिष्क पर इस पाठ की अमिट छाप पडी कि लोगो का उद्धार उनके त्याग और बलिदान की सामर्थ्य पर निर्भर है। खेडा-आन्दोलन से गुजरात मे सत्याग्रह की जड मजबूत हो गई।"[१]

सन् १९१८-१९ मे अकाल, प्लेग ओर इन्फ्लुएंजा की दैवी विपत्तियो ने उपर्युक्त आर्थिक कारणो के साथ मिलकर लोगो के कष्टो को और भी ज्यादा बढा दिया।

३

सन् १९१८-१९ मे, भारत मे वर्षा १९ प्रतिशत कम हुई। "ऐसा कोई प्रान्त नही था जहाँ वर्षा की थोडी या बहुत कमी न हुई हो और इसका परिणाम यह हुआ कि फसल बहुत खराब हुई—यहाँ तक कि पिछली दशाब्दी मे इतनी खराब फसल नही हुई थी।"[२] "सरकार के सारे प्रयत्नो के होते हुए भी बढे हुए दामो और नाज की कमी के कारण लोगो को अवर्णनीय कष्टो का सामना करना पडा। इन परिस्थितियो की सब से प्रबल चोट निर्धन वर्गो पर हुई और साथ ही उन लोगो पर भी जिनकी अल्प और निश्चित आय थी और जो शहरो मे रहते थे।"[३] "१९१७ की भाँति जहाँ-तहाँ उपद्रव हुए और बाजारो मे लूट मार भी हुई।"[४]

इस दुर्दशा के वातावरण मे प्लेग और इन्फ्लुएंजा की महामारियो का प्रकोप हुआ। (सभवत) अतिवृष्टि के कारण १९१७ मे प्लेग अत्यन्त उग्र रूप मे प्रकट हुआ और जुलाई १९१७ से जून १९१८ तक देश मे प्लेग के कारण ८ लाख से अधिक व्यक्ति मर गए। देश के विभिन्न भागो मे मलेरिया और हैजा फैल जाने के कारण यह मृत्यु-सख्या और भी ज्यादा हो गई। सन् १९१७ मे ही भारत मे सार्वजनिक स्वास्थ्य की साधारण दशा काफी बुरी थी किंतु १९१८ मे वह और भी

---

१ Gandhi My Experiments with Truth, Vol II, pages 441-42

२ India in 1919, page 64

३. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ६७.

४. India in 1917-18, page 90.

ज्यादा बिगड गई। अस्तु, जून १९१८ मे इन्फ्लुऐंजा के प्रचड रूप का पता लगा।"[1] यह महामारी बम्बई मे आरम्भ हुई और कुछ ही समय मे सारे देश मे फैल गई। चार-पाँच महीने के अन्दर ही देश में इस महामारी के कारण ६० लाख से अधिक व्यक्ति मर गए।

यद्यपि मृत्यु-सम्बन्धी उपर्युक्त आँकडे अत्यन्त भयावह है तथापि उनसे लोगो के वास्तविक कष्टो का चित्र प्रस्तुत नही हो सकता। महामारी से जो लोग प्रभावित हुए थे उनका अनुपात कुल जनसख्या के पचास प्रतिशत से लेकर अस्सी प्रतिशत तक था, किन्तु चिकित्सा का प्रबन्ध अत्यन्त अपर्याप्त था। लोगो की आर्थिक स्थिति भयावह थी। "नाज के दाम लोगो की बिसात के बाहर थे और चारे की कमी के कारण दूध का प्राप्य परिमाण बहुत कम हो गया था"—"पोषक भोजन, कम्बल और गरम कपडे के दाम बहुत ज्यादा बढे हुए थे।" फलत जो लोग बीमारी से ठीक हो गए थे, वे बहुत समय तक अपना साधारण स्वास्थ्य प्राप्त नही कर सके। इन सब कारणो ने लोगो के, विशेषकर पश्चिमी, उत्तरी और केन्द्रीय भारत के लोगो के कष्टो को अत्यन्त तीक्ष्ण कर दिया।

४

इस प्रकार १९१७ और १९१८ मे भारत भयकर विपत्तियो का सामना कर रहा था; और उन विपत्तियो के कारण सारे देश मे असाधारण तीखापन था। राजनैतिक कारणो से यह तीखापन कई गुना बढ गया।

देश मे, विशेषकर बगाल मे सरकार की दमनकारी नीति के कारण प्रबल असन्तोष था। क्रान्तिकारी अपराधो का दमन करने के लिए, भारत रक्षा ऐक्ट के अन्तर्गत बहुत से नवयुवको के विरुद्ध कार्यवाही की गई थी। नजरबन्दो के साथ दुर्व्यवहार के और उन्हे अस्वास्थ्यप्रद स्थानो मे रखने के आक्षेप किए गए। तीन मामलो के सम्बन्ध मे—सारे देश मे—विशेषकर बगाल मे—बडा रोष फैला। पहले दो मामले एक-से थे—उनमे से एक प्रोफेसर जे० सी० घोष से सबधित था और दूसरा मि. एस. एन. सेठ से। प्रो० घोष को एक एकान्त कोठरी मे बद कर दिया गया था जिसके कारण उन्हे बडे कष्ट उठाने पडे, बाद मे वे पागल हो गए। यही बात मि० सेठ के मामले मे हुई। तीसरा मामला बहुत विचित्र था। बाकुरा जिले के पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट ने तार द्वारा यह कहा गया कि वह शाहबाजपुर गाँव के कामनवीय घोष के मकान से सिधुवाला देवी को गिरफ्तारी कर ले—जिसका नाम और पता एक 'भयकर' क्रान्तिकारी के कागजो मे एक पर्चे पर लिखा हुआ पाया गया था। उस अधिकारी को कामनवीय घोष का मकान तो नही मिला पर उसे कुजघोष

१. India in 1917-18, page 182.

नामक व्यक्ति के यहाँ एक सिधुबाला नामक स्त्री का पता लगा और उसे गिरफ्तार कर लिया गया। उस सिधुबाला से यह पता लगा कि उसकी भाभी का नाम भी सिधुबाला था। गलती का कोई अवसर ही न हो,इस विचार से पुलिस सुपरिण्टेण्डेण्ट देवेन्द्र घोष के गाँव गया और उसने दूसरी सिधुबाला को भी गिरफ्तार कर लिया। दोनो स्त्रियो को बाकुरा ले जाया गया जहाँ वे रात मे ग्यारह बजे पहुँची और उन्हे थाने तक पैदल चलने को विवश किया गया। दूसरे दिन, ६ जनवरी १९१८ को उन्हे जेल भेज दिया गया। पन्द्रह दिन बाद उनको छोड दिया गया क्योकि उनके विरुद्ध कोई अभियोग नही था और वे भूल से गिरफ्तार कर ली गई थी।

जिले के दो विभिन्न गाँवो से, बिना निश्चित सूचना के और बिना आवश्यक जाँच किए हुए, दो पर्दानशीन स्त्रियो की गिरफ्तारी से, चारो ओर क्रोध का उफान आया। कलकत्ता मे और अन्य स्थानो मे विरोध-सभाएँ की गई और इस सबध मे बगाल विधान-परिषद् मे भी एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया गया। सारे देश मे, विशेष-कर बगाल मे बडा भारी तीखापन छाया हुआ था और सरकार ने असतोष का शमन करने के उद्देश्य से, नजरबन्दो के अभियोगो के पुनरीक्षण के लिए एक कमेटी नियुक्त की--मि० जस्टिस बीच क्रोफ्ट और सर नारायण चन्दावरकर इसके सदस्य थे।

बीच क्रोफ्ट कमेटी ने कुल ८०६ मामलो का पुनरीक्षण किया। इनमे से १०० बन्दियो के मामले सन् १८१८ के विनियम न० ३ के अन्तर्गत थे, ७०२ व्यक्ति भारत रक्षा ऐक्ट के अन्तर्गत नजरबन्द थे; और ४ व्यक्ति 'भारत प्रवेश' अध्यादेश के अन्तर्गत बन्दी थे।[1] कमेटी इस परिणाम पर पहुँची कि सरकार के पास जो प्रमाण थे उनके अनुसार ८०० व्यक्तियो की नजरबन्दी न्याय्य थी। कमेटी ने शेष छै नजरबन्दो को छोड देने की सिफारिश की।

किन्तु बीच क्रोफ्ट कमेटी की रिपोर्ट प्रकाशित होने से पहिले ही, अमेरिका के राष्ट्रपति विलसन के नाम सर सुब्रह्मण्य ऐयर के पत्र के मामले ने भारतीय क्षेत्रो मे सनसनी पैदा कर दी।

यह पत्र जून १९१७ मे लिखा गया था और दो अमेरिकन थियॉसोफिस्टो--होचर दम्पति के द्वारा अमेरिका भेजा गया था। उस पत्र मे कहा गया था कि यदि भारत को स्वतन्त्रता का वचन मिल जाय तो युद्ध के लिए भारत से १ करोड़ आदमियों की भर्ती हो जायगी। पत्र में ब्रिटिश राज्य की तीव्र आलोचना की गई थी। वाइसराय और भारत-मत्री ने, राजनैतिक सुधारो के सिलसिले मे सर

१. See Lowett. A History of Indian Nationalist Movement, page 196.

सुब्रह्मण्य ऐयर के उनसे भेंट करने पर, उनमे बडी फटकार लगाई। यह बात भारत-मत्री ने इस सबध मे पार्लियामेण्ट मे प्रश्न पूछे जाने पर व्यक्त की।

इस पर सर सुब्रह्मण्य ने समाचार-पत्रो मे एक पत्र प्रकाशित किया और उन्होने अपना निवृत्ति वेतन छोड देने की तत्परता प्रकट की। उन्होने मद्रास सरकार के मुख्य कार्यवाह को एक पत्र लिखा और के० सी० आई० ई० तथा दीवान बहादुर की अपनी उपाधियो का परित्याग कर दिया।

इस घटना से भारत मे बडी हलचल हुई और सारे देश के राष्ट्रवादी पत्रो ने सर सुब्रह्मण्य की प्रशसा की।

५

लोक-सेवाओ के सबध मे इस्लिगटन कमीशन की रिपोर्ट और वैधानिक सुधारो के सम्बन्ध मे मॉण्टफोर्ड-रिपोर्ट प्रकाशित होने पर राजनैतिक असन्तोष और ज्यादा बढ गया। सन् १९१८-१९ मे सर्वसाधारण यह अनुभव करने लगा था कि "युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भारतीय आकाक्षाओ और विशेषकर राजनैतिक सुधारो के प्रति, सरकारी और गैर-सरकारी यूरोपीय समुदाय का भाव बदल गया था।"[1] प्रान्तीय गवर्नरो और वाइसराय के व्याख्यानो से यह धारणा दृढतर हो गई। उसी समय जातीय उद्दडता और असहिष्णुता की कई घटनाएँ हुई। मि हसन इमाम कलकत्ता हाईकोर्ट के भूतपूर्व न्यायाधीश थे और अगस्त १९१८ के विशेष काग्रेस-अधिवेशन के अध्यक्ष थे। मि क्लेटन आई सी एस. ने (जो बिहार सरकार के एक उच्च अधिकारी थे) और जो मि हसन इमाम के साथ रेल मे एक पहली श्रेणी के डिब्बे मे यात्रा कर रहे थे, उनको गालियाँ दी और उन पर हमला किया। इस घटना से सारे देश मे तीखापन बढना स्वाभाविक ही था। किंतु क्रोध और तीखेपन को शिखर तक पहुँचाने का काम रॉलेट-रिपोर्ट और रॉलेट-विधेयको ने किया। भारतीय सैनिको को मित्र राष्ट्रो के राजनीतिज्ञो ने अपने व्याख्यानो से बहुत-सी आशाएँ दिलाई थी। भारत लौटने पर उन्हे दूसरा ही दृश्य दिखाई दिया। जब वे पजाब मे अपने घर पहुँचे तो उन्हे अकाल, कठिनाई और निरकुश राज्य का वातावरण मिला। रॉलेट-विधेयको के रूप मे उनका स्वागत करने की तैयारियाँ की जा रही थी। ऐसा प्रतीत होता था कि ये विधेयक खास तौर पर उन्ही के लिए बनाए जा रहे थे—रॉलेट कमेटी ने स्पष्ट कहा था कि विदेशो से बहुत बड़ी सख्या मे सैनिको के लौटने पर जो परिस्थिति सभवत उत्पन्न हो सकती थी, उसी का सामना करने के लिए विशेष दमनकारी कानूनो की आवश्यकता थी।

किंतु रॉलेट-रिपोर्ट और विधेयको के सबध मे चर्चा करने से पहले, खिलाफत

१. India in 1919, page 23.

के प्रश्न पर मुस्लिम आदोलन और पजाब मे सर माइकेल ओ' डायर के उग्र शासन से उत्पन्न विशेष परिस्थितियो के बारे मे कुछ विवरण देना उपयुक्त होगा।

तुर्किस्तान के आसन्न भाग्य और खलीफा की स्थिति पर उसके प्रभाव के सबध मे, भारतीय मुसलमानो मे बडी उद्विग्नता थी। तुर्किस्तान-सहित अन्य केन्द्रीय शक्तियो को परास्त करने मे भारतीय मुसलमानो ने भी पूरा हाथ बँटाया था। ब्रिटिश राजनीतिज्ञो द्वारा उन्हे इस बात का आश्वासन दिया गया था कि युद्ध समाप्त होने पर राष्ट्रीयता और आत्म निर्णय के सिद्धान्तो को तुर्क प्रदेशो पर भी लागू किया जाएगा और खलीफा की स्थिति के सबध मे यूरोपीय शक्तियाँ कोई हस्तक्षेप नही करेगी। किन्तु युद्ध समाप्त होने के बाद विभिन्न प्रकार की बाते सुनाई पडी कि तुर्किस्तान को कई भागो मे बाँट दिया जायगा और उन प्रदेशो को जिनमे मुसलमानो के धार्मिक स्थान थे, गैर-मुस्लिमो के आधिपत्य मे रखा जायगा—और इन सब बातो के साथ खिलाफत का प्रश्न मिला हुआ था। ये सारी बाते भारतीय मुसलमानो को चिन्ता मे डाले हुए थी और उनसे मुसलमानो मे असतोष बढ रहा था। मि मॉण्टेगु के अनुसार भारत की दुर्घटनाओ का पहला राजनैतिक कारण, तुर्किस्तान के सबध मे मुस्लिम दृष्टिकोण था।[1]

किन्तु भारतीयो के अनुसार, उन दुर्घटनाओ का अधिक महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि पजाब मे सर माइकेल ने अपने उग्र शासन से प्रबल असन्तोष फैला दिया था।

पजाब के युद्धकालीन उप-गवर्नर को कठोर, व्यक्तिगत राज्य मे दृढ विश्वास था। उसके अनुसार सरकार का मुख्य काम 'कानून और व्यवस्था' को बनाए रखना था। उसे कार्यकारिणी परिषदो और राजनैतिक सुधारो मे कोई विश्वास नही था। लोगो की उच्च राजनैतिक आकाक्षाओ के प्रति उसकी कोई सहानुभूति नही थी। अधिक नौकरियो और अधिकारो के लिए शोर मचाने वाले शिक्षित वर्ग, उसे बुरे मालूम होते थे, और उनके महत्त्व को घटाने के लिए वह प्रत्येक अवसर का लाभ उठाता था। युद्ध के दिनो मे उसने निर्दयतापूर्वक दमन किया और लोकमान्य तिलक और श्री बिपिनचन्द्र पाल जैसे प्रतिष्ठित नेताओ के प्रात मे प्रवेश करने पर रोक लगा दी। और उसकी यह बहुत बडी आकाक्षा थी कि युद्ध जीतने के लिए अन्य प्रान्तो की अपेक्षा उसके प्रान्त से जन, धन और सामग्री का सबसे अधिक समायोग हो। किन्तु इस उद्देश्य के लिए बहुत से अवसरो पर बलात् भर्ती की गई

१. Speech of Mr. Montagu on 22nd May, 1919 in the House of Commons. The Indian Annual Register, Part II, page 123

और लोगो को बडे कष्टो का सामना करना पड़ा। जैसा कि मुज़फ़्फरगढ के सत्र न्यायाधीश मि कोल्डस्ट्रीम ने लिखा–"युद्ध-ऋण उगाहने के लिए और सैनिको की भर्ती करने के लिए जो उपाय काम मे लाये गए वे बहुधा अनधिकृत, आपत्तिजनक, अत्याचारपूर्ण और सरकार की इच्छा के विरुद्ध थे। दूर के जिलो मे वे, लोगो को असह्य थे।"[1] शाहपुर जिले मे स्थिति और भी ज्यादा गभीर हो गई। वहाँ के एक अति-उत्साही तहसीलदार, सैयद नादिर हुसैन ने अत्यन्त आपत्तिजनक[2] और अत्याचारपूर्ण उपायो से काम लिया और स्वय सर माइकेल के अनुसार उसका ढर्रा बलात्-भर्ती की तरह था। क्रोध से भरे हुए लोगो ने उसकी हत्या कर दी। प्रत्येक जिले के लिए सैनिको की सख्या, युद्ध-ऋण और चदे की रकम निश्चित कर दी गई थी और उस सख्या अथवा रकम को पूरा करने के लिए हर सभव उपाय को काम मे लाया गया। और सबसे ज्यादा चुभने वाली बात यह थी कि लोगो को इन शिकायतो के विरुद्ध आवाज उठाने की आज्ञा नही थी। उसकी राजद्रोह मे गिनती थी और सर माइकेल की सरकार उसका निर्दयतापूर्वक दमन करने पर तुली हुई थी। मॉडरेट हो जाने के बाद १९२२ मे श्रीमती बीसेण्ट ने लिखा – "सर" माइकेल का कठोर और अत्याचारपूर्ण शासन, बलात् भर्ती और युद्ध-ऋण की उगाही और सारे राजनैतिक नेताओ का निष्ठुर अर्दन––ये सब बाते ऐसी थी जिन्होने तीखेपन की चिनगारियो को जीवित रखा, जिनसे आग की लपटे किसी भी समय फूट सकती थी। बम्बई मे १९१८ के विशेष अधिवेशन मे पजाब के प्रतिनिधियो ने हमे बताया था कि प्रान्त के लोग एक ज्वालामुखी के ऊपर रह रहे थे जो किसी भी असाधारण अत्याचार के काम से फूट सकता था। इसी कारण जब १९१९ मे उसी प्रान्त मे उपद्रव हुए तो हमे कोई आश्चर्य नही हुआ।"[3]

६

१९१९ मे सार्वजनिक उभाड का तात्कालिक कारण था––रॉलेट अथवा काले विधेयको का पारण। १९१७ के अन्त मे न्यायाधीश एस ए टी रॉलेट की अध्यक्षता मे भारतीय राजद्रोह कमेटी नियुक्त की गई थी, उसने अप्रैल १९१८ मे अपनी रिपोर्ट दी। कमेटी ने सरकार द्वारा प्रस्तुत किए हुए उन सारे प्रमाणो की जॉच की जिनके आधार पर भारत रक्षा ऐक्ट के समाप्त होने पर क्रान्तिकारी अपराधो से निपटने के लिए विशेष विधान बनाने को कहा गया था। कमेटी ने अपना सारा काम गुप्त रूप से किया। अस्तु, मि मॉण्टेगु ने ऐसे विशेष विधानो के सकटो के

१. Congress Punjab Inquiry Committee Report, vol. I Page 18.

२ उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ १९।

३. Besant : The Future of Indian Politics, Page 236.

प्रति मि. रॉलेट को सावधान कर दिया था और उस सबध मे भारत सरकार द्वारा प्रस्तुत योजना को स्वीकार करने के बारे मे चेतावनी दे दी थी। मि. मॉण्टेगु ने लिखा है :—"मैने उन्हे बताया था कि नजरबन्दी और पुलिस की सहायता से सरकार का काम चलाने के ढग से हम सभवत अपने उत्तराधिकारियो के लिए परेशानियाँ पैदा कर देगे और मैने यह आशा प्रकट की थी कि भारत-सरकार द्वारा प्रस्तुत योजना मे से वह उसी बात को स्वीकार करेगे जो सासदिक रूप से रक्षणीय हो।"[1] किन्तु रॉलेट कमेटी इस निष्कर्ष पर पहुँची कि क्रान्तिकारी अपराधो से निपटने के लिए साधारण फौजदारी कानून अपर्याप्त था, और उसने दो प्रकार के विशेष विधान बनाने की सिफारिश की—एक दण्डात्मक और दूसरा प्रतिबन्धक। भारत सरकार ने कमेटी की सिफारिशो को रूप देने के लिए दो विधेयक बनाए। सभी जगह विरोध प्रकट किया गया, सरकार को सावधान किया गया किन्तु सरकार ने उन विधेयको को ऐक्ट बनाने के सबध मे अपना निश्चय नही बदला। अन्त मे उनमे से केवल एक विधेयक ही ऐक्ट बना किन्तु उसके कारण एक देशव्यापी उथल-पुथल हुई जो उस समय तक भारतीय इतिहास के लिए नई चीज़ थी।

इस काले कानून का सरकारी नाम था—अराजकतापूर्ण और क्रान्तिकारी अपराध ऐक्ट। यह ऐक्ट सार्वजनिक अधिकार और भारतीय राजनैतिक जीवन, दोनो ही का दमन करने के लिए बनाया गया था। किन्तु दूसरे पक्ष के मतानुसार इस ऐक्ट का उद्देश्य "राजनीति का शोधन"[2] और "अराजकता तथा क्रान्ति से ..लोगो के जीवन और उनकी सम्पत्ति की रक्षा करना था।"[3]

यह ऐक्ट पॉच भागो मे बॉटा गया था। पहला भाग दडात्मक था, दूसरे और तीसरे भाग प्रतिबन्धक थे, चौथे भाग मे उन अपराधी लोगो को ऐक्ट के अन्तर्गत लाया गया था जो पहले से ही सरकारी नियन्त्रण मे थे, और पाचवे भाग मे इस बात की व्यवस्था की गई थी कि यदि ऐक्ट अथवा उसका कोई भाग किसी विशेष क्षेत्र मे लागू न रहे तो भी जो कार्यवाहियाँ पहले ही जारी हो गई हो उन्हे पूरा कर दिया जाय।

---

१ Montagu : An Indian Diary, page 156.

२ Speech of Sir William Vincent. See Punjab Unrest: Before and After, page 5.

३. Speech of Sir Michael O' Dwyer of April 10, 1919, Pearey Mohan : The Imaginary Rebellion and How it was Suppressed, page 13.

पहले भाग मे "अपराधो के सबध मे शीघ्र अभियोग-निर्णय की व्यवस्था की गई थी····और उसके विरुद्ध अपील करने का कोई अधिकार नही था।"[१] किसी प्रान्त मे पहले भाग के लागू कर दिए जाने पर, हाईकोर्ट के तीन जजो का एक विशेष न्यायालय बनना था जो अपना काम कही भी और साथ ही गुप्त रूप से कर सकता था। इस न्यायालय मे ऐसे प्रमाण भी मान्य थे जो इडियन एविडेन्स ऐक्ट के अनुसार ग्राह्य नही थे। निर्णय, जजो के बहुमत से होना था और वह अन्तिम था। किन्तु प्राणदण्ड देने के लिए सारे जजो का एकमत होना आवश्यक था।

दूसरे भाग के अनुसार प्रान्तीय सरकार को अधिकार था कि यदि उसे किसी व्यक्ति के बारे मे यह विश्वास है कि उसका किसी ऐसे आन्दोलन से सबध है जिससे राजसत्ता के विरुद्ध अपराध होने की सभावना हो तो वह उसको "जमानत देने के लिए अथवा अपना पता देने के लिए अथवा किसी विशेष स्थान मे रहने के लिए अथवा किसी निर्दिष्ट काम से दूर रहने के लिए अथवा थाने मे अपनी हाजिरी देने के लिए" आज्ञा दे सकती थी।[२] आरभ मे यह आज्ञा केवल एक महीने के लिए होनी थी किन्तु जॉच कमेटी की रिपोर्ट पर वह एक वर्ष तक के लिए बढाई जा सकती थी। इस जॉच कमेटी मे (प्रत्येक मामले के लिए) सरकार द्वारा तीन सदस्यो की नियुक्ति होनी थी। कमेटी का काम गुप्त रूप से होना था और सबधित व्यक्ति स्वय उपस्थित होकर सफाई पेश कर सकता था किन्तु उसे वकील द्वारा प्रतिनिधित्व करने का कोई अधिकार नही था।

तीसरा भाग और भी ज्यादा कठोर था। उससे किसी भी स्थान की तलाशी और विना वारण्ट के किसी भी सदिग्ध व्यक्ति की गिरफ्तारी की और उसे "किसी नियत स्थान मे निश्चित शर्तो के आधीन रखने की"[३] व्यवस्था थी। आरम्भ मे इस नजरबन्दी की अवधि एक वर्ष तक सीमित थी किन्तु बाद मे यह तीन वर्ष तक हो सकती थी। दूसरे भाग की तरह इसमे भी जॉच-कमेटी की व्यवस्था की गई थी।

भारत सरकार के अनुसार भारत मे अराजकतावादी और क्रान्तिकारी अपराधो का सामना करने के लिए, ऐक्ट की उपर्युक्त धाराएँ अत्यावश्यक थी। सन् १९०९ और १९१८ के बीच मे क्रान्तिकारी आन्दोलन के कारण ३११ अपराध अथवा अपराध के प्रयत्न हुए थे जिनसे १०३८ व्यक्ति सबधित थे। भारत रक्षा ऐक्ट ने अपराधो की सख्या घटाकर १० प्रतिवर्ष कर दी थी और "१९१८ के

१. Punjab Unrest : Before and After, page 3.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४।

३. Section 34 (I) of the Act, India in 1919, page 213.

पिछले तीन महीनों में कोई क्रान्तिकारी अपराध नही हुआ था।"[1]

भारतीय विधान-परिषद् के गैर-सरकारी सदस्यो ने विधेयक की सामर्थ्य पर सन्देह नही किया किन्तु उन्होने शान्तिकाल मे कार्यकारिणी को राजनैतिक जीवन का दमन करने के लिये असाधारण अधिकार देने का और सदिग्ध व्यक्तियो को खुले और विधिवत् अभियोग निर्णय से वचित करने का प्रबल विरोध किया। क्रान्तिकारी अपराधो से निपटने के लिए, पहले से ही विस्तृत अधिकार मिले हुए थे और उन्होने यह सुझाव दिया कि समस्या का वास्तविक हल, निर्दयतापूर्ण दमन के स्थान पर राजनैतिक सुधार था। स्वय लॉर्ड मार्ले के अनुसार "सिन फीन से छुटकारा पाने का सर्वोत्तम उपाय, आयर्लैण्ड को स्वशासन देना था।" गैर-सरकारी सदस्यो ने सरकार से अपील की कि वह "पिछले कुछ दिनो से बराबर बिगडती हुई स्थिति पर ध्यान दे, वह स्थिति भविष्य के लिए सकटपूर्ण थी।" सर तेजबहादुर सपरू ने कहा ——"श्रीमान् सारे देश मे रोष छाया हुआ है, विभिन्न स्थानो पर विरोध सभाएँ हो रही है। इस नीति से देश एक भयकर आन्दोलन की भवरो मे फँस जायगा।"[2] किन्तु गैर-सरकारी सदस्यो के सयुक्त विरोध के होते हुए भी——जिनमे से चार सदस्यो ने विरोध मे त्याग-पत्र भी दिया ——सरकार ने कानून बनाया जिसके परिणामो पर सर्वत्र शोक प्रकट किया गया।

७

जिन दिनो भारतीय विधान-परिषद् मे रॉलेट-विधेयको पर विवाद हो रहा था, उन्ही दिनो महात्मा गाधी ने वाइसराय को पत्र लिखा और यह स्पष्ट कर दिया "कि सरकारी नीति के कारण मेरे लिये सत्याग्रह के अतिरिक्त और कोई मार्ग नही रह गया है।"[3] बम्बई मे सत्याग्रह-सभा बनाई गई, सत्याग्रह की प्रतिज्ञा का मसविदा तैयार किया गया और सदस्यो ने वह प्रतिज्ञा की। महात्मा गाधी ने सत्याग्रह आरम्भ करने का निर्णय समाचार-पत्रो मे अपने एक पत्र द्वारा व्यक्त किया, जिस मे सत्याग्रह-शपथ भी थी। वह शपथ इस प्रकार थी :—

"अपने अन्त करण से यह अनुभव करने के कारण कि ये विधेयक ..... स्वतन्त्रता और न्याय के सिद्धान्त के विरुद्ध, और व्यक्ति के प्रारभिक अधिकारो के लिए घातक है . . हम यह दृढ निश्चय करते है कि उनके कानून बनने पर और उनके रद्द न होने के समय तक हम उन कानूनो की और साथ ही उन

१. Punjab Unrest: Before and After, pages 2 and 3.
२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ५५।
३. Gandhi: My Experiments with Truth, Vol. II. page 482.

सब कानूनो की, जो नियुक्त की जाने वाली कमेटी उचित समझे, सविनय अवज्ञा करेगे और हम फिर यह दृढ निश्चय करते है कि इस सघर्ष मे हम सत्य का पूर्ण रूप से अनुसरण करेगे और जीवन, व्यक्ति अथवा सम्पत्ति के प्रति हिसा से दूर रहेगे।"[1]

किन्तु गैर-सरकारी सदस्यो की चेतावनी की तरह, सत्याग्रह-सभा के इस निर्णय का सरकार पर कोई प्रभाव नही हुआ और विधेयक का सरकारी वोटो से १८ मार्च १९१९ को पारण हुआ और वह २१ मार्च को कानून बन गया। उस समय महात्मा गाधी मद्रास मे थे। एक स्वप्न मे उन्हे सत्याग्रह करने का विचार आया और दूसरे दिन प्रात काल श्री राजगोपालाचारी से जिनके यहाँ वे ठहरे हुए थे, उन्होने अपने स्वप्न को बताया.--"पिछली रात मुझे स्वप्न मे यह विचार आया कि हमें सारे देश से सार्वजनिक हडताल करने के लिए कहना चाहिए। सत्याग्रह, आत्म-शुद्धि की प्रक्रिया है; हमारा सघर्ष पवित्र है और मुझे यह उचित प्रतीत होता है कि उसका आरम्भ आत्मशुद्धि के किसी कार्य से किया जाय। अत. सारे भारतवासी उस दिन अपना कामकाज छोडकर उपवास और प्रार्थना करे "[2]

श्री राजगोपालाचारी और अन्य व्यक्तियो ने उस विचार का स्वागत किया और महात्मा गाधी ने एक पत्र द्वारा उसे सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया। "पहले तो हडताल के लिए ३० मार्च (१९१९) निश्चित की गई, पर बाद मे तारीख बदल कर ६ अप्रैल कर दी गई।" "उस दिन (अर्थात् ६ अप्रैल को) सारे देश मे, शहरो और गाँवो मे सभी जगह शान्तिपूर्ण सफल हडताल हुई।"[3]

किन्तु कुछ स्थान ऐसे थे जहाँ हडताल की तारीख बदल जाने का देर से पता लगा और इसलिए वहाँ पर ३० मार्च को भी हड़ताल हुई। इन स्थानो मे दिल्ली नगर भी एक था और वहाँ पर ही विचाराधीन वर्ष की दु खद घटनाएँ सबसे पहले हुई।

३० मार्च को दिल्लीवासियो ने उपवास किया और हडताल की। हण्टर-कमेटी की रिपोर्ट के अनुसार लोगो की एक भीड ने रेलवे उपाहार-गृह बन्द करने की ज़िद की और वही से झगडा आरम्भ हुआ। रेलवे-पुलिस ने हस्तक्षेप किया और भीड मे से दो आदमियो को गिरफ्तार कर लिया। इससे लोगो मे क्रोध फैल

१. Punjab Unrest : Before and After, page 34.
२. Gandhi : My Experiments with Truth, Vol. II., page 486.
३. Gandhi : My Experiments with Truth, Vol. II., page 487.

गया और उन्होने तितर-बितर होने से इन्कार कर दिया और साथ ही दोनो आदमियो को छोडने की माँग की। पुलिस पर ईटे भी फेकी गई। अन्त मे भीड पर गोली चलाई गई और उसे निकट के क्वीन्स गार्डन मे खदेड दिया गया। इस पर भीड़ टाउन हाल के सामने जमा हो गई और वहाँ अधिकारियो ने फिर गोली चलाने की आवश्यकता अनुभव की। "इसके फलस्वरूप उस दिन गोलियो से मारे जानेवाले आदमियो की सख्या ८ हो गई। अस्पताल में लगभग एक दर्जन घायल व्यक्ति पहुँचे किन्तु उनकी वास्तविक सख्या कही ज्यादा थी।"[१] उसके बाद कोई झगडा नही हुआ और तीसरे पहर सार्वजनिक सभा शान्तिपूर्वक समाप्त हो गई। ६ अप्रैल की हडताल भी शान्तिपूर्ण रही। किन्तु मि गाधी की गिरफ़्तारी के कारण १० से लेकर १७ अप्रैल तक बराबर हड़ताल रही। पुलिस ने दुकानो को बलात् खुलवाने का प्रयत्न किया जिसके कारण बिल्लीमारान मे १७ तारीख को झगडा हो गया "पुलिस को आत्मरक्षा के लिए गोली चलानी पडी। लगभग अठारह आदमी घायल हुए जिनमे से बाद मे दो मर गए।"[२]

३० मार्च की घटनाओ के बाद, दिल्ली के स्थानीय नेताओ ने महात्मा गाधी को दिल्ली बुलाया। उन्होने ६ अप्रैल की हडताल के बाद आने की स्वीकृति दी। अस्तु, ७ अप्रैल की रात को वे बम्बई से दिल्ली के लिए रवाना हुए। इस बीच पजाब के उप-गवर्नर और दिल्ली के चीफ कमिश्नर के परामर्श से भारत सरकार ने पजाब और दिल्ली मे मि गाधी के प्रवेश पर रोक लगा देने का निश्चय किया और एक आज्ञा जारी की गई जिसमे उनसे बम्बई प्रेसीडेन्सी मे ही रहने का निर्देश किया गया। पलवल स्टेशन पर उन्हे यह सरकारी आज्ञा-पत्र दिया गया जिसका पालन करने से उन्होने इकार कर दिया। फलतः पलवल स्टेशन पर उन्हे गिरफ़्तार कर लिया गया और पुलिस की अभिरक्षा मे उन्हे बम्बई वापिस भेज दिया गया।

१० तारीख की सुबह को महात्मा गाधी की गिरफ़्तारी की सूचना अहमदाबाद पहुँची, जहाँ उन्होने अपना आश्रम बना लिया था और जहाँ उनके प्रति लोगो मे असाधारण श्रद्धा थी। उस समाचार से बडी उत्तेजना हुई। हडताल घोषित की गई। दो यूरोपियनो से सवारी छोड कर पैदल चलने के लिए कहा गया और उसी सम्बन्ध मे झगड़ा हो गया किंतु जिला-मजिस्ट्रेट मि चैट फील्ड ने स्थिति को अपनी कुशलता से सभाल लिया। दूसरे दिन कुमारी अनसूया साराभाई की गिरफ़्तारी के समाचार से लोगो का क्रोध और ज्यादा हो गया। मिल मजदूर आपे से बाहर हो गए और उन्होने आगज़नी और हिसा के कई काम किए। कई बार भीड़ो पर गोली

१. Disorder Inquiry (Hunter) Committee Report, page 3.

२. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ४।

चलानी पडी और १२ तारीख की सुबह को एक सैनिक घोषणा जारी करनी पडी। १३ तारीख को कुमारी साराभाई और महात्मा गाधी दोनो ही अहमदाबाद पहुँच गए,[1] और उन्हे नगर मे फिर से व्यवस्था स्थापित करने के काम मे सहायता देने के लिए अनुमति दी गई। १४ को घोषणा वापिस ले ली गई।" मि. गाधी ने एक बहुत बडी सभा मे भाषण दिया, लोगो के हिसापूर्ण कामो की निन्दा की और इनसे अपना काम करने के लिए जोर दिया। इस भाषण का वाछित प्रभाव हुआ और अहमदाबाद के झगडे १४ अप्रैल को लगभग समाप्त हो गए।[2]

"झगडो के सिलसिले मे·····उपद्रवियो मे से २८ आदमी मारे गए और १२३ घायल हुए; यह सभव है उनकी सख्या अधिक हो।·····अहमदाबाद नगर मे आठ जगह और निकट के अन्य स्थानो मे १४ जगह तार काटे गए। अहमदाबाद मे उपद्रवियो ने लगभग ९½ लाख रुपये की सम्पत्ति नष्ट की····· सभवत इसका मुख्य कारण यह था कि मि गाधी और कुमारी साराभाई के प्रति अपनी श्रद्धा के कारण उपद्रवी आपे से बाहर हो गए थे। उन लोगो को अपने बीच मे स्वतन्त्र देख कर, साथ ही मि गाधी का भाषण सुनकर, उनके मस्तिष्क मे से अव्यवस्था जारी रखने के विचार दूर हो गए।"[3]

१० अप्रैल की दोपहर तक पजाब मे कोई उपद्रव नही हुआ। रॉलेट-विधान के सम्बन्ध मे विभिन्न स्थानो मे विशेषकर लाहौर और अमृतसर मे सभाएँ हुई थी। ६ अप्रैल को सारे प्रान्त मे सफल और शान्तिपूर्ण हडताल हुई। अमृतसर मे ३० मार्च को भी। सारे प्रान्त मे प्रबल असतोष था और कुछ उत्तेजना भी थी। रॉलेट-ऐक्ट के विरुद्ध भावनाएं जगी हुई थी, साथ ही राजनैतिक सुधारो और शिक्षित वर्गो के प्रति उप-गवर्नर के भाव के कारण प्रान्त मे बडा भारी तीखापन था। किंतु कोई क्रातिकारी आन्दोलन नही था—उसे १९१६ मे ही दबा दिया गया था। प्रान्त के सभी नेताओ का आन्दोलन के लिए शान्तिपूर्ण एव वैध उपायो मे विश्वास था। किंतु सर माइकेल की सरकार, प्रान्त मे हर प्रकार के आन्दोलन और राजनैतिक जीवन का दमन करने पर तुली हुई थी। ७ अप्रैल १९१९ को सर माइकेल ने पजाब विधान-परिषद् मे, पजाबियो की सराहना करते हुए, सार्वजनिक नेताओ को यह धमकी दी—"इस प्रान्त की सरकार का यह दृढ निश्चय है और वह निश्चय भविष्य मे भी बना रहेगा कि सार्वजनिक व्यवस्था जो युद्ध काल मे

१. बम्बई ले जाकर महात्मा गाधी को छोड दिया गया; कुमारी साराभाई की गिरफ्तारी का समाचार गलत था।

२. The Disorders Enquiry Committee Report, page 13.

३. उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ १३.

सफलतापूर्वक कायम रखी गई थी, वह शान्ति-काल मे भग नही होगी। इसीलिए भारत रक्षा ऐक्ट के अन्तर्गत लाहौर और अमृतसर के कुछ व्यक्तियो के विरुद्ध कार्यवाही की गई है·····रॉलेट ऐक्ट के विरुद्ध·····लाहौर और अमृतसर, दोनो ही स्थानो मे जो प्रदर्शन हुए है·····उनसे स्पष्ट है कि अनभिज्ञ और सहज विश्वासी लोगो को किस प्रकार सरलता से बहकाया जा सकता है। जो लोग उनको बहकाने वाले है उन पर एक विकट उत्तरदायित्व है····जो लोग तर्क के स्थान पर अनभिज्ञता से अपील करते है उनकी भी एक दिन खबर ली जायगी।"[१]

अगले कुछ दिनो की घटनाओ से यह सिद्ध हो गया कि उक्त धमकी खोखली नही थी।

८

अमृतसर मे ३० मार्च और ६ अप्रैल की हडतालो मे पूर्ण शान्ति रही थी। दो स्थानीय नेताओ—डा सत्यपाल और डा किचलू—को भारत रक्षा ऐक्ट के अन्तर्गत सार्वजनिक सभाओ मे बोलने से रोक दिया गया था, तथापि हडतालो मे कोई भी उपद्रव नही हुआ था। ९ अप्रैल को रामनवमी थी, उस दिन एक विराट् जलूस निकाला गया जिसमे हिदू और मुसलमान, सभी सम्मिलित हुए। यह उत्सव भी शान्तिपूर्ण रहा। हण्टर-कमेटी ने लिखा है —"यह निश्चित है कि उस दिन शाति रही और यूरोपियनो के साथ कोई छेड-छाड नही की गई।" डिप्टी कमिश्नर स्वय भीड मे फस गया और बाद मे उसने इलाहाबाद बैंक के बरामदे मे से सारे जलूस को देखा। उसका कहना है कि "साधारणतया लोगो का व्यवहार शिष्टतापूर्ण था। जलूस की प्रत्येक कार मेरे सामने रुकी और बैंड ने 'गॉड सेव दि किग' बजाया।" उसी दिन सरकार ने डा सत्यपाल और डा किचलू के अमृतसर से निर्वासन की और उन्हे धर्मशाला नामक स्थान मे नजरबन्द रखने की आज्ञा जारी की। यह आज्ञा भारत रक्षा ऐक्ट के अन्तर्गत दी गई थी। दस तारीख को सुबह दस बजे उन्हे चुपचाप कार से धर्मशाला ले जाया गया और स्थानीय कार्य-कारिणी अधिकारियो ने सिविल स्टेशन पर भीड न घुसने देने के उद्देश्य से सैनिक और पुलिस प्रबन्ध कर लिया। लगभग साढे ग्यारह बजे निर्वासन का समाचार सारे शहर मे फैल गया। हडताल घोषित कर दी गई और दोनो नेताओ को छोडने की माँग करने के लिए, लोग जलूस बना कर डिप्टी कमिश्नर के मकान की तरफ बढे। हण्टर-कमेटी के वर्णन के अनुसार, "भीड के पास लाठियाँ अथवा और कोई लड़ने की चीज नही थी और उसने रास्ते मे यूरोपियनो के साथ कोई

१. The Congress Punjab Inquiry Committee Report, pages 6 and 7.

छेडछाड नही की।"[1] रेल के फाटक के पास भीड को रोका गया और उसे शहर की तरफ बलात् लौटाया गया। इसी प्रयत्न मे दो बार गोली चलाई गई। भीड क्रुद्ध और उग्र हो गई और उसने हत्या, लूटमार और आगजनी शुरू कर दी। रास्ते मे दो यूरोपियन—स्त्री अथवा पुरुष—मिले, उन्हे बुरी तरह पीटा गया। नेशनल एड एलायेंस बैंक[2] की इमारत मे आग लगाई गई, उसके यूरोपियन मैनेजर की हत्या की गई और बैंक के गोदामो को लूट लिया गया। टाउन हाल और अन्य सार्वजनिक इमारतो मे भी आग लगाई गई। तार काटे गए और मिस शेरवुड नामक एक ईसाई प्रचारिका को बुरी तरह पीटा गया और उसे मरा हुआ समझ कर एक गली मे छोड दिया गया, जहाँ से बाद मे कुछ हिन्दुओ ने उसे अस्पताल पहुँचाया। तुरन्त ही शहर मे फौजी टुकडियाँ भेजी गई और शाम तक भीड गायब हो गई। "१० अप्रैल को सैनिको की गोली से मरे हुए लोगो की सख्या लगभग १० थी, घायलो की सख्या अधिक होगी।"[3]

११ अप्रैल को, लोगो को मृत व्यक्तियो की दाह क्रिया करने की अनुमति दी गई। एक बहुत बडा जलूस निकाला गया और किसी प्रकार की गडबडी नही हुई। उसी शाम को जनरल डायर अमृतसर पहुँचा और उसने शहर की सैन्य-टुकडियो का सचालन अपने हाथो मे ले लिया। १२ अप्रैल को बहुत-सी गिरफ्तारियाँ की गई और एक घोषणा द्वारा सारी सभाएँ और भीडे वर्जित कर दी गई। हण्टर-कमेटी ने लिखा है —"यह प्रकट नही होता है कि उस घोषणा के प्रकाशन के लिए क्या व्यवस्था की गई . जिन स्थानो पर घोषणा (जो अगरेजी मे थी) पढी गई, उनका नक्शा देखने से यह प्रत्यक्ष है कि शहर के बहुत से भागो मे घोषणा नही पढी गई।"[4]

दूसरी ओर १२ अप्रैल की ही शाम को इस बात की सार्वजनिक सूचना दी गई थी कि १३ अप्रैल को शाम के साढे चार बजे जालियाँवाला बाग मे एक सार्वजनिक सभा होगी। जनरल डायर ने इस सभा के आयोजन को रोकने का कोई प्रबध नही किया किंतु उसने सभा आरम्भ होने के कुछ ही देर बाद अपनी फौजी गाडियो और अपने सैनिको के साथ वहाँ पहुँच कर बिना चेतावनी दिए हुए उस समय तक उन सैनिको को गोली चलाने की आज्ञा दी जब तक कि उनकी गोलियाँ ही समाप्त

---

१ The Disorders Inquiry Committee Report, page 22.

२ चार्टर्ड बैंक को अधिक क्षति नही पहुंची और उसके यूरोपियन मैनेजर और उपमैनेजर को पुलिस ने उन स्थानो मे से निकाला, जहाँ वे छिप गए थे।

३ The Disorders Inquiry Committee Report, page 29.

४ उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ ३०

न हो जायँ। सर वैलेण्टाइन शिरोल ने इस दृश्य का इस प्रकार वर्णन किया है'—

"जिन्होने जालियॉवाला बाग नही देखा है, उनके लिए उस दृश्य की भयकरता का अनुमान करना कठिन होगा। किसी समय वह एक बाग था किंतु आजकल वह एक खाली जगह है जहॉ अक्सर मेले होते है अथवा सार्वजनिक सभाएँ होती है, उसका विस्तार ट्रफालगर स्क्वायर के बराबर होगा। यह बाग चारो तरफ दीवारो से घिरा हुआ है जिनके ऊपर चारो ओर के मकानो का पिछवाडा दिखाई देता है। मै उसी सकरी गली से गया जिससे जनरल डायर · · अपने पचास सैनिक लेकर गया था। मै उसी उठी हुई ज़मीन पर खडा हुआ जहॉ खडे होकर उसने विना चेतावनी दिए, लगभग सौ गज़ की दूरी से एक घनी भीड पर, जो उस घेरे के एक निचले भाग की ओर थी और जहॉ मच से व्याख्यान दिए जा रहे थे, गोली बरसाने की आज्ञा दी थी। उसके अनुसार भीड मे लगभग ६००० आदमी थे, और लोगो के अनुसार जन-समूह १०००० से अधिक था। ये सब लोग निहत्थे और बिल्कुल घिरे हुए थे। घबराई हुई भीड तुरन्त फट पडी किंतु लगातार दस मिनट तक गोलियॉ बराबर बरसती रही—कुल १६५० वार किए गए—उन लोगो पर जो चूहो की तरह पिजडे मे फस गए थे, जो बाहर निकलने का निरर्थक प्रयत्न कर रहे थे, और जो गोलियो की बौछार से बचने के लिए जमीन पर लेट गये थे। जहॉ भीड घनी थी वहॉ गोलियॉ चलाने के लिए जनरल डायर ने व्यक्तिगत रूप से निर्देशन किया। उसी की शब्दावली मे "निशाने" अच्छे थे। दस मिनट बाद जब गोलियॉ समाप्त हो गई तो वह अपने सैनिको के साथ उसी मार्ग से लौट गया था जिससे वह आया था। सरकारी आकडो के अनुसार, जो कई महीनो बाद बताए गए, जनरल डायर ने ३७९[1] आदमियो को जान से मार दिया था और लगभग २००[1] घायल आदमियो

१. काग्रेस-जॉच कमेटी ने लिखा है—"मृत्यु सख्या के सम्बन्ध मे यह बात ध्यान देने योग्य है कि सरकार ने अपने कथनानुसार २९ अगस्त (अर्थात् हत्याकाड के चार महीने बाद) तक आकडो की छानबीन आरम्भ नही की। मि. थामसन ने उस समय कहा था कि २९० से अधिक व्यक्ति नही मरे थे। अब उन्होने सेवासमिति के आकडो को —अर्थात् ५०० की मृत्यु सख्या को—स्वीकार कर लिया है। ये आकडे वास्तविक छानबीन पर आधारित है और मृत्यु सख्या इनसे कम किसी भी हालत मे नही हो सकती। वास्तविक सख्या का कभी भी पता नही लग सकता किंतु बडी सावधानी से जाच करने के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचे है कि लाला गिरधारी लाल का अनुमान—अर्थात् १००० की मृत्यु सख्या—किसी भी प्रकार से अतिरजित नही हो सकती है" (रिपोर्ट का पृष्ठ ५७)। लाला गिरधारी लाल ने उस दृश्य को अपनी ऑखो से देखा था और गोलियॉ चलना बन्द होने के बाद, वे

को ज़मीन पर पडा छोड दिया जिनके लिए (उसी की शब्दावली के अनुसार) उसने रत्ती भर भी ध्यान देने को अपना कर्त्तव्य नही समझा।"[१]

सर वैलेण्टाइन ने लिखा है —"यदि स्वय जनरल डायर का हण्टर-कमीशन के सामने दिया हुआ वक्तव्य न होता, तो सभवत यह कहा जा सकता था कि सिविल सत्ता के अचानक लुप्त होने पर उसे अपने असतुलित निर्णय से चारो ओर खून दिखाई दिया। किंतु उसी के कथन से यह पता लगता है कि अपने सैनिको के साथ जालियॉवाले बाग को जाते हुए उसने जान बूझ कर ऐसा निर्णय किया था और यदि सकरे रास्ते ने उसे अपनी मशीनगने पीछे छोडने को विवश न किया होता तो उसने और भी ज्यादा बडा हत्याकाण्ड किया होता। उसने बताया कि उसका उद्देश्य सारे पजाब मे आतक जमा देना था।"[२]

घटनास्थल पर सबसे पहले पहुँचे थे।

१ लाला गिरधारी लाल, पजाब वाणिज्य मडल के उपाध्यक्ष थे और उन्होने एक मकान मे से जहॉ से बाग दिखाई देता था, सारा हत्याकाण्ड देखा था। उनके विश्वसनीय, ऑखो-देखे, विवरण को उद्धृत करना उपयुक्त होगा। उन्होने कहा —"मैने सैकडो लोगो को वही मरते हुए देखा। उस दृश्य की सब से बुरी बात यह थी कि दरवाजे से भागने का प्रयत्न करनेवाले लोगो पर, निर्देशन द्वारा गोली चलाई जा रही थी। चार या पाँच सकरी जगहे ऐसी थी जहॉ से निकला जा सकता था। वहॉ पर गोलियॉ वस्तुत बरस रही थी और बहुत से लोग भागने वाली भीड के पैरो तले कुचले गए उनमे से कुछ मर भी गए। खून बुरी तरह बह रहा था। जो लोग जमीन पर लेटे हुए थे वे भी गोलियो से नही बचे। मरे हुए अथवा घायल लोगो को देखने के लिये अधिकारियो ने कोई प्रबन्ध नही किया मैने बहुत से घायलो को पानी दिया और उस समय जो कुछ सहायता सभव थी वह मैने की। मैने चारो तरफ का चक्कर लगाया और सब को जमीन पर पडा हुआ पाया। कही-कही पर लोगो के ढेर बन गए थे। मृत शरीर बडी उम्र के लोगो के थे और उनमे बच्चे भी थे। कुछ लोगो की खोपडियॉ फट गई थी, कुछ की ऑखे बाहर निकल आई थी बहुत-से लोगो की नाक, छाती अथवा हाथ-पैर चूर-चूर हो गए थे . मेरे विचार से उस समय बाग मे १००० से अधिक मृत शरीर थे . बहुत-से लोग मरे हुए शरीरो को भी नही उठा सके इस डर से कि कही ८ बजे बाद दुबारा गोली न चलाई जाय।" pages 56-57 of The Congress Inquiry Committee Report से अनूदित।

२. Chirol: India: Old and New, pages 177-78.

९

पजाब के अन्य स्थानो मे १० और १५ अप्रैल के बीच जो दुर्घटनाए हुई, उनका विस्तृत विवरण देना आवश्यक प्रतीत नही होता। हण्टर-कमीशन की रिपोर्ट मे और अन्यत्र, उनका विस्तृत वर्णन किया गया है।[1] यहाँ केवल लाहौर, कसूर और गुजराँवाला की दु.खद घटनाओ की सक्षिप्त चर्चा कर देना ही पर्याप्त होगा।

महात्मा गाधी की गिरफ्तारी का समाचार मिलने पर १० अप्रैल को लाहौर मे हडताल की गई। एक जलूस बनाया गया और उसमे शोक प्रकट करने की दृष्टि से एक काला झडा साथ लिया गया। अनारकली से माल की ओर जाने के समय[2] उस जलूस को रोका गया और उससे तितर-बितर हो जाने को कहा गया। कहा यह जाता है कि लोग बहुत उत्तेजित थे, उन्होने तितर-बितर होने से इकार कर दिया और उस समय उन पर गोली चलानी पडी। १८ अप्रैल को वहाँ के लोकप्रिय नेताओ को—पडित रामभज दत्त, लाला हरकिशनलाल और लाला दुली चन्द को—निर्वासित कर दिया गया। फलत. १० अप्रैल से १७ अप्रैल तक हडताल रही। १८ अप्रैल को फौजी कानून के अन्तर्गत दुकानदारो को अपनी दुकाने खोलने के लिए विवश किया गया। लाहौर मे भीड ने हिमा के कोई काम नही किए।

किंतु कसूर मे उसकी उल्टी बात हुई, वहा भीड उग्र हो गई और उसने दो यूरोपियनो को मार डाला, सार्वजनिक इमारतो तथा रेलवे सम्पत्ति को क्षति पहुँचाई और सचार-साधनो की तोड-फोड की। ११ अप्रैल को हडताल आरम्भ हुई और दूसरे दिन भी जारी रही। "कसूर मे कसाइयो और चमडे का काम करनेवालो का एक उपद्रवी वर्ग है",[3] उसने १२ अप्रैल की सुबह को स्वतन्त्रता-शव का जलूस निकालने का आयोजन किया। यह जलूस रेलवे स्टेशन की ओर बढा और

१. Disorders Enquiry Committee Report के पृष्ठ ३६ से ७३ तक देखिए। इसके अतिरिक्त Pearey Mohan The Imaginary Rebellion and How it was Suppressed देखिए, पृष्ठ ५५ से ९४ तक। साथ ही Congress Punjab Inquiry Committee Report, 1919-20 के पृष्ठ ४५ से १५५ तक भी देखिए।

२. The Disorders Inquiry Committee Report, page 39.

३. Quoted from the Punjab Government Report by Pearey Mohan : The Imaginary Rebellion and How it was Suppressed, page 69.

अधिकाधिक उत्तेजित होता गया। पजाब सरकार की रिपोर्ट मे कहा गया है —"इस समय तक केवल उग्र प्रदर्शन का ही उद्देश्य था। स्टेशन पहुँचने पर भीड़ ने काफी क्षति पहुँचाई; दरवाज़े तोडे, खिडकियो पर पत्थर फेंके किंतु भीड स्टेशन के अन्दर नही गई और उसने पटरियो से कोई छेडछाड नही की। कुछ देर बाद भीड लौटी किंतु अपने नेताओ के भडकाने पर वह रुक गई और उसने बहुत बडे परिमाण मे तोड-फोड का काम आरम्भ किया। उसने एक तेल के गोदाम मे आग लगाई, रेल के सिगनल को नुकसान पहुँचाया, तार काटे, मेजो और कुर्सियो को तोडा और टिकट के दफ्तर मे लूटमार की।"[1] उस समय तक कुछ स्थानीय नेता वहाँ पहुँच गए और उन्होने भीड को तितर-बितर हो जाने के लिए समझाया। इसी बीच स्टेशन पर एक गाडी आई जिसमे कुछ यूरोपीय यात्री भी थे। भीड ने यूरोपियनो पर आक्रमण किया। उनमे से अधिकतर लोग बच गए—कुछ लोगो ने उन्हे रेलगाड़ी से उतार कर किन्ही भारतीयो के यहाँ शरण लेने के लिए समझा दिया था। किंतु दो यूरोपियनो ने गाडी से उतरने से इकार कर दिया और उन्होने अपने रिवाल्वरो से गोलियाँ चला कर अपनी रक्षा की। उन पर पत्थर फेंके गए। बाद मे भीड ने उन्हे घेर लिया और उन्हे अधमरा करके छोड़ दिया गया क्योकि उसी समय पुलिस आ गई और उसने गोलियाँ चला कर भीड़ को तितर-बितर कर दिया।

गुजराँवाला मे भी जबर्दस्त हमला हुआ। वहाँ के रेलवे स्टेशन के दोनो सिरो पर दो पुल थे, १४ अप्रैल को उन पुलो पर कटी हुई गाय और कटा हुआ सूअर लटका हुआ देख कर लोगो मे बड़ी उत्तेजना हुई। लोगो का यह विश्वास था कि पुलिस ने हिदुओ और मुसलमानो मे झगडा कराने के लिए गाय को (साथ ही सूअर को भी) काट कर लटका दिया था।[2] भीड़ ने पुलो मे आग लगा दी। काची पुल पर पुलिस ने गोली चलाई और कुछ लोग घायल हो गए। इस पर भीड क्रोध से पागल हो गई और उसने सार्वजनिक इमारतो और सचार-साधनो की तोड-फोड़ की। उसने तहसील, डाक बगला, जिला न्यायालय, चर्च और रेलवे स्टेशन मे आग लगा दी। लगभग ३ बजे शाम को लाहौर से हवाई जहाज़ आए और उन्होने शहर पर बम गिराए। बाद मे फौजी टुकडियाँ भी आ गई। हण्टर-कमीशन ने लिखा है —"गुजराँवाला के डिप्टी कमिश्नर कर्नल ओ' ब्रायन ने हमे बताया कि जहाँ तक पता लग सका है, १४ अप्रैल को पुलिस की गोलियो से कुल ११ व्यक्ति मारे गए और २७ घायल हुए।"[3]

१. उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ७०

२. The Disorders Inquiry Committee Report, page 48.

३. The Disorders Inquiry Committee Report, page 58.

१०

१५ और २४ अप्रैल (१९१९) के बीच मे पजाब के पाँच जिलो मे मार्शल लॉ (फौजी कानून) की घोषणा की गई। यह फौजी कानून ११ जून तक लागू रहा, किंतु रेलवे मार्गों पर तथा स्टेशनो के क्षेत्रो को इस कानून से २५ अगस्त को छुटकारा मिला।

फौजी कानून घोषित करने और उसे इतने समय तक लागू रखने अथवा उसे इतनी कठोरता से व्यवहार मे लाने की आवश्यकता के सम्बन्ध मे हटर कमेटी मे मतभेद था। किंतु सभी भारतवासियो ने एकमत से उस ढग की निन्दा की, जिससे १९१९ मे पजाब की स्थिति को सभाला गया था और जिसमे उस प्रान्त मे फौजी कानून को व्यवहार मे लाया गया था। फौजी कानून के कुछ प्रशासको ने असाधारण निर्दयता और बर्बरता से काम लिया था। इन लोगो की बर्बरता के व्यक्तिगत कार्यो का वर्णन करना न तो सभव है और न उससे कुछ लाभ ही है। किंतु इस सम्बन्ध मे तीन प्रतिनिधिपूर्ण सम्मतियाँ व्यक्त करना उपयुक्त होगा—एक सम्मति सर वैलेण्टाइन शिरोल की है जिन्हे भारतीय आकाँक्षाओ का विरोधी माना जाता है, दूसरी सम्मति भारत-मन्त्री मि माटेगु की है, और तीसरी सम्मति एक भारतीय मॉडरेट राजनैतिक सर शिवास्वामी एयर की है जो १९१९ के मॉडरेट सम्मेलन के अध्यक्ष थे और जो सत्याग्रह कार्यक्रम के विरोधी थे। उन सम्मतियो के अन्तर्गत १९१९ मे पजाब मे फौजी कानून के प्रशासन का सही चित्र मिल जाता है। सर वैलेण्टाइन ने लिखा है —

तब, जलियाँवाला काड के दो दिन बाद पजाब मे फौजी कानून की विधिवत् घोषणा की गई। यद्यपि इसके बाद जलियाँवाला बाग जैसे-काड नही हुए किंतु विद्रोह का सकट (चाहे आरम्भ मे वह बिल्कुल सच्चा ही क्यो न रहा हो), समाप्त हो जाने पर भी, तुच्छ एव प्रतिकारात्मक कृत्यो की नीति बराबर कार्यान्वित की गई जिस के फलस्वरूप जातीय तीखापन बढना स्वाभाविक था। यह सच है कि सर माइकेल ओ' डायर ने जनरल डायर की 'रेग कर चलने की बीभत्स आज्ञा' का विरोध किया था[1] और वह आज्ञा शीघ्र ही रद्द भी कर दी गई थी। किंतु और बहुत-सी 'आज्ञाए' थी जो रद्द नही की गई थी। लोगो मे अविशिष्ट और सामूहिक रूप से कोडे लगाए जाते थे[2] और विचित्र प्रकार के 'मनमाने' दड

१. १० अप्रैल को अमृतसर मे मिस शेरवुड पर जो आघात किया गया था, उसकी चर्चा की जा चुकी है। १९ अप्रैल को जनरल डायर ने यह आज्ञा दी कि जिस गली मे मिस शेरवुड गिरी थी उसमे से जानेवाले लोग हाथो और पैरो के बल रेग कर निकले। यह आज्ञा २६ अप्रैल को रद्द कर दी गई थी।

२. हण्टर कमेटी की 'अल्पसख्यक' रिपोर्ट के अनुसार २५८ लोगो पर साधारण

दिए जाते थे[1]—किसी व्यक्तिगत विद्रोही को दड देने के लिए नही, वरन् लोगो को आतकित करने के लिए और उनका अपमान करने के लिए। फौजी कानून के अन्तर्गत न्यायिक व्यवस्था[2] का कोई स्थान नही रहा था।[3]

हण्टर-कमेटी की रिपोर्ट के सम्बन्ध मे भारत-मन्त्री को भी विवश होकर अपने राजपत्र मे यह लिखना पडा—"एक ऐसा प्रश्न है जिसके सम्बन्ध मे इस निष्कर्ष पर न पहुँचना असभव है कि लार्ड हण्टर की कमेटी के बहुमत ने अपने विचारो को उस रूप मे व्यक्त नही किया जैसा कि तथ्यो की दृष्टि से केवल उचित ही नही वरन् आवश्यक था। कमेटी ने जिन घटनाओ का अपनी रिपोर्ट मे विस्तारपूर्वक उल्लेख किया है, उनको दोहराना अनावश्यक है। साथ ही उन आज्ञाओ के लिए, उत्तरदायी व्यक्तिगत अधिकारियो के दोषो का निर्धारण करने के सम्बन्ध मे प्रयत्न करने से भी, कोई लाभ नही होगा। किन्तु सम्राट्-सरकार इन आज्ञाओ और दडो की तीव्र निन्दा करती है। कमेटी ने जो उदाहरण दिए है उनके आधार पर यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पजाब मे फौजी कानून के प्रशासन मे, साधारणतया तो नही किंतु दुर्भाग्य से बहुत हद तक काफी, एक ऐसी जातीय भावना ने काम किया है कि जिसका उद्देश्य, भारतीय समाज का अपमान करना और उसे कष्ट पहुँचाना था। बहुत से अवसरो पर अन्याय किया गया और औचित्य तथा मानवता की मर्यादाओ का उल्लघन किया गया।"[4]

सन् १९१९ के अखिल भारतीय मॉडरेट सम्मेलन मे सर शिवास्वामी ने, सभापति के पद से अपने व्याख्यान मे कहा—"हण्टर-कमेटी के समक्ष, प्रमुख

---

रूप से कोडे लगाए—कुछ विशेष उदाहरण भी थे। साधारणतया यह ढग अपनाया गया था कि उस आदमी के कपडे उतार कर उसे एक चौखटे से बाँध दिया जाता था। और तब कोडे लगाए जाते थे। प्रत्येक आदमी को ५ से ३० तक कोडे लगाए गए। (Page 162. Disorders Inquiry Committee Report से अनूदित)

१. ७८९ व्यक्तियो को गिरफ्तार किया गया और जिनपर कोई मुकदमा नही चलाया गया—उपर्युक्त रिपोर्ट, पृष्ठ १६६

२. १०८ व्यक्तियो को प्राण दड दिया गया और ३६५ व्यक्तियो को देश-निर्वासन-दड दिया गया। बाद मे सरकार ने इन निर्णयो को दोहराया और तब केवल २३ व्यक्तियो को प्राणदड दिया गया और दो को देश-निर्वासन दड। इन आकडो से फ़ौजी न्यायालयो के प्रशासन का पता लगता है।

३. Chirol: India: Old and New, page 179.

४. Punjab Unrest: Before and After, page 159.

यूरोपियन साक्षियो के वक्तव्यो से जो तथ्य प्रकट होते है, उनकी ओर ध्यान देना उचित होगा। जलियाँवाले बाग मे भीड को तितर-बितर होने का अवसर नही दिया गया और सैकडो निहत्थे लोगो का कत्ले-आम किया गया, मशीनगनो की गोलियो से जो सैकडो आदमी घायल हो गए थे, जनरल डायर ने उनकी दशा पर ध्यान देना अपना कर्त्तव्य नही समझा, लोगो मे खुले आम कोडे लगाए गए, हाजिरी के नाम पर हजारो विद्यार्थियो को प्रति दिन १६ मील पैदल चलने को विवश किया गया, ५०० विद्यार्थियो और प्रोफेसरो को गिरफ्तार करके नजरबन्द रखा गया, ५-७ वर्ष की आयु के स्कूल के बच्चो को झडे की सलामी देने के लिए परेड मे बुलाया गया, फौजी कानूनो के विज्ञापनो को सुरक्षित रखने की ज़िम्मेवारी मकान-मालिको पर डाली गई, एक बरात के जलूस पर कोडे बरसाए गए, डाक को खोल कर देखा गया, ऐसे लोगो को जिन्होने राजसत्ता की सेवाएँ की थी, अकारण गिरफ्तार किया गया और नजरबन्द रखा गया· इस्लामिया स्कूल के ६ सब से बडे लडको मे इसलिए कोडे लगाए गए कि वे स्कूल के लडके थे और बडे लडके थे, गिरफ्तार आदमियो को बन्द करने के लिए खुला पिजडा बनवाया गया, विचित्र प्रकार के दड दिए गए, रीग कर चलने की आज्ञा दी गई, बहुत-से लोगो को एक साथ रस्सी से बाँध कर १५ घटे तक एक खुले ट्रक मे रखा गया, हवाई जहाजो का उपयोग किया गया, सम्पत्ति ज़ब्त और नष्ट की गई, हिदू-मुस्लिम-ऐक्य के विरोध मे क्रोध प्रदर्शित करने के लिए हिन्दुओ और मुसलमानो को जोडो मे हथकडियाँ पहनाई गई, भारतीयो के घरो की बिजली काट दी गई और नल बन्द कर दिए गए, भारतीयो के घरो से बिजली के पखे निकाल कर यूरोपियनो के उपयोग के लिए दिए गए और ऐसी ही बहुत-सी बाते और हुई जिन से पजाब मे आतक छा गया।"[1] यहाँ तक कि श्रीमती बीसेंट ने भी, जिन्होंने अमृतसर की भीडो के काम की उग्र[2] शब्दो मे निन्दा की थी और जिन्होने अपर्याप्त प्रमाण के आधार पर पजाब की भीडो के काम को क्रातिकारियो के सिर मढा था, २१ दिसम्बर १९१९ को यह लिखना आवश्यक समझा —"हण्टर-कमेटी के सामने सैनिक अधिकारियो के बयानो को पढकर मुझे अत्यन्त दु.ख हुआ है। उन्होने अपने मुँह से जो कुछ स्वीकार किया है, बेलजियम मे जर्मनवासियो ने उससे ज्यादा कुछ नही किया।"[3]

१. The Indian Annual Register, 1920, page 397.

२. उन्होने 'टाइम्स ऑव इडिया' को लिखा था —"तार काटना, पटरियाँ उखाड़ना, स्टेशनो मे आग लगाना, बैको पर हमला करना, जेलियो को आज़ाद करना—ये सब सत्याग्रहियो के काम नही है और न ये उपद्रवियो के ही काम है—वरन् उनमे क्रातिकारियों का हाथ है।"

३. Disorders Inquiry Committee Report, page 125.

११

जब फौजी कानून और रोक के दूर होने पर पजाब की भीषण घटनाओ के समाचार भारत के अन्य भागो मे पहुँचे तो सर माइकेल ओ' डायर के शासन और लॉर्ड चेम्सफोर्ड की सरकार के विरुद्ध जोरदार आवाज उठाई गई। राष्ट्रवादी समाचार-पत्रो मे इस बात की माग की गई कि लॉर्ड चेम्सफोर्ड को वापिस बुलाया जाय और सर माइकेल ओ' डायर पर तथा मार्शल लॉ के अत्याचारपूर्ण प्रशासन के लिए उत्तरदायी अन्य लोगो पर अभियोग चलाया जाय। वहाँ की घटनाओ ने जनता को क्रुद्ध और दु खी कर दिया था; सारे देश मे भयकर असतोष था। मॉडरेटो ने भी पजाब की आतकवादी नीति और राजनैतिक सुधारो की ओर प्रतिक्रियावादी भाव के कारण सरकार की तीखी आलोचना की। "सरकार के विरुद्ध केवल राष्ट्रवादी पत्रो मे ही नही वरन् मॉडरेट पत्रो मे भी इस बात की आलोचना की गई कि आरम्भ मे सुधार-योजना की जो रूप-रेखा थी वह बाद मे काफी दबा दी गई थी ।"[1]

किंतु राष्ट्रीय विरोध को, एक गम्भीर पत्र द्वारा, भारत के सर्वोत्तम कवि श्री रवीद्रनाथ ठाकुर ने व्यक्त किया, उन्होने इस पत्र द्वारा 'सर' की उपाधि का परित्याग कर दिया.—

"· ···· पजाब मे हमारे भाइयो ने जो अपमान और कष्ट सहे है उनके समाचार, रोधक प्रतिबन्धो की दीवारो मे से रिस कर भारत के प्रत्येक भाग मे पहुँच गए है और उनके कारण हमारे देशवासियो के हृदयो मे जो व्यापक रोष-वेदना हुई है, उसकी हमारे शासको ने उपेक्षा की है। सभवत· उन्होने अपने-आप को इस बात की बधाई दी है कि उन्होने (अपनी दृष्टि से) शासितो को हितकर पाठ पढाया है।··· यह जानकर कि हमारे निवेदन निरर्थक हुए है और प्रतिकार का मनोवेग हमारी उस सरकार के, जो अपनी भौतिक शक्ति और नैतिक परम्पराओ के अनुरूप उदारता प्रदर्शित कर सकती थी, उत्कृष्ट राजनैतिक दृष्टिकोण को आवृत्त किए हुए है, मै जो कम-से-कम कर सकता हूँ वह यह है कि मै सारे परिणामो को और उनकी जोखिम को अपने ऊपर लूँ और अपने ऐसे करोडो देशवासियो के, जो आतक से हतबुद्धि और मूक हो गए है, विरोध को व्यक्त करूँ।

अब वह समय आ गया है कि सम्मान के प्रतीक, अपमान के असगत सदर्भ मे, हमारी निर्लज्जता को सुस्पष्ट कर देते है और मै स्वय विशिष्ट गौरव से विहीन होकर अपने उन देशवासियो के बराबर खड़ा होना चाहता हूँ, जिनको उनकी

१. India in 1919, page 41.

'कथित' तुच्छता के कारण ऐसे अवमान सहने पडते है जो किसी भी मानव-शरीर के लिए उपयुक्त नही है। इन्ही कारणो ने मुझे श्रीमान् से उचित आदर के साथ यह कहने को विवश किया है कि मुझे 'सर' की उपाधि से छुटकारा दे दिया जाय।[1]"

महाकवि रवीद्रनाथ द्वारा उपाधि के परित्याग का अग्रेजो के मस्तिष्क पर गम्भीर प्रभाव पडा और उसके कारण ब्रिटिश सरकार ने माटफोर्ड सुधारो की योजना को तेजी से आगे बढाया। इस बीच, पडित मदनमोहन मालवीय और उनके सहयोगियो के अथक प्रयत्न के फलस्वरूप अधिकाधिक तथ्यो पर प्रकाश पडा। पडित मालवीय ने अप्रैल, मई और जून १९१९ की पजाब की दु खद घटनाओ के सम्बन्ध मे ९२ सूक्ष्म और अन्तर्भेदी प्रश्न[2] तैयार किए और भारतीय विधान-परिषद् के कार्यवाहक को सूचना दी, किंतु गवर्नर-जनरल ने उनको प्रस्तुत करने की अनुमति नही दी। वाइसराय ने परिषद मे अपने आद्य भाषण मे एक जाच कमेटी नियुक्त करने की घोषणा की थी जिससे अपनी रिपोर्ट भारत सरकार के समक्ष प्रस्तुत करनी थी। मालवीयजी ने एक प्रस्ताव प्रस्तुत किया और कमेटी के स्थान पर एक राजकीय कमीशन नियुक्त करने की माँग की क्योकि कमेटी को अपनी रिपोर्ट भारत-सरकार को देनी थी जो स्वय इस मामले मे फँसी हुई थी। किंतु पडित मालवीय का प्रस्ताव अस्वीकार कर दिया गया और लार्ड हण्टर की अध्यक्षता मे जाँच-कमेटी नियुक्त कर दी गई। इस कमेटी के सदस्य थे—मि जस्टिस रैकिन, मि राइस, मेजर जनरल सर जार्ज बेरो, सर चिमनलाल सितलवाद और साहबजादा सुल्तान अहमद। बाद मे पडित जगत नारायण और मि टॉमस स्मिथ को भी इस कमेटी मे सम्मिलित कर लिया गया। कमेटी ने अक्तूबर १९१९ मे अपना काम आरम्भ किया और मार्च १९२० मे अपनी रिपोर्ट दी। काग्रेसी और अन्य बहुत-से गैरसरकारी व्यक्तियो ने हण्टर-कमेटी के काम मे सहयोग नही दिया क्योकि उसका अभिदेश-क्षेत्र अत्यन्त सकुचित था और इसके अतिरिक्त पजाब के नेताओ से जो जेलो मे बन्द थे, परामर्श करने के लिए पर्याप्त अवसर नही दिया गया।

किन्तु अभी कमेटी का काम आरभ ही नही हुआ था कि भारत सरकार ने उन अधिकारियो को जिनके व्यवहार के सबध मे हण्टर कमेटी को जाँच करनी थी, अभियोज्यता से बचाने के लिए भारतीय विधान-परिषद् मे एक विधेयक[3]

---

१ The Indian Annual Register, 1920 pages 50-51.

२. इन प्रश्नो के लिए देखिए–"Punjab Unrest Before and After." Appendix pages 1-23

३. १९१९ के इस ऐक्ट के ६ सक्षिप्त विभाग थे। विभाग न० २ के अनुसार व्यवस्था पुन. स्थापित करने अथवा बनाए रखने के लिए किसी काम के सबध मे

प्रस्तुत किया। गैर-सरकारी सदस्यो ने सुझाव दिया कि हण्टर-कमेटी की नियुक्ति के कारण, उस विधेयक को स्थगित कर दिया जाय। प० मदनमोहन मालवीय ने उस अवसर पर एक ऐतिहासिक व्याख्यान दिया जो लगभग पाँच घटे मे पूरा हुआ। इस व्याख्यान मे उन्होने सारी घटनाओ का वर्णन किया, सारी विधिक और वैधानिक स्थिति की विवेचना की, और विधेयक को स्थगित करने के सशोधन का समर्थन किया। किन्तु, परिषद् के भीतर और बाहर, सार्वजनिक विरोध के होते हुए भी, सरकार ने सरकारी सदस्यो की वोटो से विधेयक का पारण कर दिया।

दूसरी ओर ब्रिटिश सरकार ने वातावरण को शान्त करने के उद्देश्य से पार्लियामेण्ट मे सुधार-विधेयक का जल्दी से पारण कराया और उस पर सम्राट् की स्वीकृति ली जिसकी राजकीय उदघोषणा दिसम्बर १९१९ के काग्रेस (अमृतसर) अधिवेशन के अवसर पर जारी की गई।

राजकीय उद्घोषण मे सुधारो की घोषणा की गई, सहयोग और मेल के लिए अपील की गई और वाइसराय को राजनैतिक अपराधियो के प्रति कृपाभाव दिखाने के लिए निर्देश किया गया। उसमे कहा गया – "इस समय मेरी यह उत्कट इच्छा है कि मेरी प्रजा और मेरी सरकार के लिए उत्तरदायी अधिकारियो के बीच जो कुछ तीखापन बच रहा हो वह पूरी तरह दूर कर दिया जाय।——एक नया युग आरभ हो रहा है। मेरी प्रजा के लोग और मेरे अधिकारीगण, सभी यह निश्चय करे कि ये एक सर्वमान्य उद्देश्य के लिए मिल कर काम करेगे। अत. मै वाइसराय को निर्देश देता हूँ कि वह मेरे नाम से और मेरी ओर से राजनैतिक अपराधियो के

---

किसी सिविल अथवा सैनिक अधिकारी को दड नही दिया जा सकता था। विभाग न० ३ के अनुसार सरकार के कार्यवाह का प्रमाण-पत्र यह सिद्ध करने के लिए पर्याप्त था कि कोई काम सरकार के अधिकारी की आज्ञा से व्यवस्था स्थापित करने अथवा बनाए रखने के लिए किया गया था। विभाग न० ४ मे उन व्यक्तियो को अभिरक्षा मे रखने की व्यवस्था की गई थी जिन्हे फौजी कानून के अन्तर्गत दड दिया गया था। विभाग न० ५ मे ऐसे लोगो की व्यवस्था की क्षतिपूर्ति की गई थी जिनकी सम्पत्ति सैनिक अधिकारियो द्वारा काम मे लाई गई थी। See pages 159-160 of "Punjab Unrest Before and After" for the Act———Also pages 161 to 174 for speech of the Home Member explaining the provisions and the Government Position.

प्रति राजकीय अनुकपा प्रदर्शित करे और सार्वजनिक सुरक्षा को ध्यान मे रखते हुए अधिकाधिक छूट दे---- ।"[१]

राजनैतिक सर्व-क्षमा[२] की घोषणा का वातावरण शान्त करने पर गहरा प्रभाव पडा । नेताओ को तुरन्त छोड दिए जाने का एक परिणाम यह हुआ कि वे लोग अमृतसर पहुँच कर काग्रेस-अधिवेशन मे सम्मिलित हो सके और इस बात का भी देश के वातावरण पर बहुत अच्छा प्रभाव पडा ।

अन्त मे १९१९ की काग्रेस ने सुधारो के ऐक्ट के सबध मे यह प्रस्ताव स्वीकार किया –

"(१) यह काग्रेस पिछले वर्ष की अपनी घोषणा को फिर दुहराती है कि भारत पूर्ण उत्तरदायी शासन के योग्य है, और सभी विरोधी धारणाओ और वक्तव्यो को अस्वीकार करती है ।

(२) वैधानिक सुधारो के सबध मे दिल्ली अधिवेशन के प्रस्ताव के प्रति इस काग्रेस की निष्ठा पूर्ववत् है और उसका यह मत है कि सुधार ऐक्ट अपर्याप्त, असन्तोषप्रद और निराशाजनक है ।

(३) यह काग्रेस इस बात का आग्रह करती है कि पार्लियामेण्ट, आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के अनुसार, भारत मे पूर्ण उत्तरदायी शासन स्थापित करने के लिए शीघ्रता से कार्यवाही करे ।

(४) यह काग्रेस आशा करती है कि इस अवधि मे सुधारो को इस ढग से कार्यान्वित किया जायगा कि पूर्ण उत्तरदायी शासन की शीघ्रता से स्थापना हो सके और यह काग्रेस महामाननीय मिस्टर ई० एस० माण्टेगु को सुधारो के सबध मे उनके श्रम के लिए धन्यवाद देती है ।"[३]

इस प्रकार सन् १९१९ के वर्ष का, जिसमे वस्तुत. आतक का राज्य रहा था, शान्तिपूर्वक अन्त हुआ । "१९१९ की घटनाएँ भारतवासियो की रग-रग मे समा गई" और वे "भावुक भारतीयो के लिए, ब्रिटिश राज्य के अत्यन्त कलुषित पक्ष के प्रतीक के रूप मे बनी रही ।"[४]

---

१ India in 1919, pages 51-52.

२. इस सर्वक्षमा के फलस्वरूप १३०० से अधिक व्यक्ति छोडे गए । देखिए उपर्युक्त पुस्तक, पृष्ठ ५३.

३. India in 1919. Appendix. VII.

४. Duffet and Others : India To-day, page 75.

## हमारा राजनैतिक तथा ऐतिहासिक साहित्य

| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | अगला कदम | हरेकृष्ण महताब | १।) |
| २. | सभा-शास्त्र | न. वि. गाडगिल | ६) |
| ३. | अगले पाँच साल | जी० एस० पथिक | ५) |
| ४. | भारत का सांस्कृतिक इतिहास | हरिदत्त वेदालंकार | ६) |
| ५. | महान् भारतीय | ब्रह्मवती नारंग | २) |
| ६. | हमारे राष्ट्रपिता | गोपालप्रसाद व्यास | २) |
| ७. | हमारा संविधान | प्रो० इन्द्र | १॥) |
| ८. | भारतीय प्रशासन | सीताचरण दीक्षित | प्रेस में |
| ९. | आँखों देखा रूस | सत्येन्द्रनाथ मजूमदार | ,, |
| १०. | आज का नेपाल | काशीप्रसाद श्रीवास्तव | ,, |
| ११. | भारत का चित्रमय इतिहास | महावीर अधिकारी | ,, |
| १२. | प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास | रांगेयराघव | ,, |

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ६